सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४६

(अप्रैल-जून १९३१)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५३

(जनवरी – मार्च, १९३३)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें ११ जनवरीसे ५ मार्च, १९३३ तककी सामग्री दी गई है। इस अवधिसे पूर्वके दो महीनोमे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनने काफी जोर पकड लिया था; लेकिन इस खण्डमे हम उस आन्दोलनकी प्रगतिको कुछ धक्का पहुँचता देखते है। मन्दिर-प्रवेशका विरोध करनेवाले सनातनी हिन्दुओंने गाधीजी पर तेजीके साथ प्रहार करने शुरू कर दिये थे। इतना ही नही, बल्कि इग्लैडके न्यास कानूनके अन्तर्गत भारतमे ब्रिटिश अदालतोंने अस्पृश्यता प्रथाको जो कानूनी छूट दे रखी थी, सरकारने उसे खत्म करनेके लिए कानून बनाने और इस तरह सुधारकोकी मदद करनेसे इन्कार कर दिया था। गांधीजी सरकारके इस रवैयेसे बहुत ज्यादा निरुत्साहित नही हुए थे, लेकिन सनातनियोकी कटुतासे उन्हें बहुत आघात पहुँचा था। गांधीजी ने अपना जीवन सत्य और हिन्दू-धर्मके लिए सर्मापित कर दिया था — उस हिन्दू-धर्मके लिए जिसमें "हमेशासे लचीलापन रहा है" और जिसने "समयकी आवश्यकताओको देखते हुए अपनेमे परिवर्तन किये है" (पृष्ठ ४७१)। सत्य और हिन्दू-धर्मके प्रति इस समर्पण भावके कारण ही वे व्यक्तिगत भावनाओंसे ऊपर उठ सके और सनातनी हिन्दुओंके साथ सतत वार्तालापके द्वारा धैर्यपूर्वक लोकमतको प्रशिक्षित करनेका कार्य कर सके। सनातनियोंके मिथ्या भाषणों और झूठे प्रचारोने गांधीजी को बहुत विचलित कर दिया था (पृष्ठ ३४), लेकिन इसके साथ ही उनकी गालियोंमे गांधीजी को आश्चर्यजनक ताजगी दिखाई दी क्योंकि उनसे पता चलता था कि वे लोग "दीर्घकालिक मानसिक आलस्यसे जाग उठे है" (पृष्ठ ३३६)। अपने एक साथी कार्यकर्ताको यह सलाह देते हुए कि उसे अपने आलोचकोंके साथ नरमीसे पेश आना चाहिए, गाधीजी ने बताया कि "कट्टरपन्थी लोगोंमे आज जो पूर्वग्रह है, वे ही पूर्वग्रह किसी समय हमारे मनमे भी थे" (पृष्ठ २५९)। इस सम्बन्धमे लोकमतको प्रशिक्षित करनेके लिए गांधीजी ने तीन साप्ताहिक शुरू किये: 'हरिजन' (अंग्रेजीमे), 'हरिजन-सेवक' (हिन्दीमे), और 'हरिजनबन्धु' (गुजरातीमे)। ये तीनों साप्ताहिक पत्र मूलतः हरिजनोंका उद्धार करनेके विचारसे प्रारम्भ किये गये थे, किन्तु कालान्तरमें वे गांधीजी और उनके अनुयायियों और साथी कार्यकर्ताओके बीच सार्वजनिक रूपसे विचारोंके आदान-प्रदानका मुख्य साधन बन गये।

कानूनके जरिये अपेक्षित सुधार लानेकी बातपर गांधीजी को कोई भरोसा नही था। वे जानते थे कि हिन्दू-समाज कानूनके बलपर नही बल्कि पारस्परिक सद्भावके

आधारपर एक-दूसरेसे जुड़ा हुआ है, और उनकी राय थी कि जबतक सवर्ण हिन्दुओका हृदय-परिवर्तन नही किया जाता, तबतक उन अधिकारोंको कानूनी सरक्षण प्रदान करना व्यर्थ है जिन्हे बहुमत स्वीकार करनेको तैयार न हो। तिसपर भी उन्होंने केन्द्रीय विधान-सभा मे रगा अय्यर द्वारा पेश किये गये विधेयकोंका समर्थन और सरकारसे उनपर तुरन्त विचार करनेका अनुरोध किया। ऐसा उन्होंने इसलिए किया, क्योंकि उक्त विधेयकोंका उद्देश्य हिन्दू-समाजके रीति-रिवाजों और प्रथाओपर प्रहार करना नहीं था (पृष्ठ ३८०), बल्कि उनका उद्देश्य सुधारकोंको कानूनकी बेड़ियोसे मुक्त करना था। गांधीजी का दृष्टिकोण पण्डित मदनमोहन मालवीयके दृष्टिकोणसे भिन्न था। मालवीयजी धार्मिक सुधारके रास्तेसे कानूनी बाधाएँ हटानेके लिए भी कानून बनानेके विरुद्ध थे। इसी तरह गाधीजी की राय सर तेजबहादुर सप्रूसे भी नही मिलती थी, जिन्हे "इस तरहके मामलेमे . . . जोर-जबरदस्तीका उतना डर भी नही है" (पृष्ठ ४३०)। मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे गाधीजी समझौता करनेके लिए भी तैयार थे ताकि जिस इलाकेके हिन्दुओका बहुमत हरिजनोको मन्दिरमे प्रवेश देनेके पक्षमे हो, वहाँ भी अपनी दृष्टिमे अपने "गहरे धार्मिक विश्वास" (पृष्ठ ३) से प्रेरित होकर उसका विरोध करनेवाले अल्पसख्यक लोगोकी भावनाओका आदर किया जा सके। उन्होने कई बार स्पष्ट शब्दोंमे यह बात कही कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी सुधार कट्टर हिन्दुओके पूर्ण सहयोगके साथ किया जायेगा। उनके लिए असहयोग एक प्रकारको मित्रता थी और असहयोग करना वस्तुत. सहयोगकी तलाश थी। वे चाहते थे कि उनके सनातनी मित्र समयको पहचाने, सोच-समझकर अस्पृश्यताका नाश करें और इस तरह हिन्दू-धर्मको शुद्ध करे। उनका कहना था कि "अस्पृश्यताकी अपनी ही कमजोरीसे नाश होनेकी प्रक्रिया अन्तमे हिन्दू-धर्मको और कमजोर कर जायेगी" (पृष्ठ २१५)। गाधीजी सनातनियोंकी इस बातपर दु.खी थे कि वे "आलस्यवश हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोको समझने और उनपर अमल करनेकी कोशिश ही नही करते" (पृष्ठ १९९-२००)।

गाधीजी ने आरम्भसे ही अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनको जाति-सुधार-सम्बन्धी सामान्य आन्दोलनसे, भले ही यह आन्दोलन अपने-आपमे कितना ही वाछनीय क्यों न रहा हो, सर्वथा अलग रखा था। उनका कहना था कि "इन प्रतिबन्धोके कारण इनसे पीड़ित लोगोंकी प्रगतिमे बाधा पहुँचती है। लेकिन ये प्रतिबन्ध उनकी आत्मिक उन्नतिके मार्गमे बाधा-स्वरूप नही है" (पृष्ठ २८१)। उन्होंने यह भी कहा कि "ये चार विभाग . . . समानताके आधारपर बने हुए है, और प्रत्येक विभाग सौपे हुए अपने-अपने कामको कर रहा है" (पृष्ठ २८२)। इसलिए उन्होने केन्द्रीय हिन्दू समितिको यह आश्वासन दिया कि "हिन्दू-जाति-व्यवस्थाको नष्ट करनेकी मेरी तनिक

भी इच्छा नही है, बशर्ते कि जाति-व्यवस्थाका अर्थ वर्णाश्रम-धर्म हो" (पृष्ठ ३२०)। लोग स्वेच्छापूर्वक अपने पुश्तैनी रोजगारको करते रहें, इसमें गांधीजी को किसी प्रकार का बाहरी जोर-दबाव नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होने यह बात जोर देकर कही कि जिन तथाकथित सभ्य देशोने कर्त्तव्यके बँटवारेके सिद्धान्तको अर्थात् वर्ण-व्यवस्थाको नहीं अपनाया है, वे "अभी उस स्थितिको प्राप्त नही हुए हैं" जिसे वे आत्म-सन्तोष और समभावसे देख सकते हों (पृष्ठ ४९७)। गाधीजी का अस्पृश्यता-विरोधी अभियान मात्र उस सामाजिक सुधार आन्दोलनकी एक कड़ी ही नही था जो राजा राम मोहन रायके जमानेसे चल रहा था, बल्कि यह तत्त्वत: एक आध्यात्मिक संघर्ष था, सत्यान्वेषणके प्रयत्नका एक अंग था जिसमे "हमे सत्य की खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है" (पृष्ठ ३१४)। हरिजनोंकी सेवा "कोई मशीन-जैसी चीज नहीं है कि ठीक व्यवस्था करनेके बाद उसे कार्यकर्ताओंपर छोड़ दिया जाये। यह तो एक आध्यात्मिक कार्य है, आत्माका आत्माके प्रति अपना फर्ज पूरा करना है" (पृष्ठ १६९)। गांधीजी ने हिन्दू-धर्ममे घुस आये उस असत्य तथा गन्दगीके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए सनातनियोंको आमन्त्रित किया जिसके परिणामस्वरूप "समानताके सिद्धान्तकी आधुनिक हिन्दू-समाजने जान-बूझकर निर्दयतापूर्वक अवहेलना की है" (३१७)। गाधीजी का एकमात्र उद्देश्य लोगोंके दिमागसे उस गलत धारणाको निकाल बाहर फेंकना था जिसके कारण वे अपने ही बन्धु-बान्धवोंके विरुद्ध इतने कठोर हृदय बन गये थे।

इस गलत धारणाके लिए शास्त्रोंकी गलत कल्पना जिम्मेदार थी। गांधीजी के अनुसार, "शास्त्र यानी, पूर्वकालमें जो अनुभवी लोग कह गये, सो वचन नही बल्कि उस मानवके वचन जिसे आज अनुभवज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान हुआ है। शास्त्र तो नित्य मूर्तिमन्त होता है। जो बात केवल पुस्तकों में है, जिसका अमल ही नही होता, वह तो तत्त्वज्ञान है अथवा मूर्खता या पाखण्ड है। शास्त्र तो तत्काल अनुभवगम्य होना चाहिए। कहनेवालेके अनुभवकी बात होनी चाहिए। वेद इसी अर्थमे नित्य हैं। दूसरा जो-कुछ है वह अब वेद नही है; वह तो निरा 'वेदवाद' है" (पृष्ठ ३७९)। गांधीजी की यह भी दलील थी कि "शास्त्रोंमे ऐसे प्रमाण भरे पड़े है जिनके आधारपर किसी भी ऐसी चीजको हिन्दू-धर्मके विपरीत मानकर रद किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूपसे मानवता या नैतिकताके, अहिसा या सत्यके सिद्धान्तके विरुद्ध है" (पृष्ठ २८६)। तथापि गांधीजी शास्त्रोंकी अपनी व्याख्याको दूसरोंके ऊपर थोपनेकी इच्छा नहीं रखते थे। "शास्त्रोंकी विभिन्न प्रतियोगी व्याख्याओं और परिकल्पनाओके बीच उसे अपना रास्ता स्वयं ही बनाना होगा" (पृष्ठ ९)। उन्होंने इस बातसे इन्कार किया कि वे कोई नया धर्म स्थापित करना चाहते हैं। उन्होंने कहा, "हिन्दू घरानेमें पैदा होनेके कारण ही

मै हिन्दू नही हूँ, बल्कि मै विश्वासपूर्वक और अपनी पसन्दसे भी हिन्दू हूँ।" "मै डॉ० अम्बेडकरसे कहूँगा कि वे अपनी कटुता और क्रोधका त्याग करें और अपने पूर्वजोके धर्मकी खूबियोको जाननेका प्रयत्न करे" (पृष्ठ ३३२-३३)। 'गीता', 'उपनिषद' और 'भागवत' में निरूपित हिन्दू-धर्म हमे सिखाता है कि ईश्वरकी निगाहमे कोई ऊँचा या नीचा नहीं है। "हिन्दू-धर्मके द्वारा प्रकाश, आनन्द और शान्ति प्राप्त करनेके अलावा मेरी और कोई इच्छा नही है। यही कारण है कि मै इसे शुद्ध करना चाहता हूँ" (पृष्ठ १८५)। उनका विश्वास था कि मन्दिरोंको खोलकर हिन्दू-धर्मको शुद्ध किया जा सकता है। मन्दिरोंको खोल देनेका यह एक आध्यात्मिक कार्य अस्पृश्यता-निवारणकी अनिवार्य कसौटी होगा और इससे सवर्णो और हरिजनोके मनमे नया प्रकाश पैदा होगा। "मन्दिर-प्रवेशका सन्देश प्रत्येक हरिजनके अन्तरको स्पर्श करेगा। किन्तु आर्थिक और शैक्षणिक उत्थानका प्रभाव केवल उन्हीं हरिजनोपर पड़ेगा जिन्हें उसका सीधा लाभ होगा। मेरी यह बात वे लोग आसानीसे समझ सकते है जो मेरी तरह मानते है कि मन्दिर हिन्दू-धर्मके अभिन्न अंग है, उसी प्रकार जिस प्रकार मस्जिदें इस्लामको और गिरजे ईसाई-धर्मके अभिन्न अग है" (पृष्ठ १४१)।

गाधीजी को पूरा विश्वास था कि अस्पृश्यताका उन्मूलन करना प्रत्येक हिन्दूका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, लेकिन साथ ही उनके मनमें यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट थी कि यह धार्मिक कार्य केवल सही साधनोसे ही साधा जा सकता है। "इस कारण हरिजन सेवकको चाहिए कि वह कभी विरोधीपर रोष न करे, मिथ्या-भाषण कभी नहीं करे और क्रोधको अक्रोधसे, अविनयको विनयसे, असत्यको सत्यसे तथा हिसाको अहिंसासे जीते" (पृष्ठ ४६५)। लेकिन अहिसाकी भाँति ही सत्यके आचरणके लिए निर्भीकता जरूरी है। जब पुजारियोने बहिष्कारकी धमकी दी तो गांधीजी ने सुधारकोंको सलाह दी कि वे विवाह आदि अवसरोंपर पुरोहितोंकी सेवाएँ न लें। वह अपने अनुयायियोंके अन्दर विश्वासका बल, उद्देश्यमे आस्था और ईश्वरमे जीवन्त विश्वास होनेकी अपेक्षा करते थे (पृष्ठ ५०५)।

लेकिन इस चर्चाके दौरान भी गाधीजी के मनसे उपवास करनेकी बात एक क्षणके लिए भी हटी नही थी। यह उपवास उन्होने १९३२ में स्थगित कर दिया था। लेकिन वह लोगोंको अपने विश्वासके विरुद्ध मन्दिर खोलनेके लिए मजबूर करनेकी खातिर धमकीके रूपमे उपवासका प्रयोग नही करना चाहते थे। रंगा अय्यरके विधेयकपर केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्योंका समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए राजगोपालाचारीने गांधीजी द्वारा उपवास करनेकी सम्भावनाका जो संकेत किया था उसे गांधीजी ने पसन्द नही किया। वह चाहते थे कि लोगोंको मुक्त रूपसे विचार करने दिया जाये और उपवासकी सम्भावनाका भय उनके मनमे न हो। गांधीजी ने

कहा कि मेरा उपवास यदि आध्यात्मिक कार्य होगा, तो उपवास करनेकी स्थितिमें उसका अपना ही प्रभाव पडेगा। उन्होंने यह दावा भी किया कि "मैं एक ऐसे पैमानेपर अहिंसाका प्रयोग कर रहा हूँ जो इतिहासमें कदाचित अज्ञात वस्तु है" और "यदि मुझे ऐसा कोई उपवास रखना ही पड़ा तो वह सत्यके, जोकि स्वयं ईश्वर है, आह्वानके प्रत्युत्तरमें होगा" (पृष्ठ ३६१-२)। "भावप्रवण प्रार्थनाकी अभिव्यक्ति-स्वरूप" (पृष्ठ २५६) यह उपवास भी गत सितम्बर मासके उपवासकी भाँति ही उन लोगोंसे अपील होगा जो उनसे प्रेम करते हैं और उनमे विश्वास रखते हैं। गांधीजी का विश्वास था कि "मुमकिन है कि हिन्दुओंको उद्दीप्त और प्रेरित करनेके लिए एक ऐसे व्यक्ति द्वारा अनशन करनेकी जरूरत है जिसने अपने जीवनको उनके जीवनके साथ एकाकार कर दिया है। यदि यह बात है तो फिर ऐसा ही होगा" (पृष्ठ १४०)।

एक ईसाई मित्रने जब यह आपत्ति की कि "जिसको हम प्यार करते हैं, उसकी भावनाको चोट पहुँचानेके डरसे अपने विवेक और स्वभावके विपरीत काम करनेपर बाध्य होना" गलत है, तब गांधीजी ने कहा कि प्रेमके दबावमे आकर लोगोंके सही काम करनेमें कोई गलत बात नहीं है। "बहुतसे मामलोंमें यदि स्त्री और पुरुष नेक और भले हैं, तो नेकी या भलाईकी खातिर नही, उस प्रेमकी खातिर हैं जो उन्हें दूसरोंसे है या जो उन्हें दूसरोंसे प्राप्त होता है। . . . संसारपर जिन लोगोंने सबसे अधिक नैतिक दबाव डाला, उन महान व्यक्तियोंमें ईसामसीह भी एक थे और हैं" और उन्होंने जो हमे "जंजीरोंमे जकड़कर बाँध रखा है" उसके लिए हम उनका गुणगान करते हैं (पृष्ठ २५०)। एक अन्य ईसाई आलोचककी इस बातका जवाव देते हुए कि उनका अनशन सरासर जोर-जबरदस्ती है, गांधीजी ने कहा: "ईसा का प्रेम ऐसा है, जो हजारों अनुयायियोंकी बुद्धि और भावनाको ईसाके प्रेमके आगे झुका देता है। मैं जानता हूँ कि बचपनमे मेरे माता-पिताके प्रेमने मुझे पाप-कर्मोंसे बचाया था, और पचास सालकी उम्रके बाद भी मेरे बच्चों और मित्रोंके प्रेमने मुझे नरकमे जानेसे निश्चित रूपसे रोका है। यदि उनके प्रेमका निश्चित और अभिभूत कर देनेवाला प्रभाव न होता, तो मैं अवश्य नरकमें कूद पड़ता। और यदि इस तमाम प्रेमको जोर-जबरदस्ती माना जा सकता है, तो जिस प्रेमने मुझे अनशन करनेकी प्रेरणा दी, वह प्रेम और मेरा वह अनशन भी जोर-जबरदस्ती था लेकिन किसी अन्य दूसरे अर्थमें कदापि नही? हिन्दू-धर्ममें उपवासकी बड़ी महत्ता है, जैसीकि शायद किसी अन्य धर्ममें नहीं है और हालाँकि जो लोग उपवास करनेके अधिकारी नहीं हैं, उन्होंने उपवास करके इसका दुरुपयोग किया है, लेकिन कुल मिलाकर इसने हिन्दू-धर्मका सबसे ज्यादा हित किया है। मै मानता हूँ कि बिना उपवासके प्रार्थना

ही नहीं होती और बिना प्रार्थनाके सच्चा उपवास नहीं होता। मेरा अनशन एक पीडित आत्माकी प्रार्थना-स्वरूप था" (पृष्ठ २८३)।

गांधीजी, प्रार्थना और अनशन द्वारा उच्चतर सत्ताके प्रति आत्मसमर्पण करनेके निजी प्रयासके साथ-साथ अपने साथी कार्यकर्ताओंके, विशेषकर आश्रमवासियोंके, हितके लिए बहुत चिन्तित रहते थे। उन्होने आश्रमकी स्थापना इसलिए की थी कि कुछ ऐसे समर्पित कार्यकर्ताओंको तैयार किया जा सके जो सामान्य कार्योमे अन्य लोगोके साथ स्वेच्छासे सहयोग करते हुए भी अपने व्यक्तित्वको बनाये रख सकें। यह एक "अजीबो-गरीब परिवार" था, क्योंकि इसमें "किसकी क्या स्थिति होगी, इसका निर्णय स्वयं व्यक्ति ही करता है" (पृष्ठ ७५)। स्वतन्त्रता, स्पष्टवादिता और अनुशासन-सम्बन्धी समस्याओंको लेकर प्रेमाबहनके मनमे जो गलतफहमी थी, उसे अपने ढगमे दूर करनेका प्रयास करते हुए उन्होने नारणदासको चेतावनी दी थी कि किसी भी तरहसे प्रेमाबहनके व्यक्तित्वका हनन नही किया जाना चाहिए। उन्होने लिखा: "आश्रममे किसीके भी व्यवितत्वका हनन हो तो आश्रमको हानि पहुँचेगी" (पृष्ठ ५७)। प्रेमाबहनको लिखे एक लम्बे पत्रमें उन्होने आश्रमके बड़े लोगोंको कैसा आचरण करना चाहिए, इस बारेमें स्पष्ट हिदायतें दी। "हमें सत्यकी खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है। इसलिए आश्रम एक विशाल कुटुम्ब बनता जा रहा है। . . . कुटुम्बके बच्चोके बारेमे हम क्या करते है? . . . लक्ष्मी नियमका पालन न करे, नियम न जाने, इसमें दोष मेरा है, बादमें तेरा है। . . . दूसरेके प्रति उदारता रखनी चाहिए, अपने प्रति कृपणता। . . . आश्रम मुझे मापनेका एक गज है" (पृष्ठ ३१४-१६)।

हमेशाकी तरह विभिन्न कार्योंमे व्यस्त होनेके बावजूद गांधीजी सत्यके शोधकोंके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए समय निकाल लेते थे। 'स्वधर्म'का पालन करनेमें भी एक प्रकारका स्वार्थ है, लेकिन वह स्वार्थ ऊँचे प्रकारका है, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने श्रीप्रकाशको लिखे अपने एक पत्रमे कहा: ". . . तुम्हें केवल अपना खोया हुआ स्वास्थ्य वापस पानेकी चिन्ता करनी चाहिए और परिवार, देश या दुनियाके बारेमें परेशान नहीं होना चाहिए। . . . जीवनकी एक सच्ची योजनामे एककी प्रगतिसे सभीकी प्रगति होती है" (पृष्ठ ३२४-२५)। इसी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने रामदास गांधीको लिखा: "हाथीको अपनी जरूरतका चारा लेनेका अधिकार है। लेकिन उतना चारा खाकर उसे व्यर्थ नहीं कर देना चाहिए" (पृष्ठ ४५६)।

एक शंकालु पत्र-लेखककी शंकाका समाधान करते हुए उन्होने यह स्वीकारोक्ति की: "मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं बहुत मूर्ख हूँ तथा अक्सर मैं जो काम करता हूँ और जिन मान्यताओंको लेकर चलता हूँ, उनका कारण नहीं बता सकता और

कभी-कभी मैं यह कल्पना करता हूँ कि मेरे द्वारा ईश्वर ही बोल रहा है और काम कर रहा है" (पृष्ठ १७९)। लेकिन एक जिज्ञासुको वे आश्वासन देते है कि परम सत्यकी प्राप्ति "बराबर उसका आचरण करके" और "विचार, वाणी और कर्ममें पूर्ण सामंजस्य" स्थापित करके की जा सकती है (पृष्ठ ५०७-८)। मनुष्यका आत्मिक विकास सूक्ष्म और स्वाभाविक ढंगसे हो सकता है, उसी प्रकार जिस प्रकार पेड़ोमें पत्तियाँ लगती है और लगातार विकसित होती जाती हैं, लेकिन उनको विकसित होते देखा नहीं जा सकता (पृष्ठ ७२)। इसके लिए मनुष्यको अपने अहम्पर विजय प्राप्त करनी होगी, अपनेको शून्यवत् बना देना होगा तथा उस महान यन्त्रचालकके हाथों यन्त्रके समान व्यवहार करना होगा (पृष्ठ ९६)।

एक जिज्ञासु और मुमुक्षुके रूपमे अपनी व्याख्या करते हुए गांधीजी दावा करते है कि उनके पास वैज्ञानिककी बुद्धि है, जो प्रश्नके हर पहलूपर विचार करती है और जिसमे अपनी भूलोंको स्वीकार करनेका साहस और विवेक है। गांधीजी आन्तरिक सत्सग अथवा मननकी तथा सौन्दर्य-बोध और व्यावहारिक अनुभवकी प्रभावकारिता को स्वीकार करते हैं। एक ओर कविता द्वारा हमे यह प्रतीति होती है कि जगत हममे है तो दूसरी ओर व्यावहारिक प्रतीति यह है कि हम जगतमें है। कविताकी प्रतीति व्यावहारिक प्रतीतिमे सुधार करके उसे सम्पूर्ण बनाती है, जिससे हम अन्ततः इस सत्यको पहचान सकते हैं कि "हम स्वय ही जगत है।" अध्ययन, विचार और क्रिया द्वारा "ईश्वरको जाननेवाली इन्द्रियका विकास किया जा सकता है। उसका विकास कर लें तो उसे भी पहचान लेंगे" (पृष्ठ २५-६)। गांधीजी को 'रामायण' के बारेमें कुछ लिखनेका बहुत शौक था, लेकिन समयाभावके कारण वे ऐसा नहीं कर पाये। इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने-आपको और अपने मित्रको इन शब्दोमें आश्वासन दिया: "जो अनासक्तियोगका अभ्यास अच्छी तरह करेगा वह 'रामायण' का रहस्य भी अपने-आप घटा लेगा। . . . रामको परमात्मा और रावणको ईश्वर विमुख शक्ति समझकर सारी 'रामायण' पढ़ना" (पृष्ठ २५८)। इस तरह देखनेसे रामनाम और ओंकार एक है। राम व्यक्ति और सिद्धान्त दोनों ही हैं, वे एक साथ साधन और साध्य हैं, धर्मका मार्ग और मोक्षकी आनन्दमयी स्थिति है। रामका सेवक यह सब समझनेकी शक्तिका विकास कर लेता है और इस तरह लोगों और ससारकी घटनाओंको प्रभावित करता है और ईमानदारीके साथ यह कह सकता है कि "मुझमें जो भी बल है वह रामका है, मेरा अपना कुछ नहीं" (पृष्ठ २१)। साथ ही जो रामका प्रेमी है, वह ब्रह्माण्डके समस्त क्रिया-कलापको सहज भावसे ग्रहण करता है। वह विनाश और निर्माण, संयोग और वियोग, सुख और दुःखको निरुद्विग्न और निर्विकार भावसे देख सकता है, क्योंकि "ब्राह्मी स्थितिमें किसीके दुःखमें दुःखी

होनेकी बात ही नहीं होती, क्योंकि किसीके सुखमे सुखी होनेकी बात भी नही होती" (पृष्ठ ७२)।

जवाहरलाल नेहरूको लिखे एक पत्रमें गाधीजी सरदार पटेलका वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे विनोदके अक्षय भण्डार है (पृष्ठ ३३६)। जब श्रीनिवास शास्त्री, जिन्हें मजाक करनेकी विशेष सुविधा प्राप्त थी, गांधीजी की अग्रेजीकी गल्तियाँ निकालते थे, तब गाधीजी न केवल पाठकोंके लिए उन्हे प्रकाशित करते थे, बल्कि उनका यह भी कहना था कि सरदार पटेलको भी ऐसी ही सुविधा प्राप्त है और "उनकी उपस्थितिमें मनहूसियत अपना वीभत्स चेहरा छिपाये भागती है। . . . मेरा सन्तपन सीधे-सादे लोगोंको भुलावेमें भले ही डाल दे, लेकिन सरदार या सनातनियोंको कभी नहीं डाल सकता" (पृष्ठ ४३७)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशको तथा पत्र-पत्रिकाओके आभारी हैं।

संस्थाएँ: साबरमती आश्रम सरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्ली; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद; राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली; राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता; नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली; नगरपालिका सग्रहालय, इलाहाबाद; मैसूर सरकार और महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग।

व्यक्ति: श्रीमती आनन्दीबहन वुच; श्रीमती एफ० मेरी बार; श्री एम० एस० अग्रवाल, श्री क० मा० मुशी; श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासन; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार; श्री छगनलाल गांधी; श्री डाह्याभाई म० पटेल; श्री द० बा० कालेलकर, नई दिल्ली; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, वाराणसी; श्री बनारसीलाल बजाज, वाराणसी; श्री भगवानजी पु० पण्ड्या; श्री भाऊ पानसे, वर्धा; श्रीमती मनुबहन मशरूवाला; श्रीमती मीराबहन, गाडेन, आस्ट्रिया; श्री रामनारायण एन० पाठक; श्रीमती लक्ष्मीबहन खरे, अहमदाबाद; श्री वालजी गोविन्दजी देसाई, पूना; श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पार्डी; श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्रीमती ह्यू लम्सडन, कनाडा।

पुस्तकें: 'इन द शैडो ऑफ द महात्मा', 'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बड़ोंके प्रेरणादायक कुछ पत्र', 'बापुना पत्रो - ६ : गं० स्व० गगाबहेनने', 'बापुना पत्रो - ७ : श्री छगनलाल जोशीने', 'बापुना पत्रो - ९ : श्री नारणदास गाधीने', भाग - २, 'बापुनी प्रसादी', 'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापूज लेटर्स टु मीरा', 'महादेवभाईनी डायरी', भाग - ३ और 'माई डियर चाइल्ड'।

पत्र-पत्रिकाएँ: 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजन-सेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान तथा सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली; श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजी के स्वाक्षरोमे मिली है, उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जोकी स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठच बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमे प्राप्त हो सके है, उनका हमने मूलसे मिलान और सशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमे संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमें दिये गये अश सम्पादकीय है। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण, आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमे छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमे छापे गये हैं। भाषणो और भेटको रिपोर्टोके उन अशोमे जो गांधीजी के नही हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दाये कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यक होने-पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमे 'एस० एन०' संकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गाधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-पत्रोका, 'एम० एम० यू०' गाधी स्मारक निधि और संग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, 'एस० जी०' सेवाग्राममे उपलब्ध सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा सगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये है। अन्तमे साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई है।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

१. वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेसको

११ जनवरी, १९३३

मै देखता हूँ कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रश्नपर मैंने जो प्रस्ताव[1] प्रस्तुत किया है उसको लेकर लोगोंमे बहुत गलतफहमी व्याप्त है, और मै देखता हूँ कि हरिजनों तकमे उसके ऊपर असन्तोष है। यह असन्तोष स्वाभाविक है। जहाँ असमानताका दौरदौरा हो, ऐसे समाजमे कोई भी ऐसी चीज, जिससे असमानताकी गन्ध आती हो, तुरन्त ही सन्देह और निन्दाकी पात्र हो जाती है। तथापि, मुझे अपने प्रस्तावमें पूरा भरोसा है, और तमाम आलोचनाओंके बावजूद मै उसे वापस लेनेका कोई कारण नही देखता। यदि एक भी मन्दिर उस प्रस्तावके अनुसार खोल दिया जाये तो लोग देखेंगे कि वह न केवल अमली तौरपर व्यवहार्य है, बल्कि हरिजन लोग, जो आज उस प्रस्तावमें असमानताकी बात देखते है, और समझते है कि यह तो कट्टरपन्थियोके विचारोंके आगे सर झुकाने-जैसा है, वे देखेगे कि प्रस्तावमें कट्टरपन्थियोंके विचारोंका पूरा ध्यान तो रखा गया है लेकिन उसमें इस सिद्धान्तकी बलि नही दी गई है कि यदि हरिजनोंको मन्दिरमे प्रवेश करने दिया जाता है, तो ऐसा शेष सभी हिन्दुओंके साथ समानताके आधारपर होना चाहिए। लेकिन चूंकि धर्मके क्षेत्रमें बाध्यकारिताका कोई स्थान नही हो सकता इसलिए लोगोंके पूर्वग्रहोंका, जोकि उनके लिए विश्वासके समान है, आदर किया ही जाना चाहिए, उस हदतक जिस हदतक कि पूर्वग्रह मुख्य चीजके विपरीत न पड़ते हों। अत: एक ऐसे हल की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत ऐसे आपत्तिकर्ताओंको उस धार्मिक सान्त्वनासे वंचित नहीं किया जायेगा जिसके कि वे अधिकारी है। ऐसा तभी किया जा सकता है जब एक अलग समय नियत कर दिया जाये जिसमें वे अलगसे देवताके दर्शन कर सकें।

सुधारकोंको यह बात कितनी ही बेतुकी लगे, जैसीकि मुझे लगती है, लेकिन ऐसी भावना असंदिग्ध रूपसे मौजूद है कि अमुक लोगोंके मन्दिरमे प्रवेश करनेसे उस मन्दिरमें प्रतिष्ठित मूर्तिकी प्रभावकारिता सर्वथा समाप्त न भी होती हो तो कम अवश्य हो जाती है। ऐसी भावना रखनेवाले लोगोंको कानून या शस्त्रोंके बलसे उस भावनाको छोड़ देनेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यह धारणा तभी समाप्त हो सकती है जब लोगोकी समझमें आ जाये कि यह गलत है, और या फिर इस धारणाको छोड़कर उसके विपरीत आचरण करनेवाले लोगोके अनुभवोके जरिये समाप्त हो सकती है, जिनके मामलेमे देखा जा सके कि इस धारणाका परित्याग करनेके कारण वे किसी आपत्तिका शिकार नहीं हुए है। मुझे भरोसा है कि हरिजन लोग

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६।

हिन्दू-समाजमें अपने न्यायसगत दर्जेको प्राप्त करनेकी अपनी उचित माँगके सिलसिलेमें एक भी व्यक्तिकी भावनाको ठेस नही पहुँचाना चाहते।

यह तो मोहलतकी अवधि है। सवर्ण हिन्दुओंकी परीक्षा हो रही है। पिछली सितम्बरमे बम्बईकी सभामे पारित संकल्प[1] को सर्व-सामान्य सवर्ण हिन्दुओका समर्थन या तो प्राप्त है अथवा नही है। यदि प्राप्त है, तो मन्दिरोंको स्वेच्छासे हरिजनोके लिए खोल दिया जाना चाहिए, और यदि मन्दिरोमे जानेवाले अधिकांश लोग हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमे स्पष्ट रूपसे अपनी इच्छा प्रकट कर दें तो ऐसा मानना चाहिए कि सकल्पका औचित्य पूर्णतः सिद्ध हो गया है। मानवीय व्यापारोमें शत-प्रतिशत सहमति एक असम्भव चीज है, और किसी धार्मिक मामलेमें असहमति प्रकट करनेवालोंका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। मेरे प्रस्तावमें यही किया गया है, इससे अधिक कुछ नही। यह सभी के लिए अग्नि-परीक्षाके समान है। असहमत लोगोंका अल्पमत है और उनको अपनी मान्यतामे पूरा विश्वास है, लेकिन वे अपने विरोधियोके प्रति सहिष्णु हैं। अपने लिए सभी व्यवस्था कर लेनेके बाद वे अपने विरोधियोके लिए भी व्यवस्था करेंगे। यदि सुधारक लोग भी असहमति व्यक्त करनेवालोके प्रति उतने ही सच्चे और सहिष्णु है तो वे इस बातकी पर्याप्त व्यवस्था करेंगे कि असहमति रखनेवाले लोग अपनी इच्छानुसार पूजा कर सकें। हरिजनोंको यदि सुधारकोके साथ समान अधिकारोंका प्रयोग करनेका अवसर प्राप्त हो जाये, और उनके मनमें किसी पर जोर-दबाव डालनेकी इच्छा न हो, तो उन्हें शिकायतका कोई मौका नहीं होना चाहिए।

मेरा प्रस्ताव निःसन्देह इस मान्यतापर आधारित है कि जनमत-गणना करने पर मन्दिर जानेवाले लोगोका बहुत बड़ा बहुमत हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें मत देगा, और इसीलिए वे केवल संयुक्त अवधिमे ही मन्दिरोमे जायेंगे, और जो समय असहमति व्यक्त करनेवालोंके लिए अलग निश्चित किया गया है, उस अवधिमें मन्दिरमें नही जायेंगे। यदि व्यवहारमे ऐसा पता चले कि सुधारकोंकी संख्या बहुत नगण्य है तो स्वभावतः वे उन मन्दिरोंमें नही जायेंगे, और यदि अधिकांश मन्दिरोमें सुधारकोकी संख्या दुर्भाग्यसे नगण्य ही हो, तो उनका यह निष्कर्ष निकालना ठीक होगा कि बम्बईके संकल्पको सवर्ण हिन्दुओका समर्थन प्राप्त नही है।

लेकिन हरिजन मित्र कहते है: "आप मन्दिरोंके उस शुद्धीकरणके बारेमें क्या कहते है जिसके विरुद्ध आपने बार-बार लिखा और कहा है?" अवश्य ही मै शुद्धीकरणके आज भी उतना ही विरुद्ध हूँ। अगर शुद्धीकरण सामान्य नियम बना रहा तो अस्पृश्यता भी बनी रहेगी। लेकिन मेरे प्रस्तावके अन्तर्गत शुद्धीकरण एक सर्वथा भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेता है। क्या हम अपने मित्रोकी भावनाओंकी रक्षाके लिए बहुत-सी बाते नही करते और बहुत-सी बातोंको सहन नही करते? हरिजनोके सामने, सवर्ण हिन्दुओके सामने और सारे ससारके सामने जो सवाल है, वह यह कि क्या

१. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८।

सवर्ण हिन्दुओंका हृदय-परिवर्तन हुआ है, और आज अस्पृश्यता जिस रूपमें प्रचलित है, क्या वे उसका उन्मूलन करनेको तैयार हैं? जब सवर्ण हिन्दुओमे से अधिकाश उसके उन्मूलनका समर्थन कर दें तो सुधारकों और हरिजनों, दोनोका ही यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उन अल्पसख्यक लोगोकी भावनाओका खयाल रखे जो सुधारकोसे असहमति रखते है, खास तौरपर इसलिए कि उनका मतभेद गहरे धार्मिक विश्वासपर आधारित है। पर परस्पर सहिष्णुता मानव-परिवारका नियम है, और मेरे प्रस्तावने इसी सिद्धान्तको कड़ाईके साथ लागू किया है।

मै एक वाक्यमे इस तथ्यपर जोर देना चाहूँगा कि वर्तमान आन्दोलन हिन्दू-समाजमे प्रचलित अस्पृश्यताके मौजूदा स्वरूपके विरुद्ध है। यह उस अस्पृश्यताके विरुद्ध नहीं है जो किसी-न-किसी रूपमें सारी मानव-जातिमे समान रूपसे प्रचलित है। यह अस्पृश्यता किसी व्यक्तिका गुण नही है बल्कि वह व्यक्तिके कार्य या आचरणपर लागू होती है। इसका उद्देश्य सफाई और स्वच्छता आदिके नियमोसे छुटकारा पाना नहीं है जिनका पालन प्रत्येक मन्दिर जानेवालेके लिए आज भी आवश्यक है। आग्रह इस बातपर है कि इस नियमका पालन करनेवाले प्रत्येक हरिजनको अन्य सभीके साथ समानताके आधारपर सार्वजनिक मन्दिरोमें प्रवेशका अधिकार है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-१-१९३३

२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

यरवडा सेंट्रल जेल[१]
११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे जमनालालजी से जितनी बार जरूरी हो, मिलनेकी और अस्पृश्यताके बारेमे चर्चा करनेकी इजाजत है। वह सोसाइटीके[२] संविधानका अध्ययन कर रहे थे और जिन सगत चीजोंकी तरफ उन्होंने मेरा ध्यान दिलाया है, वे ये हैं:

प्रस्ताव गलत है। सम्मेलनने जिस रूपमें प्रस्ताव पास किया था यह उसके अनुरूप नहीं है। पुस्तिका (पैम्फलेट) में प्रकाशित प्रस्तावमें मन्दिर-प्रवेशके बारेमे कुछ

१. गांधीजी इस जेलमें ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक रहे थे। अगले शीर्षकोंमें इस स्थानका नाम नहीं दिया गया है।

२. हरिजन सेवक संघ; आरम्भमें इसका नाम अ० भा० अस्पृश्यता विरोधी संघ था जिसकी स्थापना २६ अक्टूबर, १९३२ को हुई थी। २५ और ३० सितम्बर, १९३२ को मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें जो अखिल भारतीय सवर्ण हिन्दू परिषद्की बैठक और परिषद्के तत्त्वावधानमे जो आम सभा हुई थी, उसमें स्वीकृत प्रस्तावके अन्तर्गत इस संघकी स्थापना हुई थी। घनश्यामदास बिड़ला इसके अध्यक्ष तथा अमृतलाल वि० ठक्कर सचिव नियुक्त हुए थे।

नही कहा गया है। ३० दिसम्बरके मेरे वक्तव्यमें[1] जो सुधार किया गया है उसे आप देखेंगे। यह अपूर्ण प्रस्ताव किस प्रकार लिया गया, मै नही जानता। सही पाठ २६ सितम्बरके 'टाइम्स ऑफ इडिया' में छपा है। इस बातपर सबसे पहले मैंने ध्यान दिया था, लेकिन मैं उसके बारेमें बिल्कुल ही भूल गया, और जब प्रस्तावपर मेरे वक्तव्य देनेकी जरूरत हुई, तभी वह याद आई। तब भी मैं उसके बारेमें आपको लिखना भूल गया। लेकिन जो मुद्दे जमनालालजीने उठाये उन्हें मैंने लिख लिया था, और यह मुद्दा सबसे पहला था।

दूसरा मुद्दा यह है कि जहाँ मतदाताओंसे सम्बन्धित प्रस्तावके[2] बारेमे कहा गया है कि वह सम्मेलन द्वारा पास किया गया था, वहीं हरिजनोंके सामाजिक और धार्मिक अधिकारोंसे सम्बन्धित प्रस्तावके बारेमे कहा गया है कि उसे पाँच दिन बाद हिन्दुओंकी एक सभामें पास किया गया था। इसलिए जमनालालजी का कहना है कि पाठका जो स्वरूप है, उससे ऐसा लगता है कि यह प्रस्ताव केवल बम्बईके हिन्दुओं द्वारा पास किया गया था, सम्पूर्ण भारतके हिन्दुओंके प्रतिनिधियों द्वारा नहीं। यदि ऐसा है तो बम्बईके हिन्दुओकी एक सभा द्वारा अखिल भारतके लिए अस्पृश्यता-विरोधी सघकी स्थापना नही की जा सकती थी।

उन्होंने जो तीसरा मुद्दा उठाया, वह यह था कि रचनात्मक प्रस्तावमें अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी संघको ऐसा कोई अधिकार नहीं दिया गया है कि वह अपना नाम बदल सके।

चौथा मुद्दा यह था कि संघ या सोसाइटीका वह प्रस्ताव, जिसमें उसकी शक्तियोंका ब्योरा दिया गया है, सर्वांगपूर्ण नही है।

पाँचवा यह था कि किसी कोषाध्यक्षकी नियुक्ति नहीं की गई है और यह स्पष्ट नहीं है कि प्रान्तीय संगठन जो धन एकत्र करेंगे उनपर किसका नियन्त्रण होगा।

ये सारे मुद्दे विचार करने योग्य हैं। मैं उन्हें केवल इतना ही बता सका कि आरम्भिक अवस्थामे आपने जान-बूझकर कोषाध्यक्षका पद अपने ही पास रखा है। इसके सिवा मै उक्त मुद्दोंपर कोई प्रकाश नही डाल सका।

मै समझता हूँ कि आप भारत-भरमें [अस्पृश्योंके लिए] कितने मन्दिर, कुएँ आदि खोले जा रहे हैं, इसका ब्योरा किसी-न-किसी प्रकार रख रहे हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२२६) से।

१. गुरुवायूरके श्री कृष्ण मन्दिरको हरिजनोंके लिए खोलनेके विषयमें उपवासके स्थगनसे सम्बन्धित; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१५-९।

२. यरवडा-समझौतेके समर्थनमें; देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।

३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। मुझे ताज्जुब है कि कन्हैयालालने[१] आपको चिट्ठी लिखी। मैं पत्र-व्यवहारके जरिये उसे अच्छी तरह जानता हूँ। वह आश्रममें है और उसे सोनीरामजी ने भेजा था। वह मुझे समाधानके लिए अक्सर प्रश्न भेजता है। मुझे या कमसे-कम नारणदासको सूचित किये बगैर उसे आपको पत्र नहीं लिखना चाहिए था। आपको उसके बारेमें सोचनेकी जरूरत नही है।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९१८) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका ७ जनवरीका निराशापूर्ण पत्र मिला।[२] लेकिन आपको निराश या हतोत्साहित नही होना चाहिए। आपने जिस चीजका जिक्र किया है, वह तो अधिकांश संगठनोंमें सामान्य रूपसे पाई जाती है। जब कोई व्यक्ति ऐसे किसी संगठनका भार सँभाल रहा होता है तब उसकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सामने आती हैं। उसके सर्वोत्तम गुण तभी प्रकट होते हैं जब वह पर्याप्त तटस्थताके साथ काम करता है।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९१९) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१. घनश्यामदास बिड़लाने इनका पत्र गांधीजी को इस प्रेक्षाके साथ भेजा था कि इनकी सेवाओंका उपयोग कैसे किया जाये।

२. घनश्यामदास बिड़लाने अपने पत्रमें लिखा था कि दिल्लीमें आर्यसमाजी और दलित वर्ग, दोनों आन्तरिक फूटसे ग्रस्त हैं।

५. पत्र : सी० वाई० चिन्तामणिको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय श्री चिन्तामणि[1],

आपका पत्र मिला। आपने पत्र बोलकर लिखवाया, इसके लिए माफी माँगनेकी कोई जरूरत नही। मै इतना दभी नही हूँ कि मानूँ कि सारे भारत-भरमें मैं ही सबसे ज्यादा कार्य-व्यस्त और बहुत ज्यादा काम करनेवाला आदमी हूँ।

'फास्ट्स' (उपवास)-सम्बन्धी पुस्तिका[2] साथ ही भेजी जा रही है। आप जबतक चाहें उसे रख सकते है, और यदि वह आपके कामकी हो तो बिल्कुल रख लीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि
१७ हैमिल्टन रोड, इलाहाबाद

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२२७) से।

६. पत्र : टी० ए० वी० नाथनको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र[3] तथा उसके साथ संलग्न तीन कतरनें मिलीं। धन्यवाद। मै उनको तारीखके अनुसार क्रमसे लेता हूँ।

२८ दिसम्बरवाली कतरनमें उत्तर देने-जैसा कुछ नही है।

२९ तारीखवाली कतरन, जो अनशन मुल्तवी करनेके बारेमें है[4], को पढकर आप मुझपर अनुग्रह करनेको प्रेरित हुए है क्योंकि आप अनशनके तरीकेके विरुद्ध हैं। लेकिन मुझे मित्रोंके अनुग्रहके सहारे ही नही जीवित रहना चाहिए, विशेष रूपसे

१. **लीडर** के सम्पादक।

२. जिसमें गांधीजी के उपवासके समर्थनमें प्राचीन कालके उदाहरण दिये गये थे देखिए "पत्र : के० वी० शेष अय्यंगारको", २१-१-१९३३।

३. जिसमें टी० ए० वी० नाथनने लिखा था : "मुझे लगता है कि आपने अपने समझौतेकी योजनासे सुधारकोंको धोखा दिया है और आशा है, आप मुझे यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि दक्षिण भारतके प्रबुद्ध लोगोंकी यह धारणा है कि आप कट्टरपंथी ब्राह्मणोंके हाथमे खेल गये है।"

४. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१४-६।

धार्मिक मामलोंमें। मेरे लिए सौभाग्यकी बात है कि आपकी अनुकम्पाका कारण यह है कि आप एक भौतिक परिस्थितिको नजरअंदाज कर गये है जिसके कारण अनशन अपने-आप ही टल गया, और यह परिस्थिति कुछ कानूनी अड़चनोके रूपमें सामने आई जिन्हें समयके भीतर दूर नहीं किया जा सका। यह कठिनाई वाइसरायकी स्वीकृति न मिलनेके कारण उत्पन्न हुई थी। यदि मैंने २ जनवरीको अनशन शुरू कर दिया होता तो मुझे भय है कि आपने मेरे अनशनकी अनशनके रूपमें तो निन्दा की ही होती, साथ ही उसे भारत सरकारके ऊपर अनुचित दबाव मानकर भी उसकी निन्दा की होती। तो आप देखेंगे कि अनशनको मुल्तवी करनेकी वजह यह नहीं है कि मैंने उसकी व्यर्थता समझ ली है, बल्कि यह है कि मेरी समझमें जिम आकस्मिक स्थितिकी पहलेसे कल्पना कर ली गई थी और जिसके लिए पहलेसे ही व्यवस्था कर ली गई थी, उस आकस्मिक स्थितिके उत्पन्न हो जानेके बावजूद अनशन करना पापपूर्ण है।

आपके अन्तिम, अर्थात् इसी ४ तारीखके लेखका जवाब लम्बा होगा, लेकिन मैं उत्तर देनेकी कोशिश नहीं करूँगा, भले ही वह इस कारण से ही क्यों न सही कि मेरे पास समय कम है। मुझे अपने प्रस्तावमें सिद्धान्तोंका परित्याग करने-जैसा कुछ भी नहीं दिखता। स्वेच्छासे हरिजन बना हुआ कोई व्यक्ति जिस हदतक कर सकता है, मैंने इस आन्दोलनमें उस हदतक अपने-आपको हरिजनोंकी स्थितिमें रखनेकी कोशिश की है और मैं [हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशपर] आपत्ति करनेवालोंसे कहता हूँ: "यदि आप मेरी उपस्थिति या मेरे स्पर्शसे अपवित्र होते हों तो मैं इस बातके लिए बिल्कुल तैयार हूँ कि एक अलग समय निश्चित कर दिया जाये जब आप पूजा कर सकें। मैं आपको भी उतना ही सच्चा मानता हूँ जितना स्वयंको मानता हूँ। आपको भी मन्दिरमें पूजा करनेका उतना ही अधिकार है जितना मै समझता हूँ कि मुझे है। इसलिए आप अपने समयमें पूजा कीजिए, और मै तथा सुधारक लोग हमारे लिए सुरक्षित समयमे पूजा करेंगे; और चूँकि परम्परागत रूपसे आपको यह सोचना सिखाया गया है कि मेरे मन्दिरमें प्रवेश करनेसे देव-मूर्तिकी प्रभावकारिता क्षीण हो जाती है, हालाँकि मैं खुद इसमें विश्वास नहीं करता, अतः पुजारी लोग मन्दिरको शुद्ध करनेकी क्रिया कर सकते हैं।"[1]

पण्डित पंचानन तर्करत्नके सामने अपना प्रस्ताव रखनेसे पहले मैंने मनमें ये सब बातें सोची थीं। यह जरूर है कि यदि इस प्रस्तावके पीछे यह पूर्व धारणा न होती कि आपत्ति करनेवालोंकी संख्या बहुत कम है, तो प्रस्ताव विचार-योग्य नहीं होता।

अतः मेरा प्रस्ताव सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंकी सचाईकी प्रभावकारी और खरी कसौटी है। शास्त्री लोग तथा अन्य आपत्तिकर्ता लोग जिसे सनातन धर्म मानते हैं, उस धर्मकी ओरसे की जानेवाली उनकी आपत्ति यदि सच्ची है तो वे इस प्रस्तावको

१. गांधीजी की समझौतेकी योजनाका उद्देश्य सवर्ण हिन्दुओंको सन्तुष्ट करना था। देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६।

लपककर स्वीकार करेंगे। यदि सुधारक और हरिजन लोग सच्चे हैं तो उन्हें इस प्रस्तावका हर्षपूर्वक स्वागत करना चाहिए, और यदि यह स्वीकार हो जाता है तो इसे सुधारके फलित होनेकी दिशामें एक बडा कदम मानना चाहिए। यदि अनुभवसे ऐसा पता चले कि हरिजनोंके साथ मिलकर पूजा करनेवाले सवर्ण हिन्दुओंकी संख्या खुद ही नगण्य है तो यह तथ्य सुधारकके लिए पराजय होगा, और यह इस बातका संकेत होगा कि हरिजनोंको उन मन्दिरोमें प्रवेश नहीं करना चाहिए जहाँ उनका जाना नापसन्द किया जाता है। तब उनके लिए सवर्ण लोगोके सामने भिखारी बनकर मन्दिरोंमें जाना जरूरी नही होगा। हरिजन लोग अगर मन्दिरोमें जायेंगे तो ऐसे हिन्दू भाइयोंकी हैसियतसे ही जायेंगे जिनका सवर्णोका बहुत बड़ा बहुमत स्वागत करेगा और जो ऐसा नहीं मानता होगा कि अभीतक अस्पृश्य कहलानेवाले लोगोंके स्पर्शसे वह किसी प्रकार अशुद्ध हो गया है।

[समस्याका] अन्य कोई भी हल तो दबाव-जैसा होगा। आपको याद होगा कि मैंने अपने पहलेके एक बयानमें कहा था कि जिस मामलेमें मन्दिर जानेवालोंका बहुमत हरिजनोंके प्रवेशके विरुद्ध हो उसमें हरिजनोंको नहीं जाना चाहिए, और जिस मामलेमें सुधारक लोगोंका बहुमत हो, उस मामलेमें मन्दिरपर उनका और हरिजनोंका नियन्त्रण होना चाहिए और यदि अल्पसंख्यक लोग चाहें तो उन्हें अपने लिए दूसरा मन्दिर बना लेना चाहिए। लेकिन पण्डित पंचानन तर्करत्नके साथ चर्चा करते हुए मुझे इस प्रस्तावमें एक त्रुटि दिखाई पड़ी। यह एक असंदिग्ध तथ्य है—सही हो या गलत, यह सवाल नहीं है—कि हजारों लोग अपनी पसन्दके मन्दिरोंको विशिष्ट रूपसे पवित्र मानते हैं। उनकी दृष्टिमें यह पवित्रता ऐसी नहीं है जो एक मन्दिरसे हटाकर दूसरे मन्दिरमें आरोपित की जा सकती हो। जो पवित्रता प्राचीन कालसे पीढी-दर-पीढ़ी चली आ रही हो, वह एक नये मन्दिरको और एक नई मूर्तिको केवल लोगोंके चाहने मात्रसे प्रदान नहीं की जा सकती। तब मैंने जो प्रस्ताव अब प्रकाशित किया है, वह मुझे सूझा। यदि इस प्रस्तावका कुछ भी मूल्य होना है, तो इसके साथ शुद्धीकरणके लिए सहमतिका होना भी जरूरी है और सहमतिकी बात अल्पसख्यकोंकी धार्मिक भावनाका ईमानदारीसे ध्यान रखते हुए कही गई है।

यदि आप यह समझ लेंगे कि अहिसा मेरे लिए एक ऐसा बुनियादी सिद्धान्त है जिसे किसी भी परिस्थितिमें लागू किया जा सकता है तो आप मेरे तर्कसे सहमत भले ही न हों, लेकिन आपकी सहानुभूति उसके साथ अवश्य होगी। मै सभी अवसरों पर अपने इस सिद्धान्तको व्यवहृत न कर सकूँ और बुरी तरह विफल होऊँ, यह बात मुझे अपने सिद्धान्तसे विरत नही करती और इस चर्चामें वह अप्रासंगिक है। मेरी अहिसा किसी एक भी ऐसे भक्तकी भावनाके साथ हिंसा नही करने देगी जो किसी मन्दिर-विशेषमें जानेका अभ्यस्त है। मैं आपसे यह भी याद रखनेको कहूँगा कि कहनेको कुछ भी कहा जाये, लेकिन मेरे लिए अस्पृश्यताके विरुद्ध यह सारा आन्दोलन एक विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन है। यह हिन्दू-धर्ममें एक बड़े सुधारका आन्दोलन है, और जैसाकि मैं बारम्बार कह चुका हूँ, अस्पृश्यताके जिस वर्तमान रूपसे हम परिचित

हैं, यदि उसका उन्मूलन नहीं किया गया तो इस आन्दोलनकी मृत्यु निश्चित है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि हिन्दू-शास्त्रोंके प्रति, जैसीकि मैंने उनकी कल्पना की है, मेरी गहरी श्रद्धा है। लेकिन मैं अपनी कल्पनाको डंडेके जोरसे दूसरोंपर नही थोप सकता। शास्त्रोंकी विभिन्न प्रतियोगी व्याख्याओं और परिकल्पनाओंके बीच उसे अपना रास्ता स्वयं ही बनाना होगा। इसीलिए जहाँ कही सम्भव हो वहाँ मेरा रुख यही होगा कि अन्य सभी व्याख्याओ और कल्पनाओंके लिए गुंजाइश रहे।

आप इन चीजोको यदि अपने ध्यानमें रख सके तो आप न केवल मेरी स्थितिको समझ सकेंगे बल्कि आप मुझे पूरे हृदयमे अपना समर्थन देंगे; और मैं आपका समर्थन चाहता हूँ। मैं हर हिन्दूका समर्थन चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपका पत्र प्रगतिशील हिन्दुओके एक बहुत बड़े वर्गका प्रतिनिधित्व करता है, और चूँकि आप मुझे समझनेकी कोशिश कर रहे हैं, इसलिए आपका पूरा समर्थन प्राप्त करनेकी कोशिश मैं आसानीसे छोड़नेवाला नही हूँ।

आपने कतई अनुचित रूपसे मुझसे पूछा है कि "क्या वह (अर्थात्, मैं) इंग्लैंडके उन अनुदार दलवालोंकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए राजी होंगे जो चाहते हैं कि भारतमें राजनीतिक सुधारोंको और आगेके लिए टाल दिया जाये"। मैं आपको यह दिखाकर आपकी बुद्धिका अपमान नही करना चाहता कि आपके प्रश्नमें निहित और मन्दिर-प्रवेशसे सम्बन्धित स्थितिमें कोई समरूपता नहीं है, विशेष रूपसे ऊपरके अनुच्छेदों में कही गई मेरी बातोको देखते हुए।

अन्तमे, आप अस्पृश्योंके लिए 'हरिजन' शब्दके प्रयोगपर वितण्डा करते हैं। स्पष्ट है कि आपको पता नही कि इस शब्दका प्रयोग किस प्रकार होने लगा। इसका सुझाव कुछ अस्पृश्य मित्रोंने दिया था, जो 'अस्पृश्य' कहलाना पसन्द नही करते; और इस शब्दको सुझानेका कारण यह था कि गुजरातके एक सन्त कविने,[1] इन मित्रो द्वारा की गई उनके एक भजनकी व्याख्याके अनुसार, इस शब्दको 'अस्पृश्यो' के सन्दर्भमें प्रयुक्त किया था। मैंने इस शब्दको अत्यन्त तिरस्कृत या ईश्वरके सबसे अधिक प्रियजनोंके लिए अन्यथा भी अत्यन्त उपयुक्त पाया और तुरन्त स्वीकार कर लिया।

इस शब्दके प्रयोगकी व्युत्पत्तिमे या इसके प्रयोगको जारी रखनेमें मुझे कोई दासताकी मनोवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती और हमें आशा करनी चाहिए कि जब अस्पृश्यताको अच्छी तरह दफन कर दिया जायेगा तब हम सभी लोग हरिजन अर्थात् शुद्ध ईश्वरप्रिय इन्सान बननेकी कोशिश करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० ए० वी० नाथन
सम्पादक 'जस्टिस'
१४ माउंट रोड, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

१. नरसिंह मेहता।

७. पत्र : दुनीचन्दको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला दुनीचन्द[1],

बहुत दिनोंसे सूरजभान[2] या उसकी पत्नी यशोदा देवीकी तरफसे कोई पत्र या उनका समाचार मुझे नही मिला। क्या आप मुझे उनके बारेमें कुछ बता सकेंगे?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५८२) से।

८. पत्र : गोलापल्लीके जमींदारको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मै आपके इसी ४ तारीखके पत्रके[3] लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने अखबारोंमें जो स्पष्टीकरण[4] दिये है उनसे आप देखेंगे कि आपका भय निराधार है।

हृदयसे आपका,

गोलापल्लीके जमीदार महोदय
गोलापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१६) से।

१. अम्बालाके एक वकील।

२. अम्बालाके कांग्रेसी कार्यकर्ता जो दांडी-यात्राके दौरान गांधीजी के साथ थे।

३. इस पत्रमें जमींदार महोदयने गांधीजी द्वारा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें पुराणपंथी हिन्दुओंसे समझौता करनेपर चिन्ता व्यक्त की थी।

४. देखिए “वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेसको”, ११-१-१९३३।

९. पत्र : के० माधवन नायरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय माधवन[1],

संलग्न पत्र[2] तुम्हारे देखनेके लिए भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१७) से।

१०. पत्र : के० आर० कृष्णमूर्तिको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। आपने जो-कुछ कहा है यदि वह सही पाया जाये तो मुझे दुःख होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के०[3] आर० कृष्णमूर्ति
संयुक्त मन्त्री
धर्मवीर ऐसोसिएशन
गुरुवायूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१९) से।

१. कालिकटके एक वकील और सामाजिक कार्यकर्ता।

२. के० आर० कृष्णमूर्तिका, जिन्होंने इस वक्तव्यका खण्डन किया था कि गुरुवायूरके युवक दलित वर्गों द्वारा मन्दिर-प्रवेश करनेके पक्षमें थे। जनमत-संग्रहके बारेमें कृष्णमूर्तिने कहा था कि "गांधीजी के साथी कार्यकर्तागण "हिंसा, जोर-दबाव और छल-प्रपंचसे" काम ले रहे हैं; देखिए अगला शीर्षक।

३. साधन-सूत्रमें 'एम०' है, जोकि भूल है। कृष्णमूर्तिने 'के०' से ही हस्ताक्षर किये थे।

११. पत्र : डी० राघवचन्द्रैया शास्त्रीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपको मुझपर रहम करना चाहिए। मेरे पास किताबें या पाण्डुलिपियाँ पढ़नेका तनिक भी अवकाश नहीं है। मुझे रोजाना जो पत्र मिलते हैं, उन सबके जवाब देनेका समय ही मैं मुश्किलसे निकाल पाता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० राघवचन्द्रैया शास्त्री
सतब्रह्मन आश्रम
बैजवाड़ा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१८) से।

१२. पत्र : एल० एल० येलीगरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और संलग्न कतरन[1] मिली। धन्यवाद। क्षण-भरका अवकाश मिलते ही मैं उसे पढ़ूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एल० येलीगर
द्वारा श्री सर्पभूषण स्वामी मठ
बालेपेठ, बंगलौर शहर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२०) से।

१. अस्पृश्यता-कार्यके बारेमें **मैसूर स्टार**, एक साप्ताहिक पत्रमें छपा एक लेख।

१३. पत्र : जी० डोरास्वामीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी ८ तारीखके पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ जिसके साथ आपने अपने कॉलेजके प्रस्तावकी[1] नकल भेजी है। आशा है, आप रचनात्मक कार्य भी करते होंगे। उसके बिना प्रस्तावका कोई अर्थ नहीं हो सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० डोरास्वामी
नं० ४५, पचैयप्पाका होस्टल
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२१) से।

१४. पत्र : सरसवानीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय सरसवानी,

मुझे तुम्हारा पत्र अच्छा लगा। तुम मेरी इस बातपर विश्वास करो कि रूढ़िवादी हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेका कतई कोई इरादा नहीं है। जो मन्दिर हरिजनोंकी बस्तीके निकटके हैं और जिसमें उन्हें प्रवेश करनेका अधिकार है, यदि रूढ़िवादी हिन्दुओंका बहुमत उसमें हरिजनोंके प्रवेशका विरोध करेगा तो ऐसे किसी मन्दिरको नही छुआ जायेगा।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी सरसवानी
द्वारा श्रीयुत के० वी० रामस्वामी अय्यर
चोक्कीकुलम, मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२२) से।

१. हिन्दू-समाजसे अस्पृश्यता दूर करनेके सम्बन्धमे।

१५. पत्र : जी० वी० केतकरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

'गीता' पर आपके दोनों लेखोंको अब मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ लिया है। मुझे वे दिलचस्प लगे।

मै देखता हूं कि आप भी उसी निष्कर्षपर पहुँचे है जिसपर मैं दूसरे तरीकेसे पहुँचा था। आपका तरीका पाडित्यपूर्ण है, मेरा वैसा नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० वी० केतकर, बी० ए०, एल-एल० बी०
नासिक सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२३) से।

१६. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

११ जनवरी, १९३३

आदरणीय रणछोड़भाई[1],

आपका पत्र पढ़कर दुःख हुआ। आप मुझे अंग्रेजीमे लिखें, यह कैसी विचित्र बात है? अथवा आप ऐसे प्रश्न गढ़े मानो कोई गवाह आपके हाथसे निकला जा रहा हो और जिसे आपको अपने दावपेंचमें लेना हो। लेकिन बड़े भाईके रूपमें आपको यह सब अधिकार है। कारण, कि हमारे बीच परस्पर जो बातचीत[2] हुई है, उसके आधारपर मै देख सका हूँ कि आप मुझे केवल धर्मसे विमुख हुआ ही मानते है। तथापि, ईश्वर आपको दीर्घायु करेगा तो आप किसी दिन अवश्य ही यह स्वीकार करेंगे कि मै जान-बूझकर धर्मसे विमुख नही हुआ हूँ। अब रहे आपके प्रश्नोंके उत्तर।[3]

मोहनदासके प्रणाम

१. मोरवी राज्यके भूतपूर्व दीवान।

२. ७ जनवरी, १९३३ को।

३. ये प्रश्न रणछोड़दास पटवारीके ९ जनवरी, १९३३ के पत्रसे उद्धृत किये गये हैं (एस० एन० २००३६)।

१. आपकी यह इच्छा है कि इस प्रश्नके बारेमें प्रत्येक सनातनी हिन्दूको अपनी अन्तरात्माके निर्देशपर अपने विचार बनाने और व्यक्त करने चाहिए।

यदि यह सम्भव हो तो मै इसका स्वागत करूँगा।

२. क्या यह सच नहीं है कि हजारों लोग ऐसा सोचते है कि भारत आपके बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता?

यदि यह बात है तो मै इसे अपने कन्धोंपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी मानूँगा।

३. क्या यह सच नहीं है कि हजारों लोग आपके जीवनको अपने धर्मसे ज्यादा मूल्यवान समझते है?

अगर यह बात सच है तो मुझे बहुत दु:ख होगा। मैं यह बात कदापि सहन नहीं कर सकता कि कोई व्यक्ति मेरे जीवनको बचानेके लिए अपने धर्मका त्याग करे।

४. यदि गुरुवायूरका मन्दिर हरिजनोंके लिए नहीं खोला जाता तो इसमें आपके आमरण अनशन करनेके दृढ़ निश्चयकी घोषणा करनेकी क्या जरूरत थी?

इस बारेमे मै अपने लेखोमें विस्तारसे लिख चुका हूँ।[1]

५. ऐसी प्रतिज्ञा किये बिना आपने जनमत-संग्रह[2] क्यों नहीं करवाया?

मेरे लेखोंमें इसका सन्तोषजनक उत्तर मिल जाता है।

६. जो लोग मत-संग्रह करनेमें लगे हुए थे क्या उन लोगोंने आपकी प्रतिज्ञाका अनुचित लाभ नहीं उठाया?

आप जो सोचते है वैसा होना असम्भव नहो है।

७. आपकी प्रतिज्ञाको सामने रखकर जिन मतदाताओंने मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें अपना मत दिया है, उसपर से क्या आप मतदाताओंकी संख्याका सही अनुमान लगा सकते है?

किसीके मनकी बातको जाने बिना इस प्रश्नका उत्तर देना असम्भव है।

८. यदि आपका पक्ष मजबूत है और जिस उद्देश्यका आप प्रतिपादन करते है वह न्यायसंगत और उचित है, तब यदि परममाननीय वाइसराय विधेयक[3] पर अपनी स्वीकृति नहीं देते तो आपने आमरण अनशन करनेके निश्चय की घोषणा क्यों की है?

इस प्रश्नके उत्तरके लिए मेरे लेखोंको पढ़ जाना बहुत जरूरी है।

१. देखिए खण्ड ५१ और ५२।

२. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१५-९।

३. दोनों विधेयकोंपर वाइसरायकी स्वीकृति दी जानेवाली थी, एक रंगा अय्यर द्वारा केन्द्रीय विधान-सभामें रखे जानेके लिए और दूसरा डॉ० सुब्बारायन द्वारा मद्रास कौंसिलमें रखे जानेके लिए। २३ जनवरीको वाइसरायने रंगा अय्यरके अस्पृश्यता निवारण विधेयकके विधान-सभामें रखे जानेकी अनुमति इस शर्तपर दी कि सरकार उसके सिद्धान्तोंको माननेके लिए बाध्य नहीं है और यह कि विधेयककी धाराओंपर हिन्दू-समाजके प्रत्येक अंगको अपना मत व्यक्त करनेका पूरा-पूरा अवसर प्रदान किया जायेगा। डॉ० सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको मद्रास कौंसिलमें रखे जानेकी अनुमति इस आधारपर नहीं दी गई कि उसके फलितार्थ इतने दूरगामी थे जिससे कोई प्रान्तीय विधान-सभा कानून नहीं बना सकती थी।

९. क्या आप जानते हैं कि विधेयकपर स्वीकृति प्राप्त करनेके पक्षमें जो आन्दोलन चलाया जा रहा है उसे पुष्ट करनेके लिए इस प्रतिज्ञाका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है?

ऐसी किसी चीजकी मुझे कोई जानकारी नहीं है।

१०. क्या आप अपनी प्रतिज्ञा छोड़ देने और गुरुवायूरके सम्बन्धमें फिरसे विधिवत जनमत-संग्रह करवानेके लिए तैयार हैं?

यदि 'जनमत-संग्रह' विधिपूर्वक हो और उसमें जामोरिन सहयोग दे तथा उसका जो परिणाम निकले, उसपर वह अमल करे तो मैं अपनी प्रतिज्ञाको सफल हुआ मानूँगा।

११. जनमत-संग्रहके लिए आदेश देनेसे पहले क्या आपने अपने कार्यकर्ताओंके, जोकि मत-संग्रह करनेके कार्यमें लगे हुए थे, मार्गदर्शनके लिए कुछ सुनिश्चित नियम बनाये थे कि कौन लोग मन्दिरमें पूजा करनेके अधिकारी हैं?

जी, हाँ।

१२. आपके विचारानुसार मन्दिरमें पूजा करनेका अधिकारी कौन है?

जिसे वर्तमान पद्धतिके अनुसार मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार है और जो मन्दिरकी आवश्यकताको स्वीकार करता है।

१३. मत-संग्रह करनेमें लगे कार्यकर्ताओंने क्या पूछताछ द्वारा यह मालूम कर लिया था कि वे लोग मन्दिरमें पूजा करनेके अधिकारी हैं अथवा नहीं?

किस व्यक्तिको मत देनेका अधिकार है, इस बातका अच्छी तरह से प्रचार किया गया था, घर-घर पर्चे बाँटे गये थे और अन्ततः लोगोंकी सत्यनिष्ठापर विश्वास करके मत-संग्रह किया गया था।

१४. क्या आप एक ऐसे हिन्दूको, जो माहमें एक बार भी 'दर्शन' के लिए न गया हो अथवा जिसने एक पाई भी 'भेंट' अथवा 'सामग्री' के रूपमें मन्दिरमें न चढ़ाई हो, सच्चा भक्त कह सकते हैं?

अवश्य ही कह सकता हूँ, यदि ऐसे हिन्दूको मन्दिरके विषयमें आस्था हो।

१५. यदि एक जिला विशेषमें अस्पृश्योंके मन्दिरमें प्रवेश करनेकी बात मतदान पर निर्भर करती है तो उससे पहले की शर्त यह है कि कौन-कौन लोग मन्दिरमें पूजाके अधिकारी हैं, इसके बारेमें सुनिश्चित नियम बनाये जायें?

सही है।

१६. आप किन मन्दिरोंको सार्वजनिक मानेंगे?

जो किसी एक अथवा अमुक व्यक्तियोंकी मिल्कियत न हो।

बादमें रंगा अय्यरने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके आधारपर एक और विधेयक तैयार किया जिसे केन्द्रीय विधान-सभामें पेश करनेकी अनुमति वाइसरायने रंगा अय्यरके प्रथम विधेयककी शर्तोंके आधारपर दे दी। मन्दिर-प्रवेश विधेयक दुबारा तैयार किये जानेपर केन्द्रीय विधान-सभामें २४ मार्च, १९३३ को रखा गया था। देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३ भी।

१७. आपके माता-पिता पुष्टिमार्गके (वैष्णव सम्प्रदायके) कट्टर अनुयायी थे। क्या वे मुक्त भावसे अस्पृश्योंका स्पर्श करते थे? क्या वे अस्पृश्योंको मन्दिरमें आने देते?

जी नहीं।

१८. आपने कभी पवित्र जनेऊको धारण नहीं किया। आप १८८६ में जब इंग्लैंड गये थे उस समय आप तुलसी कंठी पहना करते थे। आपने कबसे उसे पहनना छोड़ा?

मैंने थोड़े समयके लिए उपवीतको धारण किया था। मैंने तुलसी कंठीका कभी भी त्याग नहीं किया लेकिन कुछ वर्ष पहननेके बाद दक्षिण आफ्रिकामें कठीने मेरा त्याग किया अर्थात् वह टूट गई।

१९. आपकी रायमें सनातनी हिन्दूके लिए जनेऊ अथवा कंठी पहनना अनिवार्य है अथवा नहीं?

इसे मैं सनातन-धर्मका आवश्यक अंग नहीं मानता हूँ, इसीलिए जब मेरी कंठी टूट गई तब मैंने दूसरी कंठी धारण करनेकी कोई चेष्टा नहीं की।

२०. इंग्लैंडमें अपने प्रवासके दौरान क्या आप होटलोंमें खाना खाते थे अथवा किसी अंग्रेजके यहाँ खाते थे?

दोनों जगहोंपर खाता था।

२१. क्या आपके विचारमें जो हिन्दू ऐसा करता है, वह सनातन-धर्मसे च्युत नहीं होता?

यह मेरा दृढ़ विचार है।

२२. क्या अभी भी आपको यूरोपीय होटलोंमें खाना खाने अथवा किसी ईसाई या मुसलमानके हाथका खाना खानेमें कोई आपत्ति नहीं है?

यदि उनके हाथका बना हुआ भोजन मेरे खाने लायक हो तो मुझे कोई एतराज नहीं है।

२३. क्या आप 'प्रीतिभोज'के पक्षमें हैं जिनमें ब्राह्मण, ढेढ़, भंगी, चमार, मुसलमान और ईसाई इकट्ठे खाना खाते हैं?

अस्पृश्यता-निवारणके अंगके रूपमें मैं प्रीतिभोजका विरोधी हूँ। लेकिन यदि खाद्य-पदार्थ स्वच्छताके नियमोंके अनुसार तैयार किये गये हों और सब लोग एक पंक्तिमें बैठकर अलग-अलग पात्रोंमें खायें तो इसमें मैं कोई बाधा नहीं देखता।

२४. क्या आप यह कहेंगे कि जो हिन्दू इस तरहके प्रीतिभोजोंमें भाग लेते हैं वे सनातनी हिन्दू होनेका दावा कर सकते हैं?

उपर्युक्त शर्तके अनुसार प्रीतिभोज करनेवाले हिन्दूको सनातनी हिन्दू माना जा सकता है और माना जाना चाहिए – यदि सनातन-धर्मके अन्य लक्षण उसमें मौजूद हो तो।

२५. क्या आप एक ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें तथा दूसरी ओर अस्पृश्योंमें अन्तर्विवाहके पक्षमें हैं?

यदि वर-कन्याकी जोड़ी योग्य हो और दोनोंके आचार शुद्ध हों तथा विवाहित-जीवनके प्रति उनमें संयमकी भावना हो तो मैं ऐसे विवाहको अवश्य उचित मानूँगा, लेकिन रोटी-बेटी-व्यवहारको मैं अस्पृश्यता-निवारणका अंग नहीं मानता।

२६. आप सवेरे और साँझको जब प्रार्थना करते हैं उस समय क्या आप अपन सामने श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण की मूर्ति अथवा चित्र रखते हैं?

जी नही।

२७. क्या आप मूर्तिपूजाके प्रबल समर्थक है?

जी हाँ।

२८. क्या आप ऐसा मानते है कि मोक्ष-प्राप्ति अथवा ईश्वरके लिए प्रेम प्राप्त करनेके निमित्त मूर्तिके दर्शनके लिए मन्दिर जाना बहुत जरूरी है?

जी नही।

२९. पिछले सोलह सालमें आप भगवानके दर्शनके लिए कितनी बार हिन्दुओंके मन्दिरोंमें गये हैं?

अपनी यात्राके दौरान मैं इतनी बार गया हूँ कि इसकी गिनती नही कर सकता।

३०. आपने जो चन्दा इकट्ठा किया है उस चन्देमें से आपने मन्दिरोंको 'भेंट' अथवा 'सामग्री' के रूपमें कितना रुपया भेजा है?

मैने जो पैसा इकट्ठा किया उसमे से मन्दिरोंको कुछ भी देनेका अधिकार मुझे नही था।

३१. क्या आप यह विश्वास करते है कि ढेढ़, भंगी अथवा चमार तबतक मोक्ष अथवा ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम-भावको प्राप्त नहीं कर सकता जबतक उसे हिन्दू-मन्दिरमे दर्शनके लिए जानेका अवसर नहीं मिलता?

ऐसा मै कतई नही मानता।

३२. यदि आप यह समझते है कि अस्पृश्योंके लिए मूर्तिपूजा करना अनिवार्य है तो क्यों न उनके लिए अलगसे मन्दिर बनवा दिये जाये जिनमे श्रीराम और श्रीकृष्णकी मूर्तियाँ रखी हों।

मैं चूँकि अस्पृश्य-जातिके अस्तित्वको ही नहीं मानता इसलिए उनके लिए अलगसे मन्दिर बनवानेके विचार से मुझे सन्तोष नही होगा।

३३. क्या आप अस्पृश्योंके लिए बनाये गये मन्दिरमें प्रतिष्ठित मूर्तिकी पूजा करनेकी अपेक्षा किसी सार्वजनिक मन्दिरमें पूजा करना ज्यादा अच्छा और प्रभावकारी समझते हैं?

जी नही।

३४. क्या श्री केलप्पन[1] अथवा किसी ढेढ़, भंगी अथवा चमारने आपसे यह कहा है कि उसे ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम है और यह कि अगर वह सनातनी मन्दिरमें दर्शनके लिए नहीं जा पाया तो प्राण त्याग देगा।

जी नही।

१. के० केलप्पन, जिन्होंने गुरुवायूर मन्दिरको अस्पृश्योंके लिए खोल देनेके सम्बन्धमें २० सितम्बर, १९३२ से आमरण अनशन शुरू किया था, लेकिन गांधीजी की सलाहपर २ अक्टूबर को छोड़ दिया। देखिए खण्ड ५१।

३५. जब आपने गोलमेज सम्मेलनमें भाग लिया था तब आपको यह खयाल था कि ढेढ़, भंगी, चमार, जिन्हें अस्पृश्योंके रूपमें गिना जाता है, की संख्या छः अथवा सात करोड़ है।

जी नहीं।

३६. जब आपने डॉ० अम्बेडकरके साथ समझौता[1] किया तब भी क्या आपका यही खयाल था।

जी नहीं।

३७. इन तीन जातियोंकी सही आबादीका पता लगानेके विचारसे क्या आपने कभी उसके कारणोंको देखनेका कष्ट भी उठाया है?

मैं प्रश्नको नहीं समझ पाया।

३८. क्या यह सच नहीं है कि काठियावाड़ और गुजरातमें ऐसे अस्पृश्योंकी आबादीकी दर २½ से ४ प्रतिशत थी।

यह असम्भव नहीं।

३९. क्या आपने अभी भी इन तीनोंकी सही आबादीकी जाँच-पड़ताल की है या नहीं?

मुझे ठीक-ठीक संख्या नहीं मालूम।

४०. क्या यह सच नहीं है कि उच्च वर्णके लाखों हिन्दू जो स्पृश्य थे, मुसलमानी शासनके समय मुसलमान और ब्रिटिश शासनके समय ईसाई बन गये?

यदि यह सच है तो मुझे आश्चर्य होगा।

४१. क्या आप उन अस्पृश्योंकी संख्याके बारेमें बता सकते हैं जो मुसलमान अथवा ईसाई बन गये हैं?

मैं इतना कह सकता हूँ कि इनकी संख्या बड़ी है।

४२. क्या आप किसी ढेढ़, भंगी, अथवा चमारको मन्दिरमें प्रवेश करने देनेके पक्षमें हैं?

शौचादि नियमोंका पालन करनेवाले ढेढ़-भंगी आदिको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार होना ही चाहिए।

४३. कौन इन प्रतिबन्धों और शर्तोंकी संरचना करेगा और उन्हें लागू करेगा? क्या इनसे निरन्तर कलह और झगड़े नहीं होंगे?

ये नियम आज भी मौजूद हैं और अन्य हिन्दुओंसे इनका पालन करवानेकी अपेक्षा हरिजन भाइयोंसे इनका पालन करवाना मैं ज्यादा आसान काम समझता हूँ।

४४. क्या ढेढ़, भंगी और चमारोंकी एक बहुत बड़ी संख्याने उनके हिन्दूमन्दिरोंमें प्रवेश करने देनेके सिलसिलेमें आपसे यह आन्दोलन छेड़नेके लिए कहा है?

जी नहीं। वर्तमान आन्दोलन तो अन्य हिन्दुओंसे उनके धर्मका पालन करवानेके लिए है।

१. यरवडा-समझौता।

४५. क्या आप जानते हैं कि उनमें से अधिकांश लोग आपके इस आन्दोलनके कड़े विरोधी है और कहते हैं कि इससे उनके और सवर्ण हिन्दुओंके बीच की खाई और भी चौड़ी हो जायेगी, उनके लिए मुसीबतें खड़ी हो जायेंगी और उनकी स्थिति काफी खराब हो जायेगी?

सत्य इसके विपरीत है।

४६. क्या आप भारतके भिन्न भागोंमें अस्पृश्योंकी राय मालूम करनेके लिए जनमत-संग्रह करवानेके लिए तैयार हैं?

४४ वें प्रश्नके उत्तरको देखते हुए आपका सुझाव अनावश्यक है।

४७. मान लीजिए कि आप एक समझौता-प्रस्ताव रखते हैं और इसे कुछ कट्टर हिन्दू स्वीकार कर लेते हैं तो क्या यह आपके विचारसे सब अस्पृश्यों और अन्य कट्टर हिन्दुओंके लिए बाध्यकारी होगा?

यह आन्दोलन कोई व्यापारिक सौदा नहीं है, केवल धार्मिक है। जो इसका पालन करेगा उसके लिए यह धर्म होगा।

४८. क्या आप जानते है कि अस्पृश्यताकी भावना रहबारी, भारवद, कोली, ठाकरड़ा, कुनबी, पाटीदार, राजपूत और अन्य जातियोंमें भी प्रबल है?

यह हमारा दुर्भाग्य है।

४९. क्या आप जानते हैं कि ढेड़, भंगी और चमारके साथ भोजन नहीं करते और उनके लिए लगभग सभी गाँवों और शहरोंमें अलग कुएँ हैं?

यह दूसरा दुर्भाग्य है।

५०. क्या आप अधिकारके साथ कह सकते हैं कि ढेड़ लोग भंगी और चमारोंको अपने मन्दिरोंमें आने देंगे?

यदि मैं तथाकथित उच्चवर्गके लोगोंको समझा सकूँ तो ढेढ़ आदिको समझाना बिल्कुल आसान समझता हूँ।

५१. क्या आपने ढेड़ लोगोंसे लिखित रूपसे यह आश्वासन ले लिया है कि यदि सार्वजनिक मन्दिर भंगियों और चमारोंके लिए भी खोल दिये जाते है तो वे उनके प्रति इन भावनाओंका त्याग कर देंगे?

अनेक लोगोंने मुझे ऐसा आश्वासन दिया है, हालाँकि लिखित रूपमे मेरे पास कुछ नही है।

५२. क्या आप आफ्रिकासे वापस आनेके बादसे निरन्तर अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं? क्या आप शहरों और गाँवोंमे ऐसे मन्दिरोंकी संख्या बता सकेंगे जिन्हें स्थानीय सनातनियोंकी सहमतिसे अस्पृश्योंके लिए खोल दिया गया है?

मेरा खयाल है कि उनकी संख्या करीब ५०० होगी।

५३. क्या आपके विचारसे शेर-ए-हिन्दुस्तानको, जो एक बार गरजा था और जिसने ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ा था, इस प्रश्नको लेकर परम माननीय वाइसरायसे सहयोगकी माँग नहीं करनी चाहिए?

यदि मैं इस प्रश्नका उत्तर देता हूँ तो मै सरकारको दिये गये अपने वचनको भंग करता हूँ।[1]

५४. यदि वाइसराय विधेयकपर अपनी स्वीकृति नहीं देते तो आप आमरण अनशन करनेका विचार करते हैं। क्या यह वाइसरायके अथवा हठी सनातनियोंके प्रति आक्रोशके फलस्वरूप है?

इसका उत्तर आठवें प्रश्नके उत्तरमें आ जाता है।

५५. क्या आप यह नहीं समझते कि यदि आप इस प्रश्नके पक्षमें बोलेंगे तो इससे सनातनियोंके हृदयमें आपके प्रति जो आदरभाव है, वह कम हो जायेगा और कांग्रेस लगभग नष्ट हो जायेगी तथा इससे उन ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके हाथ मजबूत हो जायेंगे जो भारतको महत्त्वपूर्ण अधिकार देनेके खिलाफ हैं?

मैं ऐसा नही समझता।

५६. क्या आप यह नहीं मानते कि आपके प्रति आदरभाव ही आपकी सच्ची शक्ति है?

मुझमें जो भी बल है वह रामका है, मेरा अपना कुछ नही है।

५७. क्या आप मनुष्यके स्वभावका, जैसाकि वह है, सामना करनेके लिए तैयार है?

सारी जिन्दगी मैंने यही काम किया है।

५८. आपकी इस इच्छाकी पूर्तिके मार्गमें जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ है, क्या आप उनसे सचमुच अवगत हैं?

मेरा खयाल है, मुझे कठिनाइयोका पूरा-पूरा भान है।

५९. क्या आप ऐसा कोई रास्ता सुझा सकते हैं जिससे हिन्दुओंमें कोई फूट अथवा तनावका वातावरण पैदा किये बिना अस्पृश्योंके लिए सार्वजनिक मन्दिरोंको खोला जा सकता हो?

मैंने अपने सुझाव पेश किये ही हैं।

६०. क्या जैन लोग, जो धर्मसे हिन्दू नहीं हैं, तथा वे हिन्दू जो मूर्तिपूजाके विरुद्ध हैं और जिनपर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा, वाइसरायसे स्वीकृति प्रदान करनेके लिए कह सकते हैं?

जी नहीं।

१. अपने कारावासके दौरान गांधीजी को सभी राजनीतिक मामलोंसे दूर रहना था, जबकि अस्पृश्यता-विरोधी कार्यके सम्बन्धमें मिलने-जुलने और लिखनेकी उन्हें पूरी छूट थी।

६१. अस्पृश्योंके तथाकथित संरक्षकोंमें से क्या किसीने अस्पृश्योंके लिए कोई मन्दिर बनवाया है अथवा बनवानेके लिए कहा है?

जी हाँ।

६२. यदि स्थानीय आवश्यकताओंको देखते हुए अस्पृश्योंके लिए अलगसे मन्दिर बनवाये जायें तो इसमें क्या नुकसान है, और क्या इससे सनातनियों द्वारा बनाये और उनके संरक्षणमें चलनेवाले मन्दिरोंमें अस्पृश्योंको प्रवेश देनेका प्रश्न खत्म हो जाता है?

ऐसा करनेसे सनातन-धर्मको ही नुकसान पहुँचता है।

६३. क्या आप कभी तीर्थस्थानोंमें लम्बे समयतक जाकर रहे हैं जिससे कि आपको सनातनी स्त्री-पुरुषोंकी धार्मिक भावनाओंकी गहराईका सही अनुमान मिल सके?

जी हाँ।

६४. क्या यह सच नहीं है कि हृदयमें, न कि शरीरमें, प्रेमका वास होता है।

यह सच है।

६५. क्या यह सच है कि हिन्दूशास्त्रोंमें सबसे ज्यादा जोर हार्दिक सम्बन्धों पर दिया जाता है।

यह सच है।

६६. क्या यह सच नहीं है कि हार्दिक सम्बन्धोंके अभावके कारण ही परिवारोंमें झगड़े और युद्ध होते हैं तथा सिविल और अपराधी अदालतें पनपती हैं।

बिल्कुल सच है।

६७. क्या आप जानते हैं कि सम्वत् १९५६ में[1] जब भयंकर अकाल पड़ा था तब असंख्य सनातनियोंने जरूरतमन्द लोगोंको भोजन प्रदान किया था और कपड़े दिये थे। और अस्पृश्योंको इसका लाभ न मिला हो, क्या आप ऐसा एक भी उदाहरण बता सकते हैं?

इसकी तो कोई सीमा ही नही है।

६८. क्या आप यह नहीं मानते कि मासिक-धर्मके दौरान हिन्दूस्त्रियों को स्पर्श न करनेके पीछे शुद्धताकी भावना है? क्या इससे उनके प्रति घृणाकी बू आती है?

यह सही है। उसमें तिरस्कारका भाव नहीं है।

६९. क्या किसी हिन्दूको शव अथवा किसी जीवके मृत शरीरका स्पर्श करनेके बाद स्नान करना और कपड़े धोने चाहिए?

उसे शुद्ध होना चाहिए।

७०. क्या आप जानते हैं कि पारसियोंमें स्त्रियोंको उनके मासिक-धर्मके दौरान आठ दिनोंके लिए अस्पृश्य माना जाता है?

मैंने सुना है।

१. सन् १९००।

७१. क्या आपको मालूम है कि कोई भी धर्मपरायण मुसलमान यदि उसके कपड़ोंमें पेशाब अथवा पसकी एक भी बूँद है तो वह प्रार्थनाके लिए मस्जिदम नहीं जायेगा ?

सही है।

७२. मान लीजिए कि किसी गाँव अथवा शहरका बहुमत यह विश्वास करता हो कि शराब पीना पाप नहीं है तो क्या अल्पमतको भी शराब पीनी चाहिए ?

कदापि नहीं।

७३. क्या आपकी रायमें एक स्थान-विशेषके बहुमतके मतानुसार धर्मकी व्याख्या की जानी चाहिए ?

व्याख्या भले जो हो, लेकिन आचार तो वही होगा जिसे बहुमत करता होगा।

७४. क्या आप जानते हैं कि स्कूलों और कालेजोंमें जानेवाले लगभग ८० प्रतिशत लड़के, जो सफेद टोपी पहनते हैं, वर्षमे एक बार भी मन्दिर नहीं जाते; और उनमे से अधिकांशका कहना यह है कि हिन्दुओंकी धार्मिक पुस्तकोंको समुद्रमें फेंक दिया जाना चाहिए।

यदि यह सच हो तो मुझे आश्चर्य होगा और दुःख भी।

७५. क्या आपने कभी इन लड़कोंको कम-से-कम पखवाड़ेमें अथवा मासमें एक बार मन्दिर जाकर 'दर्शन' करनेकी सलाह दी है ?

जी नही।

७६. क्या आप यह नहीं समझते कि भारतके शासनकी बागडोर यदि ऐसे लोगोंको सौंप दी गई तो वे भी रूसका अनुकरण करेंगे जिसका उद्देश्य देशको ईश्वर-हीन बनाना है ?

मुझे ऐसा कोई भय नही है।

७७. ७४ वें प्रश्नमें जिन लड़कोंकी चर्चा की गई है, उनके बारेमें क्या आपने कभी इस बातकी जाँच-पड़ताल की है कि उनमें से दिनमें एक बार भी प्रार्थना करने-वाले लड़कोंकी संख्या कितनी है ?

सामान्यत: सब कोई एक बार तो ईश-स्मरण अवश्य करते हैं।

७८. क्या आप जानते हैं कि 'वनिता-विश्राम' और उच्च वर्णकी स्त्रियाँ मासिक-धर्म-सम्बन्धी नियमोंका पालन नहीं करतीं ?

मुझे नही मालूम।

७९. क्या भगवान कृष्णने यह नहीं कहा है कि उन्हें सबसे ज्यादा वे लोग प्रिय हैं जो दूसरोंको उद्वेग नहीं देते ? अहिंसा-धर्मके प्रति आपकी क्या धारणा है ?

मैंने अपने अनेक लेखोंमें इस प्रश्नका उत्तर दिया है

८०. क्या आप इस धरतीके १८० करोड़ लोगोंमें से किसी ऐसे दो स्त्रियों अथवा पुरुषोंके नाम बता सकते हैं जिनके रूप और आकार एक-जैसे हों।

जी नहीं।

८१. क्या सब मनुष्योंसे एक-जैसी आदतों और स्वभावकी अपेक्षा की जा सकती है?

जी नहीं।

८२. क्या आपके खयालसे अस्पृश्योंकी वर्तमान स्थितिमें उच्च वर्णके हिन्दुओंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेसे हिन्दुओंको नुकसान नहीं पहुँचेगा?

यदि तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दू सचमुच उच्च वर्णके हुए तो हरिजनोंका स्पर्श उन्हें नुकसान नहीं पहुँचाता बल्कि इससे उन्हें और हरिजनोंको लाभ ही होगा। और आपने जिस हृदयके बारेमें पहले प्रश्न किया है यदि वे लोग उस हृदयसे विहीन होंगे तब भी हरिजनोंके स्पर्शसे लाभ ही होगा क्योंकि यह हृदयका काम है।

८३. सब टिंक्चरोंमें शराब होती है, और जो लोग शराबके स्थानपर टिंक्चर पीते हैं क्या आप उन्हें टिंक्चर छोड़ देनेके लिए कहेंगे?

मैं तो टिक्चर छोड़ देनेके लिए ही कहूँगा।

८४. क्या आप किसी राजपूत शासकसे, जो बौद्ध-धर्मका अनुयायी हो, अथवा किसी मुसलमान शासकसे जिसने सनातनियोंको दबाया हो, अस्पृश्योंको मन्दिरमें प्रवेश करने देनेके लिए कह सकते हैं?

मुझे उनके बारेमें कुछ मालूम नही है।

८५. क्या आप समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार, जिसने धार्मिक मामलोंमें हस्त-क्षेप न करनेकी बातको बार-बार दोहराया है, यदि अपने वचनको भंग करती है तो इससे उसमें स्थिरता आ जायेगी और लोगोंमें संतोष और शान्तिका प्रसार होगा?

जी नही।

८६. क्या मालवीयजी किसी अस्पृश्यका स्पर्श करनेके बाद स्नान किये बिना भोजन करते हैं अथवा गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हैं?

यह प्रश्न मालवीयजी से ही पूछा जाना चाहिए।

८७. यदि उन हिन्दुओंके विचार, जो इस प्रश्नपर आपका समर्थन करते हैं, तत्त्वतः हमारे मित्र शौकत अलीसे भिन्न नहीं हैं तो क्या शौकत अली यह कहनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हैं कि वे सनातनी हैं? और सनातन-धर्म क्या है, क्या इस बातकी वे हमें शिक्षा दे सकते हैं।

मौलाना शौकत अली क्या कर सकते हैं, यह जान सकनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

८८. क्या यह सच है कि अधिकांश ढेढ़, भंगी और चमार अब भी गोमांस खाते हैं? क्या आपके विचारसे वे सब हरिजन हैं?

मैं जानता हूँ कि ये सबके सब गोमांस नहीं खाते। बेशक वे सब हरिजन हो सकते हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४११२) से। सी० डब्ल्यू० २७९९ से भी; सौजन्य : छगनलाल गांधी

१७. पत्र : नारणदास गांधीको

११ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक मिल गई है। महावीर[1] का पत्र तुम पढ़ पाये या नहीं, यह नहीं जान पाया। उसको लिखा जवाब पढ़ जाना और जैसा उचित लगे सो करना। जिन-जिन लोगोंने उसे पैसा दिया है उनसे तो पूछा ही होगा। उसके बारेमें ब्रजकिशन[2] ने जो कहा हो वह भी महावीरको बताना।

रतिलाल[3] की हालत कैसी है? ऐसा नही जान पड़ता कि प्रेमा[4] का क्रोध अभी तक उतर पाया है। पर मैं माने लेता हूँ कि तुम्हें किसी प्रकारकी हैरानी नहीं होगी। अपना क्रोध वह कामपर तो नही निकालती होगी। अपने शरीरपर तो नहीं उतारती न। यदि क्रोध केवल मुझपर ही होगा तो उसे तो मैं दरगुजर कर देता हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१८. पत्र : मदालसा बजाजको

११ जनवरी, १९३३

चि० मदालसा,

मालूम होता है कि आजकल तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। यही क्रम रहा तो थोड़े ही समयमें तुम्हारा क्रोध और रुदन शान्त हो जायेगा। जो खुराक तुम लेती हो यदि वह हजम हो जाती हो तो ठीक है।

जो प्रश्न तुम्हारे मनमें उठते हैं वे सभी जिज्ञासुओंको उठते हैं। वाचन और विचारसे ये हल हो जाते हैं। जगत हम ही है। हम उसके अन्दर हैं, वह हमारे अन्दर है। ईश्वर भी हमारे अन्दर है। हमारे अन्दर हवा भरी हुई है, यह हम आँखोंसे तो नहीं देखते, लेकिन उसे जाननेकी इन्द्रिय हमारे पास है। ईश्वरको जाननेकी

१. महावीर गिरि।
२. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला।
३. रतिलाल मेहता, डॉ० प्राणजीवन मेहता के पुत्र।
४. प्रेमाबहन कंटक।

इन्द्रियका विकास किया जा सकता है। उसका विकास कर लें तो उसे भी पहचान लेंगे। यह तुम्हें विनोबा सिखा रहे हैं। धीरज रखना।

जानकीमैयासे[1] कहना कि जमनालालसे[2] अकसर मिलता हूँ। उनकी तबीयत अच्छी है।

बापू

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ ३१४

१९. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

११ जनवरी, १९३३

चि० इन्द्र,

तुम्हारी ओरसे हरिजन भाइओंका एक पत्र आया है। उसे इसके साथ रखता हू। उसे पढ़ो और तलाश करके जो कुछ हो सकता है सो करो। इन भाइओंको मैंने लिखा है कि वह तुमसे मिले।

मोहनदासके आशीर्वाद

साथमे हरिजनोका पत्र

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०४) से। सी० डब्ल्यू० ४८६२ से भी; सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२०. पत्र : मीराबहनको

अब प्रातः ५ बजे, १२[3] जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र हमेशाकी तरह आया। डॉ० गौड़की पुस्तकपर तुम्हारी टिप्पणियाँ भी।

हम दोनोंके जो मित्र है वे तुम्हारे बारेमें क्या लिखते हैं, यह तुमको सूचित करना मै हमेशा भूल जाता हूँ। उन सबको तुम्हारा ख्याल रहता है, यदि तुम उनके

१. मदालसाजी की माँ।

२. मदालसाजी के पिता, जमनालाल बजाज, जो उन दिनों यरवडा जेलमें थे।

३. साधन-सूत्रमें '१३' है, लेकिन मीराबहनको लिखे अपने १९ जनवरी, १९३३ के पत्रमें गांधीजी ने इस पत्रको 'गुरुवारका पत्र' कहा है, और उस दिन १२ जनवरी थी। देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १२-१-१९३३ भी।

पत्र स्वीकार कर लो तो वे तुम्हें पत्र लिखना चाहेंगे और निरन्तर तुम्हें अपना प्यार भेजना चाहेंगे। इनमे किग्सले हॉलवाले लोग हैं, प्रिवा-दम्पती, इटालियन बहनें हैं और सेंट फ्रांसिस तथा मेरी बारके चण्डूल लोग है। यह कोई पूरी सूची नही है, केवल चन्द नाम हैं। लेकिन मुझे उनमें से कुछ पत्र भेज देने चाहिए। अत: तुम्हें इसके साथ मैडेलीनका[१] पत्र और मेरा उत्तर, एन्ड्रयूजका पत्र और अन्धे सज्जन जॉन मॉरिसका पत्र मिलेगा। मुझे अगाथा, एस्थर, होरेस और वुडब्रुकके[२] साथियोंका नाम भी नहीं छोड़ना चाहिए। जब भी वे लिखते हैं, तुम्हारी याद जरूर करते हैं। इस पत्रके साथ तुम्हें जॉन मॉरिसका क्रिसमस-कार्ड और एक चित्र-कार्ड भी मिलेगा। ये अत्यन्त सुन्दर चित्र-कार्ड प्रिसेस एरिस्टार्शी प्रत्येक सप्ताह भेजती है। वह गहन त्यागवृत्तिवाली एक ज्ञानी महिला जान पड़ती हैं।

प्राइमस स्टोवके बारेमे अपनी टिप्पणी भेजनेमें तुमने देर कर दी। इसे करीब दो महीने हुए, आश्रमसे हटा दिया गया है। मुझे तुम्हें तभी लिख देना चाहिए था। प्राइमस स्टोवकी आगसे प्रोफेसर त्रिवेदीके भाईकी पत्नीके जलकर मर जानेकी सूचना मिलनेपर मैंने नारणदासको लिखा कि इस घटनापर शोक प्रकट करनेका सर्वोत्तम तरीका यह है कि आश्रमसे इस स्टोवको बिल्कुल हटा दिया जाये। कुछ महिलाओंको इसके लिए कायल करना बहुत कठिन था। लेकिन उन सभीने इसकी आवश्यकताको समझ लिया। [स्टोवका] बहिष्कार बाध्यकारी नहीं था। हर व्यक्तिने स्वेच्छासे उसे छोड़ दिया। मै तुम्हें यह खुशखबरी पहले ही दे देता, लेकिन ऐसी न जाने कितनी छोटी-मोटी रोचक बातें मैं हर हफ्ते ही छोड देता हूँ। तथापि, मैं जानता हूँ कि तुम इन बातोंकी मुझसे अपेक्षा नहीं करती। किन्तु यदि मैं तुम्हे उनके बारेमे नही बताऊँ तो तुम आश्रमकी उन सभी बातोंसे अनभिज्ञ रह जाती हो जो तुम्हें जाननी चाहिए और जिन्हें तुम जेलके कानूनके अन्तर्गत जान सकती हो। जितना मै कर सकता हूँ, मुझे करना चाहिए।

मेरा वजन और भोजन वही है जो पिछले सप्ताह था। अभी भी नमक नही लेता। मै उसकी कमी महसूस नहीं करता। उसकी कोई इच्छा भी मुझे नही होती। जब मै नमक लेता हूँ तो मुझे अच्छा लगता है। लेकिन यह पता चल जानेपर कि कोई चीज मेरे लिए नुकसानदेह है, मै उसे पसन्द नही करूँगा। कुहनीका दर्द जैसा था वैसा ही है, लेकिन चिन्ताका तनिक भी कारण नहीं है।

संलग्न पत्र और कार्ड लौटानेकी जरूरत नहीं है।

हम सबोंकी ओरसे प्यार सहित,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७९) से; सौजन्य : मीराबहन

१. रोमाँ रोलाँकी बहन मैडेलीन रोलाँ।

२. बर्मिंघमके निकट क्वेकरोंकी बस्ती जिसे वुडब्रुक सेटिलमेंट कहते थे।

२१. पत्र : एडमंड और योवेन प्रिवा को[1]

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय आनन्द और भक्ति,

कई महीनों बाद तुम्हारा पत्र पाकर हम सभीको बहुत खुशी हुई। मैं जानता हूँ कि तुम दोनो प्रेमके सन्देशका प्रचार कर रहे हो और उसको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न भी कर रहे हो। मैं अकसर उन सुखद दिनोंकी याद करता हूँ जब हम लोग 'पिल्सना' जहाजपर साथ-साथ थे।[2] मै बार-बार याद करते नहीं थकता कि तुम्हारे मनमें सम्पत्ति-संग्रहके प्रति कितनी उदासीनता थी और तुम दोनों एक-दूसरेमें किस प्रकार खो चुके थे।

ईश्वर करे यह नव-वर्ष तुम्हारे जीवनको और समृद्ध, सुखी और मानवताकी सेवामें और अधिक फलदायी बनाये।

अगर बोलकर न लिखवाता तो तुम्हें पत्र लिख ही नही सकता था।

हम सबकी ओरसे तुम दोनोको प्यार।

क्या तुम्हें महादेवका बड़े दिनवाला पत्र मिला?

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७९४) से।

२२. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट[3],

जहाजपर से लिखा हुआ तुम्हारा प्रेम-पत्र मुझे मिला था। तुम आश्रममें रहीं और हरिजनोंकी सेवामें वास्तविक भाग ले सकी इसकी मुझे खुशी थी, और मेरी रायमें जिस हदतक तुमने पददलित मानवताकी यह निःस्वार्थ सेवा की उस हदतक तुमने सारी मानवताकी ही सेवा की।

१. स्विट्जरलैंडवासी एक दम्पती; गांधीजी एडमंडको आनन्द और योवेनको भक्ति कहकर पुकारते थे।

२. गोलमेज सम्मेलनके बाद इंग्लैंडसे वापसीके समय; देखिए खण्ड ४८।

३. डा० मार्गरेट स्पीगल एक जर्मन महिला थीं जो आश्रममें कुछ समयतक रही थीं। वह शान्ति-निकेतनमें शिक्षिका भी रही थीं।

'रस्सियाँ' बँटनेका जो काम तुम कर रही थी उसे छोड़कर तुमने बिल्कुल ठीक ही किया था। अगर तुम वह कला ठीकसे सीख सकती तो मैं तुम्हें निश्चित ही सूत नहीं बल्कि ऊन कातना जारी रखनेकी सलाह देता। लेकिन शायद तुममें इस प्रकारका काम करनेकी प्रतिभा नहीं है। ईश्वरने तुम्हे अन्य कई गुणोंसे विभूषित किया है, और जबतक तुम इनका उपयोग मानव-जाति, जिसमें तुम्हारी माता भी शामिल है, की सेवार्थ करोगी, तुम्हारा कल्याण होगा।

अगर तुम्हें मेरी बेटी बनना है तो शर्त यह है कि अगली बार जब हम मिलें, बशर्ते कि कभी मिले, तब तुम मुझसे विस्मयाभिभूत नहीं हो जाना। जब तुम्हारा मन हो तो मुझे लिखनेमें संकोच मत करना।

महादेव भी मेरे साथ तुम्हें अपना स्नेह भेज रहा है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

२३. पत्र : वी० एम० नावलेको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० नावले,

आपका पत्र बहुत दिनों बाद मिला, लेकिन आपने श्रीयुत सी० वी० वैद्यके बारेमें लिखे मेरे पत्रकी प्राप्ति सूचित नहीं की है। इसलिए मैं नहीं जानता कि मैंने जो आलोचना की, उसका ठीक औचित्य आप समझे या नहीं।

कृपया यथासम्भव कम-से-कम शब्दोमें मुझे सूचित कीजिए कि मन्दिर-प्रवेशका "नवीन और अनोखा पथ" क्या है; तब मैं निश्चय करूँगा कि भेंट जरूरी है या नहीं। इस समय मेरे पास अत्यन्त आवश्यक मामलोंके सिवा अन्य किसी चीजके लिए वक्त निकालना सम्भव नहीं है।

हृदयसे आपका,

डॉ० वी० एम० नावले
सम्पादक 'दीनबन्धु'
४४४, रास्ता पेठ, पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०७) से।

२४. पत्र : सिद्धैयाको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला।[१] बिना कुछ जाने और जेलके भीतरसे मैं चुनाव-सम्बन्धी मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका साहस नही कर सकता।

हृदयसे आपका,

सिद्धैया
हरिजन संघ
एरोड

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०८) से।

२५. पत्र : नवल किशोर शर्माको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जरूरत अखबारोंके लिए लेख लिखनेकी नहीं है। जहाँतक उस ढंगके प्रचारका सवाल है, अनुभवी लोग वह काम कर रहे हैं। आप जो कर सकते हैं वह यह कि आप कोई वास्तविक रचनात्मक कार्य हाथमें लें और अपना धन और अपने-आपको उसमें लगा दें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नवल किशोर शर्मा
मार्फत मेसर्स एस० एस० ब्रिजवासी एंड संस
बन्दर रोड, कराची शहर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०९) से।

१. इसमें सिद्धैयाने गांधीजी से प्रार्थना की थी कि वे एरोड तालुका बोर्डके अध्यक्ष-पदके लिए एक हरिजन उम्मीदवारको अपना आशीर्वाद प्रदान करें और दूसरे उम्मीदवारसे अपना नाम वापस ले लेनेको कहें (एस० एन० १८८९४)।

२६. पत्र : परशुराम शर्माको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० परशुराम,

मुझे आपका पत्र मिला, और आपका तार भी मिला था।[1] आपका तार मिलते ही मैंने मथुरादास जैनको तार कर दिया था। पता नहीं उसने छोड़ दिया या नहीं। मुझे उसका कोई जवाब नही मिला है। उसका बयान अवश्य ही बिल्कुल गलत है। उसने यह मामूली सावधानी भी नहीं बरती कि मुझसे पूछ लेता कि अनशन क्यों और कैसे मुल्तवी किया गया है। तार भेजनेके अलावा मैंने और कोई कदम नही उठाया है, और आपका पत्र मिलनेके बाद भी मुझे यह उचित नही लगा कि मैं उसे पत्र लिखूँ। कृपया मुझे सूचित करना कि अनशनका क्या परिणाम निकला।[2] मै आशा करता हूँ कि आप ठीक-ठाक है।

हृदयसे आपका,

डॉ० परशुराम
कृष्णनगर
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१०) से।

२७. पत्र : के० केलप्पनको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

तुम्हारा पत्र मिला। उसके मिलनेपर मैंने गोपालनको तार दिया था कि वह राजगोपालाचारीसे परामर्श करे।

मुझे आशा है कि तुम जिस दुर्घटनामें[3] पड गये थे, उसके प्रभावसे अब मुक्त हो गये हो, और वापस लौटते समय मुझसे कृपया अवश्य मिलना।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९११) से।

१. डॉ० शर्माने गांधीजी से अनुरोध किया था कि वे फिरोजपुरके मथुरादास जैनको अपना अनशन समाप्त करनेके लिए समझाएँ।

२. मथुरादास जैनने गांधीजी का अनुरोध स्वीकार करते हुए अनशन समाप्त कर दिया था; देखिए "पत्र : मथुरादास जैनको", ८-२-१९३३।

३. कार-दुर्घटना।

२८. पत्र : आर० सोमसुन्दरम अय्यरको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला जिसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपका पत्र मुझे बेचारी एक पत्नी और उसके बहुत सारे पतियोंके बीच झगड़ेका उदाहरण प्रतीत होता है। आप कहते हैं कि ईश्वर और अपनी अन्तरात्माके प्रति आपकी जो निष्ठा है उसमे आप मेरी इच्छाको खलल नहीं डालने देंगे। मैं कहता हूँ कि मेरे ३० करोड़ पति है, और मै इनमें से चन्द लाख पतियोंको इस बातकी इजाजत नही दे सकता कि वे ईश्वरके प्रति और अपनी अन्तरात्माके प्रति, तथा आपके ही शब्दोंमें कहूँ तो अपने अन्य कई करोड़ पतियोके प्रति मेरी निष्ठाके मार्गमें खलल डालें। इस तरह आप देखेंगे कि मेरी मुश्किल आपकी मुश्किलकी अपेक्षा कहीं ज्यादा बडी है। पति लोग अपनी पत्नियोंको हमेशा जैसा चाहें वैसा नाच नचा सकते हैं क्योंकि वे हमेशा छलसे काम लेते हैं। लेकिन ईश्वरने पत्नियोंको असीम धीरजका गुण प्रदान किया है। तो आप देखेगे कि किस प्रकार अन्तमे मैं अपना प्रबल विरोध करनेवाले बहुत थोड़ेसे पतियोंको परास्त करके उनके विरोधको समाप्त कर दूँगा और जब झगड़ा समाप्त हो जायेगा तब "आप पतियोंकी सारी फौज" ने आपकी बेचारी पत्नी पर अपने जुल्मोंके जो दाग छोड़े होंगे, उनके ऊपर आप घड़ियालके आँसू बहायेंगे और फिर कोशिश करेंगे कि आपकी पत्नी अपने विगत दुखोंको भूल जाये।

आपने मुझसे अपील की है कि पिछड़े वर्गोंकी आर्थिक अवस्था सुधारनेके लिए मैं आपकी सहानुभूतिका फायदा उठाऊँ। मैं आपको एक अच्छे खिलाड़ीकी भाँति उचित प्रस्ताव रखनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ।

आशा है, आप ऐसा नहीं चाहते कि मैं आपके तर्कोंको विनोदके सिवा और कुछ समझूँ। लेकिन यदि आपने गम्भीरताके साथ वे तर्क रखे है तो मैं आपसे कहूँगा कि मैं जो तमाम वक्तव्य देता रहा हूँ, आप उन्हें निष्पक्ष भावसे पढ़ डालें। आपने जो सवाल उठाये हैं उनका पर्याप्त उत्तर आपको उनमें मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० सोमसुन्दरम अय्यर
एडवोकेट
मैलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३०) से।

२९. पत्र : कोंडा वेंकटप्पैयाको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय वेकटप्पैया,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। मुझे भय है कि तुम्हारा सुझाव घातक है, विशेषरूपमे इस समय। नये मन्दिरोंकी स्थापनाके मतलब होंगे कि एक नये धर्मकी स्थापना करना और पराजय स्वीकार करना। यदि पराजय ही होनी है तो मै उसे स्वीकार करके मनको समझा लूँगा, लेकिन मै एक नया धर्म नही चलाऊँगा। यदि हमारा दावा सही है और जनता उसे अस्वीकार कर दे तो हमें समझ लेना चाहिए कि हमारे जीवन-कालमें अस्पृश्यता समाप्त नही होनी है, यही नहीं, उसकी जड़ें भी नहीं हिलेंगी। प्रस्तावित कानून होना चाहिए या नही, इस प्रश्नको उसके गुणावगुणपर से तय किया जाना चाहिए। मै इस निष्कर्षपर आया हूँ कि धार्मिक मामलोंमें हस्तक्षेप करने और वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त करने, इन दोनों दृष्टियोंसे यह विधेयक अनिन्दनीय है। भूलोंको सुधारनेके लिए किसी भी समय, यदि हमे कानून बनानेकी जरूरत होगी, तो असहयोग आन्दोलन जब अपनी पूरी तेजीपर हो उस समय भी मैं ऐसे कानूनको बढ़ावा देनेमें नहीं हिचकूँगा जो जनताकी इच्छापर आधारित हो। किसी कानूनके उद्देश्यको विफल करनेके लिए उसी कानूनका सहारा नहीं लिया जा सकता। वैसी स्थितिमें तुम निश्चित मानो कि तुम्हारे तर्कमें नुक्स है। धार्मिक मामलोंमें हस्तक्षेपका शोर मचाना या तो स्पष्टरूपसे दम्भपूर्ण है, अन्यथा फिर अविवेकपूर्ण। प्रस्तावित विधेयकके ऊपर एक तीसरी आपत्ति भी है, और वह यह कि मन्दिरमें कौन प्रवेश करे और कौन न करे, इस बातका निर्णय मन्दिर जानेवाले लोग न करें बल्कि कोई तीसरा पक्ष करे, और इस मामलेमें यह फैसला विद्वान लोग करें। मैं इस प्रस्तावको संगत माननेसे कतई इनकार करता हूँ। ऐसे रूखे नियमके अन्तर्गत कोई भी धर्म विकसित नहीं हो सकता था। जहाँतक मैं जानता हूँ, हिन्दू-धर्मकी किसी भी शाखाने इस नियमका पालन नहीं किया है। ध्यान रखो कि मै इस बातपर आग्रह नहीं करता कि सभी प्राचीन मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए खोल दिया जाये, लेकिन मेरा यह आग्रह अवश्य है कि जहाँ मौजूदा पूजा करनेवाले लोगोंमें से अधिकांश

१. कोंडा वेंकटप्पैयाने अपने पत्रमें लिखा था : "जहाँतक गुरुवायूर मन्दिरका सवाल है, ऐसा माना जा सकता है कि लोगोंकी राय निश्चित रूपसे अनुकूल है और हमारा उद्देश्य लगभग पूरा हो गया है। . . . यदि जनमतको आन्दोलनके पक्षमें कर लिया जाये तो कानूनकी मदद लेनेकी जरूरत नहीं होगी, और यदि जनमत विपरीत है तो कानून बनानेसे कोई लाभ नहीं होगा।"

लोग राजी हों, उन सारे प्राचीन मन्दिरोंको खोल दिया जाये। बम्बईवाले प्रस्तावकी सचाई या वास्तविकताकी यही सच्ची कसौटी है।

मुझे लगता है कि हमें इस सम्भावनाके प्रति अपने मनको समझा लेना चाहिए कि तुम्हारी पत्नी किसी भी समय ससार-मंचसे विदा हो सकती है। तिल-तिल होने-वाली मौतसे शायद यह मुक्ति स्वागत योग्य होगी। आशा करता हूँ कि तुम अब बेहतर हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कोडा वेकटप्पैया
गुटूर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३१) से।

३०. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

मुझे तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। आशा करता हूँ कि तुमने जो सुना है वह सच नही है, लेकिन अगर वह सच साबित हो तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। लेकिन मैं तुम्हारी जगह होता तो केवल अफवाहके आधारपर कोई कार्रवाई नही करता।[1] महादेवने अभी-अभी एक वक्तव्य जारी करनेका सुझाव दिया है। मैं देखूंगा कि ऐसा करना सम्भव है या नही। किसी भी हालतमें मैं समझता हूँ कि मुझे एक-दो दिनमें परिणामका पता चल जायेगा।

मुझे खुशी है कि सनातनियोके नाम अपील[2] तुम्हें पसन्द आई। अवश्य ही इस प्रकारके सारे प्रयत्न बहुत मॅहगे है, लेकिन यह कीमत भी चुकाने योग्य है। जो चीजे मुझे विचलित कर देती है और मर्मान्तिक पीड़ा पहुँचाती है वे हैं जानबूझकर प्रचारित की जानेवाली झूठी अफवाहे। लेकिन मुझे लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि सत्यकी विजय होगी।

जिन सनातनी शास्त्रियोंके बारेमें हीरालाल नानावटी मुझे लिखते रहे है उनसे भेंट करनेकी आशा करता हूँ।

१. यह अफवाह **मद्रास मेल**के उस लेखपर आधारित थी जिसमें सुझाव दिया गया था कि डॉ० सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको न तो स्वीकृति दी जाये और न उसे अस्वीकृत ही किया जाये, और माँगके पीछे कितना जनमत-बल है, इसका पता चलाकर उसपर रिपोर्ट देनेके लिए एक समिति नियुक्त की जाये (एस० एन० १९१९३)।

२. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३७०-४।

'जस्टिस' के सम्पादकने मेरे प्रस्तावकी जो आलोचना की है उसके बारेमे मैंने उन्हें एक लम्बा पत्र[1] लिखा है। उन्होंने अपने अखबारकी तीन कतरनोंके साथ मुझे पत्र लिखकर अपना जवाब भेजनेको कहा था।

मैंने इसी सवालपर कल एसोसिएटेड प्रेसको एक लम्बी भेंट-वार्ता[2] भी दी जिसे तुम देखोगे।

गुरुवायूरमें प्रस्तावित सर्व-हिन्दू सम्मेलनसे सम्बन्धित गोपाल मेननके पत्रके बारेमें लगता है, तुम बिल्कुल भूल ही गये हो। तुम्हें याद होगा कि गोपाल मेननने कहा था कि तुम उसके बारेमें देख लोगे। अतः मैंने गोपाल मेननको कल एक तार भेजा है कि वह तुमसे मिल ले, क्योंकि उसने मुझे याद दिलाया कि मैंने उसके बारेमें कुछ नहीं किया है। अगर तुम चाहते हो कि वह सम्मेलन हो तो तुम्हें आचार्य ध्रुव और डॉ० भगवानदासको काफी पहलेसे सूचित करना होगा। मेरी रायमें मालवीयजी को अभी भी मुक्त रहने दिया जाना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२३२) से।

३१. पत्र : एल० बी० नायकको[3]

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका सुझाव आकर्षक तो है किन्तु मैंने अगर ठीक समझा है तो उससे बेईमानीकी गन्ध आती है, और मौजूदा परिस्थितियोंमें वह अव्यवहार्य भी प्रतीत होता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० बी० नायक
३४१ ठाकुरद्वार
बम्बई नं० २

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३३) से।

१. देखिए "पत्र : टी० ए० वी० नाथनको", ११-१-१९३३।

२. देखिए "वक्तव्य : ऐसोसिएटेड प्रेसको", ११-१-१९३३।

३. डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसाइटी ऑफ इंडिया, बम्बईके महामन्त्री; उन्होंने अपने ७ जनवरी, १९३३के पत्रमें सुझाव दिया था कि महार और चमार जातिके लोगोंको सभी जगहोंपर और दस्तावेजोंमें अपने आपको केवल 'क्षत्रिय' सूचित करना चाहिए।

३२. एक पत्र

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपके प्रस्तावकी एक प्रति मिली जिसके लिए आपका धन्यवाद।

मेरा खयाल है कि आपने अपने पत्रमें जो दिलचस्प मुद्दे उठाये हैं उनकी चर्चा आपको श्रीयुत घनश्यामदास विड़लासे करनी चाहिए। इतनी दूर बैठकर मेरे लिए स्थितिसे निपटना कठिन है। मैं आपका पत्र श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१२) से।

३३. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

१२ जनवरी, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। हरिजन भाइयोंके साथका यह वार्तालाप अच्छा है। बहुत धीरज और बहुत प्रेमसे ही वे हमारे कामको समझेंगे। हमें तो वे जो कहें, उसे सुनना चाहिए। जिसका उत्तर दे सकें, दें। नियमपूर्वक जाओगे तो बातचीत अवश्य होगी। धीरे-धीरे उनके दुःख-दर्दमें भाग लेते-लेते यदि हम लोग उनके सम्पूर्ण जीवनमें दिलचस्पी लेने लगेंगे तो वे लोग हमें अपने सगे-सम्बन्धीके रूपमें जानने लगेंगे।

यह उद्देश्य रखना कि सब्जियाँ इतनी उगाई जायें जितनी आश्रमके लिए पर्याप्त हों। यह मुश्किल नहीं है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / २) से।

३४. एक पत्र[1]

१२ जनवरी, १९३३

आश्रमके बुनियादी नियमोंका जो पालन न कर सके वह यदि आश्रममें रहे, तो इसे हर तरह अनुचित माना जायेगा। इस तरहसे रहनेवालेको लाभ नहीं और आश्रमको भी लाभ नहीं। लोग इस तरह रहने लगें तो आश्रम चल नहीं सकेगा।

आश्रममें रहनेवालेको आश्रमके प्रति शुद्ध प्रेम होना चाहिए। उसका ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि उसकी प्रतिष्ठाको हानि न पहुँचे। इनमें से कोई बात भी मैं अभी तक तुममें नहीं देख सका हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४२-३

३५. एक पत्र

१२ जनवरी, १९३३

इतना हमेशा याद रखो कि जबतक तुम उसके प्रति निर्विकार न रह सको, तबतक तुम्हें उसके नजदीक जानेका अधिकार नहीं है, उसकी सेवाका भी अधिकार नहीं है। यदि यह बात तुम्हारी समझमें आ जाये, तो उसके प्रति विकार जलकर खाक हो जायेंगे। तुम दृढ़ रहोगे तो तुम्हारा बल रोज बढ़ता ही जायेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४३

१. यह पत्र और इस साधन-सूत्रसे प्राप्त अन्य पत्र उन मूल पत्रोंके अंश मात्र हैं जिन्हें महादेव देसाईने अपनी डायरीमें टीप लिया है।

३६. पत्र : लक्ष्मीबहन एन० खरेको

१२ जनवरी, १९३३

चि० लक्ष्मीबहन,

मैं हर हफ्ते इस बातको नोट करता हूँ कि तुम मुझे कोई पत्र नहीं लिखती। आखिर ऐसा तो नही करना चाहिए। कभी-कभार दो पंक्तियाँ लिखी जा सकती है। आश्रममें तुम-जैसी जो चन्द पुरानी बहनें है उनसे मै बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये बैठा हूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

३७. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

मीराबहनको लिखा पत्र[1] पढ़ लेना और उसे दे देना। आशा है, तुम्हें दमा अब नही होगा।

मीराबहन अब तुम्हारी पडोसिन हो गई है। उसे फलादिकी जरूरत हो सो भेजा करना। महावीर वगैरह चले गये होंगे। यही कदम ठीक था। जो व्यवस्था की है वह ठीक है।

सब लोगोंके वजनका ब्योरा रखना और नियमपूर्वक लेते रहना।

महावीरने याददाश्तके आधारपर जो हिसाब तैयार किया है, क्या उसे तुमने देखा है? न देखा हो और देखना चाहते हो तो लिखना, सो भेज दूँगा। मैंने उसे संभालकर रखा हुआ है। मुझे उससे सन्तोष नही हुआ। मैंने केलॉगकी पुस्तक और 'सत्यार्थप्रकाश'[2] मँगाये हैं, यह तुम्हारे ध्यानमें होगा।

प्रेमाको ब्योरेवार पत्र लिखनेकी आवश्यकता थी इसलिए समयकी तंगी होते हुए भी यह समय देना पड़ा है। पत्र लिखा तो उसके निमित्त है पर है यह सभीके यानी सारे आश्रमवासियोंके लिए। आश्रमी और आश्रमवासीके बीच जो भेद है वह मैंने एक पत्रमें बतलाया है, उसे तुमने देखा होगा। इस पत्रमें तुम्हारे विषयमें भी लिखा है; वह प्रासंगिक था इसीलिए लिखा है। एक पिता अपने पुत्रके विषयमें जो मान्यता या श्रद्धा रखता है वह निरा औपचारिक विनय नही है बल्कि उसे व्यक्त

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १२-१-१९३३।

२. स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित।

करना उसका कर्तव्य है। प्रसंग आ पडनेपर ईश्वर मेरी श्रद्धाके अनुरूप शक्ति तुम्हें दे — मुझे विश्वास है कि मेरे इन वचनोंसे तुम विचलित नही हो उठोगे।

बापू

[पुनश्च :]

कुल १९ पत्र हैं। सभी धागेसे बँधे हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

३८. पत्र : सीताराम कृष्णाजी नलावड़ेको[1]

१२ जनवरी, १९३३

भाई नलवडे,

तुम्हारा खत मिला।

मुडदाल मांसका त्याग और मु[डदाल] जानवर खींचनेका त्याग साथमें [करने]-का अधिकार हरिजन भाइयोंको [अवश्य] है। परन्तु मुडदाल मांसके त्या[गकी] प्रतिज्ञा ली जाय तो बेहतर है। मृत जानवरको खीचना यह लोक सं[मत] है। किसीको तो यह सेवा करनी [हो]गी। जो इस धंधेके जाणकार है [वही] छोड़ दें तो समाजको अवश्य [क]ष्ट होगा इसमें से समाजको बचानेका धर्म [स]बका है, इसलिये . . .महाजनसे बदोबस्त करके मुडदाल जानवरको खींचनेका त्याग आवश्यक हो तो [किया] जाय। मुडदाल मांसका त्याग [ऐसी] हालतमें करना चाहिए। जो लोग गोमांस और मुडदाल मां[सका] त्याग करें और स्नानादि [करें उ]नको मंदिर प्रवेशका अधिकार [मिलना] चाहिये परंतु दर्शन योग्य [बनने]के लिये हरिजन भाइयोंको इतनी शुद्धि कर लेनी चाहिये और विश्वास रखना चाहिये कि ऐसे लोगोंको मंदिर प्रवेश मि[लने]वाला है ही।

जो लोग मुडदाल मांसको छ[ोडें] नही उनका बहिष्कार एकदम [नहीं] होना चाहिये। उन लोगोंको सुधार करनेका अवसर मिलना चाहिये। पुराणी आदतको छोडना हरेक मनुष्यके लिये सरल बात नही है।

परिषद यश[स्वी] होगी ऐसी मेरी उम्मीद है। सबके सब हरिजन भाइ और बहन निज सुधारके लिये तैयार हो जायेंगे ऐसी आशा रखता हूं।

आपका

मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०१) से।

१. यह पत्र जगह-जगहपर कटा-फटा है।

३९. पत्र : देवनायक आचार्यको[1]

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

आपने भेजे हुए पत्र सभी मीले है। मैंने प्रथमसे ही कह दिया है कि आपका संवाद मेरी बुद्धि और हृदय पर असर डालनेके लिये है। जीस शास्त्रीओंके नाम मेरे ध्यानमे है उनको निमंत्रण भेजनेका मुझको पूरा समय भी नहीं दिया है, तदपि मैंने जो शीघ्र आ सकते है उन महाशयोंको विनय पत्र भेज दीया। वे आ सकेंगे या नही उसका अवतक मुझको कोई पता नही है। संवादका विषय स्पृश्यास्पृश्य विवेक शास्त्र-संमत है या नहीं है——यह नहीं है। जो अस्पृश्यता आज प्रचलित है वह शास्त्रसंमत है या नहीं——यह विषय है। और यदी आधुनिक अस्पृश्यता शास्त्रसंमत है तो ऐसे अस्पृश्य कौन हैं और इन दो प्रश्नोंमेंसे जो दूसरे प्रश्न उपस्थित होते है उन सब विषयके बारेमें आप महाशयोंका अभिप्राय मै अवश्य विनयपूर्वक सुनना चाहता हूं और मै आशा करता हू कि इससे आप संतुष्ट होंगे और पधारनेकी कृपा करेंगे।

आपका
मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

१. अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघके सचिव देवनायक आचार्य शास्त्रीय पद्धतिसे अस्पृश्यता पर सत्यान्वेषण करनेके सम्बन्धमें गांधीजी और उनके परामर्शदाताओंसे विचार-विमर्श करनेके लिए संघका प्रतिनिधित्व करनेवाले चार पंडितोंके साथ यरवडा जेलमें पधारे थे। जेलमें आनेपर उन्होंने गांधीजी को एक छपी हुई पुस्तिका दी जिसमें विचारणीय विषय, संवादके नियम तथा वक्ताओंके नाम दिये हुए थे। गांधीजी ने छपी हुई पुस्तिकामें लिखे 'अस्पृश्यता' शब्दके साथ 'मौजूदा वर्गीकरणके अनुसार' विशेषण और जोड़ दिया। संघके प्रतिनिधियोंने इसे स्वीकार नहीं किया और वे गांधीजी से बिना मिले ही चले गये। देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

४०. पत्र : देवनायक आचार्यको

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

आपका पत्र मुजको मिला है। जहांतक संभव था वहां तक मैने आपने भेजी हुई पत्रिकामें थोडासा फरक करके मेरे हस्ताक्षर दिये है। मै कोई अविनय नही करना चाहता हूं, और हृदयसे आपका सवाद सुनना चाहता हुं। मेरी उम्मीद है के जो परिवर्तन मैंने किया है वह आपके पत्रके अनुसार ही है।

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

४१. पत्र : देवनायक आचार्यको

त्रीजी चिट्ठी

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

मै लाचार हूं। और मुझे बड़ा दुःख भी होता है कि मेरे जैसे जिज्ञासु और मुमुक्षुको आप वकीलकी तरह बंधनमें डालना चाहते हैं। मेरी दीन प्रार्थना है आप आ जाईये। मैं जैसा हूं वैसेको ज्ञान प्रदान करें। जो कुछ मैने परिवर्तन किया है उससे अधिक करनेमें असमर्थ हूं।

आपका,

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

४२. पत्र : आर० वी० पटवर्धनको

[१३ जनवरी, १९३३ से पूर्व][1]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने अपने पत्रमें कोरे तर्क और रोषपूर्ण उद्गारोंका मिश्रण कर दिया है। यदि आप मनको शान्त करें और अपने प्रश्नोंपर ध्यानपूर्वक विचार करें, तो उनके उत्तर आपकी समझमें स्वयं ही आ जायेगे। उदाहरणार्थ प्रश्न १

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र १३ जनवरी, १९३३ को प्राप्त हुआ था।

लें। इसके लिए मेरा उत्तर यह है कि हम मन्दिरोंमें जरा भी दखल नहीं देते। दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि हम कानूनकी माँग नही करते, केवल मौजूदा कानूनमें जो कृत्रिम बाधाएँ है उन्हे दूर करवाना चाहते हैं। प्रश्न ३.: जो न्यायकी माँग करता है उसे चाहिए कि वह स्वयं भी वैसा व्यवहार करे, यह बात मेरी ही तरह आप भी लोगोंसे कहें।

मराठीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००२१) से।

४३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारा पत्र मिला। उसे पाकर मुझे दुख हुआ। उसमें निहित भावना मुझे नापसन्द है। तुम सारी चीजको व्यापारिक सौदेबाजी समझते हो, जबकि मैंने सारी चीजको निस्स्वार्थ सेवाके रूपमें देखा है। तुमने पारिश्रमिकका सवाल पूरी तरह मेरे हाथोंमे छोड़ दिया था, हालाँकि मैंने तुमसे यह बतानेको कहा था कि तुम अस्पृश्यता-विषयक अपने भाषणोंका सशोधित संकलन मुझे देने और छपाईका निरीक्षण करनेके लिए कितना पारिश्रमिक लोगे। लेकिन तुम कुछ लेनेकी बात सोचनेको भी तैयार नही थे और मुझे लिखा कि इसके पीछे तुम्हारे मनमें कोई स्वार्थ-भावना नही थी। ऐसी स्थितिमे मुझे इस नाजुक कामको अपने हाथमें लेनेमें कोई सकोच नही हुआ, लेकिन अन्तमे मैंने स्वयं इस जिम्मेदारीको टाल दिया और हरिभाऊसे कहा कि वे ही एक रकम बता दें। उन्होंने १२५ रुपये कहे, और मैंने तुरन्त उसे स्वीकार कर लिया। विश्वास करो कि जहाँतक मेरा सवाल है, मैंने तुम्हारी फीस, पारिश्रमिक या मानदेय, जो-कुछ भी उसे कहा जाये, निश्चित करनेमें आर्यभूषणवाले बिलका विचार नही किया था। न तो मै तब ही जानता था और न अब ही मुझे इस बातकी कोई सूचना है कि आर्यभूषणवाला बिल अनुचित रूपसे ज्यादा है। मेरी समझके अनुसार तो उन्हें केवल नाममात्रका मुनाफा ही मिलना चाहिए। तुम्हारे खयालसे यह मुनाफा ५०० से ३००० रुपयेके बीच होगा। मै तुम्हारे सुझावका जवाब एक उचित प्रस्तावसे ही दे सकता हूँ। तुम केवल पुस्तककी छपाईका खर्च अदा करके किताबको ले लो और स्वयं बेचो तथा जो भी मुनाफा कमा सको, कमा लो। शर्त इतनी ही है कि तुम छपे हुए मूल्यमें वृद्धि मत करो। क्योंकि मूल्यमें वृद्धि करना जनताके साथ अन्याय होगा।

मैंने हरिभाऊसे पहले ही कह दिया है कि वह तुम्हें १२५ रुपये दे दे बशर्ते कि तुम उसे पूरे भुगतानके रूपमे स्वीकार करो और तुम्हें किसी प्रकारका असन्तोष

न महसूस हो। कारण, मेरे हाथमे सारी चीज छोड़ देनेके बाद मै जो रकम निश्चित करूँ, उससे यदि तुम्हें असन्तोष हो, तो मुझे गहरी पीड़ा होगी।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एन० एच० पुरन्दरे
६०४ सदाशिव पेठ
पूना २

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१५) से।

४४. पत्र : धन्नूलाल शर्माको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

इस बार मै आपका ध्यान अपने किसी वक्तव्यकी ओर नही दिलाऊँगा बल्कि आपसे कहूँगा कि आप अपने पत्रको[1] ही दुबारा पढ लें। मेरा आपसे कहना है कि आपका पत्र मानहानिकारक और अपमानजनक है और एक ऐसे व्यक्तिके सर्वथा अयोग्य है जो एक सनातन-धर्मसभाके महामन्त्री-पदपर बैठा हुआ है।

यदि आप अपना पत्र शान्त चित्तसे और निष्पक्ष भावसे दुबारा पढ़ेगे तो आपने जिन पंडितोका अपमान किया है उनसे तुरन्त क्षमायाचना कर लेगे। और किसी भी हालतमें जबतक आप क्षमा नही माँगते तबतक आपके पत्रोंको न तो पढ़ा जायेगा और न उनका उत्तर ही दिया जायेगा। मुझे इसका दुःख है।

आपका सच्चा मित्र,

श्रीयुत धन्नूलाल शर्मा
महामन्त्री
श्री सनातन धर्म सभा
२२० हैरिसन रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१७) से।

१. इस पत्रमें धन्नूलाल शर्माने गांधीजी द्वारा प्रकाशित "सनातनियोंसे अपील", ४-१-१९३३का उल्लेख करते हुए कहा था कि पण्डितोंने न केवल गांधीजी के साथ बल्कि सारे संसारके साथ धोखा किया है; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३७०-४।

४५. पत्र : सत्यानन्द बोसको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय सत्यानन्द बाबू,

आप कितने अच्छे है, और जब भी मुझसे कुछ कहनेको होता है तब आप मेरी सुधि लेते हैं।

मेरे खयालसे डॉ० सुब्बारायनके विधेयकमें सुधार करनेकी बात सोचनेका यह उचित समय नहीं है। सबसे पहली चीज तो वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त करना है। वह मिल जानेपर [विधेयकमें] बहुतसे सुधार सम्भव हो सकते हैं। इसलिए मैं फिलहाल आपके सुझावपर[1] विचार नहीं कर रहा हूँ। एक बार विधेयकका आधार-भूत सिद्धान्त स्वीकार हो जानेपर सम्भव है, सरकार उसे स्वयं अपने हाथमें ले ले अथवा विधेयकमें किसी प्रकारकी राजनीतिक शरारतके लिए गुंजाइश न रहने देनेके खयालसे जरूरी संशोधन करनेकी सलाह दे सकती है। जहाँतक मेरा सवाल है, मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें मेरी एक चिन्ता यह है कि सवर्ण हिन्दुओंका शुद्धीकरण हो। लेकिन आपके सुझावोंको मैं अवश्य ध्यानमें रखूँगा और आवश्यकता होनेपर उनका उपयोग करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सत्यानन्द वोस
४ नन्दी स्ट्रीट
बालीगंज
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१८) से।

१. सुझाव यह था कि विधेयकका उद्देश्य सीमित करके मन्दिरोंके न्यासियोंको मात्र यह अधिकार दिया जाये कि वे अस्पृश्योंको मन्दिरमें प्रवेश करने और सवर्ण हिन्दुओंकी भाँति ही पूजा करनेकी अनुमति दे सकें (एस० एन० १८८९३)।

४६. पत्र : एस० टी० रामानुज अय्यंगारको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और सलग्न आपका लेख[1] प्राप्त हुए। श्रोताओंने आपको सताया और तंग किया, इस बातका मुझे वास्तवमें दुःख है। जैसाकि आप जानते होंगे, मैंने असहिष्णुताके विरुद्ध बार-बार लिखा है और समय आनेपर मैं अपनी चेतावनी खुशीके साथ फिरसे दुहराऊँगा।

जहाँतक आपके लेखका सवाल है, मैं मानता हूँ कि हम दोनों एक-दूसरेसे असहमत हैं और रहेंगे।[2] सनातन-धर्मकी हमारी कल्पना भिन्न है। अधीरतावश आपने मेरी बुनियादी स्थितिको समझनेकी कोशिश भी नहीं की है। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि 'आप मेरे सारे वक्तव्योंको खुले दिमागसे दुबारा पढ लीजिए, और अगर फिर भी शंकाएँ रह जायें तो उनपर श्रीयुत राजगोपालाचारीसे बात करें। इसके बाद भी यदि आपकी तसल्ली न हो, और आप तसल्ली करनेके इच्छुक हो तो आप यरवडा चले आइए। मै खुशीसे आपको एक घंटा दूँगा और आपको यह कायल करनेकी कोशिश करूँगा कि मैंने जो स्थिति अपनाई है और उसका औचित्य सिद्ध करनेका जो साधन मैंने अपनाया है उन दोनोंको पूरी तरह ठीक साबित किया जा सकता है।'

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० टी० रामानुज अय्यंगार
४, वरदराज पेरूमल कोइल स्ट्रीट
त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० १८९१९) से।

१. "द ड्राइव अगेन्स्ट अनटचेबिलिटी"।

२. अय्यंगारने अपने लेखमें लिखा था: "उन्होंने [गांधीजी ने] विशेष सरकारी रियायतें स्वीकार करके जहाँतक अस्पृश्यताका सवाल है, उसकी हदतक सरकारके साथ असहयोग करनेके सिद्धान्तका त्याग कर दिया है, और अब अस्पृश्यता-निवारणके लिए विधान-सभा द्वारा कानून बनानेके प्रयत्नोंका, जो किसी समय निषिद्ध माना जाता था, समर्थन कर रहे हैं। . . ."

४७. पत्र : एस० नागसुन्दरमको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो शास्त्रोक्तियाँ उद्धृत की है उन्हें मैंने पढ़ा। जहाँतक मै उनको समझ सका हूँ उसके अनुसार आजके हालातपर वे लागू नहीं होती। आज जिन्हें अस्पृश्य समझा जाता है उन्हें चाण्डालके वर्गमें किसी तरह नहीं रखा जा सकता।

अन्तर्जातीय भोजका अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमें कोई स्थान नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नागसुन्दरम
किंग्स सर्किलके समीप
माटुंगा
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२१) से।

४८. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

वल्लभभाईने कल रात तुम्हारी तरफसे मुझसे बहुत लड़ाई की। यदि वल्लभभाईसे सर्वथा अपरिचित कोई व्यक्ति संयोगसे वहाँ होता तो उनकी भाषा सुनकर इसी नतीजेपर पहुँचता कि हम लोग अवश्य ही बहुत झगड़ालू लोग हैं।

उनका [वल्लभभाईका] खयाल था कि तुमसे बिना परामर्श किये मैंने ऐसे प्रस्ताव रख दिये हैं जो बहुत ही अटपटे सिद्ध हो सकते है, जैसाकि दो अवसरों पर हो भी चुका है, और ऐसा करके मैं तुम्हारे साथ बहुत घोर अन्याय कर रहा हूँ।

हमारे झगड़ेका कारण मेरा समझौता-प्रस्ताव[1] था। उनका विचार था कि बिना तुमसे परामर्श किये उसको प्रकाशित करनेका मुझे कोई अधिकार नही था, और उनको इस बातका पूरा निश्चय था कि हालाँकि तुमने अपनी भलमनसाहतके

१. बातचीतके लिए, देखिए परिशिष्ट १।

कारण मुझसे कुछ कहा नही, लेकिन तुम्हे बहुत अटपटा लगा था, झुँझलाहट चाहे न भी हुई हो। मैंने उनसे कहा कि तुम इतने भले आदमी हो कि अगर तुम्हें सचमुच अटपटा लगा होता तो मुझसे छिपाते नही, और छिपाना तुम्हारे स्वभावके विपरीत होगा। मैंने यह भी कहा कि खास इस मामलेमे तो तुमने मेरा प्रस्ताव पसन्द भी किया है, और अगर यह पता चले कि तुमने उसे पसन्द नही किया है और तुम अपनेको सचमुच बहुत अटपटी स्थितिमे पा रहे हो, तो भी मेरे लिए हर मौकेपर तुमसे या अन्य साथियोसे परामर्श कर सकना असम्भव है। मैंने इससे आगे बढ़कर यह भी कहा कि इस ढंगसे तो काम कर सकना लगभग असम्भव हो जायेगा। लोग साथ मिलकर काम तभी करते हैं जब उनके बीच बुनियादी सिद्धान्तोके ऊपर सहमति होती है और सामान्यतः इन बुनियादी सिद्धान्तो परसे निकाले गये उनके निष्कर्ष एक जैसे ही होते है। और यदि कभी-कभी वे भिन्न निष्कर्षोपर पहुँचे तो भी समय रहते अपनी गलतीको स्वीकार कर लेनेसे उनकी दोस्ती और उनका जो समान उद्देश्य है, वे दोनों ही अक्षत रहते है। लेकिन मेरी किसी भी बातसे वल्लभभाई सन्तुष्ट नही हुए। तब 'कर्फ्यू बेल,' जिसपर हम दोनोकी परस्पर सहमति थी, ने हमारी रक्षा की और इस प्रकार हमारी यह बहस, जिसके खत्म होनेके लक्षण नही थे, खत्म हुई। लेकिन मै इस निश्चयके साथ बिस्तरपर लेटा कि मै यह सारा मामला तुम्हारे सामने रखूँगा। तुम्हारा उत्तर जो भी होगा, उससे तुम्हारे वकीलको कुछ तसल्ली पहुँचेगी, और तुम जानते हो कि अगर तुम अपने वकीलके दोनों मुद्दोंसे सहमति व्यक्त करोगे तो मुझे कोई गम नही होगा। उनके दोनों मुद्दे ये है: पंडित पंचानन तर्क-रत्नके सामने मैंने जो समझौता-प्रस्ताव रखा था उसे संसारके सामने प्रकट करनेसे पहले मुझे तुमसे परामर्श करना चाहिए था, और दूसरे यह कि मैंने निश्चित ही तुम्हें अटपटी स्थितिमे डाल दिया हैं। इन मुद्दोपर अपनी राय व्यक्त करनेके साथ ही तुम यह भी लिखना कि गुणावगुणके खयालसे तुम मेरे प्रस्तावको ठीक समझते हो या नहीं।

कल यहाँ जो-कुछ हुआ उसे एक दुखान्त नाटक ही कहा जायेगा। कल पाँच पंडित और उनके पाँच सलाहकार नियत समयसे डेढ़ घंटा पीछे जेलके फाटकपर पहुँचे और मेरे साथ सक्षिप्त टिप्पणियोके आदान-प्रदानमे ढाई घटे लगा दिये। जिन तीन टिप्पणियोंका[1] उनके और मेरे बीच आदान-प्रदान हुआ उन्हींने ढाई घंटेका सारा समय ले लिया। आप विश्वास नही करेंगे कि वे अन्दर आकर बातचीत करनेको इस कारण तैयार नही हुए क्योकि मैंने उनके मसविदेमे जो एक शब्द जोड़ दिया था उसे उठानेको मै तैयार नही था। यह शब्द था 'अस्पृश्यों' शब्दके आगे जोड़ा गया एक विशेषण। यह विशेषण जो मैंने लगाया था, यह था: "मौजूदा वर्गीकरणके अनुसार।" निस्सन्देह इससे उनकी बहसका सारा विषय ही बदल जाता था। अतः वे लौट गये। बेशक हमारा कहना यह नही है कि शास्त्रोमें अस्पृश्यताका स्थान है ही नहीं। हमारा कहना यह है कि जिस प्रकारकी अस्पृश्यता हम आज देखते है

१. देखिए पृष्ठ ४०-४१।

उसका शास्त्रोंमें कोई स्थान नहीं है। पंडितोंसे यह सिद्ध करना अपेक्षित था कि अस्पृश्यताका जो स्वरूप आज प्रचलित है, शास्त्रोंमें उस अस्पृश्यताका समर्थन किया गया है। यह चीज ईमानदारीसे सिद्ध नहीं की जा सकती। उनकी ओरसे जो भी शास्त्रोक्ति अभीतक की गई है उससे यह बात सिद्ध नही हुई है। हमारी ओरसे जो शास्त्री बोल रहे हैं वे वास्तवमें बहुत विद्वान लोग है और धर्मनिष्ठ भी हैं। वे ईमानदारीसे ऐसा मानते है कि वर्तमान ढगकी अस्पृश्यताका शास्त्रोंमे कोई औचित्य नही है। वास्तविक अस्पृश्यता तो सदैव रहेगी। यह एक बहुत ठीक ढंगका सफाई और स्वच्छताका नियम है जिसपर सारे संसारमें आचरण किया जाता है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२२) से।

४९. पत्र : जॉर्ज जोजेफको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय जोजेफ,

तुम्हारा पत्र पाकर, और विशेषकर प्यारेलालके नाम तुम्हारे पत्रसे[1] मुझे जो प्रसन्नता हुई उसकी कल्पना तुम मेरे वर्णनकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हो। मैं तुम्हारा पत्र उसतक पहुँचवानेकी कोशिश करूँगा। लेकिन उस पत्रके बारेमें मैं दो चीजें कहना चाहूँगा।

मेरा अनशन[2] शाब्दिक अर्थमें आमरण अनशन नहीं था। इस जेलमें जो रोमन कैथॉलिक पादरी आता है वह मुझे जानता है, और मेरा अनशन शुरू होनेकी पूर्व-संध्याको वह अपने करुणापूर्ण स्वभावके अनुसार केवल एक शब्द कहनेके लिए मेरे पास आया और उसने बताया कि वह आत्मघात और बलिदानके बीच क्या भेद मानता है। आत्मघाती व्यक्तिके मनमें नष्ट हो जानेका निश्चय रहता है। बलिदानका अर्थ है जीवनको खतरेमें डालना, और जितना बड़ा खतरा, उतना ही बड़ा त्याग। लेकिन इसमे खतरेसे आगेकी कोई बात नही होनी चाहिए। इस अन्तरको स्वीकार करके उससे सहमत होनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं थी, और मेरा अनशन चूँकि सशर्त था इसलिए यह अनशन आत्मघात नही था बल्कि एक ऐसा अनशन था जिसमें मृत्युका खतरा तो था, लेकिन था खतरा ही, इससे ज्यादा कुछ नही।

१. इस पत्रमें जोजेफने प्यारेलालकी पुस्तक **द एपिक फास्ट** पर अपने विचार व्यक्त किये थे और लिखा था: "अन्तरकी आवाज या तो भ्रम है या ईश्वरकी आवाज है। यदि यह सचमुच ईश्वरकी आवाज है तो वह आत्म-हननकी सलाह नहीं दे सकती, क्योंकि ईश्वर जो जीवन देता है उसे केवल वही समाप्त कर सकता है। . . ."

२. देखिए खण्ड ५१।

तुम्हें यह जानकारी दिलचस्प लगेगी कि मेरे कुछ रोमन कैथॉलिक मित्रोंने अनशनमें कोई दोष नही देखा है। बेशक, हिन्दू-धर्ममें कुछ ऐसे आत्यन्तिक उदाहरण भी है जिनमे जीवनका अन्त कर लेना एक अनिवार्य नियम है, लेकिन इनपर फिलहाल हमें विचार करनेकी जरूरत नही है। हिन्दू-धर्म और अन्य धर्मोंमे इस बातपर सामान्यरूपसे सहमति है कि आत्मघात करना पाप है।

अब रही अन्तरकी आवाजकी बात।[1] तुम्हारी इस बातसे मै पूरे दिलसे सहमत हो सकता हूँ कि ईश्वरकी आवाज कभी पाप-कर्मकी सलाह या उसका समर्थन नहीं कर सकती। पाप करनेका प्रोत्साहन केवल शैतान दे सकता है। लेकिन असली कठिनाई तब खड़ी होती है जब पापका प्रश्न स्वयं विवादास्पद हो। जो लोग अमुक कार्यको पाप मानते है वे स्वभावतः इस दावेको अमान्य कर देंगे कि उसकी प्रेरणा ईश्वरने दी थी। इसीलिए एक प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा था[2] कि आत्मरक्षाके हेतु तथा उस सत्यकी खातिर जिसकी मै पूजा करता हूँ, मैं जिस बातका विश्वास करता हूँ उसे कहनेको बाध्य हूँ, लेकिन मेरे दावेको प्रासंगिक प्रश्नोंको तय करनेके लिए दिये गये तर्कोका अंग नही माना जाना चाहिए। देखा गया कि विरोधियोने उस दावेको अप्रासगिक ही माना। ईश्वरकी आवाज सुननेका दावा किसी दृष्टान्त-विशेषमे ठीक था या गलत, इसका निर्धारण दावा करनेवालेकी मत्युके बाद ही किया जा सकता है, और कुछ असाधारण मामलोंमें तो इसका निर्धारण तब भी कठिन हो सकता है। इन मामलोंमें दम्भसे भी ज्यादा बड़ा खतरा आत्म-प्रवंचनाका है जिसकी शिकार मानवजाति सरलतासे हो जाती है। आत्म-प्रवंचनासे ग्रस्त लोगोंके लिए बड़े-बड़े कामोंकी सिद्धि कर लेना सम्भव है और इसके बावजूद उनका यह दावा कि उनके कार्योंके पीछे ईश्वरीय आवाजकी प्रेरणा है, सर्वथा गलत हो सकता है। ये अन्तिम ढगकी कठिनाइयाँ हैं, जो समयके अन्ततक बनी रहेंगी, किन्तु यदि सत्यको कुछ भी प्रगति करनी है, तो आत्म-प्रवंचनासे ग्रस्त लोगोंको पूरा मौका मिलना ही चाहिए।

अन्तमें पापोंकी स्वीकारोक्तिका प्रश्न आता है। तुमको शायद पता न हो कि मेरे कुछ कैथॉलिक मित्र भी हैं जिनकी मैं बहुत कद्र करता हूँ। मेरा स्वभाव है कि मै छपी हुई किताबी चीजोंकी अपेक्षा व्यक्तिगत सम्पर्कसे ही ज्यादातर ज्ञान प्राप्त करता हूँ। ये मित्र अभीतक स्पष्टरूपसे यह नही बता सके हैं कि पापोंकी स्वीकारोक्ति और पापोंकी स्वीकारोक्ति सुननेवालेका क्या प्रयोजन और कार्य है। जिस व्यक्तिको पापकी कोई प्रतीति ही नही है वह क्या स्वीकार करेगा, और यदि प्रतीति हो, तो मैं यह तो समझ सकता हूँ कि स्वीकारोक्ति सुननेवाला पादरी पापी व्यक्तिको पापोंसे मुक्त कर दे, किन्तु क्या वह प्रायश्चित करनेवालेके भविष्यके कार्योका भी निर्देशन कर सकता है? स्वीकारोक्ति सुननेवाले पादरीके स्थानपर हिन्दू-धर्ममें गुरु है। मैने किसी गुरुकी तलाश जीवन-भर की है, ऐसा गुरु जिसके कन्धोंपर मैं अपने सारे बोझ डाल सकूँ और केवल उसकी इच्छानुसार काम करता हुआ घूमता फिरूँ। लेकिन ऐसी

१. बातचीतके लिए, देखिए परिशिष्ट २।

२. देखिए खण्ड ५१।

असीम और निर्विवाद आज्ञाकारिता कोई यन्त्रवत कार्य नही है; और चूँकि मुझमें आज्ञाकारिताकी सहज भावना है, अत. जबतक उसे अपने गुरुके चरणोमें न अर्पित करूँ तवतक मुझे सन्तोष नही होगा। लेकिन लगता है मनुष्यकी छोटी-सी जीवनावधिके अन्दर ही सच्चा गुरु प्राप्त कर लेना हरएक के भाग्यमे नही होता। लेकिन गहरी खोज तो सभी कर सकते हैं और हो सकता है कि यह खोज ही उस खोजनेके परिश्रमका पुरस्कार है और यह अनवरत खोज उसके मनको अनन्त शान्ति और आनन्द प्रदान करती है। कुछ भी हो, तुम मेरी इस बातको मानों कि अनवरत खोज ने मुझे न केवल ऐसा आनन्द और शान्ति ही प्रदान की है बल्कि मुझे जानते-बूझते कोई भूल करनेसे भी बचाया है।

मेरे लिए तुमने 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' में से उस उद्धरणकी नकल बनाई, इसके लिए धन्यवाद। मेरा ख्याल है कि १९०५ या १९०६ में मैंने उस पुस्तकको एक ही बैठकमे पढ़कर खत्म किया था, और कुछ महीने पहले एक मित्रने मुझे उसकी दूसरी प्रति भेज दी है।

तुम सबको हम सभी लोगोके प्यार सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

श्री जॉर्ज जोजेफ, एम० ए०, बैरिस्टर-ऐट-लॉ
"हिल व्यू", मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२३) से।

५०. पत्र: जी० वी० मावलंकरको

१३ जनवरी, १९३३

भाईश्री मावलंकर,

आपका पत्र मिला। वीणाबहनने भी आपकी बीमारीकी खबर दी। बीमारी तो वकील अथवा म्युनिसिपैलिटीके अध्यक्षको भी नही छोड़ती!! यह अच्छा है कि आप तुरन्त ही उठने-बैठने लगेंगे।

केशवजी के प्रश्न देखे। अपने पूर्वजोंके अथवा अपने समकालीन भाइयोंके पापोंके लिए हमे ऐसा बहुत-कुछ सहन करना होगा। एक तो वहम हो और फिर उसमें स्वार्थ आकर मिल जाये तब फिर शेष क्या रह जाता है? लेकिन आपकी पीठ बहुत सख्त हो गई है और इसलिए ऐसे प्रहार आपको फूल-जैसे हल्के लगने चाहिए।

ठक्कर बापा[1] लिखते है: "अन्त्यज कोषके सम्बन्धमें दादाको लिखना।" आप दादा कबसे बने यह मैं नही जानता। यह मेरे जन्मसे पहलेकी बात होनी चाहिए। भगवान करे आप दीर्घायु हों और हरिजनोंकी सेवा करें। बापाका कहना है कि आपको अपने प्रभावका उपयोग चिमनभाई, साकरभाई आदि वैष्णवोंपर करना चाहिए। वे

१. अमृतलाल वि० ठक्कर।

भले ही ठाकुरजी के दर्शन न करने दें लेकिन मन्दिर-प्रवेशके अलावा अन्य सब कार्योंमें मुक्तहस्तसे धन दें। लेकिन भला दाँत, जीभको क्या सलाह दे सकते हैं? और यदि बापाका जोर दादापर नही चलता तो दस-पन्द्रह वर्षके नये 'बापू'की क्या बिसात है? मैंने तो बापाका लादा हुआ बोझ उतारा है। ऐसा ही कुछ कस्तूरभाईको[1] भी लिखनेका बापाका फरमान है। यदि मै आपको ही मुख्तियार बना दूँ तो कैसा रहे?

आप अभी-अभी बीमारीसे उठे है इसलिए कामकी बातमे विनोद भी आ मिला और पत्र लम्बा हो गया। इसलिए अब कस्तूरभाईको मैंने आपको ही सौंप दिया। चिमनभाईको तो मै भी लिखूँगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२३४) से।

५१. पत्र : नानालाल कालिदास जसाणीको

१३ जनवरी, १९३३

भाई नानालाल[2],

तुम्हारा कार्ड मिला। मेरे नाम लीलावतीका[3] तार भी था। उसने उत्तर दिया है कि पद्मासे पूछे बिना वह कुछ नहीं कह सकती। इस विवाहके सम्बन्धमें तुम्हें जो जानकारी हो सो मुझे देना। वह कौन है, कैसा है, कितनी उम्र है? आर्थिक और शारीरिक स्थिति कैसी है? क्या करता है? मगनलाल[4] इस विवाहके विरुद्ध है, यह तो तुम जानते ही होगे।

तुम तो विवाहमे बहुत ज्यादा व्यस्त दीख पड़ते हो। देखो, व्यर्थके खर्चेमें मत उतरना। इस अवसरपर जितना पैसा दिया जा सके पुण्यार्थ ही देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६२८) से।

१. कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबादके एक मिल-मालिक।
२. स्वर्गीय डॉ० प्राणजीवन मेहताके भागीदार।
३. लीलावती मेहता, छगनलाल मेहताकी पत्नी।
४. मगनलाल मेहता।

५२. पत्र : नारणदास गांधीको

१३ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

चि० राधाके[1] बारेमें डॉ० कानूगा लिखते हैं कि उसे क्षय तो है ही। उसे देवलाली-जैसे स्थानपर भेज देना चाहिए और वहाँ सम्पूर्ण आराम ले तभी वह सुधर सकती है। तुम संतोक[2] और राधाके साथ बैठकर विचार करना। यह समस्या कठिन है, पर उसे सुलझाये विना छुटकारा ही नहीं है।

रमाबहनके[3] पत्र वहाँ आते हैं क्या? छगनलालको तो एक भी पत्र नही मिला।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५३. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

मुझे अभी कुछ समयतक बोलकर ही लिखवाना पड़ेगा। तुमने बचपनसे ही अपने-आपको एक भारतीय-जैसा माना है इसलिए तुम अपने आपको भारतीय कहनेकी अधिकारिणी तो हो, लेकिन वह इस तथ्यका अनुकल्प नहीं है कि तुम जर्मनीमें पैदा हुई हो। इस अभिग्रहणसे तुम्हारे नाम और तुम्हारी शक्ति, दोनोंमें अभिवृद्धि होनी चाहिए, और इससे बेहतर क्या हो सकता है कि हम सभी लोग अपने-अपने देशोंके गुणोंको दूसरे देशोंके गुणोंमें जोड़ दें!

गुरुदेव और मेरे बीच चुनाव करनेके लिए मानसिक द्वन्द्व क्यों हुआ? हम लोग तो कोई प्रतियोगी नही है। गुरुदेव जिस सिंहासनपर विराजमान हैं, योग्यताकी दृष्टिसे वे सर्वथा उसके अधिकारी हैं। मेरे अन्दर वैसी कोई प्रतिभाएँ नहीं हैं जो उनके अन्दर है, और इससे भी बड़ी चीज यह है कि हम दोनों एक-दूसरेको बहुत प्यार करते हैं, और ज्यों-ज्यो समय बीतता जाता है, हमारा प्रेम और प्रगाढ़ होता जाता है और हम एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझते भी जाते हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि ईश्वरने हम दोनोंको जो गुण दिये हैं उन गुणोंकी खातिर तुम हम दोनोंको

१. राधा गांधी, मगनलाल गांधीकी पुत्री।

२. मगनलाल गांधीकी पत्नी

३. रमाबहन जोशी, छगनलाल जोशीकी पत्नी।

समानरूपसे चाहती हो, तुम ऐसा कहो। अगर तुम मीराकी भाँति ही मेरी सच्ची बेटी बनना चाहती हो तो इस प्रकारका चुनाव करनेकी आगे कोशिश न करना।

आशा है, तुम्हें मेरा इससे पहलेका पत्र[1] मिला होगा जिसमें मैंने अदनसे भेजे गये तुम्हारे पत्रकी प्राप्ति-सूचना दी थी। महादेवके नाम भेजा गया रजिस्टर्ड पार्सल भी यथासमय प्राप्त हुआ था।

हम दोनोंकी ओरसे प्यार सहित,

बापू

[अंग्रेजीमे]
स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

५४. पत्र : एम० त्यागराजनको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। प्रश्न यह उतना नही है कि हरिजनोंको किस चीजकी जरूरत है, जितना यह है कि हरिजनोके प्रति सवर्ण हिन्दुओंका व्यवहार कैसा होना चाहिए। मेरे विचारसे, यह हिन्दुओंका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे हरिजनोंको अपने समान अधिकार दें। इस तथ्यसे कि यह बुराई युगों-युगोंसे चली आ रही है यह सिद्ध नहीं हो जाता कि वह बुराई ही नहीं है। इसी तरह जिनके नाम आपने गिनाये है, उन महान धर्म-प्रचारकोंके कहनेके बावजूद भी अस्पृश्यता बनी रही है, यह भी एक तथ्य है। पर उसका यह अर्थ नही कि वर्तमान पीढ़ीको — यह सिद्ध हो जानेपर भी कि अस्पृश्यता एक बुराई है — उसे जारी रखे रहना चाहिए, और मुझे पूरा यकीन है कि अस्पृश्यता बुराई है।

जिस व्यक्तिने अन्तरात्माकी आवाज सुन ली है उसे भी विवेक और तर्कसम्मत बातका विश्वास करनेके लिए तत्पर रहना चाहिए। उसका यह दृष्टिकोण उसे और अन्य लोगोंको उसके दावेकी सत्यताको परखनेमें सहायक होगा।

हिन्दू-धर्मको जैसा मैंने समझा है उसके आधारपर मैं निश्चय ही यह कहूँगा कि जिन चीजोंसे हरिजनोंको वंचित रखा जाता है उन चीजोंसे भगवान भी अपने आपको वंचित रखता है क्योंकि हम उन्हें हरिजन कहते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० त्यागराजन
४२, सिंगारा टोप
त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२८) से।

१. देखिए "पत्र : मार्गरेट स्पीगलको", १२-१-१९३३।

५५. पत्र : भगवानदासको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र मिला। मैंने अखबारोंमें आपकी सभाका[1] विवरण पढ़ा। इस समय हमारी सभाओंमें रुकावटें तो अवश्य खड़ी होंगी। मैं जानता हूँ कि बनारसकी सभा [आपके] सर्वथा सुरक्षित हाथोंमें थी और मुझे यह भी मालूम है कि आपने शत्रु-पक्षको अपनी बात कहनेका बल्कि सबसे पहले अपनी बात कहनेका अवसर देकर और हमारे पक्षसे सहानुभूति रखनेवालोंको प्रतिरोधमें कुछ कहनेसे रोककर शत्रुपक्षके जोश-खरोशको शिथिल कर दिया था। मै आशा करता हूँ कि आप बुखारके असरसे जल्द ही मुक्त हो गये होंगे। हमारी उम्रके लोगोंको अनावश्यक खतरे नही उठाने चाहिए। मेरा खयाल है कि आप मुझसे कुछ बडे ही हैं।

मै जैसे ही भेजनेकी स्थितिमें होऊँगा, आपको अन्य निबन्ध भी भेज दूँगा और यदि आप किसीसे 'आज' और अन्य हिन्दी-समाचारपत्रोंमें प्रकाशित अस्पृश्यता-सम्बन्धी लेखोंकी कतरनें मुझे भेजननेके लिए कहेगे तो मै आपका आभार मानूँगा। मेरे पास मराठी और गुजराती समाचारपत्रोंकी कतरनें तो आती है लेकिन हिन्दी-समाचार-पत्रोंकी नहीं। मैं 'आज' के लिये सन्देश देनेकी बातको भूला नहीं हूँ और न उस पुस्तकको ही भूला हूँ जिसकी सबसे पहली प्रति आपने मुझे दी है। इस पुस्तकके मिल जानेकी बात मैंने अपने पिछले पत्रमे लिखी थी जो, मुझे उम्मीद है, आपको यथासमय मिल गया होगा। आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैंने इस पुस्तकको पढ़ना शुरू कर दिया है लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे पढ़नेकी रफ्तार बहुत कम है और कभी-कभी तो मैं बिलकुल गलत भी पढ़ जाता हूँ।

हृदयसे आपका,

डॉक्टर भगवानदास
'सेवाश्रम', सिगरा
बनारस (कैन्ट)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२९) से।

१. यह सभा ८ जनवरी, १९३३ को हुई थी और इसमें मन्दिर-प्रवेशके समर्थनमें प्रस्ताव पास किया गया था।

५६. पत्र : वेरियर एल्विनको

१४ जनवरी, १९३३

मै तुमको चेतावनी देना चाहता हूँ कि तुम प्रकृतिका एक सीमासे ज्यादा विरोध न करो। बाइबिलकी भाषा प्रयुक्त करूँ तो कहूँगा, "तू अपने प्रभुको प्रलोभित करनेका प्रयत्न नही करेगा।" मै बिना किसी हिचक कहता हूँ कि अगर तुम्हारे ऊपर बीमारी का दुबारा इतना बुरा दौरा हो तो तुम्हे चाहिए कि तुम उसे इग्लैंड लौटनेका ईश्वरका बिल्कुल स्पष्ट सकेत मानो और वहाँ जो सेवा बन पड़े, करो। यदि ईश्वर चाहता है कि तुम वहाँ रहो तो सबसे पहली चीज वह तुम्हें शारीरिक स्वास्थ्य देगा। यदि तुम्हें विनीत भावसे पराजय स्वीकार करनी पड़े, तो स्वीकार कर लेनी चाहिए। तुम्हारी पराजय सत्यके ईश्वरकी विजय होगी। ईश्वरकी प्रयोगशालामें कोई बेकार वस्तु नही है। तुम वहाँ जो काम शुरू करोगे वह मरेगा नही। वहाँके कामका सम्पूर्ण भार यदि अकेले ही ऐसे आदमीपर हो जिसका शरीर स्वस्थ और चरित्र निष्कलंक हो, तो मुझे कोई एतराज नही है। यदि फिलहाल वहाँ ऐसा कोई काम नही है तो सारा काम अस्थायी तौरपर बन्द कर दो। यह कोई निराशाजनक तस्वीर नहीं है। ईश्वरमय जीवनकी यह वास्तविक पृष्ठभूमि है। "ओ सत्य, मेरी नही, तेरी ही इच्छा पूरी हो।" मुझे अपना उपदेश और लम्बा नही खीचना चाहिए। तुम मेरा अभिप्राय समझते हो। जहाँ पूर्ण आत्मार्पण होता है वहाँ निजी इच्छाकी कोई गुजाइश नही है।

[अग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

५७. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिल गया। लीलाधरके सम्बन्धमें तुम्हें कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। क्या शंकरभाई उनके पिताकी उपेक्षा करते हैं? महावीरको तो मैंने पुनः पत्र लिखा ही है। राधाके सम्बन्धमें वल्लभभाई बढवाणका सुझाव देते हैं।

मैंने छाराओंके[1] विषयमें पूछा है। उनका उपद्रव शान्त हो गया जान पड़ता है। क्या वहाँ भजन मंडलियाँ जाती हैं? सरकारकी ओरसे पुलिस चौकी तैनात की गई है?

१. मध्य गुजरातकी एक जरायमपेशा जाति।

प्रेमा थोड़ी चितामें तो डाले ही हुए है। उसके व्यवहारसे मुझे घबराहट तो होती है। यदि वह विवेकपूर्वक मौन है तब तो पूछने जैसी कोई बात ही नहीं है। पर यदि रोषके कारण है तो मै जैसा मानता था उससे यह कहीं बड़ा अपलक्षण है। उसकी थाह मालूम की जा सके तो करना।

गंगाबहन, कुसुम, लीलावतीके समाचार हो तो लिखना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५८. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे सारे पत्र पहुँच गये जान पड़ते हैं। मेथीका प्रयोग चिम्मनलाल[1]ने कितने दिन किया था। जमना[2] अन्य दवाइयाँ लेते हुए भी थोड़े दिन मेथीका प्रयोग कर देखे। कब्ज तो होना ही नही चाहिए।

महावीरके बारेमें मुझे तो दूसरा मार्ग नही सूझता। सारा कुटुम्ब ही चला जाना चाहिए। वे नियम पालन करेंगे यह आशा मै तो छोड़ ही देता हूँ। यह मेरा विचार है। इतनेपर भी यदि तुम उन्हें रखना चाहो तो मुझे उसमें कोई उज्र नहीं है। पर इतना निश्चय समझ लेना कि खोटी दया हिंसा ही होती है।

प्रेमाके विषयमें मै भी चिन्तामें हूँ। वह अपना स्पष्ट दोष भी नही देख पाती, मुझे इसका दुःख है और आश्चर्य भी। मुझे आशा थी कि मैं उसकी आँखें खोल सकूँगा। पर अभी तो यह आशा व्यर्थ गई जान पड़ती है। वह विचारशील है इसलिए पूर्ण रूपसे तो मै नाउम्मीद नहीं हूँ। उसकी भाषामे जहर था तथापि वह इन्कार करती है। इसका अर्थ तो यही होता है कि जहरीली भाषा किसे कहा जाये इस बातको वह नही जानती। उसमें इतनी श्रद्धा भी नहीं है कि जहाँ मेरा प्रेमल हृदय जहर देख रहा है वहाँ वह होना ही चाहिए। प्रेमाके लिए मै पक्षपात करता हूँ। मै उसके गुणोंको ज्यादा महत्त्व देता हूँ। ऐसा मनुष्य जब उसके दोष देखता है तो क्रुद्ध होनेके बजाय उसे अपने दोष देखनेका प्रयत्न करना चाहिए। और यदि मेरी भूल होती हो तो मुझे बताना चाहिए। मेरा तो यह खयाल है। मैं तो आज हूँ और कल नहीं। अन्तमें भार तो तुम्हींको उठाना है। अतः तुम्हें जैसा उचित जान पड़े, करना। मैं यदि कहीं अन्याय करता जान पड़ूँ तो मुझे बताते हुए हिचकना नहीं। और जो मेरी मान्यताएँ हैं उनकी प्रतीति तुम्हें भी होती हो तो तुम्हें अपना अभिप्राय स्पष्ट

१. एक बहुत पुराने आश्रमवासी, जो दमेके मरीज थे।

२. जमनाबहन गांधी, प्रेषी की पत्नी।

व्यक्त करते हुए हिचकना नही चाहिए। मैं उसके व्यक्तित्वका हनन तो किसी भी प्रकार नही करना चाहता। आश्रममे किसीके भी व्यक्तित्वका हनन हो तो आश्रमको हानि पहुँचेगी। पर व्यक्तित्वका अर्थ भी प्रेमा उलटा ही लगाती जान पड़ती है। मै उसके संकटको समझ पा रहा हूँ किन्तु उसके हठके आगे लाचार हूँ।

लीलाधरके विषयमे जाना। उसके जंजीबार जानेकी बात समाप्त हो गई कि नही? यदि उसे पुन: आश्रममें लेनेका विचार हो तो उससे स्पष्ट बात करके लेना।

छाराओका भय समाप्त हो चुका है। क्या इसका मतलब यह है कि उनके बीच हमारा प्रवेश हुआ है? या अन्य कोई बात? मैंने प्रभुदासके[1] साथ सारी बात कर ली है। वजनके आँकड़े तुम्हारे पत्रोमे नही मिले।

बापू

[पुनश्च:]

नारणदास,

दुर्लभजी संपन और सीताराम नामके दो भाई है और ये यहाँ की जेलमें है। भाई दुर्लभजी विवाहित हैं। छूटनेपर वे दो-एक माहके लिए आश्रमका अनुभव लेना चाहते हैं। इस तरह सीताराम भी। मैंने उन्हें कहा है कि आश्रममें ठहरनेके लिए उन्हें कोई कठिनाई नही होगी। तुम्हें लिखेंगे। सुविधा हो तो ले लेना।

प्रभाशंकरके[2] लड़के बलवन्तके साथ कोई घटना हुई? रतिलाल कैसा है? तोतारामजीको[3] बिल्कुल आराम हो गया होगा।

गिरि-परिवारके सारे पत्र पढ़ लेना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो–९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १४-६ से भी

१. प्रभुदास गांधी, छगनलाल गांधीके पुत्र।
२. रतिलाल मेहताके श्वसुर।
३. तोताराम सनाढ्य, एक आश्रमवासी।

५९. पत्र : रतिलाल कुँवरजी शाहको

१५ जनवरी, १९३३

भाई रतिलाल कुँवरजी,

आपका पत्र मिला है। आपने बहुत महत्त्वकी खबर दी है। लेकिन ऐसा तो बहुत सारे मन्दिरोंके बारेमें देखनेमें आता है। प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप जो बात एक दिन बन जाती है वह फिर रोजमर्राकी भी बन जाती है, इसी उम्मीदको लेकर हमें प्रयत्न करते रहना चाहिए।

मोहनदास गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२) से।

६०. पत्र : कृष्णदास गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० कृष्णदास,[१]

प्रभुदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ा है। शरीरसे जबतक वह टूट न जाये तबतक काम लेते रहना मोह है और इसलिए दोष है। तुम्हें जो सेवा करनी है उसके लिए ही तुम्हें आराम ले लेना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि प्रभुदासने तुम्हें बम्बईतक नहीं घसीटा होगा। वह सहज ही वहाँ आ सकता था और विनोबासे भी मिल सकता था। यदि अब भी देर न हुई हो तो मैं यही सुझाव दूँगा। मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०८४) से।

१. छगनलाल गांधीके पुत्र।

६१. पत्र : केशव गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० केशु,[1]

जितना दूध और घी पच सके उतना खानेसे ब्रह्मचर्यके पालनमें अड़चन नहीं होनी चाहिए।

सेवा करनेसे प्रेम स्थिर रहता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२६८) से।

६२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१५ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा रूठना बताता है कि तू बहुत नादान है। जब तू मेरा कुछ कहना सहन नही कर सकती तो दूसरोंकी बात तो सुनेगी ही क्यों? मुझपर जो छाप पड़ी उसके [स्पष्टीकरणके] लिए उपकार मानना तो दूर, उलटे क्रोध करती है। मेरे आक्षेपको यदि न समझ सकी हो तो तेरा धर्म उसे मुझसे समझ लेना और मेरे साथ झगड़नेका है। यहाँ तो तेरी शिक्षा और बुद्धिमानीपर पानी फिर गया मालूम होता है। तेरे क्रोधके पीछे तेरा महा अभिमान है, यह भी तू नही देख सकती। यह निश्चित मानना कि यह स्वतन्त्रता नही, परन्तु स्वेच्छाचार है। मै चाहता हूँ कि तू होशमें आये, मेरे प्रेमको समझे और अपने बारेमे मेरी परीक्षाको गलत सिद्ध न करे। यह समय तेरे लिए क्रोधका नही बल्कि मुझे दु:ख देनेके लिए पछताने और रोनेका है। तुझे इतना भी भान क्यों नहीं है कि मै तुझे कडवे वचन कहूँगा तो वे तेरे भलेके लिए ही होंगे? ऐसा करनेमें मेरी भूल हो रही हो तो नम्रतापूर्वक उसे बताना तेरा फर्ज है। अपनी निर्दोषितापर तुझे विश्वास हो, तो उसे मेरे सामने सिद्ध करनेकी श्रद्धा तुझमें होनी चाहिए। तू इसके बजाय क्रोध करके अपने दोषको दृढ़ करती मालूम होती है। तुझसे ऐसी आशा मैंने कभी नहीं रखी थी। चेत, और रूठनेके लिए माफी माँग।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२२) से।

१. मगनलाल गांधीके पुत्र।

६३. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० जमना,

जान पड़ता है, मैंने तुम्हारा विश्वास खो दिया है। ठीक है। एक वर्षके लिए तुम और कहीं जाकर रहो और फिर परीक्षा लो। आखिरी महीनेमें अथवा बीचमें यदि नारणदास आकर तुमसे मिल जाये तो क्या तुम्हें विश्वास होगा? तुम वापस आश्रममें न आ सको, तो न सही। जहाँ रहो यदि उसे आश्रम मानकर रहो तो फिर आश्रम आनेकी जरूरत नही है। ऐसा हो तो काफी होगा न?

पुरुषोत्तमकी[1] तबीयत सुधर नहीं रही है इस बातका मुझे बहुत खेद है। मैं इस बारेमें सोच रहा हूँ।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७०) मे; सौजन्य: नारणदास गाधी

६४. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरी कब्जकी शिकायत पूरी तरहसे तो जा ही नहीं रही है, यह बात ठीक नहीं है। यदि तू हजीरामें रहे तो अवश्य चली जायेगी। वहाँकी आबोहवामें यह खूबी है। अथवा तू थोड़े समयके लिए पूनामें रह। मैं यहाँ तेरा इलाज करवाऊँगा। यहाँका पानी भी अच्छा माना जाता है, और रहन-सहन भी अपेक्षाकृत सस्ता है। यह समय सबसे अच्छा है। यहाँ काम तो मिल ही जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

१. जमनाबहनके पुत्र।

६५. पत्र : क० मा० मुंशीको

१५ जनवरी, १९३३

भाईश्री मुंशी,

आपका पत्र मिला। यह तो मैं आपको निर्भय करनेके लिए लिख रहा हूँ। आपको इसका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं है। प्रधान मुझे जवान न कहे तो बेचारा और क्या कहे? लेकिन क्या उसे आपके सामने ऐसा कहना चाहिए? इसके अलावा, यदि २० वर्षका बूढ़ा आपके जैसे ४५ वर्षके आदमीके लिए 'बे-तारीख' माने तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

मतभेदका मुझे तनिक भी भय नहीं है। हृदय एक हो वहाँ किस बातका भय? आपको मैं तुरन्त खो बैठूं, ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। हम सत्यके धागेमें पिरोये हुए दो मनकोंके समान रहेंगे, फिर भले ही रंग भिन्न-भिन्न हों। लीलावतीकी[1] धृष्टताका तो कहना ही क्या? लेकिन वह तो पहलेसे ही थी। तुरन्त अच्छे हो जाइए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२५) से; सौजन्य: क० मा० मुंशी

६६. पत्र : जीवराम कल्याणजी कोठारीको[2]

१५ जनवरी, १९३३

"चौबीसों घंटों" का तो तुमने बिलकुल शब्दार्थ कर दिया। तुम्हें इसका भावार्थ लेना चाहिए था। चौबीस घंटेका अर्थ है, जितना समय सम्भव हो। बरसात होती हो, बहुत सख्त गर्मी पड रही हो, बहुत हवा चलती हो, असह्य ठंड पड़ती हो या और कारणोंसे सिर्फ बाहर रहना, सोना या काम करना असम्भव हो जाये या हानिकारक हो जाये, तो छाया या छप्पर या बन्द मकानका आश्रय लेना धर्म हो जाता है। मेरे वचनोंसे इतना ही सार निकाला जा सकता है कि जहाँतक हो सके, खुले आकाशके नीचे रहना अच्छा है। जो इस बातको समझ सके होंगे, वे घरमें कमसे-कम बन्द रहेंगे और घरके अन्दर भी हवा और रोशनीकी काफी सुविधा रखेंगे।

अब समय जाननेके बारेमें। ग्रामसेवकको घड़ीकी कुछ भी जरूरत नहीं। उसके लिए तमाम क्रियाएँ स्वाभाविक हैं। उसकी घड़ी भी स्वाभाविक है। समय बतानेकी

१. क० मा० मुंशीकी पत्नी।

२. प्रेषी उड़ीसामें कार्य कर रहे थे।

भाषा भी उसकी दूसरी ही है। वह यह नहीं कहेगा कि चार बजे आना। वह कहेगा कि प्रार्थनाके समय आना या दो घड़ी दिन बाकी हो तब आना, दिन निकले आना, पक्षी बोलें तब आना, खानेके समय आना, मैं निवाड़ बुनता होऊँ तब आना, सन्ध्या समय आना, ब्यालूके समय आना। इस तरह समयके लिए अलग-अलग नाम गढ़े जा सकते हैं। और उसे उद्यम करनेकी आदत इतनी ज्यादा पड़ गई होती है कि समयके लिए भी आकाशकी तरफ देखनेकी जरूरत नहीं पड़ती। उसके काममें देर-सबेर हो ही नहीं सकती। आदत पड़ जानेके कारण उसे यह मालूम ही रहता है कि उसका काम पूरा होनेपर कितना समय हुआ होगा। घड़ी इस्तेमाल करनेकी आदत न हो, तो वह यह नहीं कह सकता कि अमुक काममें कितने घंटे लगे। पर जब वह यह कहता है कि मैं रोज इतने गज निवाड़ बुनता हूँ, तब बोलने और सुनने-वाला जान लेता है कि कितना समय लगा होगा। और इसीलिए पहले समयकी गिनती घंटोंसे नहीं, परन्तु कामके मापसे ही होती थी। सफर करते समय भी उसे कोई मुश्किल नहीं होती, क्योंकि उसे पता होता है कि सूर्योदय और सूर्यास्तके बीच वह कितने मील चल सकता है। वह घंटोंके हिसाबसे आराम नहीं करता, परन्तु जब शरीर थक जाता है तब आराम लेता है। सार यह कि ग्राम-जीवनमें घड़ीकी जरूरत बहुत थोड़ी दिखाई देती है; यह कहें कि जरूरत होती ही नहीं, तो भी हर्ज नहीं। और कामके हिसाबकी जितनी जरूरत होती है उतनी वह सूर्यादि आकाशके ग्रहोंकी गतिसे जान लेता है। बादलों वगैरहका उसे डर नहीं रहता, क्योंकि पूरे सालमें ऐसा थोड़ा ही समय होता है। ऐसा समय होता है तब उसके काममें कोई बाधा नहीं पड़ती। प्रार्थना-जैसा समय भी अपने आप पलता रहता है। जिसका सारा समय नियमित रूपसे भरा होता है, उसका प्रार्थनाका समय नियमितरूपसे सामने आ ही जाता है। इसलिए किसी दिन देरसे उठना हुआ, तो अब क्या होगा ऐसा सोचनेका शायद ही कभी मौका आता है। शामकी प्रार्थनाके बारेमें आश्रमके समयका मेल बैठानेका लोभ रखनेकी जरूरत नहीं। पृथ्वीके अलग-अलग प्रदेशोंमें रहनेवाले एक ही समय नहीं रख सकते। इसलिए तुम अपने यहाँ सूर्यास्तके बाद प्रार्थना करने बैठ जाओ, यही ठीक है। मेरे खयालसे इसमें तुम्हारी छोटी-बड़ी सभी आशंकाओंका उत्तर आ जाता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५-७

६७. पत्र : शारदा सी० शाहको

१५ जनवरी, १९३३

चि० शारदा,

तेरा पत्र मिला। तू भारी कामोमे जुट गई लगती है। यह बहुत अच्छा कहा जायेगा। मुझे पत्र लिखना क्या काम नही गिना जायेगा? यदि नही, तो क्यों नही?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६१) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

६८. एक पत्र[1]

१५ जनवरी, १९३३

चार साधन [है]। एक रामनाम; दूसरा शुद्ध हवा, खुली हवामें प्राणायाम, आसन आदि क्रियाएँ; तीसरा शुद्ध आहार — गेहूँ, सब्जियाँ, दूध, मसाले और मिठाइयोंका त्याग; और चौथा, सारा समय कार्यमें व्यस्त रहना ताकि नीद अच्छी आये।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४

६९. पत्र : गोपालदास देसाईको

१५ जनवरी, १९३३

तुम नही आये[2] यह जानकर हम चारों साथी एक स्वरसे बधाई भेजते है। ऐसा संयम बहुत कम लोगोंने पाला है। इसलिए तुम्हें फिर एक बार बधाई।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि स्वप्नदोषसे किस प्रकार बचा जा सकता है।

२. प्रेषी जो कि अभी-अभी जेलसे मुक्त हुए थे, गांधीजी से मिलने नहीं गये थे।

७०. एक पत्र

१५ जनवरी, १९३३

मेरा शरीर प्राणीमात्रके लिए है, यह जितना सच है उससे ज्यादा सच यह है कि वह ईश्वराधीन है। वह प्रायोपवेशन (अनशन) कराये, तब मैं क्या कर सकता हूँ?

हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशकी स्वतन्त्रता दिलानेके लिए धारासभाका उपयोग असहयोगके सिद्धान्तके प्रतिकूल नहीं है, यह बताया जा सकता है। किन्तु यह बतानेमें जेलके नियमोंका भंग होता है। अतः उसे बतानेका मौका मिले और उस समय तुम मौजूद रहो तो पूछना। अस्पृश्यता-निवारणका जो काम अभी मैं कर रहा हूँ, उससे अभी नुकसान होनेका आभास हो सकता है। किन्तु अच्छा काम करनेसे अन्तमें नुकसान हो ही नहीं सकता, यह दुनियाका अनुभव है; और यह काम अच्छा है, इस बारेमें मुझे बिलकुल शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४-५

७१. पत्र : एक युवकको[1]

१५ जनवरी, १९३३

ऐसी तो बहुत-सी बातें मेरे बारेमें लिखी जा रही हैं। यह लेख तो स्पष्ट ही इतना मिथ्यापूर्ण है कि मैं आशा करता हूँ, इसपर कोई विश्वास नहीं करेगा। और कोई विश्वास करनेवाला होगा, तो उसपर मेरा उत्तर कुछ भी असर पैदा नहीं कर सकेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५

१. साधन-सूत्रमें प्रेषीको "दारेस्सलामका एक युवक" बताया गया है।

७२. एक पत्र

१५ जनवरी, १९३३

जो लेख[1] आपने भेजा है, वह आदिसे अन्ततक जहरसे भरा है। आशा है मेरा जीवन उसके झूठका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५

७३. पत्र : प्रभावतीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमारा खत बहोत दिनोंके बाद आज मिला। मैंने खास पत्र चार दिनके पहले लिखा वह मिला होगा। तुमको फिट आनेका शरु हुआ है ऐसा जानकर लिखा तुमारे खतमें तो फिटकी कुछ भी बात नहिं है। मेरे खोराक इ० की सब बात उस खतमें दी है। कांताको आशीर्वाद। मुझे लिखा करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४३२)से।

७४. तार : भारत-सरकारके गृह-सचिवको

१६ जनवरी, १९३३

सचिव, भारत-सरकार
गृह-विभाग
नई दिल्ली

उच्च जातिके कैदियों द्वारा स्वेच्छासे पाखाना आदि सफाई कार्य करनेकी अनुमति प्रदान करनेके सम्बन्धमें मैंने सरकारसे जो अनुरोध किया था उसके बारेमें क्या मैं सरकारके निर्णयको जान सकता हूँ?

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८७६) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (६), पृष्ठ २८५ से भी।

१. वसंतराम शास्त्री द्वारा लिखित।

७५. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मेरी एक स्वर्गीया बहनके एकमात्र प्रपौत्र, श्रीयुत मथुरादास हाल ही में बेलगाँव जेलसे रिहा किये गये थे। वह मुझसे मिले और उन्होंने मुझे बताया कि उन्हें मेरे जो पत्र दिये जाते थे उनमें पहले कई जगहोंपर मेरे लिखे अंश कटे हुए होते थे। अब मेरे पत्रोंमें ऐसी कोई बात कभी नहीं होती जो जेलके खयालसे या वैसे भी कोई आपत्तिजनक चीज हो। वे यहाँसे जाँचके बाद ही भेजे जाते हैं। यहाँके जेल-सुपरिंटेंडेंटोंने हमेशा अनुग्रहपूर्वक मेरा ध्यान मेरे पत्रोंके उन अंशोंकी ओर दिला दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं थे। लेकिन पत्र-लेखकसे बिना पूछे पत्रमें कोई शब्द या अंश काट देनेके कारण पढ़नेवाला उनका ऐसा खतरनाक अर्थ लगा बैठ सकता है जो कि पत्र-लेखकके कभी ध्यानमे भी नहीं था। मेरी रायमें यदि पत्रके किसी अंशको आपत्तिजनक माना जाता है तो उस पत्रको पत्र-लेखकके पास भेजा जाना चाहिए और उसे यह छूट होनी चाहिए कि वह चाहे उस अंशको निकाल दे और या फिर पूरा पत्र ही वापस ले ले। और दोहरे सेंसरका तरीका मेरी समझमें बिलकुल नही आता। मेरे सारे पत्र शुरूसे आखिरतक पूरी तरह सुविचारित और सुसम्बद्ध होते है। ज्यादातर उनमें नीति विषयक बातें होती है। एक शब्द हटानेसे अर्थ बदल सकता है। मै नहीं चाहूँगा कि बिना मेरी जानकारीके उनमे दखलन्दाजीकी जाये। मैं यह भी कह दूँ कि मुझे अक्सर मणिबहन पटेलके ऐसे पत्र मिलते हैं जिनमे बड़े-बड़े दाग होते हैं, जिनसे कि पत्र ही बेकार हो जाता है।

यह मामला मेरे लिए महत्त्व रखता है, और यदि आप इसमें कुछ राहत दे सकें तो अच्छा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० ९

७६. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मुझे आशा है कि क्रिसमस-सप्ताहमें जमा हुए कामोंको आपने अब निपटा दिया होगा और अब एक ऐसे महत्त्वपूर्ण मसलेकी तरफ ध्यान दे सकनेके लिए अपेक्षाकृत मुक्त होंगे जिसकी हमने अक्सर चर्चा की है लेकिन जिसे पूरी तरह निपटाया कभी नहीं है। मेरा मतलब जेलोंमे रुईकी हाथ-धुनाई और हाथ-कताईसे है। मै आपको बता चुका हूँ कि १९२२ में ही इन दोनो चीजोंको मेरे अनुरोधपर इसी जेलमे आरम्भ किया गया था। शुरूमें श्रीयुत शंकरलाल बैंकर और मुझको अपनी रुई और अपनी धुनकी तथा चरखेपर इस कामको करनेकी इजाजत दी गई थी। उसके बाद कर्नल डैलजिएल धारवाड़से रुई ले आये। हमारे कामका फल मेजर जोन्सको पसन्द आया जो कि कर्नल डैलजिएलके बाद आये थे और उन्होंने इच्छा प्रकट करनेवाले सभी सविनय अवज्ञाके अपराधी कैदियोंको यह काम नियमितरूपसे करनेकी अनुमति दे दी। मुझे दैनिक कार्यका नियमन करने और जाँच करने तथा सुधारके लिए आवश्यक निर्देश जारी करनेकी अनुमति दे दी गई। कामका लिखित हिसाब रखा जाता था। चरखे और धुनकियाँ जेलमे तैयार की गई, तकुए बनाये गये और सांट बनाने, तथा अगर मै भूल नही कर रहा हूँ तो फीता बनानेके लिए भी सूतका इस्तेमाल किया जाता था। मुझे कैदी वार्डरोंको रुईकी धुनाई सिखानेकी अनुमति थी और इस प्रकार काफी मात्रामें सूत तैयार किया गया।

१९३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिरसे शुरू होनेपर इस सवालको मैंने और अन्य कई कैदियोंने उठाया, और कुछ कैदियोंको तो अनुमति मिल गई और कुछको नहीं मिली। अभी कोई निश्चित नीति नहीं निर्धारित हो पाई थी कि शान्तिकी घोषणा कर दी गई और सविनय अवज्ञावाले कैदी रिहा कर दिये गये।

इस बार भी मामला उतनी ही अनिश्चित अवस्थामें है। उदाहरणके लिए सेठ जमनालाल बजाज मुझे बताते हैं कि धूलियामें सविनय अवज्ञावाले सभी कैदी चरखे पर सूत कातते हैं, यहाँतक कि इस प्रकार कताईसे तैयार होनेवाले सूतकी काफी खादी तैयार की जा चुकी है। मैं जानता हूँ कि कुछ अन्य जेलोंमें इसकी पूरी छूट है। यही जेल है जहाँ मुझे, मेरे साथियों, कुछ अन्य कैदियों तथा महिला सविनय अवज्ञाकारी कैदियोंको छोड़कर बाकी सबके मामलेमें पूर्ण निषेध लागू है।

मैं आपको बता चुका हूँ कि बहुतसे सविनय अवज्ञाकारी कैदी ऐसे हैं जिन्होंने त्यागके रूपमें नियमित कताई करनेका व्रत धारण कर रखा है। बड़ी कठिनाईसे मैं सविनय अवज्ञाकारी कैदियोंको यह समझा सका हूँ कि वे जेलोंमें इस व्रतको बन्धनकारी

न मानें। वे जानते हैं कि मैं आपको इस बातके लिए राजी करनेकी कोशिश कर रहा हूँ कि आप उन लोगोंको कातनेकी अनुमति दे दें जो इसे अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं। इस कताईको चाहे उनके जेलके कामके अंगके रूपमें माना जाये और चाहे उसे अतिरिक्त कामके रूपमें माना जाये और वैसी सूरतमें वे अपने कामके लिए उस सूतको रख सकेंगे।

मुझे निश्चय है कि धुनाई और कताईपर सरकारको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसका सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। कताई संगठनोंको गैर-कानूनी नहीं घोषित किया गया है और न कताईको अवैध कार्य ही घोषित किया गया है। सरकारके दृष्टिकोणसे भी मैं सिद्ध कर सकता हूँ, जैसाकि मैंने १९२२ में वास्तविक परिणामोंसे सिद्ध कर दिखाया था, कि जेलमें जो अन्य कई धन्धे चलाये जाते हैं उनकी अपेक्षा कताईका धन्धा ज्यादा लाभदायक है। तथ्य तो यह है कि मैंने आपके एक पूर्ववर्ती, कर्नल मेलको यह सिद्ध करके दिखानेकी कोशिश भी की थी कि यदि सभी जेलोंमें रुईकी [पिंजाई, धुनाई, कताई और बुनाई] आदि सभी प्रक्रियाएँ आरम्भ कर दी जायें तो जेलोंको आत्म-निर्भर बना सकना भी सम्भव है। लेकिन मेरी उनसे इस विषयपर बातें चल ही रही थीं कि वह रिटायर हो गये। इंस्पेक्टर जनरल और सुपरिटेंडेंट लोग बड़ी तेजीसे बदलते रहते हैं, और मुझे अपेंडिसाइटिसका कष्ट हो जानेके कारण समयसे काफी पहले ही रिहा कर दिया गया। यदि मुझे आपकी ओरसे थोड़ा-सा भी प्रोत्साहन मिले, तो मुझमें अभी भी वैसा ही आत्म-विश्वास है जैसाकि १९२२ में था और मैं आपको आश्चर्यजनक परिणाम दिखा सकता हूँ।

लेकिन यह तो शायद दूरकी बात हुई। मेरा मौजूदा उद्देश्य आपसे यह अनुरोध करना है कि इस समय जो लोग हाथ-धुनाई और हाथ-कताई करना चाहते हैं, उन्हें अललटप्पू ढंगसे इसकी अनुमति देनेका जो तरीका इस समय लागू है उसे प्रशासनकी दृष्टिसे जरूरी प्रतिबन्धोंके साथ नियमित स्वरूप प्रदान कर दिया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० ९

७७. पत्र : शंकरनारायण अय्यरको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। यदि मेरे पास समय होता तो मैं निश्चय ही इसका उत्तर देता। लेकिन चूँकि आपके द्वारा उठाये गये प्रश्नोंमें से अधिकांशके उत्तर मेरे वक्तव्योंमें आ जाते है इसलिए यदि मै आपसे यह कहूँ कि आप उन्हे एक बार देख जायें तो आशा है, आप अन्यथा नही मानेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शंकरनारायण अय्यर
लकड़ीके व्यापारी
कोयम्बटूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३३) से।

७८. पत्र : के० परमेश्वरन नम्बूदिरीको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और पवित्र तेलकी भेंटके लिए शुक्रिया। चूँकि मैं सच्चे शास्त्रोंमें दृढ़ विश्वास रखता हूँ और मानता हूँ कि वे न केवल आजके इन हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशको क्षम्य मानते है बल्कि उनमें प्रवेशकी भी अनुमति देते हैं, अतः आपने कृपापूर्वक मुझे जो भेंट दी है उसे मै स्वीकार नहीं कर सकता। यदि आप शास्त्रोंकी अच्छी तरहसे छानबीन करेंगे तो आपको एक भी ऐसा सूत्र नहीं मिलेगा जो उन लोगोंपर लागू होता हो जिनको आज मन्दिरोंमें प्रवेश करनेकी मनाही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० परमेश्वरन नम्बूदिरी
ओथीक्कन
मार्फत मन्दिर अधीक्षक
गुरुवायूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३७) से।

७९. पत्र : वी० वी० केतकरको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप बहुत जल्दी मचा रहे हैं। मैं स्वभावतः ही किसीपर जोर-जबरदस्ती करनेके खिलाफ हूँ, फिर चाहे वह अल्पमतमें हो अथवा बहुमतमें, और धार्मिक मामलोंमें तो विशेषरूपसे। इसलिए जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा मैं अल्पमतकी भावनाओंकी कद्र करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० वी० केतकर
सदाशिव लेन
बम्बई-४

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३८) से।

८०. पत्र : बसन्त कुमार चटर्जीको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

रजिस्टर्ड डाकसे मुझे आपका पत्र मिला। आपके पत्रोंमें मुझे बराबर सन्तुलित दृष्टिकोणका परिचय मिलता रहा है लेकिन इधर कुछ दिनोसे मैं उनसे वंचित हो रहा हूँ। मेरे सामने इस समय जो आपका सबसे ताजा पत्र है वह रोषपूर्ण है और गैर-जिम्मेदाराना बयानो और कटूक्तियोंसे भरा है। लगता है आपने यह पत्र गुस्सेमें लिखा है। यदि ऐसा न होता तो मैं आपका समाधान करता और आपकी गलत-बयानियोंमे गलत् ढंगसे जैसा-कुछ आपने मुझे पेश किया है, उस ओर आपका ध्यान आर्काषित करता जिनसे यह पत्र भरा है। यदि आपमें इस पत्रको रखनेका धीरज हो तो किसी दिन, और मुझे विश्वास है कि वह दिन दूर नही है, जब आपका आवेग शान्त हो जायेगा तब आप स्वीकार करेंगे कि मैंने इसमें जो-कुछ कहा था, वह सब सच है।

हृदयसे आपका,

बसन्त कुमार चटर्जी
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३९) से।

८१. पत्र : आर० कैमलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मेरे पास त्रावणकोर अर्थात् त्रिवेन्द्रमसे जो पत्र आते हैं, वे लगभग सारेके-सारे ऐसे लोगों द्वारा लिखे होते हैं जो एम० ए०, बी० ए० तथा उच्च न्यायालयके वकील भी है। इन पत्रोंमें एक बात विशेषरूपसे दिखाई देती है कि वे कठोरतापूर्ण होते हैं और उनमें उच्चतर मानवीय मूल्योंके प्रति संवेदनशीलता का अभाव होता है। पत्र-लेखकोंने एक ऐसी बातके समर्थनमें, जिसका स्पष्टत: कोई समर्थन नहीं किया जा सकता है, सूक्ष्म तर्कोंका प्रयोग करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा दी जान पड़ती है। जिस स्थानसे सम्बन्धित मेरे मनमे इतनी सुखद स्मृतियाँ है, वहाँके लोग शास्त्रोंकी ऐसी अनुदार व्याख्या करेंगे, इसके लिए मै बिलकुल तैयार नहीं था। मेरे लिए यह बहुत दु:खकी बात है कि इतने मनोरम प्राकृतिक वातावरणमें, जो कि प्रकृतिकी उदारताका परिचय देता है, बसनेवाले आप लोग भी अपने जाति-भाइयोके प्रति इतने कठोर हृदय बन गये है कि मै देखता हूँ परिणामोंकी तनिक भी परवाह किये बिना आप लोग मुझसे शान्ति स्थापित करनेकी अपील कर रहे है[१] जबकि आप लोग स्वयं ही, शायद अनजाने ही, विनाश-लीला रचा रहे हैं। यदि मुझे आपके पत्रमें सचाईका आभास नहीं मिलता तो मैं आपको ऐसा नही लिखता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० कैमल, एम० ए०, एल० एल० बी०
हाईकोर्टके वकील
त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४०) से।

८२. पत्र : बालकृष्ण भावेको

१६ जनवरी, १९३३

तुम्हारा शरीर मजबूत न बननेके मेरे खयालसे ये कारण है : जो भोजन लिया जाता है, उसे लेनेपर भी उसके बारेमें तुम्हें अश्रद्धा या तिरस्कार है, तुम मानसिक शक्तिका अत्यन्त व्यय करते हो और कार्यके प्रति अज्ञानपूर्ण मोहके कारण स्वास्थ्यकी उपेक्षा करते हो। उपाय तो इन कारणोंमें ही आ गया। तुम्हें अपनी श्रद्धाके अभाव को दूर करना चाहिए, जो खुराक ली जाये उसे ईश्वरका अनुग्रह मानकर लेना चाहिए, और यह भाव रखना चाहिए कि इस खुराकसे शरीर बनेगा। यह जानकर कि आत्माके लिए इस शरीरकी जरूरत है, यह एक धरोहर है, इसकी यथाशक्ति और उचित रक्षा करनी चाहिए। जो धरोहरकी उपेक्षा करता है, वह दोषका भागी बनता है।

ईश्वरके अस्तित्वका भान मुझे कब हुआ, यह मैं नही कह सकता। ये क्रियाएँ मेरे लिए इतनी स्वाभाविक हो गई हैं कि ऐसा आभास होता है मानो वे हमेशा थीं। इस पेड़के पत्ते फलाँ दिन इतने बड़े हुए, यह कौन कह सकता है। आजकी स्थितिको ६४ वर्षमें पहुँचा, यही कहा जा सकता है। इसका कोई अर्थ ही नही रहा।

ब्राह्मी स्थितिमें किसीके दुःखमें दुखी होनेकी बात ही नही होती, क्योंकि किसीके सुखमें सुखी होनेकी बात भी नही होती। जैसे बढ़ई टूटी हुई नावकी मरम्मत करते समय सुख-दुःखका अनुभव नहीं करता, वही बात 'ब्राह्मण' की है। ब्राह्मी स्थितिवाला ब्राह्मण कहला सकता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५८

८३. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१६ जनवरी, १९३३

मैंने तुम्हें जेलसे जो पत्र लिखे थे यदि तुमने उन्हें संभालकर रखा हो तो जिन पत्रोंमे अधिकारियोंकी ओरसे काट-छाँट की गई हो उन पत्रोंको अपने साथ लेते आना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ ११७

८४. पत्र : बिन्दु दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

बंगडी और कुमकुम विवाहितकी अथवा विवाहकी इच्छावाली कुमारिकाकी निशानी मानी जाती है। इसलिए जिसकी इच्छा विवाह करनेकी है वह अवश्य दोनो शृंगार करें। तुम्हें बंगडी पहननेका या कुमकुम लगानेका प्रेम है तो अवश्य पहनो और लगाओ। माताका आग्रह हो तो भी करो। उनका दिल दुखाना नहीं।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७

८५. पत्र : श्रीमती दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

बिन्दुको मैंने जो पत्र लिखा है उसे ध्यानसे पढो। यदि मैंने जो लिखा है वह यथार्थ लगे तो बंगडी इत्यादिके त्यागमें लड़कियोंको प्रोत्साहन दो। यदि ब्रह्मचर्यमें विश्वास न हो तो बंगडी इत्यादिका आग्रह रखा जाये। मेरी दृष्टिमें माताका धर्म बच्चोंकी त्यागवृत्तिको प्रोत्साहन देनेका है। भोगके प्रति तो मन दौडेगा ही। अन्तमें लड़कियाँ विवाह करना चाहेंगी तो सब-कुछ पहनेंगी। हम उनपर बलात्कार न करें।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७

८६. पत्र : वत्सला वी० दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

जिसको दु:ख है उसके दु:ख मिटानेकी यथाशक्ति चेष्टा करके और सत्यादि यमोंका भली-भाँति पालन करके जीवमात्रकी सेवा होती है। जो असत्य, हिंसा, परिग्रह, स्तेय, अब्रह्मचर्य करते हैं, वह प्राणीमात्रको दु:ख देते हैं। सत्यादिका पालन करके दु:ख मिटाते हैं अर्थात् सेवा करते हैं।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७-८

८७. एक पत्र

१६ जनवरी, १९३३

यदि रहना ही है तो नियमका पालन करके, सच्चे बनकर, काम करके रहो।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५८

८८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१६ जनवरी, १९३३

मुझे पूरा यकीन है कि सेठ चमनलाल[1] ऐसा सोच ही नहीं सकते कि देशमें गृहयुद्ध होनेकी कोई सम्भावना है। जैसाकि सनातनियोंके नाम अपनी अपीलमें मैंने कहा है, मैं इसे अकल्पनीय मानता हूँ। मगर सुधारकोंको कोई समझता है तो मैं ही समझता हूँ। युद्ध तभी हो सकता है जब परस्पर एक-दूसरेसे लड़नेके लिए दो पक्ष हों। अपने-आपको सनातनी कहनेवाले लोग यदि युद्ध आरम्भ करेंगे तो उनका ऐसा करना हवामें मुक्का घुमाने-जैसा होगा। और गृहयुद्ध हो ही क्यों? वाइसरायने विधानसभा द्वारा पास किये गये किसी विधेयकपर नहीं बल्कि सदनमें पेश किये गये विधेयकपर औपचारिक रूपसे अपनी स्वीकृति दी है और यदि यह विधेयक पास हो जाता है तो वह यह सुनिश्चित कर देगा कि कोई युद्ध न हो।

युद्ध तो उस समय छिड़ सकता है जिस समय यह मामला सुधारकोंके हाथोंसे निकल जाये और हताश तथा क्रुद्ध हरिजन इसे अपने हाथोंमें ले लें और अपने अधिकारोंके लिए सवर्ण हिन्दुओंकी फौजसे भिड़ जायें। लेकिन जबतक सुधारक लोग सनातन धर्मके सम्मानकी सुरक्षाके प्रति जागरूक हैं तबतक इस बातकी भी बहुत कम सम्भावना है।

विधेयक तभी पास हो सकता है जब इसको हिन्दुओंका ठोस समर्थन मिले, अन्यथा नहीं हो सकता। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपने अभी-अभी जिस तारकी ओर मेरा ध्यान दिलाया है उससे कोई भयभीत नहीं होगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-१-१९३३

१. एक रिपोर्टके अनुसार अहमदाबाद मिल मालिक संघके अध्यक्ष चमनलाल गिरधरदास परीखने वाइसरायसे तार द्वारा अनुरोध किया था कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकको सदनमें पेश करनेकी अनुमति न दी जाय। उन्होंने आगे कहा था कि यदि वाइसरायने अपनी स्वीकृति दे दी तो देशमें धार्मिक गृहयुद्धकी सम्भावना है।

८९. पत्र : एफ० मेरी बारको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जो-कुछ भी हो लेकिन मेहमान[१] नही हो। तुम तो सदा बढते रहनेवाले परिवारकी एक सदस्या हो। फिर चाहे तुम पुत्री, बहन अथवा माँ हो, इसका कोई महत्त्व नही। इस अजीबो-गरीब परिवारमें किसकी क्या स्थिति होगी, इसका निर्णय स्वयं व्यक्ति ही करता है। इसलिए समझ लो कि हम जहाँ कही भी मिलें मेरे लिए तुम कभी भी मेहमान नही होगी।

मूर्तिपूजाके सम्बन्धमें मेरी जो धारणा है वह पंडितोंकी धारणासे सर्वथा भिन्न है। अनेक लोगोंके अनुभवसे मुझे यह मालूम है कि मूर्तिपूजाके द्वारा वे लोग अध्यात्म-वादकी उच्चतम उपलब्धियोको प्राप्त कर सके है और यह कि ईश्वरकी तात्विक व्याख्याने ऐसे पंडितोंको घोररूपसे सांसारिक वना दिया है।

जैसाकि मै तुम्हें बता चुका हूँ कि प्रकार चाहे भिन्न हो लेकिन मनुष्यजाति स्वभावसे ही मूर्तिपूजक है। यह सच है कि ऐसी पूजासे हर किसीका उत्थान नही होता, लेकिन ऐसा तो हर प्रकारकी पूजाके सम्बन्धमें ही कहा जा सकता है। जो लोग मूर्तिपूजाको तात्विक दृष्टिसे हेय समझते है वे मूर्तिपूजक तो नही है लेकिन वे सम्भवत: अत्यन्त निम्नकोटिके मूर्तिपूजक होते है क्योंकि वे अहम्‌के उपासक होते है।

बा आश्रममे है। वह यहाँसे कुछ समय पहले चली गई थी। मीरा मुझे हर सप्ताह चिट्ठी लिखती है और मै भी उसे लिखता हूँ और बहुधा तुम्हारी चर्चा किया करता हूँ।

मुझे 'लिटिल प्लेज ऑफ सेन्ट फ्रासिस' नामक पुस्तक अभीतक नहीं मिली है। तुमने यह पुस्तक कब भेजी थी, लिखना। क्या तुमने उसकी रजिस्ट्री की थी?

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८८) से। सी० डब्ल्यू० ३३४५ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१. मेरी बार जनवरी मासमें तीन बार गांधीजी से जेलमें मिलने गईं थीं। बादमें एक पत्रमें उन्होंने हँसी-हँसीमें लिखा था कि हालाँकि वे लोग कैदी थे फिर भी उन्हें ऐसा लगा कि उनकी मेहमानोंकी तरह आवभगत की गई थी।

९०. पत्र : देयासा बालक संघको

१७ जनवरी, १९३३

मेरे प्यारे छोटे दोस्तो,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि तुम्हारे लिए जो एकमात्र रास्ता खुला है उसके द्वारा तुम हरिजन बच्चोंकी सेवा कर रहे हो। अपने सबसे ज्यादा जरूरतमन्द बच्चोंकी इस सच्ची सेवाके लिए भगवान तुम्हें सचमुच आशीर्वाद देगा। मेरी तुमको यह सलाह है: तुम इन बच्चोंके साथ अपने सगे भाई-बहनों-जैसा ही व्यवहार करो। स्वयं शिष्टाचार बरतो और इस तरह उन्हें भी शिष्टाचार सिखाओ। उन्हें स्वच्छतासे रहना सिखाओ। यदि वे गन्दी हालतमें स्कूलमें आते हैं तो उन्हें नहलाओ। इस बातका ध्यान रखो कि उनके आँख, कान, नाक और बाल साफ हैं। उनके नाखूनोंमें मैल जमा न हो। यदि उन्होंने फटे-पुराने वस्त्र पहन रखे हों तो तुम्हें चाहिए कि तुम लोग कुछ खद्दरकी याचना करो और स्वेच्छासे कपड़ा सीनेवाले दर्जी अथवा अपनी-अपनी माँओंकी सहायतासे उनके लिए अच्छी-सी छोटी-सी कोटी और चड्ढी बनवाओ। तुम उन्हें मनोरंजक स्थलोंकी सैरके लिए ले जाओ। उन्हें 'रामायण', 'महाभारत' आदिसे कहानियाँ पढ़कर सुनाओ तथा स्वयं हर परिस्थितिमें सत्यवादी और दयालु बने रहकर उन्हें भी वैसा ही बनना सिखाओ। और इस सबके अलावा तुम उन्हें अक्षरज्ञान और सरल अंकगणितकी शिक्षा भी दे सकते हो। अब तुम मुझे बताना कि तुम मेरी सलाहको कितना हृदयंगम कर पाये हो।

हृदयसे तुम्हारा,

देयासा बालक संघ
द्वारा – रखहरी चक्रवर्ती
गाँव देयासा
डाकघर दिगनगर
(जिला बर्दवान)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४१) से।

९१. पत्र : ए० सुब्बैयाको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय सुब्बैया,

तुम्हें मुझसे पत्र लिखनेके लिए क्षमा-याचना नहीं करनी चाहिए। क्षमा-याचना तो उस समय करनी चाहिए जब तुम मुझे कोई पत्र न लिख सको। तुम तो जानते ही हो कि मुझे हमेशा अपने घनिष्ट मित्रोंके पत्रोंकी कितनी चाह रहती है।

अप्पासाहब पटवर्धनके लिए मेरा उपवास रखना जरूरी था। समझौतेके दौरान उन्होंने जो-कुछ भी किया, इसके लिए उन्होंने मेरी अनुमति प्राप्त कर ली थी। अतएव जब मुझे उसके बारेमें पता चला तब मेरे लिए लाजिमी था कि मैं उनका पक्ष लूं। विशेषरूपसे इसलिए क्योंकि वह नितान्त अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्य था। मैं चाहे बार-बार उपवास करूँ अथवा कभी-कभी, लेकिन एक बात याद रखो कि ऐसा मैं केवल अन्तरात्माके दृढ़ आदेशपर ही करता हूँ।

मद्रासके जनमत-संग्रह[1] के बारेमें तुमने मुझे जो समाचार दिया है वह बहुत अच्छा है। यदि तुम्हें योग्य मतदाताओंकी पूरी सख्या मालूम हो तो मुझे बताना। क्या मतदाताओंमें वे हिन्दू भी शामिल थे जो मन्दिरमें प्रवेश करनेके अधिकारी नहीं हैं?

मुझे उम्मीद है, तुम पहलेसे अच्छे हो। यदि ललिता[2] हिन्दीकी पढ़ाईको जारी रखना चाहती है तो उसे समय-समयपर मुझे लिखते रहना चाहिए।

यद्यपि मेरी कुहनीके दर्दमें अभी आराम नहीं है फिर भी मेरी तबीयत काफी अच्छी है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत ए० सुब्बैया
गांधी आश्रम, खादी भंडार
ब्लैकबर्न लाइट
मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४२) से।

१. मदुरैमें, जहाँ श्री मीनाक्षी देवस्थानम् समितिके सदस्य निर्वाचित किये गये थे। ए० सुब्बैयाने गांधीजी को सूचित किया : "जो परिणाम निकले हैं वे पूर्णतया हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें है। . . . १८८७ मत पड़े थे जिसमें १४९८ मत उन उम्मीदवारोंको मिले जो मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें खड़े हुए थे. . ."(एस० एन० १८८९८)।

२. ए० सुब्बैयाकी पत्नी।

९२. पत्र : अरुणचन्द्र दत्तको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय अरुण,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। उसमें तुमने समारोह[१] का बहुत अच्छा विवरण दिया है। और मुझे इस बातकी खुशी है कि समारोहकी अध्यक्षता सत्यानन्द बाबूने की थी।[२] समारोहमें जो प्रस्ताव पास किया गया वह भी काफी अच्छा है। अब हमे अपने विरुद्ध जो भी कहा जाये, उसकी चिन्ता किये बिना अपना काम चुपचाप और दृढ़ताके साथ जारी रखना होगा। अन्तमे सत्यकी विजय होकर रहेगी।

हाँ, पडित पचानन तर्करत्न यहाँ आये थे। गुरुवायूरमें वे कुछ खास प्रगति नहीं कर पाये थे। मैं नहीं जानता कि इसके लिए उन्होंने प्रयत्न किये भी थे अथवा नहीं। उनसे मिलनेके बाद मेरे मनपर यह छाप पड़ी है कि उनको इस बातका पूरा यकीन हो गया है कि मन्दिर-प्रवेशके पक्षमे हमारा जो तर्क है, वह अकाट्य है लेकिन हिन्दुत्वके शुद्धिकरणके लिए दृढ़तापूर्वक कुछ कहनेका उनमें साहस नहीं है। बेशक यह पत्र प्रकाशनके लिए नही है लेकिन यदि मोतीबाबू उनसे मिलें और यह पत्र उन्हें दिखायें तो इसपर मुझे कोई एतराज न होगा। मै उनके विषयमे ऐसी कोई बात नही कहना चाहता जो मैं उनके सामने नही कह सकता। उन्होंने मुझसे अपने पुत्रको अथवा किसी प्रतिनिधिको मेरे पास भेजनका वादा किया था, जो मेरे साथ शास्त्रोंके गूढ़ार्थको लेकर अनेक दिनोंतक शान्तिपूर्ण ढगसे चर्चा करनेवाला था। मैंने समझा था कि उनके बम्बई पहुँचनेके तुरन्त बाद ही उनका पुत्र अथवा अन्य कोई शास्त्री मेरे पास शास्त्रार्थके लिए आयेगा। बादमें मैंने देखा कि उनका पुत्र उन शास्त्रियोंमें से एक था जो १२ तारीखको होनेवाले शास्त्रार्थमें भाग लेनेवाले थे, जो दुर्भाग्यवश कभी हुआ ही नहीं। यह एक दु:खद कथा है, जिसका वर्णन न करना ही अच्छा होगा।[३] स्थानीय समाचारपत्रोंमें इसके बारेमें बड़ी गलतबयानियाँ की जा रही है। यदि ऐसा ही होता रहा तो मुझे विवश होकर समस्त पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करना पड़ेगा।

१. प्रवर्तक संघके मोतीलाल रायकी ५० वीं वर्षगांठका समारोह।

२. यह सार्वजनिक सभा ८-१-१९३३ को चन्द्रनगरमें हुई थी और उसमें इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया गया था कि हिन्दू-मंदिरोंमें समस्त वर्गोंके हिन्दुओंको प्रवेश करनेका अधिकार है (एस० एन० १८८८९)।

३. देखिए "पत्र : देवनायक आचार्यको", १२-१-१९३३ और "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

मैं मोतीबाबूके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा और यदि वे इसके पहले ही न लिख चुके हों तो मुझे कोई जल्दी नहीं है। वे फुरसतके साथ लिख सकते हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत अरुणचन्द्र दत्त
प्रवर्तक संघ
चन्द्रनगर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४३) से।

९३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे तुम्हारा ग्वालियरसे लिखा १० तारीखका पत्र मिला। हरिजन सेवकके अंग्रेजी संस्करणके सिलसिलेमें मैं कल (बुधवारको) श्रीयुत देवधर[1] और वझेसे[2] मिलनेवाला हूँ। तुम्हारा पत्र पानेके बादसे मैंने वझेके साथ पहले ही प्रारम्भिक बातचीत कर ली है। ऐसा लगता है कि यहाँ पत्रके प्रकाशनको लेकर कोई दिक्कत नहीं होगी। लेकिन मैं कोई भी काम उतावलीमें नही करूँगा। इस उपक्रमको सचमुचमें आरम्भ करनेसे पहले मैं तुम्हें पूरी-पूरी जानकारी दूँगा।

यरवडा-समझौतेको लेकर बगालमें यह सब विरोध क्यों चल रहा है? इसके कारणोंकी जाँचके लिए मैं डॉ० विधान[3] को भी लिख रहा हूँ।

आलूबुखारेके गुणके बारेमें तुमने जो लिखा है उसे मैं पढ़ गया हूँ। क्या तुमने भी कभी उनका प्रयोग करके देखा है?

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२०) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला
एस० एन० १८९४४ से भी

१. जी० के० देवधर।
२. एस० जी० वझे, **सर्वेंट ऑफ इंडिया** के सम्पादक।
३. देखिए "पत्र : विधानचन्द्र रायको", १७-१-१९३३।

९४. पत्र : रसिकलाल विश्वासको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मै इसे डॉ० विधानको भेज रहा हूँ और मैं आपको सलाह दूंगा कि यदि आप अभीतक डॉ० विधानसे नहीं मिले है तो अब मिल लें। मैं इस समय आपको जो सलाह देना चाहूँगा, वह यह है कि आप धीरजसे काम लें और अस्पृश्यताके विरुद्ध चलनेवाले संघर्षकी प्रगतिको ध्यानसे देखते रहें। और सुधारकोंको हरसम्भव आवश्यक सहायता देते रहें और उनके कहनेकी प्रतीक्षा किये बिना आप हरिजनोंमें सामाजिक सुधारका ठोस कार्य करें तथा एक विवरण तैयार करें, जिसमें हरिजन लोग जिन सामाजिक तथा अन्य प्रकारकी अक्षमताओंसे पीड़ित हैं उसकी एक ठीक तालिका दें। ऐसा एक विवरण मै अपने लिए भी चाहूँगा और यह भी चाहूँगा कि आप सब हरिजनोंकी तहसीलवार ठीक-ठीक संगणना करें। इससे आपका मार्गदर्शन करनेमें, जहाँतक आपको मेरे मार्गदर्शनकी जरूरत है, मुझे बड़ी सहायता मिलेगी।

हृदयसे आपका,

श्री रसिकलाल विश्वास, बी० ए०, एल० एल० बी०
मंत्री
अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४६) से।

९५. पत्र : विधानचन्द्र रायको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

मैं इसके साथ श्रीयुत रसिकलाल विश्वासका पत्र नत्थी कर रहा हूँ। मैंने उन्हें आपसे मिलनेकी सलाह दी है। कृपया उन्हें मिलनेके लिए अवश्य बुलाना।

यरवडा-समझौतेके विरुद्ध यह क्या अभियान चल रहा है? मैं चाहूँगा कि आप मुझे विरोधी पक्षके अन्दरकी बात बतायें। ब्रिटिश सरकारके निर्णयमें हरिजनोंके लिए जितनी सीटें सुरक्षित रखी गई थीं, यदि यरवडा-समझौतेमें उससे अधिक सीटें सुरक्षित रखी जाती हैं तो सिर्फ इस बातको लेकर समझौता अन्यायपूर्ण कैसे हो

सकता है? क्या वे लोग भी हिन्दू नही है? क्या हम हमेशासे इस बातका शोर नहीं मचाते रहे हैं कि हरिजन लोग जितनी चाहें उतनी सीटे ले सकते हैं, यहाँ तक कि शत-प्रतिशत भी? यदि यह विरोध सार्वजनिक है तो इससे हरिजन विमुख हो जायेंगे और उनके प्रति सवर्ण हिन्दुओंके दृष्टिकोणको लेकर अक्सर जो शंकाएँ व्यक्त की जाती है उनकी पुष्टि होगी। लेकिन आप स्थानीय स्थितिको निश्चय ही मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। यदि मेरी दलीलमें कोई भूल है तो आप उसको सुधारेंगे। मैने कोई सार्वजनिक उत्तर नहीं दिया है क्योंकि मैंने सोचा कि वर्तमान स्थितिको देखते हुए मेरी ओरसे जो भी उत्तर दिया जायेगा उससे हरिजनोंमें क्षोभ बढेगा। बहरहाल, पहले आपसे स्थितिको समझे बिना मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता था। कृपया मार्गदर्शन करे।

मुझे उम्मीद है, कमला और डॉ० आलम निरन्तर प्रगति कर रहे है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० १८९४८) से।

९६. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ओरकी कुछ बातें चिन्ता पैदा करनेवाली हैं। इसलिए आजकल तुम्हारे पत्रकी राह प्राय: रोज ही देखता हूँ। इसका यह अर्थ तो नहीं कि तुम्हें निरन्तर लिखते ही रहना चाहिए। यदि तुम्हारी तरफसे पत्र न मिले तो मुझे मान ही लेना चाहिए कि लिखनेके लिए तुम्हें कोई कारण नहीं था और अब मैं ऐसा ही मानूंगा। मैंने तो अपनी मानसिक स्थिति तुम्हें बताई है।

गिरि-कुटुम्बके सम्बन्धमें कदाचित् निर्दय दिखाई देते हुए भी न्याय करना होगा। उसे बनाये रखनेमें उसका और आश्रमका नुकसान है ऐसा मुझे लगता है। महावीरके व्यवहारके पीछे ये सार हैं, ऐसा हमें समझ ही लेना चाहिए। चिमनलालने कृष्णमैया-देवीका[1] थोड़ा विश्वास सम्पादन किया है। वह जब कृष्णमैयादेवीके साथ बात कर लें तब तुमने जो मंडल वहाँ नियुक्त किया है उसकी बैठकमें इसका फैसला कर लेना। यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है अत: यह उचित ही होगा कि तुम अकेले ही अपने सर यह बोझ न उठा लो। महावीरने जिन लोगोंसे पैसा लिया है, उन्हें यदि तुमने पत्र न लिखे हों तो लिखकर उनसे पुछवा लेना।

१. दलबहादुर गिरिकी विधवा पत्नी।

सीतला सहाय[1] कदाचित् गिरफ्तार हो चुके होंगे। सरोजिनी देवीको[2] पत्र लिखा करना। पद्माका[3] क्या हुआ इसकी जाँच करना। उसके मासिक खर्चका खयाल रखना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / १) से। **बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १६-७ से भी

९७. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

आजकल तो तुम्हें हर रोज पत्र लिखना पड़ता है। आज तुम्हारी साप्ताहिक डाक और साथ ही १५ की डाक भी — दोनों मिल गई। माधवलालके सम्बन्धमें तो मै भूल भी गया हूँ। इस सम्बन्धमें तुमसे पूछने-जैसी बात मुझे नही लगी, फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो माधवलालको पत्र लिखो और कहो कि उसे जो समाधान मुझसे पाना है वह तुम्हीसे प्राप्त कर ले।

चक्की शुरू होनेवाली है — इसका क्या मतलब है? अपनी पत्थरकी सामान्य चक्की? यदि इसका पुनरुद्धार करनेका निश्चय कर लिया है तो मैं माने लेता हूँ कि तुमने इसपर सब दृष्टियोंसे विचार किया ही होगा। मेरे किसी पत्रमे से तो यह अर्थ नहीं लिया है ना! मैं तो अब इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि इस चक्कीको हम अब नहीं चला पायेंगे। और अब तो अच्छी चक्कियाँ भी नही मिल पातीं। और मशीनकी चक्कीपर पिसवाना बहुत सहज और सस्ता हो गया है। यह तो कठिन है कि इसे पूर्णरूपसे छोड़ा जा सके। परन्तु यदि थोड़ा पीसना हो तो हम आश्रममें ही पीस सकते हैं या हाथसे चलनेवाली अमेरिकी चक्कीसे सारी पिसाई कर सकते है। यह चक्की यदि बढ़िया हो तो कभी बिगड़ती ही नहीं और इसके भाग यदि घिस-घिसा जायें तो नये बदले जा सकते है।

साधारण रूपसे मै २ पौंड दूध लेता हूँ। सप्ताहमें एक बार एक पौंड कर देना पड़ता है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / १) से। **बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १७ से भी।

१. उत्तर प्रदेशके एक खादी-कार्यकर्ता।
२. सीतला सहायकी पत्नी।
३. सीतला सहायकी लड़की।

९८. पत्र : रुक्मिणीदेवी बजाजको

१७ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,[1]

तुम्हारे पत्र निरन्तर नीरस होते जा रहे हैं। अन्ततः यदि तुम छोटेलालकी तरह लिखने लगो तो मुझे आश्चर्य न होगा। कभी-कभी उसके पत्र ऐसे आते हैं:
"बापू,

छोटालालके प्रणाम्"

कदाचित् [उसका विचार यह हो कि] मुझे जो भरना हो सो भरकर पढ़ लूँ जिससे कि मुझे पढ़नेकी तकलीफ ही न उठानी पड़े।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४४) से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

९९. पत्र : कालेजके एक विद्यार्थीको

१७ जनवरी, १९३३

मैं मिश्र विवाहका हिमायती हूँ, ऐसा कहना ठीक नहीं है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि मिश्र विवाहका मैं विरोध नहीं करता। इन दो चीजोंमें फर्क है। मैं मिश्र विवाहका हिमायती हूँ अथवा मैं इसका विरोध नहीं करता, ऐसा कहनेमें थोड़ी गलतफहमी हो सकती है क्योंकि मिश्र विवाहके बारेमें मेरा और तुम्हारा दृष्टिकोण भिन्न है। आज सच्चे ब्राह्मण और सच्चे शूद्र बहुत कम देखनेको मिलते हैं। इसलिए जिसे तुम अमिश्र विवाह कहते हो बहुत सम्भव है कि वह मिश्र विवाह हो और लौकिक भाषाको स्वीकार कर मैं जिसे मिश्र विवाह कहूँ वह तात्विक दृष्टिसे देखने पर कदाचित् अमिश्र विवाह हो। उदाहरणके तौरपर यदि एक शूद्र मानी जानेवाली बालिकामें अगर ब्राह्मण कन्याके गुण हों और अगर वह सचमुच ब्राह्मण युवकसे विवाह करती है तो मैं इसे अमिश्र विवाह मानूँगा हालाँकि तुम इसे मिश्र विवाह कहोगे। इसके विपरीत ब्राह्मण लक्षणवाली कन्या यदि शूद्र लक्षणवाले ब्राह्मण युवकसे विवाह करती है तो मेरे विचारसे यह मिश्र विवाह होगा। सम्भव है, तुम भी उसे मिश्र-विवाह मानोगे लेकिन हम दोनोंके कारण भिन्न होंगे।

१. मगनलाल गांधीकी लड़की और बनारसीलाल बजाजकी पत्नी।

इसपर से तुम्हें समझ लेना चाहिए कि मैं किसी रूढ़ सिद्धान्तकी किसी भी प्रकारसे अवमानना नहीं करता। लेकिन साथ ही तुम्हें यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि विज्ञानमें आज जिस बातको सत्यके रूपमें स्वीकार किया गया है कल उसी बातको असत्य सिद्ध करना असम्भव नही होता। अनुमानके आधारपर रचे गये शास्त्रोंमें हमेशा यह मौलिक अपूर्णता अवश्य रहेगी। अतएव हम उन्हें वेद-वाक्य नही कह सकते। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि मै वर्णाश्रम-धर्मको समझता हूँ और मानता हूँ। लेकिन वर्णाश्रमका अर्थ भी हम भिन्न करते जान पड़ते हैं।[१]

इतना सब कहनेके बाद भी मुझे तुम्हे सचेत कर देना चाहिए कि यदि तुम शास्त्रीय पद्धतिसे अस्पृश्यताके प्रश्नपर विचार करना चाहते हो तो रोटी-बेटी व्यवहारका इस प्रश्नके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा मानकर ही तुम्हें व्यवहार करना चाहिए। मैं तो आज हूँ और कल नहीं रहूँगा। लेकिन यह प्रश्न तो मेरे पीछे भी रहेगा। रोटी-बेटी व्यवहारका प्रचार मै आज कतई नहीं कर रहा हूँ। जब यह प्रचार करूँगा तब की बात तब देखी जायेगी। मुझमें तुम्हें कुछ-एक दोष दिखाई देते हैं उनको देखते हुए यदि मैं जो एक शुद्ध कार्य कर रहा हूँ उसकी तुम निन्दा करने लगे तो यह न तो सिद्धान्तकी बात होगी और न नीतिकी ही।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६१

१००. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

१७ जनवरी, १९३३

चि० इन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। गणेशीलाल या और किसीको संघमें लेनेका मैं यहाँसे कभी नहीं कह सकता हूं। उनसे मेरा कोई परिचय नहीं है। हरिजनोंमें ५-६ विभाग है यह दु:खद बात मै जानता हूँ। हमारे कर्मका यह प्रतिघोष है। जो मंदिर खुल गये है और जो कुवें खुल गये हैं उसकी फहरिस्त कहीं प्रगट की गई है?

मोहनदासके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०५) से। सी० डब्ल्यू० ४८६३ से भी; सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

१. बातचीत के लिए देखिए परिशिष्ट ३।

१०१. पत्र : चन्द त्यागीको

१७ जनवरी, १९३३

भाई चन्द त्यागी,

पत्र मिल गया। मैं दिनको करीब सारा दिन आकाशके नीचे ही बैठता हूँ और धूपमें। उगली अच्छी है। दूध खजूर नारंगी, मिलता है तब पपीता, इतना खुराक है। मीरांबहन बंबईकी जेलमें है। स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्मचर्यका पालन शरीर और मनको रोके रखनेसे साध्य है।

छगनभाई जोषी भी आजकल मेरे साथ ही है। हम सब अच्छे है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२६१) से।

१०२. यरवडा सेंट्रल जेलमें हाथ-कताईकी प्रस्तावित शुरुआतके बारेमें एक टिप्पणी[1]

१८ जनवरी, १९३३

धुनी हुई १ पौंड रुईसे १ अंकका ८४० गज सूत निकलता है अर्थात्,
,, ,, ,, ,, ,, १० अंकका ८४०० गज सूत निकलता है।

एक औसतन अच्छा कतैया प्रति घंटे १० अंकका कमसे-कम १५० गज सूत कातता है। इसलिए कामके छः घंटोंमें वह ९०० गज — ४. १४ तोला — सूत कातेगा। इसलिए ऐसे ९ आदमी प्रतिदिन १ पौंड सूत कातेंगे।

१० [अंक] के प्रति पौंड सूतपर ३ आनेकी दरसे, जो कि एक कतैयेका साधारण पारिश्रमिक है, ९ आदमी प्रतिदिन ३ आना, अर्थात् प्रति व्यक्ति १/३ आना कमायेंगे। इस समय इस जेलके १००० सविनय अवज्ञावाले कैदी ऐसे हैं जो इस तुच्छ सम्पदाका अर्द्धांश भी नहीं पैदा कर रहे हैं। दूसरे शब्दोंमें यरवडा सेंट्रल जेलमें कमसे-कम १० रु० प्रतिदिनका नुकसान हो रहा है।

सूत पैदा करनेके लिए प्रतिदिन १२० पौंड रुईका खर्च आवश्यक होगा। सम्भव है इन सभी कतैयोंको चरखा देना जरूरी न हो। अनुमान से मैं नहीं कह सकता कि कितने लोगोंके पास अपने-अपने चरखे होंगे। लेकिन इसका ठीक पता करना होगा।

टिप्पणी — मैंने कमसे-कमका तखमीना दिया है ताकि भूल भी हो तो फायदेमन्द ही हो। यह भी कह दूँ कि तकलीसे भी कताई कर सकना सम्भव है जो कि सबसे

१. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", १६-१-१९३३ भी।

आसान और सबसे सस्ता तरीका है, लेकिन चरखेके मुकाबले उत्पादन एक तिहाई ही होगा। मेरा सुझाव है कि जो लोग कताई करना स्वेच्छासे स्वीकार करें और अपने-अपने चरखेका इन्तजाम करें, उनको लेकर इस कामकी फौरन शुरुआत कर देनी चाहिए।

अब सवाल यह बचता है कि सूतका क्या किया जाये। १० अंकके सूतका इस्तेमाल मोटा कपड़ा बुननेके लिए किया जा सकता है, या तैयार होनेवाले सूतको ज्यों-का-त्यों बिना किसी कठिनाईके बेचा जा सकता है। मैंने इस टिप्पणमें धुनाईका कोई जिक्र नहीं किया है। सामान्य अनुमान यह है कि एक धुनिया दस कतैयोंको धुनी हुई रुई दे सकता है। कताई शुरू होनेसे पहले रुईकी धुनाई करना और पूनियाँ बनानेका काम होगा। पूनियाँ बनानेका काम सबसे आसान है।

यदि और किसी सूचनाकी जरूरत हो तो मैं खुशीसे दूँगा।

मैंने यहाँ केवल व्यापारिक पक्षका ही जिक्र किया है और उन लोगोंका कोई जिक्र नहीं किया है जिनके लिए सूत कातना दैनिक त्यागका एक अंग है। मेरी रायमें ऐसे लोगोंको तुरन्त अनुमति दे दी जानी चाहिए, खासतौरसे यह देखते हुए कि ऐसा कई जेलोमें किया जा रहा है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० १० से

१०३. तार : 'हिन्दू' को

१८ जनवरी, १९३३

सोलह तारीखके डाक संस्करणमे छपी आपके पूना स्थित संवाददाताके साथ मेरी कथित भेंट-वार्ताकी रिपोर्ट[1] मेरी उसके साथ हुई वार्ताका सर्वथा भ्रष्ट विवरण है जबकि मैंने आपके संवाददाताको विशेषरूपसे कह दिया था कि वार्ताको प्रकाशित न किया जाये। मैंने उससे कह दिया था कि मैं उसे प्रकाशनके लिए कुछ नहीं दे सकता। मैंने सभी पत्र-संवाददाताओंसे कह दिया है कि अपनी रिपोर्टका पाठ पहले मुझे दिखाये बिना वे कोई चीज प्रकाशित न करें।[2]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-१-१९३३

१. १६-१-१९३३ को यह **हिन्दू** में प्रकाशित हुई थी; देखिए परिशिष्ट ४।

२. उत्तरमें **हिन्दू** के सम्पादकने क्षमा-याचना करते हुए लिखा : "हम महात्माजी द्वारा किया गया खण्डन खुशीके साथ छाप रहे है और हमें गहरा दुःख है कि उनके साथ हुई वार्ताकी एक अनधिकृत और गलत रिपोर्ट छप गई है।"

१०४. तार : एस० सालिवतीको

१८ जनवरी, १९३३

भेंटके बारेमें तुम्हारी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें तथ्योंको बेहूदे ढंगसे तोड़-मरोड़कर पेश किया गया है। इसे प्रकाशित करनेमें तुमने विश्वासघात किया है। बहुत दु:ख हुआ। लेकिन इससे जो नुकसान होना था वह थोड़ा-बहुत तो हो ही गया है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६८-९

१०५. पत्र : आर० पी० अग्निहोत्रीको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका वह पत्र मिला है जिसके साथ जबलपुरकी नगरपालिकाको लिखे आपके पत्रकी एक प्रति भी संलग्न है। हरिजनोंकी हालत बिना जाने मेरे लिये यहाँसे यह कहना असम्भव है कि उसमें जो सुझाव दिये गये हैं वे उचित और उपयोगी हैं अथवा नहीं। कार्यकर्त्ताओंको सामान्यत. इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हरिजनोंको सलाह देते हुए वे उनमें ऐसी उम्मीदे तो नहीं जगा रहे जो गलत और असम्भव हैं। अस्पृश्यता-निवारणके कार्यकर्त्ताओंसे इस बातकी अपेक्षा की जाती है कि वे अर्जियाँ देने-दिलवानेको प्रोत्साहन देनेकी अपेक्षा स्वयं कुछ ठोस कार्य करें। सर्व प्रथम तो स्थानीय संस्थाओंको चाहिए कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन करें और जब स्पष्टत: वे ऐसा करनेमें असफल होती हैं तब सार्वजनिक आन्दोलन करना निश्चितरूपसे अनिवार्य हो जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० पी० अग्निहोत्री
मंत्री, अस्पृश्यता निवारण लीग
जबलपुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६२) से।

१०६. पत्र : सी० नारायण मेननको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मलाबारके सार्वजनिक मन्दिर उन हिन्दुओंकी सम्पत्ति नहीं है, जिन्हें मन्दिरमें पूजा करनेका अधिकार प्राप्त है? क्या आप इस बातसे इन्कार करेंगे कि जब पहले-पहल मन्दिर बनाया गया उस समय भी वह हिन्दुओंकी सम्पत्ति न था हालाँकि उसके निर्माणमें हिन्दुओंने चन्दा दिया था? और यदि ऐसी बात है तो न्यासी केवल न्यासी नहीं हैं बल्कि मन्दिरके पूरी तरहसे स्वामी हैं। ऐसे हजारों मन्दिर हैं जो लोगोंकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। किसी मन्दिरको सार्वजनिक मन्दिर केवल इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह जनताकी सम्पत्ति होता है। तात्पर्य यह कि मन्दिर जनताके उन सदस्योंकी सम्पत्ति होता है जिनके कहने पर और जिनके पैसेसे तथा जिनकी ओरसे मन्दिर बनवाया गया हो। क्या आप यह समझते हैं कि मन्दिरमें यह जो असंख्य लोग प्रतिदिन दान देते हैं उनका उस मन्दिरपर कोई भी अधिकार नहीं है? बेशक आप यह कह सकते हैं कि अधिकार होनेका मतलब यह नहीं है कि उन्हें उन लोगोंके स्वरूप अथवा किस्मको सुधारनेका अधिकार भी प्राप्त है जो वहाँ पूजा कर सकते हैं। यदि आप ऐसा कहते हैं तो इसका मतलब तो यह होगा कि आप उनके अधिकारकी बातको स्वीकार करते हैं। क्योंकि सुधारकोंका यह मत है कि तथाकथित हरिजन केवल नाममात्रके हैं और यह कि हिन्दू परिवारके अन्य सदस्योंको जो अधिकार प्राप्त हैं उनसे उन्हें कभी वंचित नहीं किया जाना चाहिए था बशर्ते कि वे स्वच्छता तथा ऐसी ही अन्य बातोंके नियमोंका पूरी तरहसे पालन करते हों।

इस समय हमारे सामने जो प्रश्न है उसका मन्दिरोंकी पवित्रतासे कोई सम्बन्ध नहीं है। आप निश्चय ही यह नहीं कहना चाहेंगे कि यदि मन्दिरमें देवदासियाँ और कपटी ब्राह्मण हैं तो वह मन्दिर हरिजनोंके लिए भी खुला रहना चाहिए और यदि उन मन्दिरोंमें ब्राह्मण अपने कपट व्यवहारका त्याग कर देते हैं और लड़कियाँ नृत्य करना छोड़ देती हैं तो उन मन्दिरोंमें हरिजनोंको प्रवेशकी मनाही है।

यदि मालवीयजी अपना थोड़ा समय आपको दे सकें तो आप अवश्य ही उनसे मिलें और डॉक्टर भगवानदाससे भी मिलें। डॉ० भगवानदासके पास निश्चय ही मालवीयजी से ज्यादा समय है।

मेरे उपवासको लेकर आपके चिन्तित हो उठनेकी कोई बात नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण मेनन, एम० ए०, पी-एच० डी०
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६३) से।

१०७. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

साथमें एक पत्र भेज रहा हूँ। इसे पढ़कर जो करना हो कीजिए। मैंने पत्र-लेखकको बस इतना लिख दिया है कि वह आपसे मिल ले। क्या इस अभियोगमें कोई सचाई है कि सभी हरिजन उम्मीदवार म्युनिसिपैलिटीके चुनावमें हार गये?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६४) से।

१०८. पत्र : जी० बी० निरन्तरको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिला। आप और आपके शिष्य, कुल १५, इसी २३ तारीख-को तीसरे पहर २ बजे आ सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० बी० निरन्तर
शिक्षक
सेवासदन हाईस्कूल
पूना सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६५) से।

१०९. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय अमतुस्सलाम,

मुझे तुम्हें जल्दी चिट्ठी लिख देनी है। इसीसे यह पत्र अंग्रेजीमें लिख रहा हूँ। क्या उपचार किया जाये, इस बारेमे मैं चाहूँगा कि तुम तुरन्त ही किसी निश्चय पर पहुँच जाओ। मेरी सलाह यह है कि यदि तुम्हें वहाँ कोई ऐसा डॉक्टर मिल जाये जो पूरी दिलचस्पीके साथ तुम्हारा उपचार करे तो उसके निर्देशोंका पालन कर तुम्हें उसे पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए। मतलब यह कि वीणा बहन तुम्हें जो सलाह दें तुम्हें उसे मानना चाहिए। किसी निश्चयपर पहुँचनेमें ज्यादा समय ज़ाया नही करना चाहिए। तुम्हें अस्पतालमें भर्ती हो जाना चाहिए और जो दवा तथा इंजेक्शन तुम्हें दिये जायें वे लेने चाहिए और जो ऑपरेशन आवश्यक हो सो करवाना चाहिए। जबतक डॉक्टर न कहे तबतक गर्भाशयको निकलवानेका विचार न करना। डॉ० शर्माको जो पत्र लिखा गया है, उसकी चिन्ता न करो। तुम खुद ही तो कहती हो कि वह बवासीरका इलाज नही कर सकता। जब तुम ठीक हो जाओगी तब तुम आकर मुझसे मिलोगी।

स्नेह। भगवान तुम्हें स्वस्थ रखें।[1]

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७२) से।

११०. पत्र : नी० को

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय नी०[2]

मुझे तुम्हारे दो दिलचस्प और जानकारीसे भरे पत्र मिले। तुम जो कर रही हो वह बहुत बड़ा काम है और तुम्हारे आह्वानपर जो नवयुवक आगे आये हैं, वे यदि दृढ़ रहें और उनके जोशका पहला उबाल ठंडा न पड़ गया तो सड़क साफ

१. यह वाक्य उर्दूमें है।

२. एक अमेरिकन महिला जो बादमें कुछ समयतक साबरमती आश्रममें रही थी; यहाँ और अगले पत्रोंमें इनका नाम नहीं दिया जा रहा है।

करनेका जो काम तुम कर रही हो, वह संक्रामक साबित होगा और अस्पृश्यता-निवारणकी दिशामें यह बहुत बड़ी प्रगति होगी। अतः मुझे आश्चर्य है कि कोई व्यक्ति स्वयं इस कार्यके ऊपर वितण्डा करे या इस बातका बुरा माने कि तुम, जो अंगीकार करनेके कारण और प्रेमके अधिकारसे भारतीय बन गई हो, इस कार्यका नेतृत्व करो, और अगर कोई व्यक्ति ऐसा सोचता हो कि यदि मैं बाहर होता तो ऐसे कामकी सलाह न देता तो वह बिलकुल गलतफहमीमें है। मैं व्यक्तिगतरूपसे इस कामको खुद कर चुका हूँ, सार्वजनिकरूपसे और निजी तौरपर और पिछली १८ तारीखको सारे भारतभरमें हरिजनोंके घरोंकी सफाई मेरे सुझावपर हार्दिकरूपसे हरिजन सेवक संघ द्वारा की गई थी। तुम्हें इस पत्रका सार्वजनिक उपयोग करनेकी पूरी छूट है।

मैं तुम्हारे पिछले पत्रकी भाषासे समझ गया था कि जितने दिन मैंने उपवास किया था उतने दिन तुमने भी उपवास किया था। इसलिए जो सुधार तुमने किया है उसकी मुझे खुशी है।

जैसाकि तुम जानती हो, मैं भोजन-सम्बन्धी वैज्ञानिक या (जो कि एक ही चीज है।) स्वच्छता या आध्यात्मिक आहारमें दिलचस्पी रखता हूँ। मुझे बताओ कि तुम वास्तवमें क्या-क्या चीजें लेती हो, कितनी मात्रामें लेती हो, और कितने दिनोंसे यही आहार लेती रही हो। चूँकि ऐसा लगता है कि मैंने कभी भी जो चीज लिखी है उसे तुमने पढ़ा है, इसलिए शायद तुम जानती होगी कि मैं फलों और गिरीफलोंपर चलता रहा हूँ, कि मैं बिना दूधके नौ वर्षोंतक चला हूँ, और मेरे लिए यह सबसे निराशाजनक चीज रही है कि मुझे बकरीतक का दूध लेना पड़ा है। तुम केवल फल और सब्जियोंपर जैसा कठोर श्रम कर रही प्रतीत होती हो, जिसके अर्थ हैं कि तुम कोई प्रोटीन, कोई स्टार्च और कोई चर्बी नहीं ले रही हो, वैसा कठोर शारीरिक और मानसिक श्रम करनेवाले किसी व्यक्तिको मैं नहीं जानता। मेरे सामने जो दो पत्र हैं उनसे तुम्हें प्रत्यक्ष देखनेकी और तुम्हें जितना समझता हूँ उससे ज्यादा समझनेकी मेरी इच्छा और ज्यादा तीव्र होती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं बहुत बेवकूफ हूँ और केवल पत्रोंसे लोगोंको नहीं समझ सकता। उन्हें समझनेके लिए उन्हें देखना और उनसे बात करना मेरे लिए जरूरी है, और तुमने अपने बारेमें इतना ज्यादा लिखा है कि हो सके तो मैं तुम्हें जरूर जानना चाहूँगा। लेकिन साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि जो बड़ा काम तुम वहाँ कर रही हो उसकी कीमत पर तुम यहाँ आओ। तुम्हें यहाँ तभी आना चाहिए जब तुम्हें अपने कामसे कुछ दिनोंके लिए फुर्सत मिल सके।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १८९६६) से।

१११. पत्र : ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी १२ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। बंगाल-प्रान्तमें व्याप्त जिन दशाओं और तथ्योको देखने हुए यरवडा-समझौतेपर पुर्नविचार करनेकी जरूरत है उनकी सूचना आप मुझे देंगे तो आभारी होऊँगा।[1]

हृदयसे आपका,

संयुक्त अवैतनिक सचिव
ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन
१८ ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६७) से।

११२. पत्र : फूलचन्द शाहको

१८ जनवरी, १९३३

तुम्हारे यहाँ तो कताईका काम[2] चल रहा है और यहाँपर तो शास्त्रियोंके साथ हमारा सम्वाद चल रहा है। कोई-कोई तो चिढ़ जाते है। शास्त्रियोंकी ओरसे मुझपर गालियोंकी बौछार हो रही है। आजतक मुझे अपने जिन दुर्गुणोंकी जानकारी भी न थी वे अब प्रकट हो रहे हैं। मेरे वाक्योंके ऐसे-ऐसे अर्थ निकाले जा रहे हैं जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की है। और ऐसे साधनोंसे 'सनातनधर्म'की विजयका डंका बजाया जा रहा है। इनकी बुनियादमें सच्चा बल नही है इसी विश्वासके कारण हम हँसते है। पर यदि इसमें सच्चा बल हो, लोकमत यदि सचमुच ऐसा हो तो यह प्रसंग हँसनेका नहीं, रोनेका माना जायेगा; रोना ही आयेगा। तथाकथित सनातनियोंका यह आन्दोलन इस बातका परिचायक है कि अस्पृश्यताकी नीव हिल उठी है और उसका मकान थोड़े ही समयमें धराशायी हो जायेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६९

१. देखिए "पत्र : रामानन्द चटर्जीको", २०-१-१९३३ भी।

२. बीसापुर-जेलमें।

११३. पत्र : वामनबुवा ब्रह्मचारीको

१८ जनवरी, १९३३

श्री ब्रह्मचारीजी,

आपका पत्र मिला। मैं आपको २५ तारीखको दो बजे मिल सकुंगा, और आपके लिये एक घंटा रखुंगा। और किसीको यह समय नहीं दूंगा। तदपि आपके प्रश्नोंका उत्तर मेरी प्रतिज्ञाके अनुसार देना धर्म समजता हूं।

(१)[1] जो कुछ आपने पहले प्रश्नमें लिखा है वह मैं सबका सब मानता हूँ। तो भी अर्थभेद अवश्य है। यह पत्रसे समझाना करीब-करीब असंभवित है। मनुष्य मात्रके अधेके से हैं परंतु जो सत्यके पूजारी हैं वे सबके सब अंशतः सच्चे हैं। जैसे सात अंधे हाथीके भिन्न-भिन्न अवयवोंके स्पर्श करनेसे हाथीका भिन्न-भिन्न वर्णन देते हुए अंशतः सच्चे थे।

(२) जिस तरह आज अस्पृश्यता मानी जाती है इस तरह शास्त्रमें हरगीज नहीं है। ऐसा बहुतसे शास्त्रिओंसे सुनने पर मुझको प्रतीत होता है।

(३) गीतामें सब कुछ मिल जाता है। देशकाल स्थितिके परिवर्त्तनसे सिद्धान्तानुकूल आचार बदल सकते हैं, सिद्धान्त कभी नही।

(४) यहतक बात है कि धर्म पालन नहीं करनेसे हमारी अवनति हुई है और होती जाती है।

(५) बात आप कहते हैं ऐसी नहीं है।[2]

(६) मैं अपनेको किसी तरह किसीसे ज्यादह पंडित और अक्लमंद नहीं समजता।

(७) आप मानते हैं ऐसी प्रतिज्ञा[3] मैंने कभी कहीं नहीं की है।

(८) शौचादिके नियमोंको मैं अच्छा नहि मानता हूं।

(९) जिस वस्तुका झुकाव जिस ओर होता है उस ओर वह जा रही है ऐसे कहना सर्वथा योग्य माना गया है।

(१०) रोटी बेटी व्यवहारके अस्पृश्यताके साथ कोई संबंध नहीं है। वह भिन्न वस्तु है और इस बारेमें मैंने जो कहा है उस वचना। चंद लोक (अमित्र) भावसे अनर्थ कर लेते हैं।

१. ब्रह्मचारीने गांधीजी से पूछा था: "क्या आपका वेदोंमें विश्वास है? क्या आप उनकी परम्परागत व्याख्याको मानते है या आपकी कोई अपनी मौलिक व्याख्या है?

२. ब्रह्मचारीने सुझाव दिया था कि सरकार गांधीजी को जेलमें भी अस्पृश्यता-निवारणके लिए कार्य करनेकी आज्ञा देकर देशमें आन्तरिक फूट उत्पन्न कर रही है।

३. एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्ति या छः महीनेमें अस्पृश्यताका निवारण।

(११) मेरे स्वप्नमे भी नया धर्म स्थापन करनेका ख्याल कभी नहीं आया।

(१२) यह बिलकुल ठीक है कि जिस राजकारणसे धर्मका रक्षण न हो सके वह सर्वथा त्याज्य है।

(१३) उपवासको न मैं छोड़ सकता हूं न मैं ग्रहण कर सकता हूं।

(१४) आप कहते हैं वह ठीक सा है।[1]

(१५) जिस वस्तुके लिए मैंने 'रेफरेंडम' की कल्पना की है। वह योग्य है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

(१६) मेरे साथ जो कोई भी चर्चा करना चाहते हैं — छोटे या बड़े — उनसे मैं सविनय चर्चा कर लेता हूं। अधिक क्या किया जाय?

आपका,
मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९५६) से।

११४. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१८ जनवरी, १९३३

जब गांधीजी का ध्यान एसोसिएटेड प्रेसके एक प्रतिनिधि और उनके बीच हुई भेंटकी मद्रासके एक अखबारमें प्रकाशित रिपोर्टकी[2] ओर दिलाया गया तब गांधीजी ने कहा:

मैंने इस प्रस्तावके बारेमें कोई राय व्यक्त न करनेका निश्चय कर लिया था कि मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें जनमत का अनुमान लगानेके लिए एक समितिकी नियुक्ति की जानी चाहिए क्योकि मैंने इस प्रस्तावको कोई महत्त्व नहीं दिया था। लेकिन अब चूंकि जिक्र किया गया है तो मैं बेहिचक कह सकता हूँ कि ऐसी किसी समितिकी नियुक्ति करना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण चीज होगी। मै नहीं मानता कि सरकार ऐसे किसी प्रस्तावका कभी समर्थन कर सकती है।

रिपोर्टमें कहा गया था कि श्री गांधीका कहना है कि उन्होंने उक्त प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करनेका निश्चय किया है, और यदि वाइसरायने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी अनुमति नहीं दी तो वह अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उनके इस फैसलेका विरोध करेंगे। श्री गांधीने कहा कि यह रिपोर्ट एक ऐसी भेंट-वार्ताका भ्रष्ट प्रचार है जो कभी प्रकाशनार्थ नहीं थी। उन्होंने कहा कि मैंने संवाददातासे यह कभी नहीं कहा था कि मैंने समितिके बारेमें अपने विचार प्रकट करनेका निर्णय किया था। इसके विपरीत, मैंने ऐसा न करनेका निश्चय किया था।

१. ब्रह्मचारीने पश्चिमी औद्योगिक सभ्यताके अमानवीय प्रभावोंका उल्लेख किया था।
२. देखिए परिशिष्ट ४। गांधीजी के खंडनके लिए देखिए "तार: 'हिन्दू' को", १८-१-१९३३।

यह स्पष्ट करते हुए कि एक समितिकी नियुक्ति करना क्यों अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण होगा, श्री गांधीने कहा कि डॉ० सुब्बारायनका विधेयक सर्वथा निर्दोष है। वह न केवल धर्मके मामलोंमें दखलंदाजी नहीं करता था, बल्कि वह सम्बन्धित लोगोंकी धार्मिक भावनाओंका जायजा लेता था। किसी कानूनको स्वीकृत करनेका सवाल ही नहीं पैदा होता था। वाइसरायसे केवल यही अनुरोध किया गया था कि वह विधेयकको पेश करनेकी औपचारिक अनुमति दे दें। यह विधेयक मद्रास परिषदकी एकमतसे व्यक्त की गई इच्छाका परिणाम था।

श्री गांधीने भेंटके दूसरे भागके बारेमें आश्चर्य प्रकट किया जो कि उनके नाम पर प्रकाशित की गई थी। उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा कहनेका कोई स्मरण नहीं है कि यदि वाइसराय महोदयने अनुमति देना अस्वीकार कर दिया तो मैं प्राणोंकी बाजी लगाकर उसका विरोध करूँगा। मेरे सामने ऐसी कोई निश्चित योजना नहीं थी, और यदि थी भी तो मैं सार्वजनिकरूपसे कोई कच्ची योजना प्रस्तुत करनेका आदी नहीं हूँ, खासतौरसे ऐसे किसी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सवालको बिना सम्बन्धित अधिकारियोंकी सूचनामें लाये हुए। वास्तविक बात यह है कि मैं स्वयं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यदि स्वीकृति न दी गई तो वैसी स्थितिमें मैं क्या करूँगा।

धार्मिक स्वतन्त्रताके विकासके लिए यह विधेयक अपरिहार्य है, और इसे पेश करनेकी अनुमति न देना सुधारकी प्रगतिमें हस्तक्षेप करनेके समान होगा, जो कि मेरे लिए बहुत भयानक परीक्षाकी स्थिति होगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-१-१९३३

११५. पत्र : मीराबहनको

१९ जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

यह पत्र मैं बृहस्पतिवारकी सवेरेकी प्रार्थनाके तुरन्त बाद लिख रहा हूँ। वल्लभभाई और मैं शहदके लिए गरम पानीकी प्रतीक्षामें हैं।

तुम्हारा पत्र मेरे सामने है। बेशक, मैंने पिछले हफ्ते भी हमेशाकी तरह बृहस्पतिवारकी सवेरेकी प्रार्थनाके बाद तुम्हें पत्र लिखा था। यदि यह पत्र वहाँके जेल अधीक्षकने किसी कारणसे रोक लिया था तो उन्होंने कमसे-कम तुम्हें इसके बारेमें बता दिया होता जिससे तुम अनेक प्रकारकी दुश्चिन्ताओंसे बच जाती। मैंने यह मामला मेजर भंडारीके आगे रखा है और उन्होंने मुझसे इसकी जाँच करवानेका वादा किया है। पत्र यहाँसे यथासमय डाकमें डाल दिया गया था। लेकिन यदि वह पत्र सचमुच रोक लिया गया हो तो उसका कारण यही हो सकता है कि मैंने,

जहाँतक मुझे याद पड़ता है, पहली बार ही इस पत्रके साथ मेडलिन रोलाँ और एन्ड्रयूजके पत्र — जिनमे तुम्हारी कुशलक्षेम पूछी गई है — तथा मेडलिन रोलाँको भेजे अपने एक पत्रकी प्रति भेजी है। साथमें मैंने एक बहुत ही सुन्दर चित्र-कार्ड भी भेजा है जिसमें कुमारी मेरी और भगवान ईसा हैं। यदि पत्र इस कारणसे रोक लिया गया हो तो इससे मुझे हैरानी होगी और इस बातसे तो और भी ज्यादा हैरानी होगी कि सिर्फ पत्रको ही क्यों रोका गया? इसलिए मेरा खयाल है कि यह पत्र रास्तेमें ही इधर-उधर हो गया होगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ मामलेकी तहकीकात कर रहा हूँ, तुम चाहो तो वहाँ कर लो। और मेरे लिए तो यह चित्र-कार्ड अनमोल ही था क्योंकि उसके पीछे एरिस्टार्शीका अभिलेख दिया हुआ था।

इससे यह सबक लो कि यदि फिर ऐसी कोई बात हो तो तुम्हें निश्चिन्त रहना चाहिए कि भले ही तुम्हारा साप्ताहिक सन्देश मुझे न मिला हो लेकिन मैंने तुम्हें हमेशाकी तरह पत्र लिखा है और वह किन्हीं ऐसे कारणोंसे इधर-उधर हो गया है जो मेरे वशसे बाहर है। यदि मैं बीमार पड़ जाता हूँ अथवा नहीं लिख पाता अथवा किसी अन्य कारणसे लिखनेमें असमर्थ रहा तो तुम्हें यथावत सूचना दे दी जायेगी कि उस सप्ताह तुम्हें कोई चिट्ठी नहीं भेजी गई। अन्य शब्दोंमें कहूँ तो व्यर्थके कारणोंमें मत जाओ और धीरज धरकर इस बातका पता लगाओ कि वह आनेवाला है अथवा नहीं। किसी भी सूरतमें बुरी कल्पनाओंको मनमे न लाओ। चूंकि भगवान दयाके सागर हैं, इसलिए यदि हमारे मनमे कोई विचार आयें ही तो वे अच्छे विचार ही हों, बुरे नही। बेशक, 'गीता'का उपासक तो कभी किसी चीजकी कल्पना नहीं करता। अच्छा और बुरा तो आखिर सापेक्ष शब्द है। वह तो, उसके आसपास जो घटित होता है उसे तटस्थ भावसे देखता रहता है और उसकी उसके मनपर स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है और इस तरह वह उस महान यन्त्र-चालकके निर्देशपर अपनी अपेक्षित भूमिका अदा करता रहता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक अच्छी मशीनका कलपुर्जा मशीन-चालकके इशारेपर सहजरूपसे अपना कार्य करता है। किसी बुद्धिमान व्यक्तिके लिए यन्त्रवत् बनना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। और फिर भी, यदि किसीको शून्यवत् होना ही है तो पूर्णताकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको ठीक ऐसा ही करना होगा। लेकिन व्यक्ति और मशीनोंमें एक महत्त्वपूर्ण भेद यह है कि मशीन एक जड़ पदार्थ है जबकि मनुष्य तो समग्र रूपसे प्राणवान है और उसे जान-बूझकर उस महान यन्त्रचालकके हाथोंमें यन्त्रवत् बन जाना पड़ता है। भगवान कृष्णने इतने स्पष्ट शब्दोंमें 'गीता'में कहा है कि यन्त्रके पुर्जोकी तरह भगवान ही समस्त प्राणियोंका सचालन कर रहे हैं।[1]

जानती हो, यह पत्र मैंने दायें हाथसे लिखा है। यद्यपि बायाँ हाथ बहुत कम लिखता है तथापि मुझे लगता है, उसे भी आरामकी जरूरत है। बहुत सम्भव है कि कुहनीके दर्दका कारण लिखने अथवा चरखा कातने अथवा दोनोंसे ही होनेवाली थकावट भी हो। अलोना भोजन करनेसे इसपर कोई असर नहीं हुआ है और यदि

१. गीता, १८-६१।

इसका कारण शरीरके किसी अंगकी खराबी नहीं है तो असर हो भी क्योंकर? तुमपर तो उसका असर चट ही हो जाता है क्योंकि तुम्हारे साथ जो कारण हैं वह आर्गेनिक है। मुझे गठिया नहीं है। यदि होती तो मुझे मालूम हुए बिना न रहता। खैर कुछ भी हो, मेरा अलोना भोजन अभी जारी है। और कल मैंने वजन लिया था; मेरा वजन एक पौंड बढ़ गया है और १०४ पौंड है।

यदि तुमसे बन सके तो तुम्हें इस बातका पता लगाना चाहिए कि तुम्हें चक्कर क्यों आते हैं। इसके सम्बन्धमें क्या तुमने वहाँके चिकित्सा-अधिकारीसे बात की है? सैरके खत्म होनेपर तुम्हें चक्कर नहीं आने चाहिए बल्कि तुम्हें तरोताजा महसूस करना चाहिए। सैरको जानेसे पहले मुँहपर और सिरपर भी ठंडे जलके छींटे मारना अच्छी चीज है और सैर करते समय यदि तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हें चक्कर आनेवाले हैं तो तुम्हें सैर करते हुए धीरे-धीरे शीतल जल पीना चाहिए। और यदि तुम पल-भर रुककर गहरी साँस लो तो उससे भी चक्कर नहीं आयेंगे। यह सब मै अपने निजी अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ।

तुमने अपने अध्ययनके बारेमें जो लिखा है सो मैंने जाना। 'महाभारत' पढ़नेका कार्यक्रम अच्छा है। जब तुम 'महाभारत' का पूरा हिन्दी-संस्करण एक-एक शब्दके अर्थको समझकर पढ़ जाओगी तब तुम निश्चय हिन्दीकी एक अच्छी पंडिता बन जाओगी। यह तुम्हारे लिए बहुत हिम्मतका काम है। लेकिन मैं जानता हूँ कि प्रेमको कोई चीज पराजित नहीं कर सकती।

इस पत्रकी पहुँच देनेके लिए यदि तुम्हें पोस्टकार्ड लिखनेकी इजाजत है और यदि वह इस पत्रके मिलते ही डाकमें डाल दिया जाये तो तुम मुझे पोस्टकार्ड लिखना।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२५९) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७२५ से भी

११६. पत्र : कालीशंकर चक्रवर्तीको

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपके छपे हुए पत्रको बहुत सावधानीके साथ पढ़ गया हूँ। आप निश्चय ही मुझसे ऐसी अपेक्षा नहीं रखते कि मै तर्क द्वारा अपने पक्षके औचित्यको सिद्ध करनेकी चेष्टा करूँगा। अपने पक्षमें मैंने जो तर्क दिये हैं वे आपको मेरे लेखोंमें मिल जायेंगे। इसलिए मै आपसे केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मै भगवानके बताये हुए मार्गका अनुसरण करनेका प्रयास करता रहा हूँ और मैंने जब भी जो-कुछ भी लिखा है, उसमें मेरी आस्था रही है और मैं उसके हर शब्दसे प्रतिबद्ध हूँ। मेरे लेखोंमें

जहाँ आपको विरोध दिखाई देता है वहाँ मेरी दृष्टिसे और कुछ नहीं केवल अपनी पूर्व स्थितिकी आवश्यक परिपूर्ति या विस्तार-भर होता है। लेकिन मुझे अपने लेखोंमें संगतिके न होनेकी इतनी चिन्ता नहीं होती जितना यह दर्शानेकी कि मैंने लेख लिखते समय सत्यको जिस रूपमें जाना उसी रूपमें उसे पाठकोके आगे रखा है। तथापि, मैं आपकी इस बातसे पूर्णतया सहमत हूँ कि जिस बातको मैंने सत्य समझकर कहा था, वह अन्ततः एक बहुत बड़ी भूल सिद्ध हुई। लेकिन मैं इस विचारसे सन्तोष का अनुभव करता हूँ (आप कह सकते हैं कि बहुत कम) कि ऐसी भूलें मानवमात्रसे हो सकती है, इसके अपवाद नही मिलते। लेकिन आप सम्भवतः मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि जबतक मुझे स्वय ही अपने तरीकोंमें कोई भूल दिखाई नहीं देती तबतक यदि मै अपनी धारणाके अनुरूप कार्य नहीं करता हूँ तो मैं जिस सत्यकी आराधना करता हूँ उसके प्रति विश्वासघात करूँगा और कायर ठहरूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कालीशंकर चक्रवर्ती
ज्योति
चटगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७१) से।

११७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका १४ तारीखका पत्र मिला। अंग्रेजी संस्करण[1] के बारेमें मेरी कल श्रीयुत देवधर और वझेसे काफी लम्बी बातचीत हुई और उसके फलस्वरूप मैंने अमृतलाल ठक्करको एक तार भेजा है कि वे यदि शास्त्री[2] को निवृत्त कर सकते हैं तो उन्हें तुरन्त भेज दें। वझेने मुझसे कहा है कि सम्पादकीय कार्यके लिए शास्त्री योग्यतम व्यक्ति है। वे स्वयं भी इस कार्यमें उनकी सहायता करेंगे लेकिन वे अपना सारा समय इसमें नही लगा सकते। मैं उनकी दिक्कतको अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन उन दोनोंने मुझे बताया कि हालाँकि शास्त्रीने उम्मीदवारके रूपमें सोसाइटीमें प्रवेश पानेके लिए आवेदन-पत्र दिया है फिर भी उनके सम्पादन कार्यको संभालने पर सोसाइटीको कोई आपत्ति नहीं होगी। बेशक, जबतक महादेव और मेरे पास समय है तबतक 'हरिजन' के स्तम्भ हम लोगोंके लेखोंसे भरे होंगे और शास्त्री केवल निर्देशोंका पालन करेंगे और समय आनेपर खुद भी मौलिक लेख लिख सकेंगे।

१. **हरिजन** का।
२. आर० वी० शास्त्री।

मालूम नहीं हिन्दी-संस्करण कब प्रकाशित होगा।[1]

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२१) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला। एस० एन० १८९७० से भी

११८. पत्र : अमूल्यधन रे को

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके समान मैंने भी यरवडा-समझौतेके परिशोधनको लेकर बंगालमें जो आन्दोलन चल रहा है उसके बारेमें पढ़ा है। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि मुझे ऐसा कोई कारण नहीं मिला है जिससे मैं अपने दृष्टिकोण पर पुर्नविचार करूँ। आप चिन्ता न करें, क्योंकि मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि सम्बन्धित सारे पक्षोंकी सहमतिके बिना समझौतेका परिशोधन नहीं किया जा सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यधन रे, एम० एल० सी०
जैसोर शहर
बंगाल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७२) से।

११९. पत्र : नरसिंहनको[2]

१९ जनवरी, १९३३

हाँ, यह जरूरी है कि तुम मुझे लिखो, हालाँकि पी० और एल०[3] मुझे लिखती रहती हैं। मुझे तुम जो-कुछ बता सकते हो वह वे नही बता सकतीं बशर्ते कि तुम लिखो। मनसे लिखे गये पत्रका अपना अलग व्यक्तित्व होता है। तुम चाहे जानते हो, और अगर नहीं, तो तुम्हें जानना चाहिए कि पत्र-लेखन एक कला है। सहज और संयत ढंगसे लिखनेवाले को यह कला आ जाती है। तुम्हें यह कला सीखनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से; सौजन्य : नारायण देसाई

१. **हरिजन सेवक** का प्रथम अंक २३ फरवरी, १९३३ को निकला था।
२. च० राजगोपालाचारीके पुत्र।
३. पापा और लक्ष्मी, च० राजगोपालाचारीकी पुत्रियाँ।

१२०. पत्र : कीकाभाई वाघेलाको

१९ जनवरी, १९३३

भाई कीकाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम अधीर मत होना। मुझसे जितना हो सकेगा उतना मैं करूँगा। यह बात सच नहीं है कि अन्य लोगोंको धोखा देनेके विचारसे मैंने हरिजन शब्दका प्रयोग किया है। ढेढ आदि शब्द ठीक न होनेके कारण एक-दो अन्त्यज भाइयोंके कहनेसे मैंने यह नाम स्वीकार किया है। इतना निश्चित मानना कि इस कलंकको दूर करनेके लिए मैं प्राणोत्सर्ग करनेको भी तैयार हूँ। आज भले ही लोग हरिजनोंका तिरस्कार करें लेकिन कल वे अवश्य समाजमें आदर पायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७) से।

१२१. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ जनवरी, १९३३

भाई ठक्कर बापा,

इस पत्रके साथ मैं जो कतरन भेज रहा हूँ उसे ध्यानपूर्वक पढ़ जाना और उसके बाद जो लिखना उचित लगे सो लिखना। हमसे कहीं भी भूल हुई हो तो हम उसे स्वीकार करेंगे। उपवासका दबाव पड़ा हो लेकिन उससे न्याय मिला हो तो हमें उसपर विचार करनेकी कोई जरूरत नहीं। हाँ यदि अन्याय हुआ हो तो अवश्य विचारणीय है। मुझपर लेखका कोई असर नहीं होता। यह कोरी धाँधलेबाजी है अथवा इसके पीछे कुछ सार है? और धाँधलेबाजी ही है तो किसलिए?

बापू

[पुनश्च:]

शास्त्रीके सम्बन्धमें मुझे अभी-अभी तुम्हारा तार मिला है। मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। कलका तार मैंने देवधर और वझेकी उपस्थितिमें ही भेजा था। वझेने इस शर्तके साथ स्वयंसेवक दिये थे कि वे प्रत्यक्ष रूपसे भाग नहीं लेंगे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०४) से।

१२२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ जनवरी, १९३३

भाई ठक्कर बापा,

मैने तुम्हें एक पत्र लिखा था। इस बीच मुझे तुम्हारा १६ तारीखका पत्र मिला। इसलिए यह दूसरा पत्र भी लिख रहा हूँ।

अहमदाबादके बारेमें तुम्हें लिख चुका हूँ। हमारे पत्र गड़बड़ा गये।

गोखलेकी संवत्सरीके सम्बन्धमें करसनदासने मुझे लिखा था। गोखलेके नामको इस प्रकार सस्ता बनानेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं होती। १९ तारीख[1] गोखलेके नामके अनुरूप मनाई जाये इसके लिए देश अभी तैयार नहीं है। उनकी पवित्रताका और उनकी सेवाओंका मूल्यांकन इतिहास करेगा। हमारे जीवनमें कदाचित यह बात न हो। अस्पृश्यता-दिवस भले ही स्वतन्त्र रूपसे मनाया जाये; यह मेरा दृढ़ मत है। क्या तुम्हें इसमें ठोस तथ्य नहीं दिखाई देते?

'संघ' अभी अपने लक्ष्यतक तो नहीं पहुँचा है लेकिन अभी सिरपर तलवारें लटक रही हैं। राजाजी के पास तो छतरी है लेकिन संघको अभी अग्नि-परीक्षासे गुजरना है इसलिए छतरीसे क्या हो सकता है? तथापि, तुम हरिजी और उनके-जैसे मुख्य योद्धाओंसे पूछ देखो। यदि वे 'हाँ' कहते है तो आगे बढ़ना, नहीं तो राजाजी के पत्रको दबा देना। उन्होंने मुझे जो पत्र लिखा था वह मैंने घनश्यामदासको भेज दिया था। उन्हें नामका लोभ नहीं है। मै चाहूँ तो वे बदलनेके लिए तैयार हो जायें और मेरी इच्छा भी यही है, लेकिन काल बलवान है। वह हमारी इच्छाओंको साँपकी तरह जिन्दा ही निगल जाता है और मेरे-जैसे महात्मा भी अल्पात्मा-जैसे लगते हैं। इसीसे मै तो चुप रहा हूँ और अभी भी हूँ। तुम्हारी पीठ मजबूत है। तुम चाहो तो बोझ उठा सकते हो। शेष तो 'नाम धरिये हेते हरि, बालपनामा जाय मरी'। सघके नामसे न तो वह जीवित रहनेवाला है और न समाप्त होनेवाला है। सही मूल्यांकन तो कामसे होगा। यदि हम यमराजकी भाँति काम करेंगे तो अस्पृश्यता-रूपी डायनको हम समूचा ही निगल जायेंगे, इसमें मुझे जरा भी शंका नहीं है।

तुम भूल रहे हो। होलावे मलहमका विज्ञापन हल्की भाषामें तुम्हें ही देना था। इस बातके गवाह मौजूद हैं। यदि यह काम तुम्हें पसन्द न हो अथवा तुम्हारे पास समय न हो तो भूल जाना।

मेरे पास थोड़ा समय था इसीसे यह थोड़ा-सा लिख दिया।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०५) से।

१. १९ फरवरी, १९१५ को गोखलेका स्वर्गवास हुआ था।

१२३. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

२० जनवरी, १९३३

सनातनियोंके सम्मेलनकी आयोजनाके सिलसिलेमें जारी किया गया आपका वक्तव्य मैंने देखा है।[1] मन्दिर-प्रवेशके सवालपर आपको मैंने अभीतक जान-बूझकर परेशान नहीं किया है। हालाँकि आपकी अमूल्य सहायताकी मुझे बहुत आवश्यकता थी तथापि मैं जानता था कि आप अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलोंमें पहले ही बहुत व्यस्त थे, और मुझे लगा कि मैं कमसे-कम जो कर सकता हूँ, और ज्यादासे-ज्यादा भी जो करना मेरे लिए सम्भव था, वह यह कि मैं इस सहायतासे अपने-आपको जान-बूझकर वंचित कर लूँ। केरलके मित्रोंने मुझसे आग्रह किया कि मैं आपसे उनकी मददके लिए जानेको कहूँ। मैंने वैसा करनेसे इनकार कर दिया और उन्हें चेतावनी दी कि वे आपको तकलीफ न दें। लेकिन अब मैं देखता हूँ कि आपने स्वयं इस मामलेमें पहल कर दी है और एक जबर्दस्त जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। मैं आशा करता हूँ और मेरी ईश्वरसे कामना है कि इस सम्मेलनसे बहुत शुभ परिणाम निकलें।

मेरी इच्छा है कि काश सम्मेलनसे पहले हम दोनों मिल सकते, अथवा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें आप अपने सुझाव प्रतिपादित करें, उससे पूर्व हम दोनों विचारोंका आदान-प्रदान कर सकते। मै महसूस करता हूँ कि मुझे आपके सामने अपनी स्थिति रख देनी चाहिए।

उपवास-सप्ताहके[2] दौरान और उसके तुरन्त बाद होनेवाली बम्बईकी सभा, जिसने प्रस्ताव पास किया था, यदि हिन्दू-भारतका प्रतिनिधित्व करती थी तो यह प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है कि वह उस प्रस्तावको पूराका-पूरा कार्यरूपमें परिणत करे। जैसाकि आप जानते हैं, उस प्रस्तावमें मन्दिर-प्रवेशके बारेमें निश्चित रूपसे उल्लेख किया गया है। इसमें कोई शर्त नहीं लगाई गई है। प्रस्तावका सारा आशय यही है कि हरिजनोंको सवर्ण हिन्दुओंके साथ बराबरीके दर्जेपर मन्दिरोंमें प्रवेश मिले और सार्वजनिक संस्थाओंके प्रयोगका अधिकार मिले। यह एक ऐसा ऋण है जो सवर्ण हिन्दुओंके ऊपर बहुत दिनोंसे बकाया है। मुझे लगता है कि कोई ऐसी शर्तें लगाना जो हरिजनोंपर विशेष रूपसे लागू होती हों, अगर स्पष्ट रूपसे विश्वास-भंग न भी हो तो भी गलत जरूर होगा। हिन्दू-धर्ममें जो शर्तें अन्तर्निहित हैं और जिनका पालन मन्दिरमें प्रवेश करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको करना होता है उन शर्तोंको पूरा करनेकी अपेक्षा हरिजनोंसे स्वभावत: की जायेगी। लेकिन यह एक चीज है और

१. २५ जनवरीको अहमदाबादमें दिया गया वक्तव्य। वक्तव्यके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ५।

२. २० से २६ सितम्बर, १९३२ तक।

हरिजनोंपर कुछ विशेष शर्तें लगाना और उनसे प्रायश्चित्त-स्वरूप उनका पालन करवाना दूसरी चीज है। आपके सुझावोंमें जो चीजें शामिल हैं उन्हें एक भिन्न और सर्वथा निर्दोष ढंगसे प्रस्तुत किया जा सकता है अर्थात्, यह कहा जा सकता है कि सभी हिन्दू, उनकी जाति या दर्जा जो-कुछ हो, जिन शर्तोंपर सभी सार्वजनिक मन्दिरोंमें प्रवेश कर सकते हैं उन्हीं शर्तोंपर उनमें प्रवेशका हरिजनोंको भी अधिकार है अर्थात्, (यहाँपर इन सामान्य शर्तोंका विवरण दिया जा सकता है, यथा, दैनिक स्नान, द्वादश[1] या अन्य मन्त्रोंका जाप, मृत पशुओंके मांस या गोमांससे और मादक द्रव्योंसे परहेज, बशर्ते कि मादक द्रव्योंका किसी भी प्रचलित स्मृति या पुराणोंमें निषेध किया गया हो)।

वर्तमान आन्दोलनका समर्थन करनेवाले और उसका विरोध करनेवाले, दोनों पक्षोंके शास्त्रियोंसे मैंने जो-कुछ चर्चाएँ की हैं, उनसे मैं इसी नतीजेपर पहुँचा हूँ कि अस्पृश्यताके जिस स्वरूपसे आज हम परिचित हैं उसका कहीं कोई प्रामाणिक आधार या औचित्य नहीं है। अकसर जिन श्लोकोंका उद्धरण दिया जाता है वे श्लोक मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमें अस्पृश्योंके रूपमें उल्लिखित तमाम लोगोंमें से किनके ऊपर लागू होते हैं, इसके बारेमें बिल्कुल घपला है। जन्मतः अस्पृश्यताका कोई अस्तित्व नहीं दिखाई देता। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे पता चल सके कि अस्पृश्योंके रूपमें वर्गीकृत किसी जातिके लोगोंमें से एक भी व्यक्ति ब्राह्मण माता और शूद्र पिताकी सन्तान है या उसके पूर्वजोंके बीच ऐसा कोई संयोग हुआ था। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि सिद्धान्तके प्रश्नपर आप कोई समर्पण न करें। मुझे यह गवारा है कि सुधारक लोग बिना किसीकी सहायताके अकेले ही अपने रास्तेपर अग्रसर होते रहें लेकिन यह गवारा नहीं है कि उनसे एक असम्मानजनक आत्मसमर्पणमें शरीक होनेको कहा जाये। मैंने अपने समझौता-प्रस्तावमें जो आत्मसमर्पण सुझाया है वह मेरी रायमें उच्चतम कोटिका है क्योंकि इसमें अल्पसंख्यकोंकी छोटी-छोटी संख्याकी कोमलतम भावनाओंके लिए गुंजाइश रखी गई है। इसके लिए भी मुझे काफी आलोचना सहनी पड़ी है, लेकिन मुझपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि मेरी रायमें यह प्रस्ताव पूरी तरह सम्मानजनक है और सभी ईमानदार और धार्मिक प्रवृत्तिवाले सुधारकों और भिन्न मत रखनेवालोंके लिए सन्तोषकारी है।

यदि मेरी बातमें कुछ ऐसा हो जिसे आप और स्पष्ट समझना चाहें तो मैं जानता हूँ और आशा करता हूँ कि आप तारसे सूचित करेंगे।

मैं बहुत उत्सुक हूँ कि हिन्दू-धर्मको शुद्ध करने और हरिजनोंके प्रति वचन निभानेका काम ईश्वर आपके माध्यमसे पूरा कराये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३। सी० डब्ल्यू० ७९२२ ए० से भी; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

१२४. पत्र : एस० सालिवतीको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

मुझे तुम्हारा तार और पत्र[1] मिले। धन्यवाद।

मेरे खयालसे तो तुम्हारे पत्रसे पूरी निर्दोषिता सिद्ध होती है। लेकिन मैं तुम्हारी रिपोर्टके मूल पाठकी प्रति देखना ज्यादा पसन्द करता। किसी भी सूरतमें जहाँतक तुम्हारी मंशाका सवाल है, उसमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७८) से।

१२५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

यरवडा-समझौतेके विरुद्ध बंगालमें जो आन्दोलन किया जा रहा है क्या उसको समझनेकी कोई कोशिश आपने की है, और क्या आप मुझे बता सकते हैं कि इसके पीछे क्या चीज काम कर रही है?

आशा है, आपको मेरा पहलेवाला पत्र मिल गया होगा और आप अच्छे होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८०) से।

१२६. पत्र : एस० जी० वझेको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय वझे,

मुझे श्रीयुत ठक्करका तार मिला है जिसमें मुझे सूचित किया गया है कि शास्त्री अभी दो सप्ताहतक उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने तारके पीछे मुझे चिट्ठी भी भेजनेको लिखा है जिससे मुझे पूरी सूचना मिलेगी।

१. १८ जनवरीके इस पत्रमें एस० सालिवतीने बताया था कि उनकी रिपोर्टका मूल पाठ किस प्रकार रास्तेमें कट-फट गया था।

मुझे तखमीना मिल गया है। उसके लिए धन्यवाद।

यदि आपके लिए सम्भव हो तो मुझे सूचित कीजिए कि अखबार निकालनेसे पहले क्या-क्या कार्रवाई करनी जरूरी होगी, और पहला अंक निकालनेके लिए आर्य भूषण प्रेस कितने समयकी पूर्व-सूचना चाहेगा। क्या आप मुझे सबसे ताजे प्रेस अधिनियमकी एक प्रति भेज सकते हैं? क्या एक गैर-राजनीतिक पत्र निकालनेकी अनुमति बिना कठिनाई तुरन्त मिल जाती है? क्या जमानत जमा करना अनिवार्य है? यदि है तो जमानतकी शक्ल क्या होनी है? मुद्रक और प्रकाशकके नामोंके अलावा क्या सम्पादकका नाम घोषित करना भी जरूरी है, और यदि है तो क्या उसे कोई घोषणा-पत्र दाखिल करना पड़ता है?

मेरे सामने जो तखमीना है इसमें लपेटनेके कागजका मूल्य नहीं दिया गया है। क्या पेपरमिल पूनामें है? क्या यह पदमजीकी मिल है? पदमजीने ही 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए मुझे हमेशा कागज सप्लाई किया है। क्या आर्य भूषण प्रेसके पास गुजराती टाइप है?

क्या आप मेरे लिए कर्मचारियोंपर होनेवाले और आनुषंगिक खर्चेका भी एक तखमीना बना देंगे?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८१) से।

१२७. पत्र : मोतीलाल रायको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मालवीयजी के सम्मेलनके बारेमें आपका तार मिला। मेरे अन्दर आप-जैसा उत्साह नहीं है। तो भी हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए, देखना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८२) से।

१२८. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय रामानन्द बाबू[1],

यह पत्र प्रकाशनके लिए नहीं है।

यरवडा-समझौतेको लेकर बंगालमें जो अकस्मात विरोध उठ खड़ा हुआ है वह मेरे लिए आश्चर्यजनक और दुखदायक है। ब्रिटिश इडियन एसोसिएशनके मंत्रीने मुझे एक प्रस्तावका पाठ भेजा है जिसमें अन्य बातोंके अलावा यह अपील की गई है कि बंगालका जहाँतक सम्बन्ध है, उस हदतक मै समझौतेमें परिवर्तन करानेमें सहायता दूँ।[2] मैंने इस प्रश्नपर होनेवाली सार्वजनिक चर्चा में अभीतक कोई हिस्सा नहीं लिया है क्योंकि मैं स्थितिको और गड़बड़ाना नहीं चाहता, या किसी ऐसे विषयपर कोई राय नहीं देना चाहता जिसके बारेमें मुझे पर्याप्त जानकारी नही है। अत: अब मैं कोई धारणा बनानेमें आपकी सहायता और मार्ग-दर्शन चाहता हूँ। बंगालके दो हरिजन मित्रोंको भय हुआ कि मै कहीं कमजोर न पड़ जाऊँ; इसलिए उन्होंने मुझसे पूछा कि इस विरोधके बारेमें मेरा क्या खयाल है, और मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि मैंने अपनी राय नहीं बदली है और बिना सभी सम्बन्धित पक्षोंकी सहमतिके समझौतेमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

मेरी अपनी मान्यता यह है कि सवर्ण हिन्दू हरिजनोंको जितनी भी रियायतें दें, कम हैं। यह मेरा दृढ़ मत है कि हिन्दुओंको जितनी भी सीटें उपलब्ध है वे सभी सीटें यदि दलित वर्गके लोग ले लें तो भी तथाकथित ज्यादा ऊँची जातियोंको इससे कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि यदि सीटें दे देनेको बलिदान कहा जा सके तो इस बलिदानसे उनको लाभ होगा।

इन सब बातोंको ध्यानमें रखने हुए कृपया मुझे सूचित कीजिए कि क्या आप विरोधियोंके विचारोंसे सहमत हैं, और यदि हैं, तो किस आधारपर हैं, और बम्बईमें हुए सम्मेलनमें बंगालके किसी प्रतिनिधिने कमसे-कम इन तर्कोंको पेश क्यों नहीं किया।

आपको यह विश्वास दिलानेकी जरूरत नहीं है कि आपकी स्पष्ट राय के लिए मैं आपका आभार मानूँगा, भले ही वह समझौतेके विरुद्ध क्यों न हो। जीवनमे मेरा एकमात्र उद्देश्य सत्यकी सेवा करना है। अत: यदि मुझे अपनी किसी भूलका पक्का विश्वास हो जाये तो मैं उसे सुधारनेको हमेशा तत्पर हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८३) से।

१. **मॉडर्न रिव्यू** के सम्पादक।

२. देखिए "पत्र : ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनको", १८-१-१९३३।

१२९. पत्र : वी० एम० नावलेको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका इसी १७ तारीखका पत्र मिला। श्रीयुत वैद्यके पत्रके बारेमें या श्री सीमर स्टोनके पत्रके बारेमें मुझे आपका कोई पत्र नहीं मिला। यदि आपने उसकी नकल रखी हो तो कृपया वह मुझे भेज दीजिए और श्री वैद्यके बारेमें अपनी कैफियत भी।

मेरे लिए इस समय आपकी खातिर एक घंटेका समय खाली निकालना अत्यन्त कठिन है। पहले आप लिखकर बतायें कि आपका नुस्खा[1] ठीक-ठीक है क्या। आपकी अंग्रेजी अच्छी है या बुरी इससे कोई फर्क नही पड़ता। चाहें तो आप मुझे मराठीमें भी लिख सकते हैं। यदि लिखावट साफ है तो उसे समझनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८३ ए) से।

१३०. पत्र : एल० आर० पांगारकरको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपने शुरुआत भी गलतीसे की है और अन्त भी गलतीसे किया है। मैंने ईश्वरको छोड़ अपने चारों ओर और किसीको जमा नहीं किया है। आपके दिमागमें जो लोग हैं मैं चाहूँगा कि आप उनके नाम मुझे बतायें। आपके खयालसे आजसे पचास साल पहले मेरे साथ उस समय कौन रहा होगा जब मुझे पहली बार इस सत्यका ज्ञान हुआ कि अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है, वह एक पाप है, और क्या आप जानते हैं कि अन्य स्कूली लड़कोंके विपरीत मैं उस उम्रमें बिल्कुल अकेला था?

आपके पास इस कथनका क्या प्रमाण है कि ९० प्रतिशत हिन्दू [हरिजनोंके] मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध हैं, और मान भी लें कि है, और यह भी मान लें कि वे वास्तवमें गलतीपर हैं, तो उस गलतीका विरोध करना, भले ही मैं अकेला ही क्यों न होऊँ, मेरे लिए आत्मघातक क्यों है?

१. वी० एम० नावलेने मंदिर-प्रवेशका "नवीन और अनोखा पथ", बताया था; देखिए "पत्र : वी० एम० नावलेको", १२-१-१९३३ भी।

कांग्रेसने १९२० में अस्पृश्यताके सवालको अपने कार्यक्रमके अभिन्न अंगके रूपमें हाथमें लिया था। मुझे इस बातकी कोई जानकारी नहीं है कि उसी दिनसे कांग्रेस-की लोकप्रियता घटने लगी।

आपने महाराष्ट्रके जिन सन्तोंका जिक्र किया है उनमें से कुछको मैं जाननेका दावा करता हूँ। उन्होंने मुझे जो शिक्षा दी है वह उस शिक्षासे सर्वथा भिन्न है जो आपने उनसे ली है। यह कोई अनोखी बात नहीं है। मनुष्य लोग देवताओंसे वे बातें नही सीखते जो देवतागण सिखाना चाहते हैं बल्कि वे ही बातें सीखते हैं जो वे सीखना चाहते है। अगर आप सचमुच मेरे कामके प्रशंसक हैं तो आप मेरे ऊपर इतनी कृपा तो कमसे-कम अवश्य करें कि मेरे बारेमें कोई धारणा बनानेसे पहले मै जो-कुछ कर रहा हूँ उसका आप अध्ययन करें। ऐसा करेंगे तो आप जल्दी ही देखेंगे कि मै वर्णाश्रम धर्मको नष्ट करनेपर नही तुला हुआ हूँ, बल्कि उस धर्मके अतिरेकको, अर्थात् आजकल प्रचलित अस्पृश्यताको नष्ट करना चाहता हूँ ताकि अपनी पूर्ण शुद्धताके साथ वर्णाश्रम धर्मको पुनरुज्जीवित किया जा सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० आर० पांगारकर
नासिक सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००६१) से।

१३१. पत्र : मु० रा० जयकरको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर

मुझे सभी सूत्रोंसे पता चला है कि इस बार आप काफी स्वास्थ्य-लाभ करके लौटे हैं। मेरी कामना है कि मुझे जो खबर मिली है वह बिलकुल ठीक हो।

तथापि, यह पत्र लिखनेका हेतु आपसे यह निवेदन करनेका है कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी अखिल-भारत विधेयकके बारेमें आप मेरा मार्गदर्शन करें। आशा है, उसके बारेमें मेरा वक्तव्य आपने पढ़ा है। उसके बारेमें आपकी रायकी मैं कद्र करूँगा। जिन मुद्दोंपर मैं चाहूँगा कि आप विशेष ध्यान दें, वे ये हैं:

१. जिस उद्देश्यसे यह विधेयक लाया गया है क्या उसके लिए यह विधेयक ठीक है?

२. क्या उसके बारेमें मेरा तर्क ठीक है?

३. इसके पास होनेकी सम्भावना कितनी है?

४. मान लें कि विधान मण्डलके बाहर जनताका प्रबल बहुमत इस विधेयकके पक्षमें है तो विधान मण्डलमें इस विधेयकका पास होना सुनिश्चित करनेके लिए क्या किया जाना चाहिए?

यदि इस मामलेमें आपका विचार हो कि मुझसे इस पूरे सवालपर बात करनेके बाद ही आप मेरा उपयोगी ढंगसे मार्गदर्शन कर सकेंगे, और आप समय

निकाल सकें, तो कृपया अवश्य आइए। आप शायद जानते होंगे कि इस मामलेमें आपको कोई अनुमति लेनेकी आवश्यकता नही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०१०६) से।

१३२. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२० जनवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारे दो पत्र मिले है। मै पत्रकी प्रतीक्षा तो कर ही रहा था। दाँतका इलाज पूरी तरहसे कर लेना। प्रभुदासके बारेमें तुम मुझे निश्चिन्त कर रहे हो, यह बात मुझे अच्छी लगती है। मै निश्चिन्त होना भी चाहता हूँ। मसूड़ोसे अभी भी रक्त निकलता है इसके बारेमे डॉक्टरका क्या कहना है? अथवा डॉक्टर इसके बारेमें नही जान सकता? तलवलकर अथवा कानूगोको इसके सम्बन्धमे कुछ मालूम हो तो उनसे पूछना। रोहितसे मैं मिला था। वह अब तो वम्बई पहुँच गया होगा। वह डॉ० देशमुखकी देखरेखमें रहेगा। उससे मिलना।

राजभोजसे मेरा परिचय बहुत कम है। मैं उसे पहचान नहीं सका हूँ। किसी भी मराठी व्यक्तिसे, जो उसे जानता हो, उसके बारेमें पूछना चाहिए।

अब मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें। पके हुए अनाजके बारेमें हमारे बीच खासी चर्चा हो चुकी थी और मैंने अपना दृढ़ मत भी प्रकट किया था कि इस प्रश्नको उठानेके लिए अभी उचित अवसर नही है। अभीतक इसे किसी भी व्यक्तिने बाधास्वरूप नही माना है और सब मन्दिरोंमें हरिजनों द्वारा मूर्तिको भोग लगानेकी बात भी नहीं है। जब यह प्रश्न उठेगा तब तुम्हारे विचारोंको व्यवहारमें लाया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९१) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

१३३. पत्र : भगवानजी अ० मेहताको

२० जनवरी, १९३३

भाई भगवानजी,

आप निराशावादी और नास्तिक हैं जबकि मै आशावादी और ईश्वर-भक्त हूँ। इसलिए हममें किसी प्रकार मेल बैठ पायेगा यह मुझे दिखाई नहीं देता। इसलिए हम दोनोंको अनुभवकी पाठशालामें सीखना बाकी रहा। जो अधिक समयतक रहेगा उसे [सत्यके बारेमें] कुछ मालूम होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५८१७) से।

१३४. पत्र : अमतुस्सलामको

२० जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारे बारेमें तार भेजा था सो मिला होगा। खत[1] भी दिया था। दिमाग डाँवाँडोल नहीं होना चाहिए। मेरा हुक्म कहो, मेरी इच्छा कहो, जो-कुछ मैंने कह दिया है उसकी तामील करना न करना तुम्हारे हाथमें है। अगर तामील करोगी तो सब फिकर छोड़ देगी। खुदा तुमको आराम और शान्ति बख्शे।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७३) से।

१३५. पत्र : नारणदास गांधीको

२० जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

कन्हैयालालके बारेमें तुम्हारा क्या अनुभव है? क्या खादीके काममें वह कुशल है? उद्यमी है? ध्यानपूर्वक काम करनेवाला है? यदि उसमें आवश्यक गुण हैं तो उसके लिए कामकी खोज करनेमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

मैंने चप्पलके तलेके चमड़ेके लिए लिखा है उसका स्मरण होगा। मुझे कोई जल्दी नहीं है। कोई आने-जानेवाला हो उसके साथ आ जाये।

राधाका इरादा जान लिया होगा। प्रेमा स्वस्थ तो है न? अपना काम तो कर लेती है न? शरीरका ध्यान रखती है? सीतला सहायका पत्र है कि सरोजिनी देवी और पद्माको देहरादून ले जानेके लिए उसने ३० या ३५ रुपये मँगाये है। मैंने उसे जवाब नही दिया है। तुम्हें जो उचित लगे सो करना।

बापू

[पुनश्च:]

इसमें केशू, अमतुस्सलाम, कन्हैयालाल और सन्तोकके पत्र हैं। अमतुस्सलामको छोड़कर सबके पढ़ लेना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो-९: श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १८ से भी

१. देखिए “पत्र: अमतुस्सलामको”, १८-१-१९३३।

१३६. पत्र : एफ० मेरी बारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे अन्ततः 'लिटिल प्लेज' पुस्तक मिल गई। हाय! मेरे ऊपर जिन तमाम पुस्तकोंकी वर्षा हो रही है उनका मैं क्या करूँगा। ऐसी बहुत-सी पुस्तकें हैं जिन्हें मैं पढ़ना पसन्द करूँगा। लेकिन समय कहाँ है?

सप्रेम,

बापू

कुमारी मेरी बार
द्वारा कुमारी मिन्स
मेडिकल स्कूल हॉस्पिटल
वेल्लोर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९०) से। सी० डब्ल्यू० ३३१५ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१३७. पत्र : ए० रंगास्वामी अय्यंगारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय रंगास्वामी,

आपका पत्र मिला। गलतीका जितना परिमार्जन आपके लिए करना सम्भव था वह सब आपने कर लिया है।[1] मुझे सालिवतीका जो पत्र कल मिला था उससे मेरा ख्याल बना था कि उसने भी वैसा ही कर लिया है, लेकिन अब मैं देखता हूँ कि गलती पूरी तरह उसीकी थी। उसका मंशा निस्सन्देह अच्छा था, लेकिन उसने जो किया वह कतई गलत था। लेकिन मैं अपनी राय दे सकूँ, इससे पहले मैं चाहूँगा कि उसकी भेजी हुई जो रिपोर्ट आपको प्राप्त हुई थी उसी रिपोर्टको मेरे पास भेज दीजिए। उसका कलका पत्र मैं संलग्न कर रहा हूँ। उसमें आप देख सकते हैं कि वह अपनेको निर्दोष बताता है, और यदि उसकी भेजी हुई रिपोर्ट वैसी ही थी जैसीकि वह बताता है तो वह निर्दोष है। जहाँतक मेरी अपनी याददाश्तका

१. देखिए "तार : हिन्दूको", १८-१-१९३३ और "तार : एस० सालिवतीको", १८-१-१९३३।

सवाल है, उसमें कहीं कोई खामी नहीं है, और महादेव, जो सदा सतर्क रहता है और दूसरा बॉसवेल बननेकी इच्छा रखता है, के पास मेरे और सालिवतीके बीच हुई बातचीत[1] का लिपिबद्ध विवरण है। इस विवरणसे भी मेरी बातकी ही पुष्टि होती है और १६ तारीखके 'हिन्दू' के अनुसार उसने मेरे कथनोंकी जो रिपोर्ट भेजी प्रतीत होती है यदि वैसी रिपोर्ट उसने भेजी तो उसके कथनकी पुष्टि नहीं होती। यह दुर्भाग्यपूर्ण रिपोर्ट ऐसे नाजुक समय छपी है जब कि मेरी जरा-सी गलतीसे वह इमारत ढह सकती है जिसे बड़े धीरज और सावधानीके साथ खड़ा किया जा रहा है। सौभाग्यसे आपके और सालिवतीके लिए मेरे मनमें जो लिहाज है उसके कारण मैंने बहुत बेमनसे एसोसिएटेड प्रेसको जो भेंट[2] दी थी उसके चलते और जिस तत्परताके साथ आपने मेरा तार छाप दिया, उसके कारण एक अत्यन्त भयकर स्थिति उत्पन्न होनेसे बच गई। इस विषयपर आगे चर्चा करनेका उद्देश्य इतना ही है कि सालिवतीके साथ कोई अन्याय न होने पाये।[3]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० रंगास्वामी अय्यंगार
सम्पादक, 'हिन्दू'
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८७) से।

१. महादेव देसाईने अपनी डायरीमें जो दर्ज किया है उसके अनुसार गांधीजी ने कहा था: "वे मेरे विचार जानते हैं। पूरी तरह विचार-विमर्श किये बिना वे लोग कुछ नहीं करेंगे। जहाँतक भविष्यका प्रश्न है, मुझे अपनी शक्तिका बहुत ध्यान है, और मैं उसे व्यर्थ बर्बाद नहीं करूँगा। ऐसी बहुत-सी चीजें घटित होनेकी सम्भावना है जिनमें मुझे दिलचस्पी है। लेकिन मै पूर्व कल्पना क्यों करूँ? जैसे-जैसे चीजें सामने आती जायेंगी, ईश्वर मुझे उनसे निपटनेकी शक्ति प्रदान करेगा।" (**महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ ५१)

२. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १८-१-१९३३।

३. श्री रगास्वामीने इसके उत्तरमें लिखा था: "सालिवतीकी भेजी जो रिपोर्ट हमने सम्पादित करके अपने अखबारके सोमवारके अंकमें छापी थी उसके बारेमें आपका सन्देश पाकर बहुत दु:ख हुआ और धक्का लगा। मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि रिपोर्टको हमने कार्यालयमें सावधानीके साथ सम्पादित किया था और इस बातका सवाल ही नहीं पैदा होता कि रिपोर्टको भेजते समय रिपोर्टमें कुछ कट-फट गया था या कोई गलती दाखिल हो गई। आपके स्पष्ट निर्देशके बावजूद सालिवतीने जो इस प्रकारकी रिपोर्ट भेजी जिसमें आपके कथनानुसार एक निजी बातचीतमें कही गई आपकी बातोंको बिल्कुल गलत ढंगसे प्रस्तुत किया गया है, उसपर से मैं समझ नहीं पाता कि मै क्या निष्कर्ष निकालूँ। . . ."

१३८. पत्र : के० वी० शेष अय्यंगारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

'भारत धर्म' के जो अंक और पुस्तिकाएँ आपने कृपापूर्वक भेजी हैं उनको मैं सरसरी तौरपर देखता रहा हूँ। प्रयोपवेशमके[1] जो पूर्वोदाहरण आपने इकट्ठे किये हैं उन्हें मैंने उपयोगी पाया है।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वी० शेष अय्यंगार
२३ नाडु स्ट्रीट
मैलापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८८) से।

१३९. पत्र : भगवानदासको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

मैं इस पत्रके साथ श्रीयुत सी० वी० वैद्यके मराठी-लेखका हिन्दी अनुवाद और श्रीधर शास्त्री पाठकके हिन्दी-लेखकी प्रति भेज रहा हूँ।

दोनों अनुवादोंमें व्याकरणकी भूलें हो सकती हैं जिन्हें आप कृपया सुधार लेंगे।

श्रीयुत सी० वी० वैद्यके लेखका अनुवाद श्रीयुत महादेवने किया था।

इनके छप जानेपर क्या आप कृपापूर्वक मुझे इस परिशिष्टांककी दस प्रतियाँ और दस प्रतियाँ प्रथम परिशिष्टांककी भेज देंगे?

कृपया श्रीप्रकाश से कहिए कि मुझे पत्र लिखें।

'आज' के लिए मैंने जो सन्देश लिखकर भेजनेका वादा किया था वह यह रहा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९०) से।

१. उपवास।

२. देखिए "पत्र : सी० वाई० चिन्तामणिको", ११-१-१९३३ भी।

१४०. पत्र : कर्नाड सदाशिवरावको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय सदाशिवराव,

मुझे तुम्हारा इसी १३ तारीखका ट्रेन परसे लिखा हुआ पत्र मिला। सामान्यत: सभी सुधारकोंको मिथ्या प्रचार और गाली-गलौजका शिकार होना पड़ता है। हमें ही इस सामान्य नियमका अपवाद क्यों होना चाहिए? जो लोग ऐसी गालियाँ बर्दाश्त कर सकते हैं और झूठका जवाब झूठसे नही देते उन्हें कोई भय करनेकी जरूरत नहीं है; उलटे इस प्रकारके बेईमानी-भरे विरोधसे उन्हें शक्ति ही प्राप्त होगी। अत: जबतक हमें हमारे आन्दोलनके सही होनेका ज्ञान है और जबतक हम जानते हैं कि इस आन्दोलनको हम शुद्ध साधनोंसे चला रहे हैं तबतक हमें इस प्रकारके विरोधपर किसी प्रकारसे उद्वेलित होनेकी जरूरत नहीं है। हम उस विरोधसे और बल प्राप्त करेंगे, यह निश्चित है। और जब हमें अपने अन्दरकी सचाईका और उससे प्राप्त होनेवाली शक्तिका ठीक ज्ञान हो तब हमें दुर्बलताके लांछनसे भय करनेका कभी कोई कारण नहीं है। जो आदमी कमजोर दिखनेके भयसे सही बात कहने या करनेसे हिचकता है, वह असत्यका दोषी हो जाता है, और इसलिए कहा जा सकता है कि उसे अपने अन्दरके सत्यका कभी कोई भान नहीं था।

तुम जो प्रश्न मेरे पास छोड़ गये थे उन्हें मैंने पूरा पढ़ डाला है। मैंने उनका जवाब नहीं दिया है क्योंकि तुम देखोगे कि हर मुद्देका जवाब उन वक्तव्योंमें मौजूद है जो मैं पहले दे चुका हूँ। पता नहीं तुमने 'जस्टिस' के सम्पादकके नाम मेरा पत्र[१] देखा है या नहीं जो उसकी तिथि निकल जानेके बाद छपा है।

अब हरिजन सेवक संघकी प्रान्तीय और जिला-शाखाओंके सम्बन्धमें कांग्रेसी-जनोंके आचरणसे सम्बन्धित तुम्हारा प्रश्न रह जाता है। उन्हें इन संस्थाओंसे उसी हदतक सम्बद्ध मानना चाहिए जिस हदतक उनकी सेवाओंकी जरूरत है, उससे आगे नहीं, भले ही उन्हें इस काममें शिथिलता आती दिखाई पड़े। किसी ऐसे सेवाकार्यमें, जिसमें अधिकसे-अधिक सच्चे सेवकोंकी सेवाका उपयोग किया जा सकता है, किसीके लिए जरूरी नहीं है कि वह किसी संस्थाका सदस्य बनकर या उसके जरिये ही काम करे। किसी हरिजनको प्यारसे एक गिलास पानी देना या किसी रोगी हरिजनको चिकित्सा-सुविधा पहुँचाना, किसी शरणहीन हरिजनको शरण प्रदान करना और ऐसे ही बहुत सारे काम हैं जो कोई भी व्यक्ति कर सकता है और

१. देखिए "पत्र: टी० ए० वी० नाथनको", ११-१-१९३३।

अस्पृश्यताके उन्मूलनमें इनका ठोस योगदान है। इसलिए जिस अटपटी स्थितिकी तुम तस्वीर खींचते हो, उसके पैदा होनेकी जरूरत ही नहीं है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८९) से।

१४१. पत्र : के० रंगाचार्युलूको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जिस प्रकारके विरोधका आपने उल्लेख किया है वैसा विरोध होनेपर कार्यकर्त्ताओंको बाज आना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० रंगाचार्युलू
तुनी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९२) से।

१४२. पत्र : ए० डी० अप्पादुरैको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी रायमें खद्दरमें जो गुण हैं वे अन्य किसी चीजमें नही हैं। खद्दरके अर्थ हैं सबसे ज्यादा जरूरतमन्द लोगोंकी मदद, और इन जरूरतमन्दोंमें हजारों हरिजन हैं क्योंकि इनकी स्त्रियाँ कताई करके किसी प्रकार जीविकोपार्जन करती हैं, और कई हजार हरिजन पुरुष केवल खद्दरका ही कपड़ा बुनते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० डी० अप्पादुरै,
सेंट जॉन्स कॉलेज
पालमकोट्टा
(जिला तिन्नेवेली)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९३) से।

१४३. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपके इसी १८ तारीखके पत्रको पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने बम्बई बोर्डको[१] केन्द्रीय बोर्डकी तरफसे ५०० रुपयेका अग्रिम भुगतान करनेको कभी नहीं कहा, लेकिन मैंने उनसे यह जरूर कहा था कि यदि वे सहमत हों तो ५०० रुपये पूनाको उस खर्चके एवजमें दे दें जो पूनाको इस कारण करना पड़ा था क्योंकि मै अपना सारा कार्य-संचालन पूनासे ही करता था। यदि मेरा इरादा यह होता कि केन्द्रीय बोर्ड भुगतान करे तो मै स्वयं ही बिना किसी हिचकके केन्द्रीय बोर्डसे वैसा कहता। मैंने बम्बई बोर्डसे इसलिए भुगतान करनेको कहा क्योंकि पूना उसके बिलकुल बगलमें है और बम्बई बोर्ड ये खर्चे उठानेमें भली प्रकार सक्षम है। इसलिए आपसे जो रकम लौटानेको कही गई उसे लौटानेकी जरूरत नहीं है, लेकिन उनसे कहिए कि वे मुझको लिखें।

जहाँतक मेरे वक्तव्यकी[२] ५००० प्रतियोंकी बात है, मुझे याद नहीं आता कि मैंने उनसे इन्हें छापनेको कहा हो। मेरे वक्तव्योंको पुस्तिकाके रूपमें फिरसे छापनेकी कुछ चर्चा बातचीतमें हुई तो थी, लेकिन अब मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैंने इसके बारेमें सेठ मथुरादाससे बातचीत की थी या श्रीयुत जे० के० मेहतासे की थी या प्यारेलाल अथवा चन्द्रशंकरसे की थी। वस्तुतः मैंने उन्हें चेतावनी दी थी कि वे यह खर्च न करें, क्योंकि मुझे ऐसा ख्याल था कि अजमेर वाले उन वक्तव्योंको पुनर्मुद्रित कर रहे थे, और इसलिए मैंने उनसे कहा था कि यह खर्च उठानेसे पहले वे पूछताछ कर लें। लेकिन मेरा ऐसा जरा भी मंशा नहीं था कि केन्द्रीय बोर्डसे यह खर्च उठानेको कहा जाना चाहिए और मेरी अपनी राय यह है, जैसीकि वह हमेशा रही है, कि प्रचार-कार्यको आत्म-निर्भर होना चाहिए। इसलिए यदि मेरे वक्तव्योंकी ५००० प्रतियोंकी बिक्रीसे उनकी छपाईका खर्च भी नहीं निकला, तो मैं इसे बदइन्तजामी मानता हूँ। आप इस मुद्देके बारेमें भी केन्द्रीय बोर्डको मुझे लिखनेको कहें।

आपके नाम श्रीयुत देवधरका पत्र बिलकुल ठीक है। जब हरिभाऊने उस मामलेके बारेमें मुझसे बात की तो मैं उनसे सहमत हुआ, और जी० के० देवधरके इस सन्देश के वाहक भी वही थे कि केन्द्रीय बोर्डसे उन्हें जो सहायता मिलेगी उसके अलावा उन्हें ५०० रुपये और मिलने चाहिए, और मैंने उन्हें देवधरसे यह कहनेको कहा

१. अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघका।

२. अस्पृश्यताके प्रश्नपर; देखिए खण्ड ५१ और ५२।

था कि मैं यह रकम केन्द्रीय बोर्ड या बम्बई बोर्डसे दिलानेकी कोशिश करूँगा। लेकिन मैंने उपर्युक्त कारणवश पहले बम्बई बोर्डको लिखना तय किया, और मुझे खुशी हुई कि उन्होंने तुरन्त बिना किसी नानुनचके ५०० रुपयेका चेक भेज दिया। अगर उन्होंने मुझे बता दिया होता कि यह रकम केन्द्रीय बोर्डके खातेमें से थी तो मैं हरिभाऊसे चेक वापस कर देनेको कह देता।

मैं इस पत्रकी एक प्रति बम्बई बोर्डको सूचनार्थ भेज रहा हूँ।

बम्बई बोर्डको लिखे अपने पत्रकी प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९४) से।

१४४. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय जयसुखलाल,

मैं इस पत्रके साथ ठक्कर बापाको लिखे अपने पत्र[1] की नकल भेज रहा हूँ जो अपना आशय स्वयं स्पष्ट कर देगा।

तुम्हारी यह धारणा किस प्रकार बनी कि मैंने अपने पत्रमें जिन दो मुद्दोंका जिक्र किया था उनको केन्द्रीय बोर्डके खातेमें से वसूलनेका अधिकार मैंने तुमको दे दिया है? अगर मेरा वैसा इरादा होता, तो अपने दस्तूरके मुताबिक मैं यह चीज तुम्हारे ऊपर बिलकुल स्पष्ट कर देता। सच तो यह है कि मैं [रकमकी] स्वीकृतिके लिए स्वयं केन्द्रीय बोर्डको ही लिख देता, जैसाकि मैं कई मामलोंमें कर भी चुका हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९५) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

१४५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं चाहता कि आप बंगालके सवालपर कोई सार्वजनिक वक्तव्य जारी करें, क्योंकि आपने देखा होगा कि मैं स्वयं भी कोई सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दे रहा हूँ, और मैंने आपसे भी पहले आपकी तरह डॉ० विधान [चन्द्र राय] और रामानन्द बाबूको पत्र लिख दिया था। मैं श्रीयुत जे० सी० गुप्तको पत्र नही लिख रहा हूँ, और न मेरे लिए उनको लिखना जरूरी ही है। शायद उनसे मेरी मुलाकात हुई हो, लेकिन मैं कह नहीं सकता कि मेरा उनसे परिचय भी है।

कृपया पुस्तिकामें संशोधन करानेके लिए उसकी मौजूदा प्रतियोंके समाप्त होनेका इन्तजार न करें। आप दो में से एक काम कर सकते हैं, अर्थात् पुरानी प्रतियोंको रोक कर पुस्तिकाका संशोधित संस्करण निकाल दें, और या फिर मौजूदा प्रतियोंमें अपूर्ण प्रस्तावके ऊपर पूरे प्रस्तावका पाठ चिपका दें और प्रस्तावका संशोधित सम्पूर्ण पाठ देते हुए इस आशयका एक सार्वजनिक परिपत्र जारी कर दें कि गलतीसे पुस्तिकामें अपूर्ण प्रस्ताव छप गया था।

मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि आपको अपने व्यापारका भी काम देखना होता है, बल्कि आज तो पहलेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा ध्यानपूर्वक देखना होता है।

'हरिजन सेवक' को निकालनेमें क्या बाधा है?

आपके स्वास्थ्यके बारेमें खबर तो चिन्तोत्पादक है। अगर कोई विश्वसनीय डाक्टर सलाह दे तो आवश्यक ऑपरेशन ही क्यों न करा लें? मैंने अनुभवसे सीखा है कि आहार-नियन्त्रण और उपवासोंकी भी अपनी सीमाएँ हैं। इनसे हमेशा ही लाभ नही होता। और जो भी विश्राम जरूरी हो, आप उसे अवश्य लें। इन मामलोमें ढील-ढाल करनेको पाप मानना चाहिए।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२२) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला। जी० एन० १८९९१ से भी

१४६. पत्र : रुक्मिणीदेवी और बनारसीलाल बजाजको

२१ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिला है। तू अपनी लिखावटको बिगाड़ती जान पड़ती है। यह नहीं चलेगा। राधा खाटपर पड़े-पड़े पत्र लिखती है फिर भी सुन्दर अक्षर लिखती है मानो छपे हुए हों। ऐसी कोई बात नही कि तू भी ऐसे नहीं लिख सकती। बाकी तो हम सब नहीं देख पाये लेकिन छगनलाल अवश्य देख सका कि इस बार तूने पत्रमें रंग भरनेका प्रयत्न किया है। रंग इतना फीका है कि आठमें से छः आँखें इसे नहीं देख पाईं। पत्र लिखते हुए महादेवभाई कहते हैं कि उन्होंने भी देखा था। इससे तुझे जितना सन्तोष मिल सके, लेना। अब इतना तो समझ लेना कि तेरी दस पंक्तियोंको भी कितने ध्यानसे पढ़ा जाता है।

चि० बनारसीलाल,

अब मैं नही भूलूँगा। ऐसे भी 'लाल' तो हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१५२) से।

१४७. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ लीलाधरका पत्र भेज रहा हूँ। यह भूलसे यहाँ आ गया लगता है। ऐसा भी लगता है कि लीलाधरने मेरे पढ़नेके लिए भेजा हो। उससे पूछना और यदि वह कब्जा ले तो दे देना अथवा जैसा बने कर डालना।

दूसरा पत्र रामजी का है। लम्बा तो है ही। ऐसे अन्य पत्र भी तो आ चुके हैं पर यह एक तुम्हें भेज देनेका मन हो गया। इसकी कमाई जैसाकि वह लिखता है इतनी ही है क्या? इसे कुछ समाधान दिया जा सके तो देना। मथुरादास झूठ बोलता होगा, यह बात तो मानने योग्य नहीं जान पड़ती। पर उसने जो-कुछ किया है उस सम्बन्धमें यदि वह कुछ लिखता है तो केवल इसी कारण हम उसपर क्रुद्ध नहीं हो सकते। हाँ, उसमें से जो सार ग्रहण किया जा सके उसे अवश्य ग्रहण करें।

रामजी का पत्र इसके साथ है। पढ़कर उसे दे देना। कलकी डाक तुम्हें मिल चुकी होगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१४८. पत्र : विट्ठल ल० फड़केको

२१ जनवरी, १९३३

चि० मामा,

नारणदासने लिखा है कि वीसापुरके सूतकी खादी बन गई है। वह बहुत जल्द मेरे हाथमें आ जायेगी। मेरे पास ऐसी ही बहुत सारी खादी आई पड़ी है। डमडम जेलके भाई आज ही रिहा हुए हैं, उन्होंने भी वहाँ [जेलमें] बुनी हुई धोती भेजी है। जब यह खत्म हो जाएगी तब तुम्हारी खादी मँगवा लूँगा। मुझे पत्र लिखना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४५) से।

१४९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२१ जनवरी, १९३३

आज सुबहके अखबारोंमें दिल्लीसे एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिसमें मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंको स्वीकृति प्रदान करनेमें सरकारके सामने जो सम्भव कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनकी चर्चा की गई थी। इसका उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा :

यदि यह रिपोर्ट वाइसरायके भावी निर्णयका सही पूर्वानुमान है तो मैं यही कह सकता हूँ कि यह बड़े दुर्भाग्यकी बात होगी। मै इस सुझावका जोरदार ढंगसे खण्डन करता हूँ कि इन विधेयकोंके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य है। यदि अदालती फैसलोंने सन्देहास्पद रिवाजोंको पुष्टता न प्रदान कर दी होती तो शायद कानून बनानेकी कोई जरूरत ही न होती। धार्मिक मामलोमें राज्यके हस्तक्षेपको मैं स्वयं एक असहनीय चीज मानूँगा। लेकिन यहाँ कानूनी अड़चनको हटानेके लिए कानून बनाना अत्यन्त अनिवार्य हो गया है, और जहाँतक मैं देख सकता हूँ, चूँकि यह कानून लोकेच्छापर आधारित होगा, अतः दो मुख्तलिफ राय रखनेवाले दलोंमे संघर्ष होनेका कोई सवाल नहीं पैदा होता।

ऐसा कहा गया है कि स्वीकृति न प्रदान करनेका एक कारण शायद यह होगा कि स्वयं हरिजनोंने अपनी सामाजिक निर्योग्यताओंको दूर करनेके लिए कोई कानून बनानेकी माँग नहीं की है। लेकिन मैं जानता हूँ कि डॉ० अम्बेडकरके प्रतिवेदनमें सभी तरहकी सामाजिक निर्योग्यताओंको समाप्त करनेके हेतु कानून बनानेके सुझावोंकी भरमार है। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि कोई ऐसा नहीं चाहता कि हरिजनों की गरदनपर से सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताओंका जुआ तभी उतारा जाये जब हरिजनोंकी ओरसे एक तूफानी आन्दोलन छेड़ दिया जाये। इससे भी आगे मैं साहस-पूर्वक दावा करता हूँ कि यदि हरिजनोंकी ओरसे मन्दिर-प्रवेशके लिए कोई शोर-गुल नहीं किया गया है तो इसकी जिम्मेदारी मुझपर है क्योंकि मैं उन्हें सलाह देता रहा हूँ कि जब सवर्ण हिन्दू लोग स्वयं ही गत सितम्बरके बम्बई-प्रस्तावको लागू करनेका जबर्दस्त प्रयत्न कर रहे हैं, जिसके अन्तर्गत सवर्ण हिन्दू लोग सार्वजनिक मन्दिरोंको, अन्य चीजोंके साथ, हरिजनोंके लिए खोल देंगे, तब हरिजनोंको कोई व्यापक आन्दोलन नहीं छेड़ना चाहिए।

अन्तमें मैं यह बात दुबारा कहूँगा कि सवर्ण हिन्दुओंके लोकमत द्वारा जिस कानूनकी माँग की जा रही है, उस कानूनको पेश करनेकी स्वीकृति न देनेसे सुधारकी प्रगतिमें बाधा पड़ेगी। इस सुधारकी वांछनीयतामें धार्मिक स्वतन्त्रताके किसी प्रेमीने शंका नहीं की है।

श्री गांधीने इस सुझावपर कोई टिप्पणी करने से इनकार कर दिया कि सरकार शायद एक केन्द्रीय कानून बनानेका निर्णय करे, और कहा कि इस प्रस्तावके बारेमें मैं और तफसीलसे जानना चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-१-१९३३

१५०. पत्र : आर० वी० पटवर्धनको

[२२ जनवरी, १९३३ से पूर्व][1]

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए आभारी हूँ। उसके प्रथम भागके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि मुझे इस आशयके पत्र मिल चुके हैं कि मैं प्राणान्तक उपवास करके सहर्ष उसके परिणाम भोगूँ।

आपके पत्रके अन्य मुद्दोंके सम्बन्धमें मैं आपसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि परमात्माकी प्रार्थना करके पूर्ण विचार किये बिना मैं एक भी बात नहीं करता। परन्तु सनातनी मित्र मुझसे विचार-स्वातन्त्र्यकी जो माँग करते हैं उनसे मेरा यही

१. श्री पटवर्धनको यह पत्र २२ जनवरी, १९३३को मिला था।

निवेदन है कि वे मुझे भी वही बख्शें; क्योंकि पारस्परिक सहिष्णुताके बिना कोई भी सुधार होना असम्भव है।

मैं आपसे यह भी कहता हूँ कि इस सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ व्यावहारिक मार्ग निकल आये, इसके लिए मैं भरसक सारे प्रयत्नोंमें लगा हूँ, परन्तु मुझे अभीतक इस सम्बन्धमें सफलता नहीं मिल सकी है, इसका उल्लेख करते हुए मुझे दुःख होता है।

आपका,
मो० क० गांधी

मराठीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००२१) से।

१५१. पत्र : रतिलाल सेठको

२२ जनवरी, १९३३

भाई रतुभाई[१],

मेरा पत्र तुम्हें मिला होगा। डॉक्टर[२] के नीड़को बिखरनेसे बचानेके लिए तुमसे जो बन सके सो तुम्हें करना होगा। अभी तो बाजी हाथसे निकल गई जान पड़ती है। जब कोई भी मेरे साथ वचन भंग करता है तो मैं असहाय हो जाता हूँ।

यह चिन्ता तो मुझे पहले ही सता रही थी कि इस बीच पद्मा[३] के बारेमें मुझे छगनलालका तार मिला और अब लीलावती[४] का भी मिला है। मेरा आशीर्वाद माँगता है। पद्मा और वरको देखे बिना मैं कैसे आशीर्वाद दूँ? और मेरा खयाल है कि तुम्हारी इच्छा तुरन्त विवाह कर देनेकी है। मेरी मदद करो। मुझे इस स्थितिसे निकालो और जिस बातमें तुम उनका हित देखो सो करो। यदि तुमने मुझसे पूछा न होता और मगनलालने[५] मुझे लिखा न होता तो मेरे कुछ कहनेकी नौबत ही न आती। मुझे क्या अधिकार है? मुझे अपना हितैषी जान जब तुम सब मेरी सलाह माँगते हो तब मुझे जो उचित लगे सो कहना मैं अपना धर्म समझता हूँ। पराये व्यक्तिके साथ अपने सम्बन्धोंकी मर्यादाको मैं जानता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७१) से।

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताके बड़े लड़के छगनलाल मेहताके ससुर।

२. डॉ० प्राणजीवन मेहता, जिनकी ३ अगस्त, १९३२ को रंगूनमें मृत्यु हो गई थी। और चूँकि सम्पत्तिके बँटवारेको लेकर उनके पुत्रोंमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, गांधीजी चाहते थे कि इसका निपटारा मैत्रीपूर्ण ढंगसे हो जाये। देखिए खण्ड ५०।

३. डॉ० मेहताकी पौत्री।

४. डॉ० मेहताकी पुत्र-वधू, छगनलाल मेहताकी पत्नी।

५. डॉ० मेहताका सबसे छोटा लड़का जो इंग्लैंडमें पढ़ रहा था।

१५२. पत्र : रावजीभाई एन० पटेलको

२२ जनवरी, १९३३

चि० रावजीभाई,

तुम्हारा २० तारीखका पत्र मिला। ललिताके[1] साथ अथवा उसके बिना पहले मे ही दिन निर्धारित करके मुझसे मिलने आना। यदि इस बारेमें कुछ लिखना चाहो तो अवश्य लिखना। तुम्हारे पहले पत्र मुझे नहीं मिले है। मिलें और मै जवाब न दूँ, ऐसा नहीं हो सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९८) से।

१५३. पत्र : नारणदास गांधीको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

अलग-अलग दिनों लिखी गई डाक एक ही रोज कैसे मिली यह बात समझमें नहीं आई। मै पता लगाऊँगा। मेरी ओरसे जिस दिन डाक मिले उसके रवाना होनेकी, पत्र परकी और जिस दिन तुम्हें मिले — इस प्रकार तीनों तारीखें अपने पहुँचके पत्रमे लिखा करना। जिस प्रकार तुम्हारे इस पत्रमें है इस प्रकार यदि तारीखें मिलती रहें तो मै यहाँ सुधार करवाता रहूँगा।

तुम्हारी २० की डाक भी मिल गई है। १९ की कल मिल गई।

मेरी तो यह दृढ़ धारणा बन गई है कि कृष्णमैयादेवीके जरिये हम कोई सार नहीं निकाल सकते। थोड़े महीनोंतक उनके लिए मासिक वेतन बाँध देना यदि उचित जान पड़े तो वैसा तुम कर सकते हो। उस समयके बीच महावीरको कोई काम ढूँढ़ लेना चाहिए। माँ-बेटियाँ भी काम करें। इन लोगोंको चार महीनोंके लिए पचास रुपया प्रतिमासके हिसाबसे दे देनेमें और ये लोग जहाँ जाना चाहते हों वहाँतक का किराया दे देनेमें मैं कोई आपत्ति नहीं मानता। ये मेरे विचार है। पर तुम सब लोगोंने मिलकर 'यदि कोई और विचार किया हो तो उसे ठीक मानकर उसपर अमल करना।

१. रावजीभाईकी बहन।

जिन लोगोंने इन्हें पैसा दिया है उन्हें पत्र लिखनेके लिए मैं आज भी कहता हूँ। हमें पता तो चले; और चलना चाहिए।

. . .[१] ने जितना मुझे दुखाया है उतना तुम्हें नहीं। यदि इस बातसे कुछ संतोष प्राप्त हो सके तो पानेका प्रयत्न करना। इस बार तो जैसा-कुछ व्यवहार उसने मेरे साथ अपनाया है उसमें तो उसने हद ही कर दी। तो भी हमें तो अपना ही फर्ज अदा करते रहना चाहिए। उसे आश्रममें आने देनेमें कदाचित मैंने भूल ही की है। उसके क्षयके बारेमें भी मुझे सन्देह है। इस प्रकारकी भूलका कोई पश्चात्ताप नहीं है। अहिंसा धर्मका पालन करनेवाले [साधक]से ऐसी भूलें हुआ ही करेंगी। हम मनुष्यको कैसे परखें? वह आश्रममें रहता तो है न?

इंदिरा अब ठीक होगी। रमणीक कैसा रहता है? भीखाभाई यदि आश्रममें रहते हैं तो भोजन घरपर करते हैं या [आश्रमके] रसोड़ेमें?

आश्रमकी जमीनके लगानके बारेमें तो जैसा उचित जान पड़े सो करना। खादीके विषयमें मामाको लिख रहा हूँ।[२] यहाँ तो मेरे पास आवश्यकतासे अधिक खादी पड़ी है।

अमतुस्सलाम भले ही दिल्ली जाये। उसे डॉ० शर्मा पर विश्वास है और डॉ० शर्माको आत्मविश्वास है। और आजकल तो दिल्लीकी हवा भी बढ़िया है। मुझसे मिल जानेकी उसे बड़ी उत्सुकता है। इस सम्बन्धमें तुम्हें जो ठीक लगे सो करना।

प्रेमाका पत्र मिल गया है। इसलिए अभी इस पत्रमें कुछ नहीं लिखता। उसको लिखे पत्रमें मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं सो देख लेना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल मिलाकर २४ पत्र साथ नत्थी हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ नाम नहीं दिया गया है।

२. देखिए "पत्र : विट्ठल ल० फड़केको", २१-१-१९३३।

१५४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२२ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र आनेपर मै चिन्तामुक्त हुआ हूँ। चिन्ता भी कल्पनाकी प्रजा है। पत्र न मिलनेसे चिन्ता क्यों? और मिला तो मुक्ति क्यों? इसका उत्तर तू माँगे तो मैं नहीं दे सकूँगा; या दूँ तो यह कहूँगा, "इसीका नाम मोह है"।

तू मुझे पागलपनमें कुछ लिखे उससे मैं नहीं अकुलाता। लेकिन मुझे तेरी जो भूल मालूम हो उसे तेरे सामने मै न रखूँ, तो मैं तेरा हितेच्छु, साथी, मित्र या पिता नहीं कहला सकता। मुझे विचित्र तो यह लगता है कि मैं जो बात शुद्ध भावसे कहता हूँ उससे तू रूठती कैसे है? मेरा उपकार क्यों नहीं मानती? हमारे बारेमें किसीके मनमें जो लगे वह यदि हमसे कहे, तो क्या हमें उसका उपकार नहीं मानना चाहिए? मैंने तो यह पाठ बचपनसे सीखा है। इतना तो तू भी मुझसे सीख ही ले। मेरी परीक्षा गलत होगी तो मैं दयाका पात्र बनूँगा; अगर सच्ची होगी तो तेरा भला होगा। तुझे तो दोनों ओरसे लाभ ही होगा; क्योंकि जिसके साथ तेरा पाला पड़ा है, उसे तू ज्यादा अच्छी तरह जान सकेगी। मैं यह चाहता हूँ कि तुम सब मेरे दोषोंको, मेरी कमजोरीको पूरी तरह जानो और उन्हें बतानेकी मेरी हमेशा कोशिश रहती है। मैं अपने विचारोंपर भी परदा डालना नहीं चाहता। उन्हें लिखनेकी मुझमें शक्ति हो, तो मैं उन्हें जरूर लिख डालूँ। लेकिन यह सम्भव नहीं है इसे मैं जानता हूँ। मैं इसे सम्भव ही नही मानता कि विचारोंकी गतिको पहुँच सके ऐसी कोई शक्ति इस जगतमें हो सकती है। कोई उसे मापनेका यन्त्र खोज निकाले तो पता चले। इतना लिखते-लिखते ही तो मेरे विचार ब्रह्माण्डकी पाँच-सात प्रदक्षिणा कर आये।

तू स्वीकार करेगी कि हमारे भीतर जहर है या नहीं, इसकी परीक्षा हम स्वयं कर ही सकते हैं ऐसा कोई नियम नहीं है। जहरका संग्रह करनेकी हमारी इच्छा भले न हो, लेकिन उससे यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे भीतर जहर है ही नहीं। न चाहनेपर भी वह हमपर सवारी करता है। जिसमें क्रोध है उसमें जहर तो है ही, यह बात शायद तू स्वीकार न करे। यह बात यदि तू स्वीकार न करे तो कहना होगा कि जहरका अर्थ हम दोनों एक-सा नहीं करते। बा ने मुझे बहुत बार जहरीला माना है, ऐसा मुझे याद है। मैं उसके आक्षेपसे इनकार कैसे कर सकता हूँ? मैंने अपने वचनोंमें जहर न माना हो इससे क्या? उसे मेरे वचन चुभे, यही मेरे लिए काफी होना चाहिए। जो वचन पूर्णतः सत्य और अहिंसामय हैं, वे कभी किसीको चुभते नहीं। शुरूमें चुभनेवाले मालूम हों यह अलग बात है, लेकिन ऐसा अनुभव करनेवाला ही बादमें उनके अमृतको स्वीकार करता है।

मैं चाहता हूँ कि तू सब बातोंमें अपनी परीक्षिका मत बन। यह हो सकता है कि दूसरे लोग तेरी ज्यादा अच्छी परीक्षा करें। जहरका प्रकरण मैं यहीं खत्म करता हूँ।

तेरे आश्रम छोड़नेका प्रश्न अभी अप्रासंगिक है। मै छूट जाऊँ और आश्रममें आकर रहने लगूँ तभी यह प्रश्न उठ सकता है, तेरे पत्र परसे मै यह समझा हूँ। नीतिकी दृष्टिसे यदि यह प्रश्न उठना हो तो उसी समय उठ सकता है। मैं आश्रममें न रह सकूँ तबतक तो आश्रमकी दृष्टिसे जेलमें होनेके बराबर ही माना जाऊँगा। और, मैंने जब आश्रमसे विदा ली थी तब तुम जो जहाँ थे, वे मेरे वापस लौटने तक वहाँ रहनेके लिए उसी समय बँध चुके थे। अगर मेरा यह मत सही हो तो मेरे वहाँ रहने आनेके बाद क्या करना ठीक होगा, उसका विचार अभी करना समय और शक्तिका दुर्व्यय है।

आश्रमके बारेमें जो समाचार तूने दिए वे मेरे लिये बहुत उपयोगी हैं। लक्ष्मीके बारेमें नारणदाससे बात कर लेना; तुम दोनों विवाह कर देनेके निर्णयपर पहुँचो तो विवाह कर देना चाहिए। वह बेचैन रहती हो तो भी गहराईमें उसकी विवाह करनेकी ही इच्छा होना सम्भव है। अब वह विवाहके योग्य तो हो ही गई है। और विवाह उसे करना ही है। मेरे छूटनेके मोहको बिल्कुल मिथ्या मानना चाहिए। लक्ष्मीको तू अच्छी तरह समझ लेना, उसकी 'हाँ' की राह देखनेतक रुकना जरूरी नहीं है। इस सम्बन्धमें लक्ष्मीबहन और दुर्गाबहनकी सलाह लेना ठीक लगता है। वे तेरी अपेक्षा इस बातको ज्यादा समझेंगी। विवाह करनेवालीके मनमें क्या चलता है, यह तेरे अनुभवसे बाहर है, ऐसा तुझसे मैं समझा हूँ। अर्थात् तुझे विवाह करनेकी इच्छा भी नहीं हुई, और न होती ही है। ऐसी कुछ कुमारियोंको मैं जानता हूँ। दूसरी प्रयत्नपूर्वक कुमारी रहती हैं। वे विवाहके अर्थको जानती हैं।

तेरी तबीयतके बारेमें तो क्या कहूँ? घी की आवश्यकता तो लगती ही है। बाहर गई कि तेरा वजन बढ़ा, आश्रममें आई कि प्राप्त किया हुआ खोया। यह दोष तुझे दूर करना ही चाहिए। दोष कैसे दूर हो यह तो तू ही जान सकती है। बोलनेमें तो अब कोई कठिनाई बिलकुल नहीं आती होगी।

मेरी समझसे तो मैं किसीको अपने जालमें फँसाना नहीं चाहता। सब मेरे ही पुतले बन जायें, तो मेरा क्या हाल हो? ऐसे प्रयत्नको भी मैं तो बेकार समझूँगा। लेकिन शायद मैं किसीको फँसानेका प्रयत्न भी करता होऊँ, तो तुझे अपना आत्म-विश्वास क्यों खोना चाहिए? तू तो सावधान है ही, ऐसा तेरे पत्रोंसे साबित होता है; हाँ, इतना सच है कि तुझे मेरे जालमें फँस जानेका डर हमेशा रहा करता है। यह बुरा चिह्न है। निश्चय करनेके बाद डर किस लिए? अथवा क्या यह सम्भव नहीं है कि 'फाँसना' शब्दका अर्थ ही हम एक-सा न करते हों?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२३) से।

१५५. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२२ जनवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

चित् और चित्त, ये दो भिन्न शब्द हैं लेकिन चित्तकी व्युत्पत्ति चित्‌से हुई है। चित् अर्थात् ज्ञान। जिसे ज्ञान है अथवा जो ज्ञान प्राप्त करनेके योग्य है, वह अर्थात् आत्मा; ऐसा अर्थ किया जा सकता है। वीतराग पुरुषका चित्त प्रसन्न रहता है अर्थात् आत्मा प्रसन्न रहता है। चित्तका अर्थ मन भी होता है। वाक्य अथवा श्लोकके प्रसंगको देखकर अर्थ लगाया जा सकता है। ध्यानयोगका भावार्थ देते समय योग शब्दका बार-बार प्रयोग करना पड़ता है। योग अर्थात् कर्म कौशल, यह याद रखना चाहिए। कर्म अर्थात् अनासक्त कर्म।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५० ए०) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या

१५६. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। तू धीरे-धीरे प्रगति करेगी। कोई हमारी निन्दा करे उसका हमें बुरा नहीं मानना चाहिए। तू किसीसे 'निदक बाबा वीर हमारा' वाला भजन सीख लेना। इसका तात्पर्य यह है कि जो हमारी निन्दा करता है वह हमारा उपकार करता है। मुझे लिखती रहना।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७२) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१५७. पत्र : विमलचन्द्र वी० देसाईको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नानु,

तूने तो लाल स्याहीसे यथासम्भव सुन्दर अक्षरोंमें मुझे खादीके कागजपर पत्र लिखा है इसलिए मुझे भी बढ़िया कागजपर पत्र लिखना चाहिए न? यह कैसा पत्र है? और लिखावट कैसी है? तू खूब कसरत करता है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६२) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१५८. पत्र : वालजी गो० देसाईको

२२ जनवरी, १९३३

चि० वालजी,

भले ही तुमने 'ईशुचरित'[1] का प्रकाशन किया। लोग तो उसका स्वागत करेंगे ही। कबीरका दोहा भी ठीक है। तथापि, तुम्हारे मूल्यांकनमें कहीं त्रुटि है। यह कोई भारी दोष है ऐसी बात नहीं है, केवल इतनी ही कि मुझे तुमसे अधिककी आशा है। तुमने तो जो बना सो दे दिया, इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। और तुम इससे भी अधिक कुछ कर सकते हो, इसके बारेमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं है। लेकिन उसकी चिन्ता क्या की जाये। मुझे तो यह बात पसन्द है कि मैं तुम्हें हमेशा ज्यादा नम्बर देता रहूँ। यदि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाये तो तुम्हारे ये गुण बाहर भी प्रकट हो जायें। भले ही अभी तो यह मनोरथ-मात्र ही रहें। मुझे थोड़ी प्रतियाँ भेजना — २५। स्वास्थ्य सुधरनेपर ही वहाँसे हटना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४४६) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१. इसकी गांधीजी द्वारा की गई आलोचनाके लिए देखिए खण्ड ५१, पृ० २७५-७७।

१५९. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२२ जनवरी, १९३३

बालक और बालिकाओ,

अब तुम मुझसे लम्बे पत्रकी अपेक्षा न करना।

पूज्य अनुसूयाबहनके यहाँ किसने खाना पकाया था? वहाँ तुमने विवेक और मर्यादापूर्ण आचरण किया था न? मौनका पालन किया था? क्या खानेके लिए बार-बार माँगा था? क्या अपने बर्तन तुमने खुद ही साफ किये थे? पकौड़ियाँ खाई इसकी कोई चिन्ता नहीं। लेकिन अब यदि इस तरह जानेका प्रसंग आये तो पहलेसे ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि "कृपया आप हमें यह दें और यह न दें।"

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१६०. पत्र : शारदा सी० शाहको

२२ जनवरी, १९३३

चि० शारदा,

यदि कोई मनुष्य खादी पहने तो वह अपनी सादगीके लिए, भूखे मरनेवालोंकी मददके लिए, इसकी [खादीकी] पवित्रताके लिए पहने। यह ज्ञान विकारोंका शमन करनेवाला है। इसलिए ज्ञानपूर्वक प्रयोगमें लाई जानेवाली खादी ब्रह्मचर्यकी पोषक है, ऐसा मैं कहूँगा, समझी न?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६२) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

१६१. पत्र : अमतुस्सलामको

२२ जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला। डाक्टर शर्माके खतके बाद तुमको देहली न भेजना गुनाह होगा। इसलिए सीधी देहली चली जाओ और वापसीके वक्त मुझे मिलकर आश्रममें जाना। तुम्हारे खामोशीका सबक थोड़ा सीखना चाहिए। यह भी याद रखो कि हम गरीबीका दावा करते हैं। गरीब लोग अपने साथियो, रिश्तेदारोंको मनसे ही मिलकर खुश रहते हैं। उनको रेलका खर्च कौन देगा? इसलिए जल्दीसे देहली जाओ, अच्छी हो जाओ और मुझे आकर भेंटो। खुदा तुम्हारी हिफाजत करेगा। मुझे लिखा करो। हरिजन बच्चोंकी[1] फ़िकर मत करो। आखिर तो सबको देखनेवाला खुदा ही है।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७४) से।

१६२. तारका मसविदा : रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्रीको

[२२ जनवरी, १९३३ या उसके पश्चात्]

आपका पत्र मिला[2]। निश्चय ही मद्रास जाइए और यहाँ महीनेके अन्ततक आ जाइए।

गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२४१) से।

१. अमतुस्सलाम अहमदाबादके निकट वाडजमें हरिजनोंके बीच सेवाकार्यमें लगी हुई थीं।

२. २२ जनवरी, १९३३ को; श्री शास्त्रीने अंग्रेजी **हरिजन सेवक** के लिए काम करना स्वीकार कर लिया था और दिल्लीमें अमृतलाल वि० ठक्करके पास आकर मिलनेसे पहले उन्होंने अपने परिवारको मद्रास पहुँचा आनेकी गांधीजीसे अनुमति माँगी थी।

१६३. पत्र : पंजाब प्रान्तीय छात्र-संघको

२३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा उसके साथ संलग्न आपके संघके प्रस्तावकी प्रतिके लिए धन्यवाद। एक नाम-विशेषके बारेमें प्रस्तावमें जो कहा गया है उसपर मैंने ध्यान दिया है। जबतक [सवर्णोंमें उनका] पूर्ण विलय न हो जाये तबतक कोई नाम होना तो अवश्यम्भावी है। प्रश्न केवल यही है कि तथाकथित अस्पृश्योंको बतानेके लिए कौन-सा नाम हो; और उन्हींमें कुछ लोगोंने 'हरिजन' नाम सुझाया था। चूँकि यह नाम उनकी स्थितिके बिलकुल उपयुक्त बैठता था, अतः मैंने उसे स्वीकार कर लिया। मानवजाति जिनका त्याग कर देती है वे ईश्वरके प्रियजन बन जाते हैं, और 'हरिजन'का शब्दशः यही अर्थ है।

मैं आशा करता हूँ कि [हरिजन सेवाके] अनुष्ठानमें आप यह प्रस्ताव पास करके ही सन्तोष नहीं कर लेंगे, बल्कि यह आनेवाली ठोस और रचनात्मक सेवाकी शुरुआत और उसका बयाना स्वरूप है।

हृदयसे आपका,

उपाध्यक्ष
पंजाब प्रान्तीय छात्र-सघ
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९६) से।

१६४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२३ जनवरी, १९३३

सुज्ञ भाई,

आप ठीक समयपर आये हैं। उम्मीद है कि आप अच्छा स्वास्थ्य लेकर लौटे हैं। हरिजन सेवाकार्यमें आपका योगदान सबसे ज्यादा हो, मैं आपसे यह माँग सकता हूँ न? काम भले ही आप अपने ढंगसे करें। लेकिन आपका ढंग ऐसा होना चाहिए कि वह दूसरोंकी गतिसे आगे बढ़ जाये। यदि आप चाहेंगे तो बहुत-कुछ कर सकेंगे। अवश्य करना। सबसे पहले भाम[1] की ओर ध्यान देना। ढेढ़ और चमारसे मुर्दा मांस

१. मरे ढोरोंके मांस, चमड़े आदिका उपयोग करनेके बदलेमें हरिजनोंसे लिया जाने वाला दाम जो एक प्रकारका कर-जैसा बन गया था।

खानेकी आदत छुड़वानेके लिए भामके सम्बन्धमें बहुत फेरबदल करनेकी जरूरत है। हम सब कुशलपूर्वक हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२३) से।

१६५. पत्र : मनु गांधीको

२३ जनवरी, १९३३

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र मिला। तुझे अपने अक्षर बारीक नहीं बनाने चाहिए, और उतावलीसे नही लिखना चाहिए। सब अक्षर साफ होने चाहिए।

यह बा का प्रेम है जो उससे लिखवाता है कि तू उसके पास रहे तो बा को अच्छा लगेगा। लेकिन तू सुखपूर्वक वहीं रहना। शरीर अच्छा रहे और मन शान्त रहे तो मुझे तो तूने सब कुछ दे दिया। बा को पत्र लिखती रहना।

मौसियोंकी सेवा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५१९) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला

१६६. पत्र : बलीबहन एम० अडालजाको

२३ जनवरी, १९३३

चि० बली,

कमु[1] लिखती है कि तेरे पास समय नहीं है इसीसे तूने पत्र नहीं लिखा। यह बात मेरे गले नहीं उतरती। तुझे एक छोटी परची लिखनेका भी समय नहीं मिलता, यह मैं कैसे मान लूँ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५२०) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला

१. कुमीबहन टी० मनियार, प्रेषीकी बहन।

१६७. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

२३ जनवरी, १९३३

आदरणीय रणछोड़भाई,

मैं आपको यों जल्दी ही छोड़ देनेवाला नहीं हूँ। आप तो कह ही चुके हैं कि मन्दिर-प्रवेशके अलावा अन्य सब बातें आपको ग्राह्य है। मन्दिर-प्रवेशके लिए मैं भले ही अपने प्राण त्याग करूँ लेकिन अन्य सब कार्य तो आपको धर्म जानकर करने ही होंगे। यदि आप हमारी मदद करें तो हम हरिजनोंसे मुर्दा मांस तुरन्त छुड़वा सकते है। सब स्कूलों, अस्पतालों, कुँओं आदिका समुचित बन्दोबस्त होना चाहिए। आप ही ने तो कहा है कि यदि वे नारायणका नाम लेते है, स्नानादि करते हैं तो वे हमारे-जैसे ही हैं; आप कृपा करके उन्हें वैसा बनानेमें हमारी सहायता करें। फिर भले ही मुझे जितनी गालियाँ आप देना चाहें, दें। मैं उनका स्वागत करूँगा। मात्र मेरा कार्य करना। उम्मीद है, आपको मेरे उत्तर[1] मिल गये होंगे।

मोहनदासके प्रणाम

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२२२) से; सौजन्य : छगनलाल गांधी

१६८. पत्र : गोरडियाको

२३ जनवरी, १९३३

भाई गोरडिया,

हरिजन सेवाकार्यमें ठाकोरसाहब[2] और आप क्या कोई योगदान देते हैं? हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलनेके सम्बन्धमें कदाचित आपको जनताके क्रोधित हो उठने का भय हो लेकिन भामके बारेमें क्या है? मृत पशुओंकी व्यवस्था किस तरहसे होती है? आप ढेढ़ लोगोंसे उसके पैसे लेते हैं अथवा नहीं? यदि आप उनसे मुर्देका मांस खानेकी आदत छुड़वाना चाहते हैं तो आपको उन्हें मजदूरी देनी चाहिए और ढोर पर होनेवाली क्रियाकी देखरेख करनी चाहिए। यह जरा मेहनतका काम है लेकिन इसमें नुकसान नहीं है। कचहरीमें, अस्पतालमें उनकी क्या हालत होती है? क्या आप इसका विवरण देंगे?

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८१-२

१. देखिए "पत्र : रणछोड़दास पटवारीको", ११-१-१९३३।

२. एक छोटी-सी रियासतके दीवानकी पदवी।

१६९. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

बाहरसे आहार मँगवानेकी अनुमति प्राप्त होनेपर यदि कोई व्यक्ति शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए बाहरसे आहार मँगवाता है तो उसमें वह दोष नही करता। लेकिन जो व्यक्ति [जेलके] भीतर मिलनेवाले आहारसे ही सन्तुष्ट रहता है वह वन्दनीय है। पर जो व्यक्ति भीतरसे मिलनेवाले आहारसे अपने शरीरको स्वस्थ रख ही नही सकता और जिसे बाहरसे मँगवानेकी छूट है और जो सहज ही बाहरसे आहार प्राप्त कर सकता है यदि वह वैसा न करके अपने स्वास्थ्यको बिगड़ने देता है तो वह दुराग्रही है; कदाचित हम उसे अव्यावहारिक व्यक्ति भी कह सकते हैं।

शिखा रखनेमे हानि है ऐसा मुझे तो नहीं लगता। यह रिवाज दीर्घकालसे चला आ रहा है। इस रिवाजको तोड़कर सुधारकको अपने सिर विपत्ति नही लेनी चाहिए। हरेक रिवाजके पक्षमें सबल कारण न मिलनेपर भी यदि वह लोकप्रिय हो और उससे नीति भंग न हो तो उसका पालन करना उचित है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८३

१७०. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

विकारको वशमें करनेके लिए अन्तर्मुख होनेकी आवश्यकता होती है। उन्नतिका मूल मन्त्र अपने आपको समर्पित करना है। उन्नतिका अर्थ है आत्मज्ञान।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८२

१७१. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

उपवाससे मेरी तबीयतको कोई नुकसान नहीं पहुँचा। वृद्धावस्थामें भी उपवास को पचाया जा सकता है अर्थात् उससे शरीरको कोई नुकसान नहीं होता। और फिर जो उपवास आध्यात्मिक दृष्टिसे किया जाता है उसको पचानेमे कोई दिक्कत नही होती। हाँ, शरीर अवश्य दुर्बल हो जाता है क्योंकि [वृद्धावस्थामे] शरीरमें चरबी कम होती है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८३

१७२. पत्र : एस० जे० सोमवंशीको

२३ जनवरी, १९३३

भाई सोमवंशी,

आपका प्रेममय पत्रमें आदिसे अंततक पढ़ गया हूँ, पुस्तक[1] मिले हैं, महाराजका जीवन-वृत्तान्त सुन गया। पुस्तकमें जो हिस्सापर चिह्न लगाए हैं वह करीब पढ गया। दोनोंका असर न पड़ा। उसका बड़ा कारण यह है जिसको आज हम अस्पृश्य मानते हैं उनको अस्पृश्य माननेका आधार हमें नहीं मिलता है। और जिस तरह उनके साथ बर्ताव होता है उसके लिये भी आधार नहीं है।

मेरा दोष क्या है? अस्पृश्यता निवारणकी जो बात मैं आज करता हूं वह मैं ४५ वरससे कहता आया हूँ। २५ वर्षके पहले मेरे विचार सारे भारतवर्षमे फैल गए। कही-कहीं उसका विरोध सुना सही लेकिन मेरे पर किसी ने रोष नहीं किया था। अब मैं उसके लिये तप करनेको तैयार हो गया हूँ यह दोष माना जाता है। लेकिन शास्त्र और संतोंने सिखाया है कि जब-जब धर्मका अभाव होवे तबतब तपश्चर्या करना आवश्यक हो जाता है और मैं उसीको करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इसमे दुराग्रहकी कोई बात नहीं है। प्रतिदिन जो मनुष्य अपनी भूल दुरुस्त करनेको तैयार है वह दुराग्रह कैसे कर सकता है?

संतोंने यही बातपर क्यों भार नही दिया ऐसा कहकर उनको और मुझको आप अन्याय करते हैं। संत लोग सब दोषोंको हटानेका प्रयत्नतक नहीं करते हैं

१. एक मराठी सन्तकी जीवनियाँ।

न कर सकते है। वे धर्मका संचार करते हैं और ऐसा करते हुए कुछ-न-कुछ दोष को हटानेकी चेष्टा करते है। अवतार भी सर्व दोषका नाश नहीं कर पाते, उस युगके महादोषको लेकर अपना कार्य करते है।

अहिंसक प्रवृत्तिका एक बड़ा लक्षण यह है कि वह लोकमतको साथ रख कर ही चलती है। यह प्रवृत्ति भी लोकमत देखनेके लिये ही है ऐसा समझा जाय। उच्चतम धर्म भी लोग ग्रहण करनेको तैयार नही होंगे तो उनके लिये निरर्थक है। अहिंसक प्रवृत्ति बलात्कारसे चल ही नहीं सकती।

आपने यह ठीक कहा है कि मै शुद्ध मार्ग बतानेकी प्रार्थना ईश्वर प्रति किया करूँ। यह निरतर करता हूँ और मेरा तो विश्वास है कि विना उसके आदेशके कुछ भी नहीं करता हूँ। आप निश्चित रहें।

मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९७)से।

१७३. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

मौनका अर्थ न बोलना, न इशारा करना, न देखना, न सुनना, न खाना, न पीना अर्थात् एकान्तमे रह अन्तर्ध्यान होना। मौनके दिन ईश्वर ध्यान होना चाहिए। मौनका हेतु अंतर्ध्यान होता है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८२

१७४. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको

२३ जनवरी, १९३३

प्यारी वहन,

तुम्हारा खत मिला। खुदाकी क्या मेहरबानी कि डाक्टर साहबको इतनी जल्दी से आराम हो गया और आपरेशनकी जरूर[त] ही न रही। मेरी उम्मीद है कि आजकल तो बिलकुल आराम लेंगे। मुझे लिखा करो। डाक्टर साहबसे कहो हम सब उनको याद करते है।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७) से।

१७५. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२३ जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिल गया है। 'टक' ली माने ठीक लगती है। अगर मै हरुफ अच्छे निकले और गलती एक भी न रहे तब तक ठहर जाऊं तो कभी उर्दू नही लिख सकूँगा। मुझे सिखाती है उसके साथ वक्त भी डाक मे भेज दो तो गलतियां नहीं रहने दूँगा। अब्बाजान और अम्माजानको आदाब, तुमको बोसा भेज दूँ? एक शर्त है तुम्हारे बुखारको रुखसत करना होगा। क्यो थोडा और आराम लेकर बिलकुल अच्छी नहीं हो जाती? अच्छी रहेगी तो काम तो बहुत है। जो सेवा ही करना चाहते हैं उसको सेवाकी कमी भी नहीं होती।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६६१) से।

१७६. वक्तव्य : वाइसरायके निर्णयपर

२४ जनवरी, १९३३

देशके सामने अस्पृश्यता-सम्बन्धी जो दो विधेयक हैं उनके बारेमें सरकारका निर्णय[1] पढ़नेके बाद मैं इस बातपर खेद व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता कि सरकारने इन दोनों विधेयकोंपर विधानमण्डल और देशमें चर्चा होनेकी अनुमति देना ठीक नहीं समझा।

डॉ० सुब्बारायनका विधेयक मन्दिर-प्रवेशके विशिष्ट प्रश्नतक ही सीमित है और सो भी केवल मद्रास प्रेसिडेन्सीकी हदतक, और प्रत्येक मन्दिरको खोलने न खोलनेका निर्णय उन लोगोंके बहुमतपर ही निर्भर है जो मन्दिर-प्रवेशके अधिकारी हैं। अतः इससे एक पक्ष और दूसरे पक्षके बीच संघर्षकी सम्भावना लगभग नगण्य हो जाती है, बशर्ते कि सुधारक लोग अपने तईं इस बातकी कोशिश करें कि अत्यन्त सूक्ष्म अल्पसंख्यक लोगोंतककी धार्मिक भावनाओंका ध्यान रखा जाये, जैसाकि मेरे समझौता-प्रस्तावमें कहा गया है। लेकिन ऐसा होना नहीं था। विशुद्ध सनातनी दृष्टिकोणसे अगर देखा जाये तो मद्रास विधेयक दो बुराइयोंमें से अपेक्षतया कम बड़ी बुराई था। सुधारक लोगोंके लिए भी उससे निपटना अपेक्षतः सरल था, और शर्त

१. देखिए पृष्ठ १५ की पाद-टिप्पणी ३। इसपर गांधीजी की प्रतिक्रिया के लिए देखिए परिशिष्ट ६।

पूरी न होनेपर उपवास करनेके लिए वचनबद्ध बन्धक व्यक्तिके नाते मेरे लिए व्यक्तिश: भी सरल था, क्योंकि वाइसरायकी स्वीकृति मिल जानेपर अधिक सम्भावना इसी बातकी थी कि गुरुवायूरके सवालपर होनेवाला अनशन शायद नही किया जाता। लेकिन भारत सरकारकी इच्छा और ही थी। मैं इसमें भी ईश्वरका हाथ देखनेकी कोशिश कर रहा हूँ। वह मेरी पूरी परीक्षा लेना चाहता है। यदि उसकी ऐसी इच्छा है तो उसे मुझको पर्याप्त शक्ति भी देनी होगी, क्योंकि जो लोग उसके सामने पूर्ण आत्मसमर्पण कर देते है उनका उसने सदा साथ दिया है।

अखिल भारतपर लागू होनेवाला विधेयक छोटा और भला-सा है क्योंकि उसका स्वरूप एक तरहसे नकारात्मक है। वह सुधारकोंको सीधी सहायता नहीं प्रदान करता। यह विधेयक तो सिर्फ किसी ऐसे सनातनी की मदद करनेसे इनकार करता है जो धर्म निरपेक्ष अदालतोंके जरिये अपनी इच्छाको सारे हिन्दू-समाजपर थोपना चाहता हो और एक ऐसी प्रथाको लागू कराना चाहता हो जो हिन्दू-समाज, हिन्दू शास्त्रों और मनुष्यकी अंतर्निहित नैतिक भावनाके विपरीत है। वह अस्पृश्यताके पीछे जो कानूनका समर्थन है, उसे समाप्त कर देता है लेकिन अस्पृश्यताके सामाजिक और धार्मिक आधारको उसके हालपर छोड़ देता है। इस विधेयकको दी गई स्वीकृति हिन्दू-धर्म और सुधारकोंके लिए अनजानेमें दी गई एक चुनौती है। यदि सुधारक लोग अपने प्रति सच्चे है तो हिन्दू धर्म अपनी हित-रक्षा स्वयं कर लेगा। इस प्रकार से विचार करें तो भारत सरकारका निर्णय तो ईश्वरका वरदान है। यह समस्याको स्पष्ट कर देता है। इसके चलते भारतमे चल रहे मौजूदा प्रबल नैतिक संघर्षको समझ सकना भारतके और दुनियाके लोगोंके लिए आसान हो गया है। यह आन्दोलन जिस मंचकी ओर झिझकते कदमोंसे बढ़ रहा था, उस मंचपर इस निर्णयने उसे एक ही झपाटेमें पहुँचा दिया है।

आजीवन सुधारवादी और लड़ाकू व्यक्ति होनेके नाते मुझे इस चुनौतीको पूरी विनय भावनासे स्वीकार करना चाहिए और इसी प्रकार प्रत्येक उस हिन्दूको भी करना चाहिए जिसने श्रद्धेय पंडित मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामे स्वीकृत प्रस्तावको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार किया था।[1] वह प्रस्ताव यहाँ फिरसे दोहराना उपयुक्त होगा :

> **इस सम्मेलनका संकल्प है कि आजसे हिन्दुओंमें किसीको जन्मके कारण अछूत नहीं समझा जायेगा और जिन्हें अभीतक अछूत समझा गया है, उन्हें सार्वजनिक कुओंसे पानी भरने तथा सार्वजनिक सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओंका उपयोग करनेके वे सभी अधिकार होंगे जो अन्य हिन्दुओंको है। इस अधिकारको पहला मौका मिलते ही वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी जायेगी और यदि इसे स्वराज्य सरकारकी स्थापनासे पहले ही मान्यता नहीं मिली तो यह स्वराज्य पार्लियामेंटके सर्वप्रथम कार्योंमें से एक होगा।**

१. २५ सितम्बर, १९३२ को; देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८-९ भी।

यह सम्मेलन इस बातको भी स्वीकार करता है कि सभी हिन्दूनेता समस्त वैधानिक और शान्तिपूर्ण तरीकोंसे — मंदिर-प्रवेश-सहित — उन सभी सामाजिक निर्योग्यताओंको यथाशीघ्र दूर करवायेंगे जो प्रचलित रिवाजने आज तथाकथित अछूत वर्गपर लाद रखी है।

पाठकगण इटैलिक्स[1] मे छपे शब्दोंपर कृपया ध्यान दें। प्रस्तावमें इस बातका इरादा जाहिर किया गया है कि तनिक भी सम्भव हो तो स्वराज संसदकी स्थापना से पूर्व ही कानूनके लिहाजसे अस्पृश्यताको समाप्त कर दिया जाये। यह अवसर अब प्रस्तुत हो गया है। हिन्दू-धर्मके सम्मानका या हरिजनोंको दिये गये वचनके सम्मान का जिसे ध्यान है, ऐसा एक भी हिन्दू इस अवसरको हाथसे निकलने नही देगा। यहाँतक कि सनातनी लोगोको भी, यदि वे अखिल भारतीय विधेयकका वैसा ही अर्थ करेंगे जैसाकि मै करता हूँ, उसका प्रतिरोध नही करना चाहिए। कारण, क्या सनातनियोंने मुझसे यह नही कहा है, क्या यही बात उन्होंने अपने लेखोंतक में नही कही है कि हरिजनोंको सवर्ण हिन्दुओंकी भाँति ही राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्रदान किये जानेपर उनको कोई आपत्ति नही है? दूसरे शब्दोंमें हरिजनोको अन्य लोगोंकी तरह कानूनकी निगाहमे समान दर्जा मिले, इसमें सनातनि-योंको कोई आपत्ति नहीं है। यदि धार्मिक दृष्टिसे हरिजनोको बराबरीका दर्जा नही मिलता तो यह बात सनातनी जानें और उनकी आत्मा जाने। अपनी आत्माकी बातको दूसरे मनुष्योंपर थोपनेमे सनातनियोंकी मदद करनेमें कानूनका सहारा नही लिया जाना चाहिए।

जिन सनातनी शास्त्रियोसे मिलनेका मुझे सौभाग्य मिला वे केवल मुझे इस आशयके श्लोक ही सुना सके कि यदि कोई व्यक्ति किसी अस्पृश्यके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाये तो उसे या तो एक घूँट जलसे आचमन कर लेना चाहिए या स्नान कर लेना चाहिए। किसी सार्वजनिक स्थानमे, जिसमें मन्दिर भी शामिल है, किसी अस्पृ-श्यके प्रवेश करनेपर उसको दंड देनेका कही कोई उल्लेख नहीं दिखाई पड़ता। और किसी भी हालमें, केवल किसी पुरोहितवादी नियमका उल्लंघन करनेका अपराध करनेवाले अस्पृश्य व्यक्तिको दडित करनेके लिए धर्म-निरपेक्ष कानूनकी मदद नहीं ली जानी चाहिए। वर्तमान विधेयक कानून द्वारा ऐसे किसी मामलेमे हस्तक्षेप करने-को असम्भव बना देता है।

विधेयकके अन्तर्गत मन्दिरोंका खोला जाना आपसी समझौतेसे होगा। जहाँ मन्दिर जानेवाले लोगोंकी राय पूरी तरह सुधारोंके लिए तैयार न हो गई हो, वहाँ स्वभावतः हरिजन लोग मन्दिरमें प्रवेश नहीं कर सकते। जहाँ लोकमत तैयार है वहाँ बहुसंख्यक लोगोंकी इच्छाको विफल करनेके लिए चन्द व्यक्ति कानूनकी दुहाई नही दे सकते। लेकिन सनातनी लोग जो चाहे फैसला करें, लेकिन अब मन्दिर-प्रवेशके आन्दोलनका क्षेत्र धुर दक्षिणमें गुरुवायूरसे लेकर उत्तरमें हरिद्वारतक व्यापक हो

१. हिन्दी अनुवादमें यहाँ इटैलिक्सवाले अंशको रेखांकित करके सूचित किया गया है।

गया है। और मेरा अनशन, हालाँकि वह अभी भी मुल्तवी ही है, अब केवल गुरुवायूरपर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अब वह स्वतः सभी मन्दिरोंको सामान्य रूपसे शामिल करता है। कहनेका अर्थ यह कि मेरा अनशन अब मद्रास-विधेयकके सन्दर्भमें, जिसमे केवल गुरुवायूर ही शामिल होता था, सुधारकोंके कार्योंपर नहीं, बल्कि अखिल भारतीय विधेयक, जो गुरुवायूर सहित सभी मन्दिरोंपर लागू होता है, के सन्दर्भमें उनके कार्योंपर निर्भर करता है।

यही बात मेरे जीवन-भर रही है। एक कदमके बाद मुझे सहज ही अगला कदम उठाना पड़ा है, भले ही मैं चाहूँ या न चाहूँ। मैंने अपनी दिलचस्पी केवल मद्रास-विधेयकतक सीमित कर रखी थी। मेरे लिए वही काफी था। यहाँतक कि पिछले शनिवारको, अर्थात् २१ जनवरीको जब एसोसिएटेड प्रेसके संवाददाताने एसोसिएटेड प्रेसके दिल्ली-स्थित संवाददाताकी भविष्यवाणीके बारेमें मेरी राय पूछी तो मैंने मद्रास-विधेयककी[1] तुलनामें अखिल भारतीय विधेयक कैसा है, इसके बारेमें कोई मत व्यक्त करनेसे इनकार कर दिया था। मैं एक ज्यादा बड़ी और ज्यादा गम्भीर आकस्मिक स्थितिके सहसा उत्पन्न होनेपर उसका मुकाबला करनेको तैयार नहीं था। लेकिन अब चूँकि वह स्थिति मेरे सामने घटित तथ्यके रूपमें आ खड़ी हुई है तो मैं पीछे नही हट सकता।

सरकारी घोषणा ऐसी है जिससे लोग सोच सकते हैं कि यह विधेयक एक लम्बी अवधितक चलने वाली यन्त्रणा है, और शायद वह कभी देशका कानून नही बन सकेगा। सरकार इतनी अधिक सावधानी बरतकर अपने दृष्टिकोणसे ठीक ही कर रही है। लेकिन अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है, यदि हिन्दुओंकी आत्मा उसके विरुद्ध वास्तवमें जाग्रत हो जाये तो यह विधेयक अविलम्ब कानून बन सकता है। विधेयकके पक्षमें बिलकुल स्पष्ट ढंगसे व्यक्त किये गये हिन्दुओंके लोकमतका प्रतिरोध सरकार नहीं कर सकती। सनातनियोंके विरोधके बावजूद मेरा विश्वास है कि हिन्दुओं की बहुत बड़ी संख्या अस्पृश्यताके विरुद्ध है। भले ही वह उसे समाप्त करनेके लिए कर्मठतापूर्वक कोई कदम न उठाये। यही विश्वास है जो मुझे सम्बल देता है। अस्पृश्यता एक गलत और अन्यायपूर्ण चीज है, इस बातको समझानेके लिए वर्षोंसे जो काम किया जा रहा है, यदि उस कामके ही हिन्दू लोग अभीतक कायल नही हुए हैं तो आगे किये जानेवाले साधारण प्रचारसे उन्हें कायल नहीं किया जा सकेगा। तब, जैसाकि इससे पहले किया जा चुका है, उन्हें कायल करनेके लिए प्रायश्चित्त रूपी असाधारण प्रचारकी जरूरत है। मुमकिन है कि हिन्दुओंको उद्दीप्त और प्रेरित करनेके लिए एक ऐसे व्यक्ति द्वारा अनशन करनेकी जरूरत है जिसने अपने जीवनको उनके जीवनके साथ एकाकार कर दिया है। यदि यह बात हो, तो फिर ऐसा ही होगा। या तो उन्हें अपने बीचसे अस्पृश्यताको हटाना होगा और या फिर मुझे।

मैं हजारवीं बार कहता हूँ कि मेरी दृष्टिमें और मेरे साथी कार्यकर्ताओंकी दृष्टिमें अस्पृश्यता-निवारण एक अपरिहार्य धार्मिक आवश्यकता है, और चूँकि हरिजनोंके

१. देखिए "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", २१-१-१९३३।

लिए मन्दिरोंको खोलना एक शुद्ध आध्यात्मिक कार्य है, इसलिए वही अस्पृश्यता-निवारणकी कसौटी है। यही एक चीज है जो हरिजनोंको ऐसा नया जीवन और नई आशा प्रदान कर सकती है जिसे मात्र आर्थिक उत्थान प्रदान नहीं कर सकता। मन्दिर-प्रवेशके पीछे-पीछे आर्थिक और अन्य सभी प्रकारका उत्थान उसी प्रकार आयेगा जिस प्रकार भोरके पीछे-पीछे प्रकाश आता है। हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलनेका एक अकेला काम हिन्दू-धर्मको शुद्ध कर देगा और सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनों, दोनोंके हृदयोंको नया प्रकाश ग्रहण करनेके लिए खोल देगा।

मन्दिर-प्रवेशका सन्देश प्रत्येक हरिजनके अंतरको स्पर्श करेगा। किन्तु आर्थिक और शैक्षणिक उत्थानका प्रभाव केवल उन्हीं हरिजनोंपर पड़ेगा जिन्हें उसका सीधा लाभ होगा। मेरी यह बात वे लोग आसानीसे समझ सकते हैं जो मेरी तरह मानते हैं कि मन्दिर हिन्दू-धर्मके अभिन्न अंग हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार मस्जिदें इस्लाम की और गिरजे ईसाई धर्मके अभिन्न अंग हैं। यह जरूरी नहीं है कि सभी हरिजन फौरन मन्दिरोंमें प्रवेश करें। जरूरी इतना ही है कि उसे यह जानकारी हो कि उसे मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है, और इतनी जानकारी उसको हो तो बस काफी है। और हिन्दुत्वकी इस धार्मिक परिकल्पनामें अनशन आदि अपना स्वाभाविक और आवश्यक स्थान ग्रहण कर लेते हैं। ईश्वरके प्रति सच्ची प्रेम पुकार अगर किसी प्रकारका जोर-दबाव नहीं है तो उस हदतक ऐसे अनशन आदिको भी जोर-दबाव नहीं माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २५-१-१९३३

१७७. पत्र : जी० एम० थेंगेको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आपने मेरे वक्तव्यका[2] जो अर्थ लगाया है उसका वह अर्थ नहीं है, जैसाकि आप उसे सम्पूर्ण रूपसे पढ़नेपर स्पष्ट देख सकते हैं। मैंने किसी निर्णयपर पहुँचनेमें अपने आपको असमर्थ माना है, भले ही वह केवल इसी

१. इसमें श्री थेंगेने लिखा था : "उन कांग्रेसजनोंके प्रश्नके उत्तरमें जो यह जानना चाहते हैं कि उन्हें सविनय अवज्ञा आन्दोलन करना चाहिए या अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमें सक्रिय दिलचस्पी लेनी चाहिए, आपने उनको अंग्रेजीकी यह प्रसिद्ध कहावत याद दिलाई है कि "आधी छोड़ सारीको धावे, आधी मिले न सारी पावे"। मैं समझता हूँ कि आप इससे उनको यह बताना चाहते हैं कि हमने पहले ही काफी सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर लिया है, और अब और नहीं करना चाहते, वरना हम जिसकी इच्छा करते हैं वह सब खो बैठेंगे। . . ."

२. ७ जनवरी, १९३३ का; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३९३-५।

कारण क्यों न हो कि किसी निर्णयपर पहुँच सकनेके लिए मेरे पास सारी सूचना नहीं है। इसीलिए मैंने बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि प्रत्येक कांग्रेसजनको, वह स्त्री हो या पुरुष, सारी स्थितिका जायजा लेनेके बाद और अपने व्यक्तिगत उत्तर दायित्वोंको सोचने-समझनेके बाद स्वय अपने बारेमे निर्णय करना चाहिए, क्योंकि स्थितिपर केवल उन्हींका वश है, मेरा बिलकुल नहीं है, और उनके दायित्वोंके बारेमें वे खुद ही जान सकते है, मै कुछ नही जानता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० एम० थेंगे
पारेख स्ट्रीट, गिरगाँव
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८६) से।

१७८. पत्र : सुब्रह्मण्य शास्त्रीको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और साथमें संलग्न अस्पृश्यताके विषयमें आचार्य ध्रुव द्वारा संस्कृत में प्रकट की गई रायपर आपका उत्तर मिला। धन्यवाद।

मुझे याद नहीं आता कि मैंने कहा हो कि जो पक्ष पत्रोत्तर बन्द कर देगा उसके बारेमे माना जायेगा कि उसने दूसरे पक्षकी बात स्वीकार कर ली है। मेरी रायमे ऐसी चीजको निर्णयात्मक नही माना जाना चाहिए क्योंकि दोनो ही पक्ष मतभेदके सभी मुद्दोंको निःशेष कर चुकनेके बाद भी अपनी-अपनी स्थितिपर दृढ़ रह सकते हैं। तथापि, आप मुझे अकस्मात पत्र-व्यवहार बन्द करते नहीं पायेंगे क्योंकि मैं हरएकसे जो भी ज्ञान और सूचना मिल सकती है वह पाना चाहता हूँ।

आपके उत्तर या आप जिसे प्रत्युत्तर कहते हैं उसकी बात लें, तो उसका उत्तर तो मैं आचार्य ध्रुवके ऊपर छोड़ दूँगा, लेकिन आपके तर्क तो मुझ-जैसे सामान्य व्यक्तिको भी कायल नही कर सके हैं। आप कहते हैं कि 'अपि' शब्द तो चाण्डाल-की अयोग्यता और भक्ति मार्ग की ऊँचाईका द्योतक है। क्या आपको अपने इस वक्तव्यका विरोधाभास नही दिखाई पड़ता? यदि चाण्डाल अयोग्य है तो भक्तिमार्गमें कोई ऊँचाई (मै समझता हूँ कि आपका अभिप्राय 'महानता' से है) नहीं है। भक्तिमार्ग वास्तवमें महान है क्योंकि यह चाण्डालको भी शान्ति, आनन्द और मुक्ति प्रदान करता है। किसी बातपर जोर देनेके हेतु 'अपि' शब्दके प्रयोगके बहुतसे दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

आपके दूसरे अनुच्छेदमें आग्रह इस बातपर नहीं है कि यहाँ चाण्डाल पवित्रात्मा था बल्कि इसपर है कि जो बोल रहा था वह चाण्डाल था। बहुतसे सनातनी जो मन्दिरोंमें

हरिजनोंके प्रवेशका विरोध करते है, उनका कहना है कि चाण्डालका जीवन कितना ही पवित्र क्यों न हो, उसकी निर्योग्यता समाप्त नही होती।

तीसरे अनुच्छेदमें आपकी यह स्वीकारोक्ति कि आत्माके रूपमे सभी जीव एक है, स्पृश्यता और अस्पृश्यताके बीच किसी अलंघनीय बाधाकी बातको गलत सिद्ध कर देती है। सम्बन्धित श्लोकमें ही व्यक्तियों और शरीरोंके बीचके अन्तर मानते हुए भी सबके साथ समान व्यवहारपर आग्रह किया गया है।

आपके अन्य उत्तरोंके बारेमें कोई मत न व्यक्त करते हुए मै केवल यह कहना चाहूँगा कि वे मुझे सन्तोषजनक नही लगे है। तथापि, आपके उत्तरोंको मै बिना अपनी टिप्पणीके आचार्य ध्रुवके पास भेज रहा हूँ ताकि वह स्वतत्र रूपसे उत्तर दे। उनका उत्तर मिलनेपर मै सहर्ष उसे आपके पास भेजूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९९) से।

१७९. पत्र : जी० रामचन्द्र रावको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय रामचन्द्र राव,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुमसे और सूचना मिलनेकी मै प्रतीक्षा करूँगा।

हाँ, मैं नियमपूर्वक प्रतिदिन घी मल रहा हूँ। मुझे सूचित करते दुःख है कि अभी तक तो जरा भी आराम नहीं हुआ है। घी गायके दूधका ही घी है, इसमें कोई सन्देह नही है।

'यदि' शब्दको मैंने सत्यकी रक्षाके लिए जोड़ा था। मै किसी मित्रके साथ कितना ही घनिष्ठ क्यों न होऊँ, उससे बात करते समय मुझे चूँकि "तुम ऐसे हो" नहीं बल्कि "यदि तुम ऐसे हो तो तुम्हें चिन्तित होनेका कोई कारण नही है" कहना होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्र राव
द्वारा सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी
रोयापेट्टा, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९०००) से।

१८०. पत्र : टी० के० एस० राजनको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मैं पूरी आशा करता हूँ कि विद्यार्थी लोग केवल प्रस्ताव पास करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जायेंगे बल्कि वे हरिजनोंकी कुछ ठोस सेवाका काम करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० एस० राजन
५१, १ अग्रहारम्
सेलम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००१) से।

१८१. पत्र : पी० वी० सुन्दरवरदुलुको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने मुझे दिलचस्प सूचना दी है।[1] क्या आप बलिके लिए गाय और भैंसोंका वध करनेवालोंकी ठीक-ठीक संख्या भी दे सकते हैं? उनका जाति-नाम क्या है? क्या स्पृश्योंमें भी कोई ऐसी जाति है जो गो-मांस खाती हो? मैं समझता हूँ कि आन्ध्रदेशमें ऐसे सवर्ण हिन्दुओंकी संख्या बहुत काफी है जो सुअरका मांस खाते हैं।

१. प्रेषीने अपने पत्रमें लिखा था : "उनका (रैयतका) कहना है कि हरिजन लोग गाय, बकरेका मांस खाते हैं और उनकी आदतें बड़ी गन्दी है।... वे अपने देवी-देवताओंके सामने सार्वजनिक रूपसे गाय और भैंसोंकी बलि चढ़ाते हैं और ऐसे अवसरोंपर ताड़ी अर्पित करते है।...अतः मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि अपना ध्यान...हरिजनोंके सुधारकी ओर लगायें।" (एस० एन० १८९८४)

मैं आन्ध्रके गाँवोंकी रैयतके लिए कोई विशेष सन्देश नहीं दे सकूँगा। मैं समय-समयपर जो वक्तव्य देता रहता हूँ वे उनको भी उसी हदतक सम्बोधित होते हैं जिस हदतक कि देशके अन्य हिन्दुओंको।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० वी० सुन्दरवरदुलु
मंत्री
आन्ध्र प्रान्तीय रैयत सघ
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००२) से।

१८२. पत्र : डी० जी० वेलंकरको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप इसी २७ तारीखको दोपहर २ बजे आ सकते हैं और अपने दो या तीन मित्रोंको ला सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आपके लिए ३० मिनट काफी होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० जी० वेलंकर
८६६ सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००८३) से।

१८३. पत्र : आर० एन० भिड़ेको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका करुण पत्र मिला। आप अनशन और मन्दिर-प्रवेश, इन दोनों सवालोंको मिलाइए नहीं। अनशनकी बातको आप अपने मनसे निकाल दीजिए क्योंकि यह एक व्यक्तिगत चीज है और हो सकता है कि अनशन हो और हो सकता है कि न हो। मुख्य चीज मन्दिर-प्रवेश है। आर्थिक और शैक्षणिक सवाल तो ऐसे सवाल हैं जिनका अर्थ उनके विशेषणोंसे स्पष्ट है। मन्दिर-प्रवेश एक आध्यात्मिक कार्य है, जो केवल

मन्दिर-प्रवेशके एक अकेले कार्यसे सारे समाजको बदल डालेगा। यह सारी हरिजन आबादीमें एक नये जीवनका विद्युत-संचार कर देगा और हिन्दू-धर्मको ऐसा शुद्ध कर देगा जैसाकि मैं समझता हूँ कि किसी एक कार्यके जरिये नही हो सकता। यदि आपके अन्दर हिन्दूकी धार्मिक सहजबुद्धि है तो आपके लिए मेरे तर्कको समझना कठिन नहीं होगा। यदि आपको हिन्दू-धर्ममें जीवन्त विश्वास नही है या आप मन्दिरोंको हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग नही मानते तो आपकी कठिनाईको दूर कर सकूँ, ऐसा कोई कारगर तर्क मेरे पास नही है। उलटे, तब मैं अपनी पराजय स्वीकार कर लूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एन० भिड़े
डी० बी० होस्टल
पोर्ट पुत्तूर (दक्षिण कनाड़ा जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००८८) से।

१८४. पत्र: एम० एस० अनन्तरावको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपको आपके सभी पत्रोंके लिए और मुझे हिदायत देने तथा मेरी माँगी हुई सूचनाएँ प्रदान करनेके लिए आप जो तकलीफ उठाते रहे है, उसके लिए धन्यवाद देता हूँ। आपके सभी पत्रोंको पढ़ चुकनेके बाद यदि जरूरी हुआ तो मैं आपको विस्तारसे पत्र लिखूँगा।

आपके लेटर-पेपरकी मैंने जो आलोचना की थी हालाँकि आपने उसका जबाब नहीं दिया है, लेकिन मैं देखता हूँ कि आपने मेरे सुझावके एक भागपर अमल करके लेटर-पेपरपर से चित्र और उसके चारों ओर छपी हुई इबारतको हटा दिया है। यह जवाब देनेसे ज्यादा बेहतर काम है। यदि उसे हटा देना मेरी आलोचनाके औचित्य की स्वीकृति स्वरूप है तो आप देखेंगे कि मैंने सजावटपूर्ण बार्डरकी भी आलोचना की थी। लेटर-पेपर, विशेष रूपसे किसी धार्मिक संस्थाका लेटर-पेपर सादा और सजावटहीन होना चाहिए और उसपर पढ़ा जा सके, ऐसे सादे टाइपमें केवल नाम-पता छपा होना चाहिए। सबसे ऊपर जो सुन्दर श्लोक है वह और 'ॐ' रहने दिये जा सकते हैं। मैंने बिना माँगे अपनी आलोचना प्रस्तुत करनेका साहस किया है क्योंकि आप अपने पत्र-व्यवहारमें बहुत तत्पर और परिश्रमी रहे हैं। हम अन्ततः अपने

निष्कर्षोंमें सम्भव है सहमत न हो सकें, तथापि मैं आपकी सौजन्यता और तत्परताकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव
सनातन धर्म कार्यालय
४० ईश्वरदास लाला स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९५७१) से; सौजन्य : मैसूर सरकार

१८५. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय शर्मा,

अम्तुस्सलामने तुम्हारा १५ जनवरीका पत्र[1] मेरे पास भेज दिया है। उसे पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। तुमने वास्तवमें अपनी स्वयंधारित प्रतिज्ञाका पालन किया है। कारण, कि जो पत्र तुमने मुझे लिखा है वह अपने लिए नही लिखा है। मैंने अम्तुस्सलामको दिल्ली जानेके लिए पहले ही कह दिया है और मुझे आशा है कि वह आश्रमसे तत्काल चल देगी और उस समयतक दिल्ली ठहरी रहेगी जबतक कि तुम उसको पूर्णतः नीरोग करके छुट्टी न दो। तब ही वह आश्रमको लौटेगी। आश्रम आनेसे पूर्व अपने वहाँके वर्तमान कर्त्तव्योंको पूर्ण करनेकी जो तुम्हारी इच्छा है उसका मैं आदर करता हूँ। वह सराहनीय ही है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एच० एल० शर्मा
सन-रे हॉस्पिटल
करोलबाग, दिल्ली

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ १६

१. डॉ० शर्माने लिखा था कि अस्पतालमें दाखिल मरीजोंको छोड़कर वह शहरके बाहर एक हफ्तेसे ज्यादा समयके लिए कहीं नहीं जाते।

१८६. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

२४ जनवरी, १९३३

चि० राधाकृष्ण,

जमनालालजी को लिखा तुम्हारा पत्र मैं पढ़ गया हूँ। महिला आश्रम अथवा महिला विद्यालय अथवा वनिता विद्यालय या वनिताश्रमको अभी आश्रमके अधीन नही रखा जा सकता, कारण कि अभी वह हरिजन बालाओंको लेनेके लिए तैयार न होगा। उसपर यह बोझ नहीं लादा जा सकता। बाहरसे हरिजन लड़कियाँ आयें और उन्हें पढ़ाया जाये, फिलहाल इतना ही यथेष्ट मानना चाहिए। लेकिन ऐसी संस्थाको आश्रमका समर्थन भी प्राप्त नहीं हो सकता। विनोबाके मतसे मैं सहमत हूँ और महिला विद्यालयके लिए भी मर्यादा अनिवार्य प्रतीत होती है।

जानकीबहनसे कहना कि डॉक्टर मोदीसे जमनालालजी की जाँच करवानेकी अभी मैं कोई जरूरत नही समझता। उनका शरीर अच्छा है, कान ठीक है, खुराक ठीक है, हजम होती है, वजन बढ़ गया है, किसी भी तरहकी चिन्ताका कारण नहीं है। मोदी इस समय कुछ नया कह अथवा कर सकते हैं, ऐसा भी मुझे नहीं लगता। यदि तनिक भी जरूरत महसूस हुई अथवा जमनालालजी की स्वयं जाँच करवानेकी इच्छा हुई तो बन्दोबस्त करनेमें न तो कोई अड़चन होगी और न कोई ढील ही। इस समय उन्हें बम्बई ले जानेका विचार भी ठीक नही जान पड़ता। यहाँकी आबोहवा उन्हें अनुकूल आ गई है तो फिर थोड़े दिनके लिए बदलनेकी क्या जरूरत है?

मुझे माताजी के काते हुए सूतसे बने कपड़ेके दो थान मिले हैं। मै उनका प्रसाद समझकर इसका उपयोग करूँगा।

कमलनयन आया लेकिन मुझे मिल नहीं गया। उसे मिल जाना चाहिए था। वह मुझे मिल सकता था। अब जब आये तब मिले। उसके अध्ययनका क्या हुआ? उसने पुनः लिखना क्यों बन्द कर दिया है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९११८) से।

१८७. पत्र : जी० वी० गुर्जलेको[1]

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका एक बड़ा लम्बा पत्र मिला। मुझे आशंका है कि मैं निश्चित रूपसे आपका मार्गदर्शन नहीं कर सकता। आपका सेवा करनेका जो ढंग है उसके पक्षमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है और हरिजनोंके बीचमें रहकर सेवा करनेके तरीकेके पक्षमें भी काफी कुछ कहा जा सकता है। इसलिए केवल आप ही इसपर अन्तिम निर्णय ले सकते हैं। जो लोग आपको अच्छी तरह जानते हैं और जो स्थानीय परि-स्थितियोंसे भी अच्छी तरह परिचित हैं, उन लोगोंसे सलाह-मशविरा करनेके बाद और जो तरीका आपको सबसे अच्छा लगे उसीके द्वारा आपको हरिजनोंकी सेवा करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जी० वी० गुर्जले
कृपा आश्रम
तिरुवेन्नैनलूर (दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३९८) से। एस० एन० २००९२ से भी।

१८८. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

१९ तारीखके आपके पत्र व संलग्न कागजोंके लिए धन्यवाद। मैं उम्मीद रखता हूँ कि चन्दा इकट्ठा करनेके अपने प्रयत्नोंमें आप अवश्य सफल होंगे।

और चूँकि आपने सरकारसे आर्थिक सहायता लेनेकी बातका जिक्र किया है इसलिए — मेरे असहयोग-सम्बन्धी विचारोंका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है — मैं आपसे इतना कहना चाहूँगा कि यदि मैं आपको और आपके बोर्डको सरकारसे सहायता न लेनेके बारेमें राजी कर सका होता तो अवश्य करता और आपको ऐसी सहायता

१. भिक्खु निर्मलानन्दके नामसे प्रसिद्ध; वे १९२९ से तिरुवेन्नैनलूर नामक गाँवमें हरिजनोंकी सेवा कर रहे थे और उन्होंने गांधीजी से पूछा था कि क्या उन्हें शहर वापस चला जाना चाहिए और वहाँसे हरिजनोंकी सेवा करनी चाहिए।

लेनेसे रोकता। मेरा खयाल है कि पूर्णतः धार्मिक मामलोमें सरकारी सहायताकी माँग नहीं की जानी चाहिए। अस्पृश्यता-निवारणका कार्य तो खासतौरसे हिन्दुओंका कार्य है। यह एक बहुत बड़ा धार्मिक सुधार है और यदि हमारी सरकार विशुद्ध रूपसे राष्ट्रीय सरकार होती तो उससे भी आर्थिक सहायताकी माँग करनेमें मै संकोच ही करता अथवा यदि सरकारकी ओरसे आर्थिक सहायता दी भी जाती है तो वह एक ऐसी योजनाके अधीन होनी चाहिए जिसमें सारे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंको समान रूपसे सहायता प्राप्त हो।

मेरा खयाल है कि आपने मेरे दृष्टिकोणको समझ लिया होगा फिर भले ही आप मुझसे सहमत न हो।

मुझे खुशी है कि स्वरूप[1] ने आपको अपनी सेवाएँ देनेकी तत्परता दिखाई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९७) से।

१८९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

यह रहा 'हरिजन सेवक' के प्रस्तावित अग्रेजी संस्करणका तखमीना। आप देखेंगे कि यह बहुत मामूली रकम है। इसके अलावा कार्यालय-सहायको आदिपर थोड़ा ऊपरी खर्च भी होगा तथा श्री शास्त्रीका जिन्होने पत्रका सम्पादन करना स्वीकार किया है, वेतन भी होगा।

आरम्भमें मेरा विचार १०,००० प्रतियाँ निकालनेका है। और यदि इतनी माँग न हुई तो हम यह संख्या कम कर सकते हैं। जैसाकि आपको मालूम ही है मेरी नीति इस पत्रको आत्मनिर्भर बनानेकी है, इसलिए बिना उसके मै इसे अपने हाथमें ही नही लूँगा। और यदि यह आत्मनिर्भर नहीं बन जाता है तो मैं समझूँगा कि या तो इसकी व्यवस्था अथवा इसका सम्पादन ठीक नही है या ऐसे पत्रकी जनतामें कोई माँग नही है। इन परिस्थितियोमें से किसी एकमे भी, यदि दोष दूर नहीं किया जाता है तो पत्रको बन्द करना होगा। मै पत्रको तीन महीनेका समय दूँगा, इस बीच इसे आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए।

इसलिए मै चाहूँगा कि आप ठक्कर बापा और अन्य ऐसे लोगोंके साथ, जिनसे सलाह-मशविरा करना आप जरूरी समझें, सलाह-मशविरा करनेके बाद तार द्वारा जितना कुछ खर्च हो उसकी स्वीकृति प्रदान करें। खर्चकी रकम अधिकसे-अधिक कितनी होगी, यह भी आप ही को तय करना होगा। मेरा सुझाव है कि अधिकसे-अधिक जितनी रकम तय की जाये उसमें डाक व तार खर्चके अलावा २०० रुपया प्रतिमासकी

१. विजयलक्ष्मी पंडित।

रकम और जोड़ दी जाये। शास्त्रीसे मिलनेके बाद मैं आपको ज्यादा ठीक आँकड़े दे सकूँगा? यदि आप बजट पास करते है तो आप हिन्दी संस्करण निकालें अथवा न निकालें, मै पत्रका अंग्रेजी संस्करण निकालूँ या नहीं? मेरा ख़याल है कि इस ओरसे 'हरिजन सेवक' का संस्करण निकालनेमें कोई दिक्कत पेश नही आयेगी।

अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर सरकारके निर्णयको लेकर आपने ग्वालियरसे जो तार दिया था वह मुझे मिल गया है। मुझे उम्मीद है कि आपको मेरा जवाब मिल गया होगा। मुझे यह भी उम्मीद है कि इस सम्बन्धमें मैंने समाचारपत्रोंमें जो विस्तृत वक्तव्य[1] दिया है उसे भी आप पढ गये होंगे। इसलिए अखबारोंको दिये गये अपने वक्तव्यमे मुझे और कुछ जोड़नेकी जरूरत नहीं है क्योंकि मेरे पास अधिक कहनेके लिए कुछ नहीं है।

हरिजी ने सोसाइटीके लिए सरकारसे आर्थिक सहायता की माँग करने अथवा सहायता प्राप्त करनेके बारेमें मुझे एक पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर[2] मैंने उन्हें भेजा है उसकी एक प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ। यहाँ भी मुझे और कुछ कहनेकी जरूरत नही है, क्योंकि वह अपने आपमे स्पष्ट है।

उम्मीद है, आप पहलेसे अच्छे होंगे। मैं चाहूँगा कि आप अपने स्वास्थ्यका भी उतना ही खयाल रखें जितना कि आप कारोबारका रखते हैं और इस तरह स्वास्थ्यकी जरा भी अवहेलना न करें अथवा उसे न बिगाड़ें।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २००९६) से। सी० डब्ल्यू० ७९२३ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१९०. पत्र : वीरयला वेंकटरावको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे उत्तर ये रहे :

यदि सवर्ण हिन्दू हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोल देते हैं तो ऐसा करके वे उनके प्रति किये गये अपने पापका प्रायश्चित्त करेंगे अथवा अपना कर्ज चुकायेंगे।[3] हिन्दुओंका यह एक कार्य ही हरिजनोंके उत्थानके लिए पर्याप्त होगा। हरिजनोंके लिए मन्दिरोंका द्वार खोलना उनके अच्छे व्यवहारका पुरस्कार नहीं है बल्कि उनके

१. देखिए "वक्तव्य : वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।
२. देखिए पिछला शीर्षक।
३. चर्चाके लिए देखिए परिशिष्ट ७।

उत्थानकी बुनियाद है। उन्हें भी उन्हीं नियमोंका पालन करना होगा जिनका पालन सवर्ण हिन्दू करते हैं, यथा प्रतिदिन स्नानादि करना। लेकिन जिस तरह मन्दिरमें प्रवेश करनेवाले किसी सवर्ण हिन्दूसे, जबतक कि उसके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न न हो जिससे मालूम हो सके कि उसने मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी नियमोंका पालन किया है, हम यह नहीं पूछ सकते कि उसने उन नियमोंका पालन किया है अथवा नहीं, उसी तरह हम किसी हरिजनसे, जिसे देखनेसे ऐसा मालूम न हो कि उसने उन नियमोंकी अवहेलना की है, यह पूछताछ नही कर सकते कि उसने अन्य नियमोंका पालन किया है अथवा नहीं। याद रहे कि हिन्दू-धर्मके सभी सम्प्रदायोंमें सवर्ण हिन्दुओंके लिए मास न खाना और शराब न पीना मन्दिर-प्रवेशकी अनिवार्य शर्त नहीं है। व्यक्तिशः मैं इस नियमको लागू करना चाहूँगा लेकिन यह शर्त तबतक हरिजनोंपर लागू नहीं की जा सकती जबतक वह सभी हिन्दुओंपर समान रूपसे लागू न हो।

यदि तीन या चार कट्टर ब्राह्मण मन्दिरके आगे लेट जाते हैं, तथाकथित सत्याग्रह करते है और इस तरह बाधा डालते हैं तो उन्हें आसानीसे चकमा दिया जा सकता है। मन्दिर-प्रवेश तबतक सम्पूर्ण नहीं माना जायेगा जबतक हरिजनोंको भी उन्हीं शर्तोंपर और उस भागतक जानेकी अनुमति न हो जिन शर्तोंपर और जहाँतक सवर्ण हिन्दू जा सकते हैं। और यदि गर्भ-गृहमें सवर्ण हिन्दू भी नहीं जाते, केवल वही लोग जाते हैं जो पूजाकी विधि सम्पन्न करते है तो वहाँ हरिजनोंके जानेका भी कोई प्रश्न नहीं उठता।

मेरा ख्याल है, इसमें आपके सारे प्रश्नोंका उत्तर आ जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वीरयला वेंकटराव
अस्पृश्यता-विरोधी लीग
एल्लोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००३) से।

१९१. पत्र : वाकाइल अछूतन नायरको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

गुरुवायूरके मामलेसे सम्बन्धित कागजात भेजनेके लिए आपने जो जहमत उठाई उसके लिए आपको धन्यवाद। मैंने उन्हें दिखलवा लिया है, और अब उन्हें मैं आपको रजिस्टर्ड डाकसे वापस भेज रहा हूँ। अब आपको खोये हुए कागजातोंको ढूँढ़नेकी कोई जरूरत नही। मैं देखता हूँ कि आपने कृपापूर्वक जो कागजात भेजे थे उनसे मुझे वह जानकारी मिल गई है जो मैं पाना चाहता था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वाकाइल अछूतन नायर
गुरुवायूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००५) से।

१९२. पत्र : सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्यको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि सनातनी लोग अस्पृश्योंके साथ दुर्व्यवहार नहीं करते — घृणा नहीं, जैसाकि आपने लिखा है — तो यह क्या बात है कि उन्हें पानी नहीं मिल सकता, चिकित्सा-सहायता नही मिल सकती, रहनेको अच्छी जगह, यात्राकी समान सुविधाएँ नहीं मिल सकती, उनके बच्चोंको शिक्षाकी समान सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होतीं, और वे अन्य लोगोंकी तरह सार्वजनिक स्थानोंका उपयोग नहीं कर सकते ?

शिक्षित भारतीय इन सब बातोंके लिए जिम्मेदार नहीं हो सकते क्योंकि उनकी संख्या तो समुद्रमें बूँदके समान है। शिक्षित लोगों द्वारा हरिजनोंके साथ दुर्व्यवहार करनेकी जो बात आपने कही है, क्या आप उसके दृष्टान्त मुझे देंगे। हिन्दुओं द्वारा

हमारे इन भाइयोंके बोझको हल्का करनेके लिए कुछ भी किये जानेके दृष्टान्त यदि आपकी जानकारीमें हों, तो मैं चाहूँगा कि वे भी आप कृपया मुझे भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत् सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्य
वेदान्त शास्त्री
सचिव, पूर्वी बंगाल ब्राह्मण सभा
गाँव अलगी, डाकघर माधबड़ी
जिला ढाका

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९५) से।

१९३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। मैं नहीं जानता कि मैं तुमको कैसे सान्त्वना दूँ और तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ? मुझे खेद है कि तुम्हें प्रसन्न करना मुझे बहुत मुश्किल जान पड़ता है और तुमको प्रसन्न करनेकी खातिर ही क्यों न हो, मैं विश्वासघात नहीं कर सकता। इसलिए मैंने तुम्हारे सामने जो प्रस्ताव रखा है उसे तुम कृपया अन्तिम मानो।[1]

हृदयसे तुम्हारा,

प्रोफेसर एन० एच० पुरन्दरे
६०४, सदाशिव पेठ
पूना २

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९८) से।

१. देखिए "पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको", १३-१-१९३३।

१९४. पत्र : के० केलप्पनको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

मेरे पास इस बातकी सख्त शिकायत आई है कि 'मातृभूमि'[1] में ऐसे लेख होते हैं जिसमें ब्राह्मणोंको गालियाँ दी जाती हैं। यदि ऐसी बात है तो ये गालियाँ बन्द की जानी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९९) से।

१९५. पत्र : टी० कृष्ण मेननको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं चाहूँगा कि आप मुझे 'मातृभूमि' के सम्बद्ध अंशोंका अनुवाद भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० कृष्ण मेनन
मार्फत श्री चम्पकलाल देवीदास
३६, दलाल स्ट्रीट, फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१००) से।

१. मलयालम भाषाका एक दैनिक पत्र।

१९६. पत्र : डॉ० परशुराम शर्माको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० परशुराम,

आपके पत्रके लिए और इस सूचनाके लिए आपका धन्यवाद कि मेरा तार[1] मिलनेपर मथुरादास जैनने अपना उपवास तोड़ दिया।

हम सब ठीक-ठाक हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०१) से।

१९७. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे तीन पत्र मिले जिनमें से केवल एक पत्रका उत्तर अपेक्षित है। यदि यह सुन्दर ढंगसे किया जा सके तो मैं निश्चय ही चाहूँगा कि संस्था[2] का नाम हमारे उद्देश्यके और अधिक अनुरूप हो। यदि संस्थाके सब सदस्य राजाजी के सुझाव[3] पर सहमत हो जाते हैं और यदि वैसा करना संविधानके विरुद्ध न पड़ता हो तो मैं अविवेकी लोगों द्वारा हँसी उड़ानेकी जोखिम उठानेको तैयार हूँ। लेकिन यदि परिवर्तन किया जाना है, तो उसमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

अंग्रेजी साप्ताहिक[4] के लिए लेख मुझे मिल गये हैं।

प्रस्तावको स्वीकार करते हुए शास्त्रीने मुझे तार दिया है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०२) से।

१. देखिए "पत्र : मथुरादास जैनको", ८-२-१९३३।

२. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबिल्स सोसाइटी (अछूत सेवक समाज)।

३. राजाजी ने सुझाव दिया था : "आपने लीगके नाममें जिस परिवर्तनको स्वीकार किया है उसे मैं बहुत पसन्द नहीं करता। 'अछूत सेवक समाज' वैसे तो अच्छा नाम है, लेकिन इसका अर्थ यह हुआ कि हम अस्पृश्यताको बराबर मान्यता देते रहेंगे। . . . यदि इसका नाम 'अनटचेबिलिटी एबॉलिशन लीग' (अस्पृश्यता निवारण लीग) अथवा सोसाइटी रखा जाये तो यह मुझे ज्यादा अच्छा लगेगा।"

४. **हरिजन**।

१९८. पत्र : रतिलाल सेठको

२५ जनवरी, १९३३

भाई रतुभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। लीलावतीका तार भी आया था। मैंने तार दिया है कि मुझे पहलेसे ही न बाँध लें। मुझे पद्माको देखने दें। मै तो वरको भी देखना चाहता हूँ। कल जेकीबहन मुझसे मिल गई, उसने बताया कि पद्माकी उम्र अभी तो १४ वर्षकी ही है और वर चरित्रहीन है। माँ-बाप चाहें तो मैं क्या कह सकता हूँ? लेकिन यदि यह सम्बन्ध मुझे पसन्द न हो तो मेरी सम्मति नहीं माँगनी चाहिए न? इस विवाहके बारेमें तुम्हारा अपना विचार क्या है? तुम भी यदि ऐसा चाहते हो तो मुझे बीचसे निकाल देना चाहिए। मेरी दखलन्दाजी तो तुम सब जहाँ चाहो वहाँ ही हो सकती है। मैं किसी किस्मका आग्रह तो नही कर सकता। मैंने छगनलाल और लीलावतीको पेढ़ीकी बावत लिखना है। यहाँ आनेकी बात तो लिखी ही है। जब मगनलाल आये तब मुझसे मिल जाना। तुम छगनलाल और लीलावतीको लिखते रहना।

इसमें सन्देह नहीं कि खीमचन्दका संग बुरा है। मैंने खीमचन्दको भी कड़ा पत्र लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७२) से।

१९९. पत्र : छोटालालको

२५ जनवरी, १९३३

भाई छोटालाल,

आपका पत्र मिला। वर्ण और जातिमें बहुत भेद है। जातियाँ अनेक हैं जबकि वर्ण केवल चार हैं। वर्ण गुण और कर्मोंका परिचायक है। जाति ज्यादासे-ज्यादा कहें तो सुविधाकी सूचक है। जातियोंको नष्ट किया जाना चाहिए जबकि वर्णमें सुधारकी जरूरत है। अभी तो वर्णोंका मिश्रण-सा हो गया है, लेकिन इसमें सुधार किया जा सकता है और यह जरूरी है। अपनी जातिके लोगोंकी सेवा करनेमें कदाचित कोई हर्ज नहीं है, लेकिन उसकी बड़ी सेवा तो यह है कि अन्य जातियोंके साथ सम्बन्ध बनाये जायें। जातिका [मिथ्या] अभिमान नहीं होना चाहिए।

यद्यपि रोटी-बेटी-व्यवहार समान गुण और कर्मवाले लोगोंमें अर्थात् वर्णोंके बीच ही रहेगा तथापि प्राचीन कालमें वर्णके मूलमें यह बात न थी।

मोहनदास

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०३४) से।

२००. पत्र : नारणदास गांधीको

२५ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। समयाभावके कारण यदि तुम नहीं लिख पाओ तो मैं मान लूँगा कि यही कारण होगा और यह भी कि ऐसी कोई बात नहीं थी जिसके लिए लिखना अनिवार्य होता।

वजन केवल बालकों तथा बालिकाओंका ही लेते जान पड़ते हो। हमें तो खुराकका परिणाम देखना है इसलिए यदि सभीका लिया जाये तो ठीक, भले ही पन्द्रह दिनोंमें लिया जाये। जो दिन निश्चित किया हो उसी दिन लिया जाये और वह रजिस्टरमें दर्ज होता जाये। वजनकी तालिका मुझे भेजी गई है उसमें जो वृद्धि बतलाई गई है वह क्या एक सप्ताहकी है? जहाँ वजनमें घट हो और उसके लिए कारण हो तो उसे दर्ज किया जाना चाहिए। इस परिवर्तनका कब्जकी शिकायतपर क्या परिणाम हुआ है? चावलका उपयोग कितना कम हुआ है, क्या यह बतलाया जा सकता है? हर प्रकारका अनाज कितने लोगोंके बीच कितना उठता है, उसका माप

रखा जाये और मिल सके तो अच्छा हो। सब्जियाँ कौन-कौनसी होती हैं? बाजारसे मँगवाते हो या आश्रमकी ही पूरी पड़ जाती हैं। क्या आश्रममें इतने फल होते हैं कि सारे आश्रमको पूरे पड़ सकें। इन सब बातोंका विचार करने और इस सम्बन्धमें व्यवस्था करनेके लिए समय भी चाहिए, यह मैं जानता हूँ। मेरे इन सुझावोमे से जितना कुछ अमलमें लाया जा सके, करना। जो नहीं किया जा सके उसे छोड़ देना। बाकी ये बातें ऐसी हैं कि इनकी ठीक जानकारी प्राप्त की जा सके तो स्वास्थ्य और खर्च दोनोंकी दृष्टिसे हितकर होगा। हमारी बाड़ी और रसोड़ा इसी दृष्टिसे चलाया जाना चाहिए।

आश्रमसे बीमारीका बहिष्कार कर देना हमारी शक्तिके बाहरकी बात नही है, होनी भी नहीं चाहिए। पर कोई उसके पीछे पड़नेवाला चाहिए। तुम्हारे ध्यानमें बहुत-से लोग हैं। उनमे से यदि कोई हो उसे ढूँढ़ निकालो और इस कामके लिए तैयार करो। बालकों और बालिकाओंमें से भी यदि कोई नजर आता हो तो तैयार किया जा सकता है।

कन्हैयालालको जो प्रमाण-पत्र दे रहे हो, उससे मै प्रसन्न हुआ। उसकी पत्नीने कहाँतक प्रगति की है? उड़ीसाकी आबोहवा का उन्हें ख्याल दिलाना। उनका शरीर (दोनोंका) यदि ठीक न हो तो उन्हें अभी उड़ीसा न भेजना। उनमें यदि हर प्रकारका दुःख सहन करनेकी शक्ति हो तो भले ही अभी वहाँ चले जायें।

माणिकबाई आ गई यह ठीक हुआ। इनके साथ तुम्हारा पूर्व परिचय तो नही होगा। बा उन्हें मिलती होगी। अम्तुस्सलाम दिल्ली गई होगी।

प्रभुदासके साथ भेजी गई पूनियाँ मिल गई हैं। मेरा हाथ जैसा था वैसा ही है। पर कलसे कातना शुरू किया है। कातना छोड़नेपर भी कोई लाभ नहीं हुआ इसलिए इसे बन्द ही रहने देना ठीक नहीं मानता। डॉक्टरको भी कह दिया है। (दर्द) बढ़ता जान पड़ेगा तो छोड़ दूँगा। इसमें हठकी तो बात ही नही है, केवल धर्मकी ही है।

ज्वार-बाजरा आश्रममें ही पीसा जाता है, यह मुझे पसन्द तो बहुत है। इस चक्कीका हमारी हदतक ही यदि पुनरुद्धार किया जा सके तो भी अच्छा हो। पर मुझे भय है कि यह हमारी शक्तिके बाहरकी बात है। थोड़ा-थोड़ा पीसना तो जारी रहेगा ही।

भाऊकी तबीयत ठीक नहीं रहती?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

२०१. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२५ जनवरी, १९३३

तांबेके होटल[1] के बारेमें तुमने जो कहा है सो मैं समझा। यदि वह अपना इरादा प्रकट नहीं करता और हमें भी प्रकट नहीं करने देता तो हरिजन कैसे जानेंगे? ऐसे गुप्तदान करनेसे हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होता। लोगोंको शिक्षा नहीं मिलती, लोकमत भी विकसित नहीं होता। हमें और कार्यकर्त्ताओंको मालूम नही होता कि हम कहाँ हैं और जनता कहाँ है? इसलिए हमारा मूल विचार तो स्वयं एक भोजनालय चलानेका होना चाहिए।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

२०२. एक पत्र

२५ जनवरी, १९३३

मैं जानता हूँ कि . . .[2] भोले हैं। यह मेरे विचारसे झूठी दया अथवा दयाकी अतिशयता है और इसीलिए यह हिंसा है। और मेरा खयाल है कि मैं ऐसी दया नहीं कर सकता। इसलिए जहाँ भी मुझे सत्यकी कमी दिखाई देगी वहाँ मैं तुरन्त कहूँगा। और चूंकि तुम्हारा मन पवित्र है इसलिए तुम जरूर तरक्की करोगे। सत्य और अहिंसा दोनोंके लिए निर्भयताकी जरूरत है। यदि वह न हो तो पग-पगपर मनुष्यके असत्य बोलनेकी सम्भावना है। और असत्यके होते ही हिंसा तो है ही। इसलिए भले ही संसार हमपर हँसे अथवा हमें मूर्ख कहे अथवा जिन्दा ही गाड़ दे या भूखों मारे, या प्यासा तड़पाये — हमें तो सत्याचरण ही करना है। यह कार्य निर्भयताके बिना नहीं हो सकता।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

१. होटलका मालिक तांबे हरिजनोंको होटलमें प्रवेश करने देनेके लिए तो राजी था लेकिन वह इस आशयकी कोई घोषणा नहीं करना चाहता था।

२. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया है।

२०३. एक पत्र

२५ जनवरी, १९३३

बादमें जो शिथिलता आ जाती है उसका कारण वातावरणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1] लेकिन जो व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है उसे हमेशा प्रतिकूल वातावरणसे जूझना ही पडता है और इसीलिए तुलसीदासने सत्सगकी आवश्यकतापर बहुत ज्यादा जोर दिया है। लेकिन यह सत्संग हर स्थानपर नहीं मिल सकता। इसलिए सूक्ष्म अथवा आन्तरिक सत्सगकी खोज करनी चाहिए। तात्पर्य यह कि सद्विचार और सत्कर्मका संग करना चाहिए। और जिसे यह सत्संग मिल जाता है वह प्रतिकूल वातावरणके साथ खूब अच्छी तरह जूझ सकता है और अपने संकल्पको पूरा कर सकता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

२०४. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

२५ जनवरी, १९३३

चि० विद्या,

तुमारा खत मिला। तुमारे पहलेसे ही मुझे लिखना चाहिये था कि पेटमें बालक है। उसमें कोई शरमकी बात नहि है। सारी दुनियामें यह व्यवहार चलता है। हां! संयम पाल सके तो बहुत ही अच्छा। लेकिन वह तो थोड़ेसे ही हो सकता है। महादेवकी जन्मतिथि बालक भी है। इसलिये बालकको महादेव कहेंगे। चित्र वापिस करता हूं। तुम दोनों अच्छे होंगे। मुझे लिखा करो। आनंदको आशीर्वाद भेजो।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिलम से; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

१. गांधीजी ने उक्त विचार, जेलमें आरम्भमें शुभनिश्चय होता है, काम करनेकी उमंग होती है और बादमें सब-कुछ ढीला पड़ जाता है--इसके बारेमें बात करते हुए व्यक्त किये थे।

२०५. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधि

२५ जनवरी, १९३३

यह पूछे जानेपर कि क्या उनका इरादा है कि जबतक श्री रंगा अय्यरके विधेयकके भाग्यका कोई फैसला नहीं हो जाता तबतक के लिए वह अपना उपवास स्थगित रखेंगे, महात्मा गांधीने कहा कि यह चीज प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियोंपर निर्भर करती है। यदि श्री रंगा अय्यरका विधेयक अनिश्चित कालके लिए अधरमें ही लटका रहता है तो मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके समाधानके लिए इतनी देरतक नहीं रुका जा सकता, उसका हल खोजना ही होगा।

चूँकि श्री रंगा अय्यरके विधेयकका स्वरूप नकारात्मक है इसलिए मैं आशा करता हूँ, सारे हिन्दू इस बातको समझेंगे कि यह विधेयक किमी भी रूप में धर्मके साथ हस्तक्षेप नही करता, और यदि सनातनी हिन्दू इस बातको स्वीकार करते है कि हरिजनोंको किसी प्रकारकी सामाजिक निर्योग्यताओंका शिकार नही बनाया जाना चाहिए तो उन्हें भी इस विधेयकका स्वागत करना चाहिए। वे धार्मिक रिवाजोंको लागू करनेके लिए कानूनी संरक्षण प्राप्त करनेकी इच्छा रखते प्रतीत नही होते। धार्मिक रिवाजोंको यदि कानूनकी शक्तिसे लागू किया जाये तो फिर वे रिवाज नहीं रह जाते। यह बात तो पारस्परिक सद्भावना और समस्त हिन्दुओं द्वारा धार्मिक रिवाजोका पालन करनेकी तत्परतापर निर्भर करनी चाहिए।

अन्य धर्मोके समान हिन्दू-धर्ममें भी असंख्य धार्मिक रीति-रिवाज है लेकिन उन्हें कानूनके जरिये लागू नही कराया जा सकता तथा श्री रंगा अय्यरके विधेयकमें जो व्यवस्था है वह सिर्फ यह है कि मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध धार्मिक निषेधको संगीनके बलपर लागू नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन अगर सनातनी लोग मेरे इस स्पष्ट प्रस्तावकी कद्र नहीं करते है, और विधेयकका विरोध किया गया, तो मेरे सम्मुख यह प्रश्न खड़ा होगा कि मेरा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। लेकिन मुझे उम्मीद है कि हिन्दुओंकी एक बहुत बड़ी संख्या इस विधेयकके पक्षमें स्पष्टरूपसे अपना समर्थन व्यक्त करेगी जिससे कि इस विधेयकको सभी चरणोंमे तेजीसे पास करना अनिवार्य हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २६-१-१९३३

२०६. पत्र : मीराबहनको

२६ जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

यह पत्र मैं बृहस्पतिवारकी प्रार्थनासे पहले लिख रहा हूँ। मुझे तुम्हारी साप्ताहिक चिट्ठी बुधवारकी दोपहरको मिलती है और मैं उसका उत्तर बृहस्पतिवारको सवेरेकी प्रार्थनाके बाद और कभी-कभी प्रार्थनासे पहले भी, जैसाकि अभी कर रहा हूँ, देता हूँ। इसलिए जब तुम्हें मेरा पत्र सामान्यसे अधिक देरसे मिले अथवा बिल्कुल ही न मिले तो तुम समझ लेना कि मैंने पत्र लिखनेमें कोई देर नहीं की है। लेकिन हर सावधानी बरतनेके बावजूद अप्रत्याशित घटनाएँ तो होती ही रहेंगी। भगवानके शब्द-कोषमें अप्रत्याशित नामकी कोई चीज नहीं है। इस भौतिक संसारमें यह घटना-चक्र चलता ही रहता है। कारण, ये अप्रत्याशित घटनाएँ वे घटनाएँ होती हैं जिनपर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं रहता और उन घटनाओंके बाद हमें अक्सर उनका कोई कारण ढूँढ़े नहीं मिलता।

जैसाकि तुम देखती हो, मैंने पुनः दायें हाथसे लिखना शुरू कर दिया है। मैं लिखनेका काम ज्यादा नहीं करता। मैं हर रोज थोड़ी गुजराती लिखता हूँ, लेकिन दो घंटेसे अधिक नहीं, और तुम्हारे नाम अंग्रेजीमें अपनी साप्ताहिक चिट्ठी। इतनेसे हाथको कोई नुक्सान नहीं पहुँच सकता। कमसे-कम अभीतक किसीने इसको हाथ दुखनेका कारण नहीं माना है। इसके लिए चरखेको दोषी ठहराया गया था। लेकिन यह भी कोरा भ्रम ही मालूम पड़ता है। मैंने पिछले मंगलवारसे थोड़ी-सी कताई करना फिरसे आरम्भ किया है। लेकिन यदि दर्द बढ़ गया तो मैं हठधर्मी नहीं करूँगा, कताई छोड़ दूँगा। कल वजन दो पौंड कम रहा लेकिन वजनमें थोड़ी कमती-बढ़ती होना कोई चिन्ताका कारण नहीं है।

और अब तुम्हारे बारेमें। तुम्हें चक्कर आनेका कुछ भी कारण क्यों न रहा हो लेकिन इसके बारेमें तुम्हें डॉक्टरसे बात करनी चाहिए। और यदि इसका कारण वातावरणमें दुर्गन्धका होना है तो तुम्हें दूसरे स्थानपर भेजा जाना चाहिए। यदि तुम अन्यथा न मानो तो इस बारेमें मैं खुद सरकारको लिखना चाहूँगा। और लोगोंकी अपेक्षा तुम्हारी नाक ज्यादा संवेदनशील है और इसीलिए दुर्गन्धका तुमपर जल्दी असर होता है। क्या मैं तुम्हारी बदलीके लिए सरकारको लिखूँ? कदाचित् तुम्हें साप्ताहिक पत्रके अलावा इस पत्रका उत्तर देनेकी अनुमति मिल जाये।

तुम्हारा पत्र पाकर अन्धे मॉरिस[1] को बड़ी खुशी होगी। उसके लिए यह एक सुखद घटना होगी जिसे वह कई दिनोंतक याद रखेगा। इससे मुझे श्रीमती आइमनकी याद हो आई। क्या तुम उन्हें जानती थीं? एन्ड्रयूजका कहना है कि हम सब उनसे

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३८९-९०।

परिचित थे। महादेवको उनकी याद है; मै याद नहीं कर पाता। यदि तुम्हें उनकी याद है तो तुम्हें बता दूँ कि उनकी मृत्यु हो गई है। आइमनका सम्बन्ध ११२ गोवर स्ट्रीटसे है। एन्ड्रयूजने मुझसे श्री आइमनको पत्र लिखवा दिया है।

यह वाक्य कि "बिना उपवास प्रार्थना नही हो सकती" बिलकुल सही है। यहाँ उपवासका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। शरीरके उपवासके साथ-साथ समस्त इन्द्रियोंका भी उपवास होना चाहिए। और 'गीता'का 'अल्पाहार' भी शरीरका उपवास है। 'गीता'में भोजनमे संयम करनेकी नही अपितु स्वल्प भोजन करनेकी बात कही गई है। यह स्वल्पाहार सतत उपवास है। स्वल्प भोजनसे तात्पर्य है केवल इतना भोजन करना जिससे शरीरको उस सेवाकार्यके लिए जीवित रखा जा सके जिसके लिए उसकी रचना हुई है। दूसरे शब्दोंमें, उतना ही भोजन किया जाना चाहिए जितनी जरूरत हो, भोजन स्वादके लिए नही अपितु शरीरके समुचित विकासके लिए किया जाना चाहिए। 'स्वल्प'के स्थानपर यदि 'परिमित मात्रामें' शब्दोंका प्रयोग किया जाये तो कदाचित यह ज्यादा अच्छा होगा। अरनॉल्डने इसके लिए किस शब्दका प्रयोग किया है सो मुझे याद नहीं आता। इसलिए पूर्णाहार करना ईश्वरके प्रति और मनुष्यके प्रति अपराध करना है – मनुष्यके प्रति इसलिए क्योंकि पूर्णाहार करने-वाले लोग अपने पड़ोसियोंको उनके भागसे वंचित रखते हैं। ईश्वरकी अर्थ-व्यवस्थामे इतने भोजनकी व्यवस्था की गई है जिससे सब लोग नित्य उतना अन्न खा सकें जितना स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। हम सब पूर्णाहारी कबीलेके लोग है। हमारे स्वास्थ्यके लिए कितना भोजन अत्यावश्यक है यह बात सहज ही जान लेना भगीरथ कार्य है। कारण, हम लोग स्वभावसे ही पेटू होते हैं। और जब बहुत देर हो चुकी होती है तब हमें अपनी भूलका एहसास होता है कि भोजन स्वादके लिए नहीं है; वह तो इस शरीरको जीवित-भर रखनेके लिए है जिससे हम उससे सेवकका काम ले सकें। और उसी क्षणसे हम आनन्दके लिए भोजन करनेकी अपनी जन्मजात और बादमें ग्रहण की गई आदतसे जूझ पड़ते हैं। इसलिए इस बातकी जरूरत है कि हम समय-समयपर पूर्ण उपवास करें और आंशिक उपवास तो बराबर करते ही रहें। आंशिक उपवास ही 'गीता'का स्वल्प अथवा परिमित भोजन है। और इस तरह "बिना उपवास प्रार्थना नहीं होती", यह एक वैज्ञानिक उक्ति है जिसे प्रयोग और अनुभवके आधारपर परखा जा सकता है।

हाँ, मुझे मनोरमाकी याद है। बेचारी लड़की! यदि मुझे मालूम हो कि वह कहाँ जायेगी तो उसे पत्र लिखनेमें मुझे प्रसन्नता होगी। यदि वह वहाँ है तो साथका यह पत्र उसके लिए है। जेल-अधीक्षक कृपापूर्वक यह पत्र स्वयं उसे दे देंगे या उसे देनेके लिए तुमको दे देंगे, अथवा यदि उसका स्थानान्तरण हो गया हो तो यह पत्र उसे वहीं भेज देंगे।

हम सबकी ओरसे सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६०) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७२६ से भी

२०७. पत्र : श्यामलालको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला श्यामलाल,

आपका पत्र मिला। यह जानकर मुझे खुशी हुई कि आपने अकालपीड़ित हरिजनोंके लिए सब व्यवस्था कर दी है। यह आपके अनुरूप ही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला श्यामलाल
एडवोकेट
९ दयाल सिंह मैनशन्स
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२८३) से।

२०८. पत्र : एफ० मेरी बारको[1]

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले, लेकिन मुझे यह मालूम न होनेके कारण कि मेरा पत्र तिरुपत्तूरमें तुमतक पहुँच सकेगा अथवा नहीं, मैंने तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा। लेकिन अब मैं तुम्हें यह इस आशाके साथ भेज रहा हूँ कि यह बम्बईमें तुम्हारे बताये हुए पतेपर तुम्हें मिल जायेगा। मैं पूना स्टेशनपर भी शास्त्रीकी मार्फत तुम तक पहुँचनेका प्रयत्न कर रहा हूँ क्योंकि यदि तुम दो-तीन दिनके लिए बम्बईमें ठहरना चाहती हो तो तुम वहीं ठहरोगी जहाँ मैं ठहरता हूँ। जगह तुम्हें मालूम ही है, 'मणि भवन, लेबरनम रोड, गामदेवी'। तुम साथका पत्र दो भाइयों,

१. एफ० मेरी बारने अपनी पुस्तक **बापू : कनवरसेशन्स एण्ड करेस्पांडेंस विद महात्मा गांधी** में लिखा है: "इस लम्बे पत्रकी डाकसे भेजी हुई प्रति मुझे बम्बईमें मिली जिसके साथ उन्होंने अपने मित्रको जो परिचय-पत्र भेजा था, वह भी संलग्न था। और इस तरह उन्होंने चार पत्र भेजे ताकि एक महत्वहीन व्यक्ति बम्बईमें सुरक्षित और सुविधापूर्वक रह सके। क्या कोई भी सावधान व्यापारी अपने भागीदार अथवा कोई स्नेही पिता अपनी पुत्रीके लिए इतना कर सकता है?"

मणिभाई और धीरूभाईमें से किसीको दे देना। उनका घर अपने घरके जैसा ही है। वहाँ तुम्हें स्वर्गीय डॉक्टर मेहताकी पुत्री जैकीबहन भी मिलेंगी। बेशक, तुम्हारा यदि वहाँ दो-तीन दिन ठहरना हो तो जिस बढ़ते हुए परिवारकी तुम सदस्या बनी हो, उसके ज्यादासे-ज्यादा सदस्योंसे मिलना। तुमने जो चुनाव किया है उसके लिए सम्भवतः तुम्हें बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ सकता है। तुम्हें शायद यह बात मालूम हो कि मीराको पुत्री बननेकी क्या कीमत चुकानी पड़ी है। वह कुल मिलाकर सिण्ड्रेला ही है, फर्क सिर्फ इतना ही है कि उसे किसी दिन सोनेकी जूती मिलनेकी आशा नहीं है।

मैंने तुम्हें एक पोस्टकार्ड[1] भेजा था जिसमें मैंने लिखा था कि मुझे 'द लिटिल प्लेज ऑफ सेंट फ्रांसिस' नामक पुस्तक मिल गई है। मैंने तुम्हारे द्वारा चिह्नित नाटकोंमें से केवल एक ही नाटक पढ़ा है और मेरा ख्याल है, मैं इससे ज्यादा पढ़ भी नहीं सकूँगा। मेरे लिए ऐसी कोई चीज पढ़ना अथवा ऐसा कोई काम करना बिलकुल बेकार है जो मेरे सामने पड़े कामके दायरेसे बाहर हो।

जहाँतक मूर्तिपूजाका सवाल है, मैं चाहूँगा कि तुम इसको लेकर परेशान मत हो। तुम इसे अचेतन मनमें ही सुलगते रहने दो और जब तुम्हारे पास समय होगा और मुझे भी फुरसत होगी तथा जब हम मिल सकेंगे तब तुम जी-भरकर इस विषयपर बात कर सकती हो। लेकिन यदि कोई ऐसी मुश्किल हो जो तुम्हें कचोट रही हो तब तुम्हें उसको साफ कह देना चाहिए और यदि मुझसे बन पड़ा तो मैं धीरजके साथ उसे सुलझानेका प्रयत्न करूँगा।

आश्रममें तुम सचमुच आरामसे रहना और अपने आरामके लिए तुम्हें जिस चीजकी आवश्यकता हो सो माँग लेना। आश्रमके मूर्ख लोग तुम्हारी जरूरतोंको नहीं समझ सके और तुमने भी मूर्खतावश उन्हें अपनी जरूरतोंके बारेमें नहीं बताया और इस कारण ही अगर तुमने अपनी सेहत खराब कर ली तो इसके लिए मैं तुम्हें आसानीसे माफ नहीं करूँगा। मैं तो इसे 'नियमकी अवहेलना करना' मानूँगा। मेरे बारेमें माना जाता है कि मुझमें माँ-जैसी नैसर्गिक प्रेरणा है। यह सही है कि मुझे अक्सर लोगोंकी जरूरतोंका पता चल जाता है, लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं कई मामलोंमें बुरी तरहसे असफल भी रहा हूँ और मुझे जिन लोगोंकी जरूरतोंका आभास हो जाना चाहिए था वह नहीं हुआ है। इसलिए मैंने अपने अतिथियोंसे भी यह वचन ले रखा है कि यदि वे मुझे अपने बारेमें निश्चिन्त करना चाहते हों तो उन्हें तुरन्त मुझे अपनी जरूरतोंके बारेमें बता देना चाहिए। यदि मेरे पास समय होता तो मैं तुम्हें कुछ ऐसे किस्से बताता, जिन्हें सुनकर तुम्हें मुझपर हँसी आती कि यदि मित्रोंने मुझे पहलेसे ही न बताया होता तो वे खुद भी दुखी होते और मुझे भी बेकार ही कठोर-हृदय ठहराते। आश्रमके लोग आत्मसन्तोषी जीव हैं। वे समझते हैं कि उनकी जो आवश्यकताएँ हैं, उससे ज्यादा की इच्छा और किसी की हो ही नहीं सकती। उनका ऐसा सोचना बिलकुल गलत है। इसके विपरीत

१. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बारको", २१-१-१९३३।

यदि वे कहें कि उनकी जो आवश्यकताएँ हैं उससे ज्यादाकी आवश्यकता और किसीको नहीं होनी चाहिए तो उनका यह कहना ठीक होगा, क्योंकि वे जितना कुछ स्वयं लेते हैं वह उससे कहीं ज्यादा है जो उन्हें मिलना चाहिए और जो करोड़ों लोगोंको मिलता है।

और फिर यह मत समझना कि आश्रम तो फरिश्तोंका निवास-स्थान है और वहाँ चोरी नहीं हो सकती। वस्तुस्थिति यह है कि आजकल हमारे पड़ोसमें बहुत ही खतरनाक किस्मके लोग रहते हैं। उनका धंधा ही रातको या दिन दहाड़े चोरी करना है और सो भी बिना किसी दुविधा या मुरौवतके। हम उनके बीच सेवाकार्य करनेका प्रयत्न कर रहे हैं इसके पीछे हमारा स्वार्थ निहित है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि हम चाहते हैं कि वे लोग आश्रमको अछूता छोड़ दें। लेकिन वे ऐसा नहीं करते और वे साफ-साफ ऐसा कहते भी हैं। यदि तुम्हारा मन हो तो तुम उनसे जान-पहचान पैदा करना। ये तो ऐसे चोर हैं जिनके बारेमें हमें मालूम है, लेकिन कुछ ऐसे चोर भी हैं जिनकी हमें कोई जानकारी नहीं है और जो हमें इस बातकी चेतावनी देते हैं कि हमें अपने सस्तेसे-सस्ता, जिससे काम चल सके, ऐसा कपड़ा पहनने और मोटा-झोटा भोजन करनेके अलावा और किसी चीजका कोई अधिकार नहीं है। और यदि हम अपनी जरूरतसे ज्यादा, और फालतू चीजें रखते हैं तो इस बातकी बहुत सम्भावना है कि जो अपेक्षाकृत अधिक जरूरतमन्द लोग हैं वे हमसे ये फालतू चीजें छीन लें। आश्रममें अपरिग्रह-व्रतके पालनकी बात कही जाती है, लेकिन हम उसका दृढ़ताके साथ पालन नहीं करते। इस समय तो वह एक आदर्श मात्र है। यदि तुमने आश्रमके नियमोंको न पढ़ा हो तो तुम्हें उन्हें पढ़ लेना चाहिए।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

परिचय-पत्र मैंने बम्बईके पतेपर भेजे गये पत्रके साथ डाकसे भेज दिया है। लेकिन तुम इस परिचय-पत्रके बिना भी जा सकती हो क्योंकि मैंने सीधे धीरूभाईको पत्र लिख दिया है।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८९) से।

२०८. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

आशा है, अपनी इंग्लैंड-यात्रासे आपको लाभ हुआ होगा और इस बार आपकी सेहतपर वैसा दबाव नहीं पड़ा होगा जैसा १९३१ की यात्राके दौरान पड़ा था।

यों यह पत्र मैं अस्पृश्यता-सम्बन्धी रंगा अय्यरके विधेयकके बारेमें आपका मार्गदर्शन पानेके लिए लिख रहा हूँ। भारत सरकारने अखिल भारतीय विधेयकको सदनमें रखनेकी स्वीकृतिके सम्बन्धमें घोषणा की है, लेकिन साथ ही उसने इस विधेयकको मद्रास-विधेयकके लिए रोक लेनेकी भी घोषणा की है। इस सम्बन्धमें मैंने जो वक्तव्य[1] दिया है यदि आपने उसे अभी नहीं पढ़ा है तो मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप उसे पढ़ जायें, और पढ़नेके बाद मुक्तभावसे उसकी आलोचना करें तथा मुझे बतायें कि इस बारेमें मुझे क्या करना चाहिए।

विधेयकोंके पास होनेमें दिलचस्पीका अनुभव मुझे १९१७ में चम्पारन रैयत राहत विधेयकके[2] पास होनेके बादसे और कभी नहीं हुआ है। लेकिन तब मेरा काम आसान था क्योंकि उस समय बिहारकी सरकार और भारत सरकार, दोनोंको उसके पास किये जानेमें दिलचस्पी थी और वह एक सरकारी कार्रवाई भी थी। यहाँ इस मामलेमें परिस्थितियाँ बिलकुल नई हैं। इसलिए आपको विशेषज्ञ मानकर मैं इस मसलेको आपके सामने रख रहा हूँ और यदि इस बारेमें मेरा मार्गदर्शन करनेसे पूर्व आपका विचार मुझसे बातचीत करनेका हो तो मैं जानता हूँ कि आप यहाँ यरवडा आनेका कष्ट उठानेमें तनिक भी संकोच न करेंगे।

यरवडा-समझौतेके तुरन्त बाद आपका पुत्र जिस दुर्घटनाका शिकार हुआ था, आशा है, अब वह पूरी तरहसे ठीक हो गया होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधी-सप्रू करेस्पांडेंस; सौजन्य : राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता। जी० एन० ७५८९ से भी

1. देखिए "वक्तव्य : वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।
2. देखिए खण्ड १४।

२१०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

अपने २१ तारीखके पत्रमें आपने जो लिखा है उसके प्रत्येक शब्दको मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। इस सम्बन्धमें आपकी अन्तरात्मा जैसा कहे वैसा आपको करना चाहिए। आपके पत्रोंकी मुझपर जो प्रतिक्रियाएँ हुई हैं उन सबकी चर्चा मुझे आपके सामने खुले रूपमें कर लेनी चाहिए, ताकि जब कभी आपके हृदयमें उनकी प्रतिध्वनि हो तब आप उनके अनुरूप समंजन कर सकें। लेकिन यदि आपके हृदयमें ऐसी कोई प्रतिध्वनि न हो तो आपको समंजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि आपके पत्रोंको भी जल्दी-जल्दी पढ़नेके कारण हो सकता है कि मुझसे एकाध शब्द इधर-उधर छूट जाये और मैं जिन निष्कर्षोंपर पहुँचूँ वे निष्कर्ष गलत हों। जैसे कि आप चौंकानेवाले अपने इस कथनको ही लें, मेरा मतलब है कि यह कथन मेरे लिए ऐसा ही है, "जब मुझे ऐसा लगेगा कि मैं हरिजनोंकी सेवाके लिए समुचित प्रबन्ध कर सका हूँ उसी क्षण मैं अपने पुराने कामको हाथमें ले लूँगा।" एक केमिस्ट और मिकेनिकके रूपमें आप निश्चय ही ऐसा करेंगे, जैसाकि आपने अक्सर सफलता-पूर्वक किया भी है। लेकिन हरिजनोंकी सेवा कोई मशीन-जैसी चीज नहीं है कि ठीक व्यवस्था करनेके बाद उसे कार्यकर्त्ताओंपर छोड़ दिया जाये। यह तो एक आध्यात्मिक कार्य है, आत्माका आत्माके प्रति अपना फर्ज पूरा करना है और इसलिए हम शुद्ध रूपसे भौतिक कार्योंमें जो यन्त्रवत् बदला-बदली करते हैं वैसी बदला-बदली इसमें नहीं की जा सकती। वैसे तो बदला-बदली आध्यात्मिक कार्योंमें भी होती है लेकिन उसका स्वरूप भिन्न होता है। हालाँकि 'प्रतिष्ठान' का कार्य भी आध्यात्मिक कार्य है लेकिन भौतिक कार्यकी ही तरह कुछ हदतक उसका प्रबन्ध किया जा सकता है; परन्तु हरिजन कार्यपर यह बात लागू नहीं होती। आपकी महान् संगठन-शक्ति हरिजन कार्यमें सहायक होनेके बदले बाधक भी हो सकती है, क्योंकि आपको ऐसे खेतमें हल जोतना पड़ सकता है जो देखनेमें वीरान, बंजर प्रतीत हो और जिसमें कोई उपज नहीं होती हो, जिसे आप अपनी इन नश्वर आँखोंसे देख सकें। आपको तो इस विश्वाससे काम करना होगा कि फल तो है ही, फिर चाहे वह आपको दिखाई दे अथवा न दे। और हरिजन कार्यको अपने ही ढंगसे हाथमें लेने पर अब 'पुराने कामपर' वापस तो जाया ही नहीं जा सकेगा। यदि आप निर्बाध रूपसे निरन्तर हरिजन कार्य करते हुए अपने पुराने कामको वापस हाथमें लें तभी यह संगत होगा, अन्यथा नहीं। मेरा खयाल है, मैं अपनी बातको ठीक ढंगसे स्पष्ट

कर पाया हूँ। बेशक, बस्तीमें व्यक्तिगत रूपसे सेवा करनेके बारेमें आपकी धारणा मेरी धारणासे नितान्त भिन्न हो सकती है। आपको इन दोनोंको एक साथ नही मिला देना चाहिए। आपको अपनी धारणापर दृढ़ रहना चाहिए जबतक कि आपको मेरी धारणा सही मालूम न हो। दोनों साथ-साथ नहीं चल सकती। लेकिन यह सब तो मैं जो कहना चाहता हूँ उस बातको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे ही है। कृपया यह भी याद रखें कि जब भी आपका पूना आनेका मन हो, आप अवश्य आयें। यह व्यर्थ ही पैसा बरबाद करना न होगा। एन्ड्रयूज अक्सर ऐसा करते हैं। उन्होंने मेरी डाँट-फटकारपर भी कभी कोई ध्यान नही दिया क्योकि उनका कहना है कि जिसे आप पैसेकी बरबादी समझते है वह मेरी एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे मुझे अवश्य पूरा करना चाहिए। और अपने दृष्टिकोणसे उनका कहना ठीक भी है। यदि वे इस तरहसे दौड़कर मेरे पास न आते तो वे परेशान हो जाते। पत्र चाहे कितने ही क्यों न लिखे जाते लेकिन उससे उनको तसल्ली न होती। अभी भी, जबकि मैं यह पत्र बोलकर लिखवा रहा हूँ, उनका एक तार मुझे मिला है। आजकल वे मुझे प्रति-दिन एक तार भेजते हैं। यह सब-कुछ हमें बहुत महँगा पड़ता है लेकिन मै उन्हें रोक नहीं सकता। मुझे उनके तारकी जरूरत नहीं है लेकिन उनकी तसल्लीके लिए यह जरूरी है। अब देखो यह रहा उनका सबसे ताजा तार: "ईश्वरका धन्यवाद — चार्ली, एस्थर।" यह तार कदाचित् आपकी समझमें भी नही आये लेकिन यह मेरे लिए बहुत मायने रखता है। मैंने हाल ही में जो वक्तव्य दिया था उसकी बात उनके कानोंतक पहुँची और उन्होंने इस तारका मसविदा एस्थरके घरमें ही तैयार किया इसलिए उन्होंने अपने नामके साथ एस्थरका नाम भी जोड़ दिया, क्योंकि एस्थर मुझे पुत्रीके समान प्रिय है। लेकिन हरिजन सेवाके कार्यक्रममें इस तारका कोई स्थान नही है, और यदि पैसेका विचार करते है तो इससे हरिजन लोग बहुत सारे पैसेसे वंचित रह जाते हैं।

यदि आप एक दिनमें २६ मील चलनेके बाद भी बहुत ज्यादा थकान महसूस नही करते तो आपका स्वास्थ्य निश्चय ही बहुत अच्छा है और यदि यह उन गोलियोंकी करामात है जो आपने खाई हैं तो उनका नाम जानना उचित होगा।

आपके स्वास्थ्यको लेकर मै निश्चिन्त हो गया हूँ। इसी तरह हेमप्रभाके स्वास्थ्यको लेकर भी मै निश्चिन्त हो सकूँ तो कितना अच्छा हो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६२४) से।

२११. पत्र : दुनीचन्दको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला दुनीचन्द,

आपने सूरजभानके बारेमें जानकारी देनेके लिए मुझे जो पत्र लिखा है उसके लिए आपका धन्यवाद। कृपया उससे कहें कि वह मुझे पत्र लिखे।

मैं जानता हूँ कि आपको और श्रीमती दुनीचन्दको मेरी बड़ी चिन्ता रहती है। इस बातसे मेरा हृदय गद्गद हो उठता है। आश्वस्त रहें कि मैं ईश्वरके हाथमें सुरक्षित हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५८३) से।

२१२. पत्र : एस० सालिवतीको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

अब मुझे मद्राससे आपके सन्देशकी असली प्रति मिल गई है और जहाँतक मैं इसे पढ़ पाया हूँ मैं देखता हूँ कि मेरी शिकायत बिलकुल वाजिब है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि आपके अत्यधिक उत्साहने आपको गुमराह कर दिया। यह सोचकर कि आपको अबतक इसकी एक प्रति अवश्य मिल गई होगी, मेरे सामने जो प्रति रखी हुई है वह मैं आपको नहीं भेज रहा। लेकिन यदि आप इसे पढ़ना चाहें तो आप ले सकते हैं। इससे पहले कि मैं रंगास्वामीको फिरसे लिखूं, मैं जानना चाहूँगा कि इस बारेमें आपको क्या कहना है।

विधेयकके बारेमें मुझे आपका तार मिल गया था और अब पत्र भी मिल गया है। मैं किसी भी सूरतमें अपना वक्तव्य मुल्तवी नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०५) से।

२१३. पत्र : जी० एस० चेट्टीको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[1] आप क्या कहना चाहते है, यह मैं समझ नही पा रहा हूँ। क्या मुट्ठी-भर कांग्रेसीजन, जो अस्पृश्यता-निवारण अभियान चला रहे हैं, अनुचित आचरण कर रहे है अथवा गैरकांग्रेसी सुधारक जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, शरारत कर रहे हैं? क्या आपकी यह शिकायत कांग्रेसजनोंके विरुद्ध है अथवा उन अन्य सुधारकोंके विरुद्ध है जो मेरे उस अनशनका नाजायज फायदा उठा रहे हैं जो हो सकता है मुझे कभी करना ही न पड़े? यदि आपके पास ऐसा कोई सबूत है जिससे यह साबित हो सके कि हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेश नही चाहते तो मैं उस सबूतको देखना चाहूँगा। और यदि आपके कथनको सच मान भी लिया जाये तो क्या इसी कारण सवर्ण हिन्दुओंको हरिजनोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन नही करना चाहिए? और फिर सुधारकोंके विरुद्ध यह तर्क भी क्या हुआ कि वे लोग अपने समस्त व्यवहारमें समानताके सिद्धान्तका पालन नहीं करते? क्या अपूर्ण मनुष्योंको मानवताके विकासमें भरसक योगदान नही देना चाहिए?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० एस० चेट्टी
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११३)से।

१. प्रेषीको 'तथाकथित' सुधारकोंकी सदाशयताके बारेमें सन्देह था। उनका विचार था कि ये लोग शरारत करेंगे और "शान्तिप्रिय लोगोंके सुख-चैनमें खलल डालेंगे।" उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि "वे इस बातके लिए लोकमत तैयार करें जिससे अस्पृश्योंको साफ रहना और अच्छी आदतें सिखाकर" उनके सामाजिक स्तरको उच्च बनाया जा सके।

२१४. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

कन्हैयालालका पत्र पढ़ लेना।

अमीनाको शारदा मन्दिरमें भेजा जा सके तो बहुत अच्छा हो। कुरेशीका पत्र भी पढ़ लेना।

भाऊ यदि राजकोट जा सके तो बहुत अच्छा हो। उसे और जमनादास दोनोंको परस्पर अच्छा लगेगा। यदि भाऊको किसी कारण राजकोटमें अच्छा न लगे तो उसे यहाँ भेज देना। उसे लेडी ठाकरसीके पास रखकर उसकी जाँच करवाऊँगा और उससे काम भी लूँगा।

कलकी डाक मिली होगी। मैंने एक अन्वेषण किया है उसे वहाँ भेज रहा हूँ। रातमें या जब भी ठंड ज्यादा पड़ रही हो तो शरीरको कागजोंसे लपेटकर गरमी पैदा की जा सकती है। भले ही पतली, मोटी कैसी ही, चादर ओढ़ी हो, उसपर यदि कागज ढँक दिये जायें तो गरमी आ जायेगी। आजकल ठंड बड़ी सख्त पड़ती है। मै तो रात्रिमें आकाशके नीचे ही सोता हूँ। तीन-तीन कम्बल ओढ़नेपर भी ठंड लगती है। चौथा ओढ़नेकी न तो हिम्मत होती है और न इच्छा, इसलिए चद्दर और कम्बलके बीच अखबार डाले और बिछौनेकी चद्दरके नीचे भी। ऐसा करनेसे आवश्यकतासे अधिक गरमी मिली। जब पाँव ठंडे हो जाते हैं तब तो कई दिनोंसे मै अखबारसे उन्हें ढँक कर गरम करता हूँ। जमीन या आँगनमें अखबार बिछाकर बैठें तो आँगन ठंडा नही लगता। ये गरीबोंके गरम बने रहनेके उपाय है। पर गाँवोमें तो ये भी उपलब्ध नहीं होते, यह और बात है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एन० एम० यू०/१) से।

२१५. पत्र : भाऊ पानसेको

२६ जनवरी, १९३३

चि० भाऊ,

मैं चाहे किसी भी कार्यमें क्यों न व्यस्त होऊँ तथापि मुझे तुम्हारा पत्र अवश्य मिलना चाहिए। राजकोट आशावान होकर जाना। बादमें भले ही ठीक न हो। राजकोटका अनुभव प्राप्त करनेके बाद हम उपवासकी सम्भावनापर विचार करेंगे। बीजापुरके अन्य अनुभव बताना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४४९१) से; सौजन्य : भाऊ पानसे

२१६. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

मुझे जिन १३ व्यक्तियोंसे मिलनेकी अनुमति पहले ही मिल चुकी है, उन व्यक्तियोंके अलावा मैं स्वर्गीय डॉ० मेहताकी मिल्कियतके सिलसिलेमें निम्नलिखित लोगोंसे भी मिलना चाहूँगा :–

(१) पद्माबहन, डॉ० मेहताकी पौत्री।

(२) श्रीयुत कान्तिलाल ए० दोषी, प्रसिद्ध मोरबी शराफके पुत्र, जिनका विवाह (१) से होनेवाला है।

(३) श्रीयुत रतिलाल सेठकी पत्नी श्रीमती व्रज कुँवर रतिलाल सेठ जिससे मिलनेकी अनुमति पहले ही दी जा चुकी है।

चूँकि मुझे पद्माबहन और श्रीयुत कान्तिलालके विवाहके बारेमें सलाह देनी है जो कि फरवरीमें होगा, इसलिए उम्मीद है कि मुझे इन लोगोंसे मिलनेकी अनुमति शीघ्र मिल जायेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८७७) से।

२१७. पत्र : बिल लैशको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय भाई लैश,

मुझे आपका पत्र और प्रश्न मिले। प्रश्न निस्सन्देह बहुत अच्छे हैं। इस पत्रके साथ आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर भी संलग्न हैं।[1] यदि आपको ये इतने छोटे जान पड़ें कि इनसे अर्थ भी स्पष्ट न हो तो आप निस्संकोच मुझसे दुबारा पूछ सकते हैं और यदि आपको ऐसा लगे कि आपके यहाँ आनेमें काम ज्यादा आसान होगा तो कृपया आनेमें तनिक भी संकोच न करें।

मुझे खुशी है कि मलहमसे जहरीले दंशका प्रभाव दूर हो गया है। अब आपको मुझे उस मलहमका नुस्खा बताना चाहिए।

हृदयसे आपका,

बापू

ब्रदर बिल लैश
क्रिस्टा सेवा संघ आश्रम
पूना

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९) से।

२१८. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

२७ जनवरी, १९३३

मुझे तुम्हारे पत्र और ढेरों तार मिले हैं।[2] मैं उनके अर्थको और उनमें छिपी हुई चिन्ताको अच्छी तरह समझता हूँ। मुझे इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि भारत सरकारको चाहिए था कि वह दोनों विधेयकोंको सदनमें पेश किये जानेकी स्वीकृति दे देती। लेकिन सनातनियोंके आन्दोलनने उसे डरा दिया है। तथापि, डॉ० सुब्बारायनके विधेयकपर स्वीकृति देनेसे इन्कार करनेकी बातका मैं बुरा नहीं मानता। निस्सन्देह इससे क्लेश और भी बढ़ेगा। लेकिन मजबूरी है, कुछ किया नहीं जा

१. उपलब्ध नहीं है।

२. सी० एफ० एन्ड्रचूजने अपने १३ जनवरीके पत्रमें लिखा था कि यदि अस्पृश्यता-सम्बन्धी प्रस्तावित कानूनको 'अखिल भारतीय प्रश्न' माना जाये और यदि इसका निर्णय मद्रास परिषदकी अपेक्षा केन्द्रीय विधान सभा द्वारा किया जाये तो यह ज्यादा बेहतर होगा।

सकता। आखिरकार हमें तो हिन्दुओंके जनमानसको जागृत करना है। यदि सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यता-निवारणके लिए तैयार नहीं हैं तो मैं अखिल भारतीय विधेयक भी नही चाहता। हालाँकि विधेयकके बारेमे दिये गये मेरे वक्तव्य[1] परसे तुम देखोगे कि यह विधेयक बिलकुल निरापद है। यह तो केवल अस्पृश्यताको कानूनी मान्यता देनेसे इन्कार करता है और इस तरह सुधारकों और विरोधियोंको जनताको शिक्षित बनानेका मौका देता है। यह तो ठीक एक ऐसा विधेयक है जो दोनों ही के काममें कोई हस्तक्षेप नहीं करता। तथापि, यदि यह बात अन्तिमरूपसे सिद्ध हो जाती है कि सवर्ण हिन्दू इस विधेयकको स्वीकार नही करेंगे तो मैं सरकार द्वारा इस विधेयकको रोक लिये जानेकी बातके लिए अपने आपको राजी कर लूँगा। यदि सरकार सहज तरीकेसे इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं होती कि एक बहुत बड़ी संख्यामें सवर्ण हिन्दू इस परिवर्तनके लिए तैयार हैं तो मेरे लिए यह सिद्ध कर दिखाना बहुत कठिन कार्य हो जाता है। आजकल तो सनातन-धर्मके नामपर एक द्वेषपूर्ण आन्दोलन चलाया जा रहा है और जहाँतक मुझे मालूम है इसे जनताका बल प्राप्त नहीं है। वाहरके लोगोंको यह बताना मुश्किल है कि इसे जनताका सच्चा समर्थन प्राप्त नही है। यदि इस आन्दोलनको हिन्दू जनमानसकी विशुद्ध अभिव्यक्तिके रूपमें स्वीकार किया जाता है तो इससे, निस्सन्देह, अत्यन्त कठिन और खतरनाक स्थिति पैदा हो जायेगी। तथापि मैं पवित्रता और विश्वासको बनाये रखनेके लिए एड़ी-चोटीका पसीना एक कर रहा हूँ कि अन्तमे सब ठीक ही होगा। इस बीच मैंने अनशन मुल्तवी कर दिया है। इस मामलेमें मेरी अपनी कोई इच्छा नही है। मैं भगवानसे निरन्तर प्रकाशके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ और यदि अनशन करना ही पड़ा तो तुम्हें उसके मूलका पता लग जायेगा और तुम जरा भी चिन्ता नही करोगे।

तुमने कुँवर महाराज सिहके लड़कोंके बारेमें जो कहा है, उसे मैं पढ़ गया हूँ और मुझे खुशी है कि तुम्हारा प्रयत्न सफल हुआ। जैसाकि तुमने लिखा है, यह समस्या भी मन्दिर-प्रवेशकी समस्याके समान ही थी।

मैं यह माने लेता हूँ कि तुम्हें मेरे सारे वक्तव्य मिल रहे हैं। फिर भी, मैं इसके साथ अखिल भारतीय विधेयकपर दिया गया अपना वक्तव्य भेज रहा हूँ। मैं चाहूँगा कि तुम इसे अच्छी तरह पढ़ जाओ और यदि हो सके तो मैंने मन्दिर-प्रवेश तथा आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रममे जो मूलभूत भेद दिखाया है, उसको समझो।

आशा है, तुम्हारी बीमार माँ आगेसे अच्छी होंगी और ज्यादा कहना मानती होंगी।

सी० एफ० एन्ड्रयूज

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९००४) से।

१. देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

२१९. पत्र : एस० डी० नाडकर्णीको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय श्री नाडकर्णी,

आपका पत्र पाकर निश्चय ही बहुत खुशी हुई। मेरा विश्वास कम नहीं हुआ है बल्कि और भी बढ़ गया है। यदि नागरिक अधिकारोंका कोई मूल्य होना है तो उनके पीछे कानूनी संरक्षण होना अवश्य ही जरूरी है। हरिजन किसीकी रजामन्दी पर निर्भर करें, इस बातका तो प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन कानून एक चीज है और लोकमत तैयार करना बिलकुल दूसरी चीज। समाज कानूनके बलपर नहीं अपितु पारस्परिक सद्भावनाके बलपर टिका हुआ है। जबतक एक बहुत बड़ी संख्या में सवर्ण हिन्दुओंका हृदय-परिवर्तन नहीं हो जाता, तबतक उन अधिकारोंको कानूनी संरक्षण प्राप्त हो जाना भी बेकार है जिनको बहुमत माननेको तैयार नहीं है। आजका सारा आन्दोलन हरिजनोंके प्रति सवर्ण हिन्दुओंके मतको निश्चित रूपसे जानने और तैयार करनेकी ओर निर्दिष्ट है। कानूनी गारटी और उनसे जो भी अर्थ निकलता हो, तो रहेंगी ही लेकिन वे बहुमतकी इच्छाकी अभिव्यक्तिके रूपमे होगी, ऊपरसे लादी हुई नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० डी० नाडकर्णी
कारवार

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११६) से।

२२०. पत्र : वी० एम० नावलेको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप यह नहीं कह सकते कि मै आपको समय नहीं देता हूँ। अभी पिछली बार ही मैंने आपको काफी समय दिया था; और आपके पत्रोंका तत्काल उत्तर देकर भी मै आपको काफी समय देता हूँ। और यदि मुझे आपका सुझाव[1] उपयुक्त अथवा कामचलाऊ लगा होता तो मैं आपको मिलनेके लिए बुलाता

१. श्री नावलेने सुझाव दिया था कि अस्पृश्योंको अपने जातिनाम यथा महार, माँग, चमार, ढेढ़, आदि त्याग देने चाहिए।

तथा आपको और भी समय देता। मैं आपको बता दूं कि यह कोई नया सुझाव नहीं है। १९१५ में जब मैं दक्षिण आफ्रिकासे वापस आया था तब यह मेरे सामने रखा गया था और मैंने इसे माननेसे इनकार कर दिया था। यह तो हरिजनोंके लिए एक बुरी शिक्षाके समान है और यह सवर्ण हिन्दुओंके लिए भी बुरी बात है। और वस्तुतः आप तथा मैं जो चाहते है, वह यह है कि सवर्ण हिन्दुओंने जिन लोगोंको अज्ञानवश अथवा स्पष्टतः धृष्टतापूर्वक ही अस्पृश्य माना है, उनके प्रति वे प्रायश्चित्त करे और अपनी भूलका परिमार्जन करें। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि धर्मके विचारसे किसी प्रकारकी धोखाधड़ी, फिर चाहे वह कितनी ही क्षम्य क्यों न हो, न की जाये, अपितु सवर्ण हिन्दुओंको चाहिए कि वे सोच-समझकर सक्रिय कार्यों द्वारा खुले मनसे हरिजनोंको अपनायें। यह सच है कि हिन्दू-धर्मने ऐसे अनेक लोगोंको खपा लिया है जो कभी बहिष्कृत थे लेकिन जो दूसरे-दूसरे नामोंसे उसमें घुस आये। लेकिन मेरे खयालसे यह तरीका अनुकरणीय नहीं है। काश! मैं आपको इस बातका यकीन दिला सकता कि अस्पृश्यता-निवारण[1] एकदम धार्मिक समस्या है जिसमें गलत उपायों अथवा धोखाधड़ीसे काम नहीं लिया जा सकता। क्या अब भी आप मुझसे सहमत नहीं है?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११७) से।

२२१. पत्र : एस० कृष्ण अय्यरको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप स्पष्टतः ऐसा सोचते जान पड़ते हैं कि जो लोग ब्रिटिश भारतमें अथवा देशी राज्योंमें विशेषकर धार्मिक मामलोंमें, कानूनी सहायता प्राप्त करनेके प्रयत्नमें हैं, वे लोग जनतासे उसकी इच्छाके विरुद्ध काम करवाना चाहते हैं। जरूरत इस बातकी है कि सरकार द्वारा अस्पृश्यताको मान्यता प्रदान नहीं की जानी चाहिए। लेकिन आज तो स्थिति यह है कि राज्य सरकार न केवल अस्पृश्यताको मान्यता प्रदान करती है वरन् अस्पृश्यताके समर्थकोंको दूसरोंपर अपने विचार थोपनेमें मदद भी देती है और इस तरह वह एक धार्मिक सिद्धान्तको कानूनी शक्ल दे रही है। इसलिए इस असंगतिको दूर करनेके लिए सुधारकोंके लिए कानूनकी सहायता लेना जरूरी हो जाता है। और जब यह असंगति दूर हो जायेगी तब हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेश करने देने-जैसी समस्या ही न रह जायेगी; बल्कि तब तो

१. साधन-सूत्रमें यहाँ "अस्पृश्यता निवारणका यह तरीका" है।

हिन्दुओंके बहुतेरे भागके लिए, जिन्हें मौजूदा प्रथाके अनुसार मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है, हरिजनोके लिए मन्दिरके कपाट खोल देना सम्भव हो जायेगा। उस हालतमे बहुमत द्वारा मन्दिरोंका बहिष्कार करनेका प्रश्न भी नही रह जायेगा। यह सम्भव है कि तब कुछ ही लोग रह जायेगे जो मन्दिरोके लाभसे वंचित हो जायेगे। उनकी यह क्षति होगी लेकिन मैंने समझौतेका जो सुझाव रखा है उसमे उनके विचारो और पूर्वग्रहोंके लिए भी गुंजाइश रखी है। अतएव त्रावणकोरमे जो लोग ऐसा समझते है कि हिन्दू-धर्मके भले नामके लिए अस्पृश्यता दूर होनी ही चाहिए वे लोग एक ओर तो सरल साधनों और अपने शुद्ध आचरणके द्वारा कट्टर विरोधियोंको अपने विचारोंके अनुरूप ढालनेमे पूरी शक्ति लगा देगे तथा दूसरी ओर हरिजनोंके बीच रहकर काम करेंगे और उन्हें अपनी उन आदतों और रिवाजोंको छोड़नेकी प्रेरणा देंगे जो नैतिक भावनाकी दृष्टिसे हेय है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० कृष्ण अय्यर, बी० ए०, बी० एल०
हाईकार्ट वकील, त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११९) से।

२२२. पत्र : बी० एस० बरवेको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। लेकिन मुझे भय है कि आपको संतुष्ट कर सकनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। जिसे मै सत्य मानता हूँ, उसतक मैं विश्लेषणात्मक ढंगसे नहीं पहुँचा हूँ और इसीलिए आपके कुछ प्रश्नोंको समझ पाना मेरे लिए बहुत कठिन है। जीवनके प्रति कुल मिलाकर आज मेरा जो दृष्टिकोण है, उसतक मैं कैसे पहुँचा, यह बता सकना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। आज मैं जो-कुछ हूँ उसके लिए अनेक पुस्तकें, असंख्य व्यक्ति और घटनाएँ जिम्मेदार हैं और यह बात हर किसीपर लागू होती है। हो सकता है, कुछ लोगोंमें, वे जो-कुछ सोचते, कहते अथवा करते हैं, उसके पीछे निहित कारण अथवा कारणोंका पता लगा सकनेकी योग्यता हो। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं बहुत मूर्ख हूँ तथा अक्सर मै जो काम करता हूँ और जिन मान्यताओंको लेकर चलता हूँ, उनका कारण नहीं बता सकता और कभी-कभी मैं यह कल्पना करता हूँ कि मेरे द्वारा ईश्वर ही बोल रहा है और काम कर रहा है। मुझे इस बातका पूरा अहसास है कि सम्भव है, मेरा यह विश्वास मेरी कोरी कल्पना ही हो लेकिन जबतक मै ऐसा मानता हूँ तबतक, विश्वास कीजिए,

यह विचार मेरे लिए उतना ही सत्य है जितना मेरा इस समय आपको यह पत्र लिखवाना।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एस० बरवे
ठेकेदार
९१७ सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१२३) से।

२२३. पत्र : विद्यार्थी हरिजन सेवा संघको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने एक संघकी स्थापना की है। आपने जो सुझाव रखे हैं फिलहाल उनमें मैं कोई और उपयोगी सुझाव नहीं जोड़ सकता। यदि आपका संघ हरिजन सेवक संघके साथ मिलकर अथवा उसके आदेशाधीन होकर भी काम करता है तो दोनोंके कार्यक्षेत्र स्पष्ट रहेंगे।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
विद्यार्थी हरिजन सेवा संघ
नई सड़क, दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२४) से।

२२४. पत्र : पी० गोमतीनायकम पिल्लैको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और अस्पृश्यताके सम्बन्धमें लिखी आपकी पुस्तिकाकी तीन प्रतियाँ मिलीं, जिनके लिए धन्यवाद। मैं इस बातका निर्णय करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ कि इसके तमिल और मलयालम अनुवाद जरूरी हैं अथवा नहीं। इसका निर्णय तो हरिजन सेवक' संघकी प्रान्तीय शाखा ही कर सकती है और मैं चाहूँगा कि इस सम्बन्धमें आप उनसे परामर्श करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० गोमतीनायकम पिल्लै
ईलनजी, तेंकाशी, (दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एन० २०१२५) से।

२२५. पत्र : वी० जगतरक्षकनको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं समझता हूँ कि हम लोग अस्वाभाविक प्रतिबन्धोंके जरिये कुलकी शुद्धता कायम रखनेके सिद्धान्तके जड़ पूजक बन गये हैं। हमारे पूर्वज इन प्रतिबन्धोंसे अनभिज्ञ थे। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ऐसे विवाहोंका समर्थक हूँ जिनमें कुल की शुद्धताका विचार न किया जाये। मेरा ख्याल है कि ऐसे लोगोंमें, जिनके विचार और आदतें एक-जैसी हों, परस्पर विवाह करनेका सिद्धान्त एक अच्छा सिद्धान्त है लेकिन जब यह सिद्धान्त इतना कठोर हो जाता है कि जो लोग इस सिद्धान्तसे हटकर विवाह करते हैं उनके विवाहको पापरूप माना जाता है तब यह दोषपूर्ण बन जाता है, विशेषकर इन दिनों, जब वर्ण यदि अपने मूल महत्त्वको नहीं तो कमसे-कम अपनी पवित्रताको खो बैठे हैं। निम्न वर्ग और उच्च वर्गमें जो भेद किया जाता

१. साधन-सूत्रमें यहाँ 'सर्विस' (सेवा) है।

है और जिसमें आप भी विश्वास करते जान पड़ते हैं, मेरे विचारसे वह सत्यका जघन्य विरूपण करना है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० जगतरक्षकन
७ साउथ माडा स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२६) से।

२२६. पत्र : जी० वी० मावलंकरको

२७ जनवरी, १९३३

भाई मावलंकर,

तुम्हारा पत्र मिल गया। दोनों ही नव द्विजोको हम सबका आशीर्वाद। दोनों दीर्घायु हों और उपनयन संस्कारको सुशोभित करे।

कमजोरी दिन-ब-दिन कम होती जायेगी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२३६) से।

२२७. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

२७ जनवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। विधेयकोंको पढ गया। बच्चोंको जो छात्रवृत्ति देते हो, वह तो पाठशालामें आनेके लिए उनको घूस या इनाम ही है न? और यदि बात यही है तो क्या इस प्रणालीको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९६१) से।

२२८. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

२७ जनवरी, १९३३

चि० इन्दु,

तेरा पत्र मिला। बीमार कैसे पड गया? खानेका ध्यान रखता होगा। साइ-किलका भले ही उपयोग कर, पर रोज पैदल तो घूमना ही चाहिए। मुझे अपना दैनिक कार्यक्रम लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२५४) से।

२२९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२७ जनवरी, १९३३

श्री गांधीने कहा, मुझे यह जानकर आश्चर्य और दुख हुआ है कि भूतपूर्व न्यायाधीश श्री अय्यंगारने "इतना गैर-जिम्मेदाराना" भाषण दिया है।[1] यदि उन्होंने आन्दोलनका अध्ययन करनेका तनिक भी कष्ट उठाया होता तो यह बात उन्हें तुरन्त दिखाई दे जाती कि जब मैं राजनीतिका ककहरा भी नहीं जानता था तब भी अस्पृश्यता-निवारणका प्रश्न मेरे लिए एक धार्मिक सिद्धान्तका सवाल था। यदि मैं धार्मिक प्रवृत्तिसे अनुप्रेरित न होकर राजनीतिसे प्रेरित होता तो मैंने अपने कार्यक्रममें से मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नको निकाल दिया होता और अपना ध्यान हरिजनोंके आर्थिक और शैक्षणिक उन्नयनकी ओर लगाया होता। लेकिन मैंने अपनी लोकप्रियताको, वह जैसी भी थी, दाँवपर लगा दिया है क्योंकि मेरा विश्वास है कि मन्दिर-प्रवेशके बिना हिन्दू-धर्मसे अस्पृश्यताको दूर नहीं किया जा सकता। श्री गांधीने आगे कहा :

श्री अय्यगार और अन्य सनातनी, जो कहते हैं कि वे हरिजनोंके साथ बुरा व्यवहार नही करना चाहते और उनके आर्थिक विकासमे तथा अन्य भौतिक सुखोंमें अभिवृद्धि करना चाहते हैं, मै उनके सामने एक प्रस्ताव रखता हूँ। वे लोग हरिजन

१. मद्रासमें सनातनियोंकी सभामें श्री अय्यंगारने अपने भाषणमें कहा था कि गांधीजी का वर्तमान मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन और कुछ न होकर राजनीतिक प्रचार-भर है ताकि गांधीजी और उनके अनुयायी हरिजनोंको सन्तुष्ट कर सकें और वे सरकारके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा खड़ा करनेके लिए कांग्रेसमें शामिल हो जायें।

सेवक संघमें शामिल हो जायें, और हरिजनोंकी भौतिक सुखोन्नतिके उसके कार्यक्रमको पूरा करनेमें सहयोग दें और पैसा लगाये तथा मन्दिर-प्रवेशकी समस्या मुझपर और मेरे-जैसे विचार रखनेवाले लोगोंपर छोड़ दें। श्री अय्यंगारको मालूम होना चाहिए कि हरिजन सेवक संघमें बहुत कम कांग्रेसी लोग हैं। इस संगठनमें बहुतसे प्रतिष्ठित उदारवादी लोग हैं। बेशक, सनातनी लोग, यदि वे जो कहते हैं वह सच है तो, हरिजन सेवक संघके लिए धन और कार्यकर्त्ताओंको लाकर, इसकी व्यवस्थाको अपने हाथमें ले सकते हैं और इसकी नीति निर्धारित कर सकते हैं। यदि यह बात उन्हें पसन्द नहीं है तो वे एक प्रतिद्वन्द्वी संस्थाकी स्थापना करें और सारे देशमें उसकी शाखाएँ खोलें, और इस तरह हरिजनोंके मनको जीत लें। और मैं मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन चलाकर पुण्य-लाभ प्राप्त करनेकी चेष्टा करूँगा और यह सिद्ध करूँगा कि इससे एक बारगी ही हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओंका भी उन्नयन होगा और इससे दोनोंकी शुद्धि होगी तथा इससे हरिजनोके भौतिक सुखोंमें स्वतः अभिवृद्धि होगी। श्री अय्यंगारको जान लेना चाहिए कि जिस मामलेका सम्बन्ध जनतासे हो वहाँ चकमा देनेसे काम नहीं चल सकता। लोग किसी भी आदमीकी बात सुननेको तैयार हैं, लेकिन उनके बीच अन्ततः केवल ईमानदारी और अथक परिश्रमकी ही विजय होगी।

धर्ममें हस्तक्षेप करनेके आरोपके बारेमें गांधीजी ने कहा:

इस प्रश्नपर मै अपने पिछले वक्तव्योंमें कह चुका हूँ। मै अपने इस विचारको फिरसे दोहरा ही सकता हूँ कि जब वास्तविक सत्ता जनताके हाथोंमे आ जायेगी तब भी सरकार द्वारा धर्ममें हस्तक्षेप करनेकी बातका विरोध करनेवाला सबसे पहला व्यक्ति मैं ही होऊँगा। लेकिन यदि सनातनी लोग यह समझें कि 'चित भी मेरी, पट भी मेरी', तो यह नही हो सकता। जैसाकि सनातनियोंने पहले भी किया है, और जिसे मेरे-जैसे लोग पूर्वग्रह अथवा उससे भी बुरी चीज समझते है, वे उसको बनाये रखनेके लिए कानून की मदद लेना चाहते है; और जब मै इस दखलन्दाजीको खत्म करानेकी कोशिश करता हूँ तब पूर्वग्रहके समर्थक वे ही लोग शोर मचाने लगते हैं कि धर्ममें हस्तक्षेप किया जा रहा है। बेशक, मै पूर्वग्रहकी भी कद्र करना चाहता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि जिसे मैं पूर्वग्रह समझता हूँ वह उनके लिए ज्ञानकी बात हो सकती है। लेकिन वे ऐसी बाते है जिसमें सरकारकी सहायता नहीं ली जा सकती। कानूनके सामने जो मसले आते है उनके बारेमें कानूनका दृष्टिकोण सामयिक ही हो सकता है। चोरीका समर्थन करनेवाले आगमोंको कानून मान्यता प्रदान नही कर सकता। आश्रममे हमारे जो पड़ोसी लोग हैं वे पूरी ईमानदारीसे विश्वास करते है कि एक जातिके रूपमें ईश्वरने उन्हें चोरीका धन्धा करनेका आदेश दिया है। मै उनके पूर्वग्रहकी कद्र करता हूँ, लेकिन कानून वैसा नही करता। यहाँ मै किसी काल्पनिक किस्सेका उल्लेख नही कर रहा हूँ। यह मैं अपने अनुभवके आधार पर कह रहा हूँ।

श्री अय्यंगारका कहना है कि मैं शास्त्रोंमें विश्वास नहीं करता। अपने इस आरोपके समर्थनमें वह उदाहरणके तौरपर मेरे एक भी भाषणका उल्लेख नहीं कर

सकते। निस्सन्देह वह एक अच्छे वकील हैं और इस नाते यह नही कह सकते कि शास्त्रोंकी उन्होंने जो व्याख्या की है और उनकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमे अपना जो निर्णय दिया है, वह सर्वथा निर्दोष है या गलत नही हो सकता। मैं श्री अय्यंगारसे और उन लोगोसे, जो मेरे विरुद्ध हर तरहके आरोप लगा रहे हैं और अपने कथनके समर्थनमें मेरे लेखोको तोड़-मरोड़ रहे है, यह पूछना चाहूँगा कि क्या वे इन तरीको द्वारा सनातन धर्मको बनाये रखना चाहेंगे? जब मैं यह कहता हूँ कि यदि मुझे एक नये धर्म अथवा एक नये सम्प्रदायकी स्थापना की तनिक भी इच्छा हुई तो निस्संकोच होकर ऐसा कह सकता हूँ, तब उन्हे मेरा विश्वास करना चाहिए।

हिन्दू-धर्मके द्वारा प्रकाश, आनन्द और शान्ति प्राप्त करनेके अलावा मेरी इस संसारमें और कोई इच्छा नही है। यही कारण है कि मै इसे शुद्ध करना चाहता हूँ। हिन्दू-धर्मसे मुझे सन्तोष मिलता है क्योंकि जैसा मै इसे समझा हूँ और जैसा मैने इसे जीवनमे उतारा है, उसमे मै अन्य धर्मोके साथ समानताका व्यवहार कर सका हूँ और अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ सगे भाई-बहनोंका-सा बर्ताव कर सका हूँ। हिन्दू-धर्मके बारेमें और 'गीता', 'वेदो', 'उपनिषदों', 'भागवत' और 'महाभारत' के बारेमें भी मेरी जो धारणा है, वह मुझे सिखाती है कि समस्त जीव एक है और भगवान की नजरमें न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है। मै वाद-विवाद पसन्द नही करता, लेकिन मैं झूठ और गंदगीको और भी ज्यादा नापसंद करता हूँ। मैं सनातनियोंसे अनुरोध करूँगा कि इनसे संघर्ष करनेमें वे मुझे अपना सहयोग दें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८-१-१९३३, तथा **बॉम्बे क्रॉनिकल**, २८-१-१९३३

२३०. पत्र : वी० एम० नावलेको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके दो पत्र मिले। प्रस्तावित अखबार[1] मेरे सम्पादकत्वमें प्रकाशित नहीं होगा। यह एक अंग्रेजी साप्ताहिक होगा जिसका प्रकाशन हरिजन सेवक संघके तत्वावधानमें होगा। मेरा खयाल है कि आपको बिना किसी बाहरी हस्तक्षेपके अपना पत्र जारी रखना चाहिए और इस आन्दोलनकी जितनी मदद कर सके, आपको उतनी मदद करनी चाहिए।

१. **हरिजन**।

आपके दूसरे पत्रका जहाँतक सवाल है, उसका उत्तर मैंने कल ही आपको भेज दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२८) से।

२३१. पत्र : के० केलप्पनको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरा वक्तव्य पढ़ा होगा। उससे मेरी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मेरा ख्याल है, हमें अपना ध्यान रंगा अय्यरके विधेयकपर केन्द्रित करना होगा। मैं जानता हूँ कि इसके रास्तेमें बहुत सारी अड़चनें हैं, लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कानूनी अड़चन अवश्य दूर की जानी चाहिए। इसलिए, कानूनी बाधाको दूर करनेकी आवश्यकताके सम्बन्धमें हमें जनताको प्रशिक्षित करना होगा और इस बीच जहाँ न्यासियोंकी ओरसे कोई दिक्कत न हो और जनता चाहती हो तो मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये जाने चाहिए। अतएव हमारा कार्यक्रम करीब-करीब वैसा ही है जैसाकि था अर्थात्, मद्रास-विधेयकके स्थानपर अखिल भारतीय विधेयक रखना। राजाजी यहाँ सोमवारको आ रहे हैं और मैं उनके साथ भविष्यके कार्यक्रमपर विचार करूँगा।[1]

मेरी कुहनीके दर्दके बारेमें आपको चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। इस बारेमें मैं सतर्क हूँ और यदि मुझे ऐसा लगा कि इसको तुरन्त ही बाहरसे किसी प्रकारके उपचारकी आवश्यकता है तो मैं उसके लिए अर्जी देनेमें हिचकूँगा नहीं। तथापि, बिना अनुमतिके कोई बाहरी सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३०) से।

१. राजगोपालाचारी, घनश्यामदास बिड़ला और अन्य लोगोंके साथ बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट ८।

२३२. पत्र : के० रामचन्द्रको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आपको आगे कुछ सलाह[2] देना मेरे लिए बहुत कठिन है। लेकिन मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि एक ऐसे मामलेमें जो विशुद्धतया धार्मिक समस्या है और जिसका हिन्दुओंको अनिवार्यतः अपने-आप आपसमें ही समाधान करना होगा, उस मामलेमें गैर-हिन्दुओं द्वारा हस्तक्षेप किये जानेकी बातको कदापि सहन नहीं किया जा सकता। मुझे आश्चर्य है कि गैर-हिन्दू लोग इस बारेमें इतने आग्रहपूर्वक हस्तक्षेप कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० रामचन्द्र
श्री विक्रम रोड
वेल्लवट्टे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३१) से।

२३३. पत्र : आर० कैमलको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप क्या कहना चाहते है, उसे मैं केवल अस्पष्ट रूपसे ही समझ सकता हूँ। यदि आप सरल विचारोंको अभिव्यक्त करनेके लिए सरल भाषाका प्रयोग करें और रूपकों व अलंकारोंसे काम न लें तो अच्छा हो।

१. २३ जनवरी, १९३३ का (एस० एन० २००७८), जिसमें पत्र-लेखकने गांधीजी के एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको दिये गये वक्तव्यका उल्लेख किया था; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६, और कहा था कि गैर-हिन्दू लोग उनकी उस चेतावनीके बावजूद, जो विशेष-रूपसे उन्हें सम्बोधित करके दी गई थी, मन्दिर-प्रवेशके मामलेको अपना उद्देश्य मानकर लड़नेके लिए कटिबद्ध है और इसके नामपर चन्दा इकट्ठा करके सीधी कार्रवाई करनेको तत्पर है।

२. गांधीजी द्वारा प्रेषीको लिखे गये पिछले पत्रके लिए देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३२४।

निम्नलिखित बातें याद रखें :

१. कोई भी उद्देश्य, जिसे सत्यका बल प्राप्त हो, कभी विफल नही होता।
२. कानूनी बाधाको दूर करनेके लिए आज कानून बनानेकी जरूरत है और हमेशा रहेगी।
३. होटल और विलासम[1] दोनों ही बुरे है; दोनों ही स्वादको भड़काते हैं।
४. कोई भी मनुष्य शाकाहारी भोजनके मामलेमें पेटू हो सकता है और मांसाहारको त्याज्य भोजन न माननेके कारण मिताहारी भी हो सकता है।
५. अच्छाई इसीमें है कि सार्वजनिक भोजनालयोंमें कभी भोजन न किया जाये, और अपने घरमें भी भोजनको दवाके रूपमें ग्रहण किया जाये, केवल उतना ही भोजन किया जाये जितना कि शरीरको बनाये रखनेके लिए अनिवार्य हो, स्वादेन्द्रियको कभी सन्तुष्ट न किया जाये।
६. आजके उच्छृंखल जीवनको और धार्मिक सुधारके एक बहुत बड़े आन्दोलनको एक ही चीज मत समझिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१३२) से।

२३४. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारे २५ तारीखके पोस्टकार्डके मिलनेसे पहले ही मैं तुमको पत्र लिख चुका था। मैंने जो कहा है उससे आगे कहनेके लिए मेरे पास कुछ नही है। यदि तुम पुस्तकको लेनेके लिए तैयार हो तो तुम्हें जो व्यय-अनुमान प्राप्त हुए हैं, उन्हें मैं देख जाऊँगा और तुम्हें बाजारकी दरसे ज्यादा नही देना होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३४) से।

१. भोजनालय।

२३५. पत्र : कोक्कीराकुलम् भ्रातृसंघको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और प्रस्ताव[1] के लिए धन्यवाद। यदि सनातनी हिन्दुओं द्वारा मेरा समझौता-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो आप देखेंगे कि इससे न केवल हरिजनोंके आत्म-सम्मानको आघात नहीं पहुँचेगा बल्कि उनके आत्म-सम्मानमें वृद्धि होगी, लेकिन फिलहाल यह बात अप्रासंगिक है।

हृदयसे आपका,

माननीय मन्त्री
कोक्कीराकुलम् भ्रातृसंघ
सेलवाविनयागर स्ट्रीट, कोक्कीराकुलम
तिन्नेवेली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३६) से।

२३६. पत्र : सरोजमोहन सेनको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने श्रीयुत ससमल पर जिस बातका आरोप लगाया है, उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यदि श्रीयुत ससमलने अथवा किसी भी व्यक्तिने ऐसा कोई काम किया है जैसाकि आप लिखते हैं तो आपको उनके

१. जिसमें अन्य बातोंके अलावा, यह कहा गया था कि "महात्मा गांधीके समझौता-प्रस्तावमें हिन्दू-मन्दिरोंमें हरिजनोंके लिए अलग पूजाके घंटे रखे जानेका जो सुझाव दिया गया है, वह न केवल हिन्दू-समाजकी एकताके लिए हानिकर है . . . बल्कि उससे तथाकथित दलित वर्गोंके आत्मसम्मानको भी ठेस पहुँचेगी।"

विरुद्ध कार्रवाई करनी चाहिए। 'मै आपका यह पत्र श्रीयुत ससमलको भेज रहा हूँ, और लिख रहा हूँ कि वे इस मामलेकी जाँच करें।[1]

हृदयसे आपका,

कविराज सरोजमोहन सेन
वैद्यशास्त्री
कोंताई, पो० आ० मिदनापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३७) से।

२३७. पत्र : बी० एन० ससमलको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय ससमल,

यह एक पोस्टकार्ड है जिसे आप अच्छी तरह पढ़ जायें। कविराजने जो आरोप लगाया है, आप कृपया उसकी जाँच कर जायें और यदि उसमें कुछ सचाई है तो उससे मुझे अवगत करायें। मैंने उन्हें लिखा है कि आप लोगोंको इस बातके लिए उकसा ही नहीं सकते कि वे और लोगोंको गोलीसे मारें।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १ पो० का०
श्रीयुत बी० एन० ससमल
बार-एट-लॉ
मिदनापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३५) से।

२३८. पत्र : जी० वी० केतकरको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका कार्ड मिला। आपके लेखके सम्बन्धमें मेरी राय[2] प्रकाशित करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है; सिर्फ इतना हो कि वह आपको सम्बोधित करके लिखी गई हो, क्योंकि एक कैदीके नाते अस्पृश्यता-सम्बन्धी मामलोंको छोड़कर अन्य किसी विषयपर सम्पादकोंको पत्र लिखनेका मुझे अधिकार नहीं है।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए "पत्र : जी० वी० केतकरको", ११-२-१९३३।

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें आपके लेखके बारेमे जहातक मुझे याद पड़ता है, जब वह लेख मुझे मिला था तब मै उसे अवश्य पढ़ गया था और मुझे यह भी याद है कि यह लेख मुझे युक्तिसंगत लगा था। लेकिन आजकल मुझपर कामका बहुत ज्यादा बोझ है और मुझे जो भी साहित्य मिलता है उसे मै केवल उसी हदतक पढ़ता हूँ जो मेरे कामके लिए यथेष्ट हो। इसलिए मै जबतक किसी चीजको अच्छी तरह पढ़नेके बाद उसपर अपनी राय नही देता तबतक मेरी रायका कोई मूल्य नही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३८) से।

२३९. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक (२६की) मिल गई। छक्कड़दासकी पूनी नहीं मिली। मगनलालसे मैंने पुछवाया है। यदि उस ओरसे पूनियाँ सहज ही प्राप्त हो सकती हों तो भले होती रहें। मैंने तो शुरू किया ही है। परचुरे शास्त्री और दास्तानेको भी यहींसे पूनियाँ जाती हैं और आजकल महादेव तथा छगनलालका सारा समय इसीमें चला जाता है। अतः पाँच व्यक्तियोंके कातने लायक [पूनियाँ तैयार करनेके लिए] पींजनेमें यहाँ काफी समय लग जानेकी संभावना है। परन्तु वहाँसे यदि छक्कड़दास पूनियाँ नहीं भेज सके तो उसे तकलीफ नहीं देनी है। केशूकी पूनियाँ यदि सहज ही मिल सकें तो भले ही आ जायें।

तुलसी मेहरका वहाँ कोई पत्र आता है? उसकी चरखेकी प्रवृत्ति ठीक चलती हो, ऐसा नही जान पड़ता। तुम्हें कुछ कल्पना या जानकारी हो तो लिखना।

मेरी तरफसे दो दिन ही खाली गये हैं। बाकी सभी दिन बराबर डाक लिखी गई है।

बापू

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-२, पृष्ठ २४

२४०. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

२८ जनवरी, १९३३

चि० राधाकृष्ण,

एक पत्र महिलाश्रमके विषयमें लिखा था वह मिल गया होगा। जमनालालसे मिलता रहता हूँ। उसकी तबीयत ठीक रहती है। यह बात कल सुननेमें आई कि लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें दर्शनार्थियोंकी संख्या घट गई है। क्या यह बात ठीक है? क्या दर्शनार्थियोंकी हाजिरी रखी जाती है? हरिजनोंके लिए दूसरे मन्दिर भी खुले है, उनके विषयमें भी जानकारी प्राप्त करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०३८) से।

२४१. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२८ जनवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। जैसाकि मैंने अपने पिछले पत्रमें लिखा था, तुम्हें ऐसी परिस्थितिमें नही पड़ना चाहिए था जिसमें तुम अपनेको पा रहे हो।

[भगवानके] भोगके सम्बन्धमें मैं समझ गया था परन्तु उस प्रसंगको छेड़नेका यह अवसर ही नही है। जब प्रश्न खड़ा होगा तब देखेंगे।

रोहित किंग एडवर्ड अस्पतालमें है। डॉ० देशमुखकी दवा चल रही है।

तुमने ऐसा निर्णय किया था कि अपने दाँतोंका पूरा इलाज किये बिना तुम दूसरे किसी कार्यमें नहीं पड़ोगे। यदि उस निर्णयको छोड़नेका कोई कारण न दिखाई देता हो तो उसपर स्थिर रहना चाहिए। क्या ऐसा नहीं हो सकता?

चन्द्रशंकरके विषयमें तुम्हें जैसा ठीक जान पड़े, करना। तुम्हें अपने स्वास्थ्यको बिगड़ने नहीं देना चाहिए।

फलोंमें चीकू और केला शुमार नहीं करना। दाँतोंकी दृष्टिसे साइट्रस [खट्टे] फल ही कामके है। अनार, अनन्नास, नींबूकी जातिके फल (नारंगी, मौसंबी, पपनास, अंगूर

आदि) जिनमें रस निकलता हो, कामके है। इनमें सेव (ऐपिल)का समावेश होता है ऐसा मैं मानता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

हरिभाऊको क्या हो गया है? परेल यानी के० ई०[1] ना?

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९२)से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

२४२. पत्र : हृषीकेशको

२८ जनवरी, १९३३

भाई हृषीकेशजी,

आपका खत मिला। आपने अपना मंदिर जो हरिजनोंके लिये खोल दिया इससे बहुत अच्छा होगा। आपको धन्यवाद।

मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२७८) से।

२४३. पत्र : तुलसी मेहरको

२८ जनवरी, १९३३

चि० तुलसी मेहता,[2]

तुमारा खत मिला है। तुमारा काम कुछ चलता है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। आत्मवंचना न होने पाय। यदि नेपालमें चर्खा प्रचार अशक्य होवे तो छोड़ दिया जाय। और सेवा बहुत हो सकती है। यदि तुमको आत्मविश्वास है तो मैं कुछ भी कहना नही चाहता हूँ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५४४) से।

१. के० ई० एम० हॉस्पिटल।

२. गांधीजी भूलसे 'मेहर' के बजाय 'मेहता' लिख गये जान पड़ते हैं।

२४४. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

मैंने तुम्हें कल एक पत्र लिखा था, मिला होगा। अमीनाकी व्यवस्था शारदा मन्दिरमें की जा सके तो तुरन्त ही कर देना। बालकोंके विषयमें तो मैंने लिखा ही है। वह यदि माता-पिताको रुच जाये तो उसी तरह कर लेना।

यदि तिलकमका माल चोरी गया हो तो उसे ऐसी कुछ चीजें, जिनके बिना उसका काम चल ही नहीं सकता, दिलवा दी होंगी।

मेरी बार आ गई होगी। उसे शिक्षाका तथा हरिजन सेवाका काम दिया जाये, यह मेरी सलाह है। यदि वह कुछ समयके ही लिए रहना चाहती है—और यदि उसकी रुचि हो—तो वह अच्छी प्रकार ओटना, पीजना और कातना सीख ले। उसे फलोंकी जरूरत होगी, यदि हो तो जरूरत पूरी करना। कमोड तो दिया ही होगा। यदि वह पाखाने साफ करनेमें भाग लेना चाहे तो उसे लेने देना।

लीलाधर, रामजी, आदिके पत्र पढ़ लेना।

मेरा वजन इस बार दो पौंड कम हुआ है। अर्थात् १०४ से घटकर १०२ हुआ है। पर स्वास्थ्य अच्छा है। सिर दर्दके सम्बन्धमें अखबारोंमें पढ़ा होगा; परन्तु वह मिट्टीके उपचारसे जाता रहा और अब पुरानी बात हो गई। चिन्ताका जरा भी कारण नहीं है। अपने यहाँ केलॉगकी 'डाइटेटिक्स' पुस्तक है। उसे किसी आने-जानेवालेके साथ भिजवा देना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल ३७ पत्र हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

२४५. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

समझौतेको लेकर बंगालमें जो आन्दोलन चल रहा है, उसके बारेमें आपने जो लिखा है उसे मै समझता हूँ। हमें अपने उद्देश्योंके लिए यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अस्पृश्य कौन लोग है; व्यक्तिगत रूपसे मेरा यह विचार है कि वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हुए सूचीमे जितने ज्यादा लोगोंका नाम दर्ज किया जायेगा उतना बेहतर होगा।

आप अहमदाबादके वैष्णव मित्रोंसे निराश हो गये जान पड़ते हैं, लेकिन मै निराश नही हुआ हूँ। मैंने सेठ चमनलाल और सेठ साकरलाल, दोनोंको ही पत्र लिखे थे। सेठ साकरलालने मुझे स्नेहपूर्ण उत्तर भेजा है। मैं अभी भी कोशिश जारी रखूँगा।

शास्त्रीके सुझावके सम्बन्धमें, जब वे यहाँ आयेंगे और जब मैं उनसे पूरे मामले पर अच्छी तरह बातचीत कर लूँगा तब आपको लिखूँगा। इस बातका मुझे पूरा यकीन है कि अंग्रेजी साप्ताहिकके लिए हमें एक ही-सी योग्यताके दो व्यक्तियोंकी जरूरत नही है। आप मुझे बताये कि आप शास्त्रीसे क्या काम ले रहे थे अथवा क्या काम लेनेका आपका इरादा था।

आपने महादेवको अस्पृश्यताके सम्बन्धमें विद्वानोंके जो मत हैं, उसके हिन्दी-अनुवादकी २५ प्रतियाँ भेजनेके लिए लिखा है। महादेवने सारी प्रतियाँ नष्ट कर दी थी। केवल एक-दो प्रतियाँ ही अपनी फाइलके लिए उसने अपने पास रख ली थी। अतएव आपके पास इस समय जो प्रतियाँ हैं उनकी नकलें उतार कर रख सकते हैं। और आपने हिन्दी-प्रतिपर समस्त सुधारोंको पूरा-पूरा उतार लिया है, इसके बारेमें भी मुझे सन्देह है। यदि आप अस्पृश्यताके सम्बन्धमें विद्वानोंके मतोंका सभी प्रमुख भाषाओंमें अनुवाद एक ही जिल्दमें बँधवाना चाहते हैं तो मैं आपसे यह अपेक्षा करता हूँ कि अनुवाद सर्वथा शुद्ध हो और आप इस बातका ध्यान रखेंगे कि पुस्तिका पूर्णतः निर्दोष होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०७) से।

२४६. पत्र : जनार्दन शर्माको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय जनार्दन,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। यदि तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करोगे और हरिजनोंके साथ सगे भाई-बहनों-जैसा व्यवहार करते रहोगे तो हरिजनोंको नीच मानकर तुमने जो अपराध किया है, भगवान उस अपराधको क्षमा कर देगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जनार्दन शर्मा
द्वारा बी० पन्नालालजी
क्लर्क, चाँदनी चौक पोस्ट आफिस
दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२५९) से।

२४७. पत्र : पी० एन० राजभोजको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय राजभोज[1],

आपका पत्र मिला, साथमें प्रस्तावित छात्रावासकी नियमावली भी। यदि आप ४ फरवरीको दो बजे मेरे यहाँ आनेकी कृपा करें तो हम दोनों आपकी योजनापर विचार करेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६०) से।

१. दलित वर्गोंकी सेवाके लिए बनाई गई एक संस्थाके अवैतनिक संचालक और महामन्त्री।

२४८. पत्र : ए० रंगास्वामी अय्यंगारको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय रंगास्वामी,

सालिवती कल मेरे पास आया था। बेचारा बहुत उदास है। अपने बचावके लिए सचमुच उसके पास कहनेको कुछ नहीं है। आपके उप-सम्पादकने उसके सन्देशको उतारनेमें कोई भूल नहीं की है। लेकिन उद्देश्यके प्रति अपने ही अत्युत्साहके कारण वह कल्पनाकी रौ में बह गया। वह स्वीकार करता है कि अनेक बातें, जिन्हें उसने मेरे द्वारा कही गई बताया है, मैंने नहीं कही थीं, लेकिन मेरे मुँहसे निकले इक्के-दुक्के शब्दसे उसने यह अनुमान लगाया कि मेरे कहनेका आशय वही था जो कि उसने बतलाया है। यह सचमुच ही बहुत खतरनाक बात थी, लेकिन उसने सोचा कि अपनी कल्पनाको पूरी छूट देकर वह उद्देश्यकी सेवा ही करेगा। वह यह भी स्वीकार करता है कि मैंने उसे चेतावनी दी थी कि वह हमारी परस्परकी बातचीतका कतई कोई उपयोग नहीं करेगा लेकिन तब भी उसने सोचा कि उद्देश्य अच्छा है इसलिए उसे प्रकाशित करनेमें कोई हर्ज नहीं है। उसने जो किया उसके पीछे कोई बुरी भावना तो न थी। मैं समझता हूँ और आशा करता हूँ कि उसे अपनी यह भूल जीवनपर्यन्त याद रहेगी। इसलिए उसे इस बातकी चेतावनी दी जानी चाहिए कि उसे किसी उद्देश्यके समर्थकके रूपमें नहीं अपितु विशुद्ध रूपसे एक रिपोर्टरके रूपमें कार्य करना चाहिए; इसके अलावा और कोई कार्रवाई न की जानी चाहिए। आज जबकि हमें गैर-जिम्मेदाराना ढंगसे की गई अनुपयुक्त और विवेकशून्य रिपोर्टें देखनेको मिलती हैं तब अनजाने ही की गई इस भूलके लिए, यद्यपि वह गम्भीर है, किसी व्यक्तिको सजा देना दुःखकी बात होगी।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च:]

इस पत्रको लिखा चुकनेके बाद मुझे सालिवती द्वारा आपको लिखे गये पत्रकी कार्बन-प्रति मिली। मेरा खयाल है, इसमें लगभग वही बातें कही गई हैं जो उसने कल मुझसे कही थीं।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६४) से।

२४९. पत्र : एस० सालिवतीको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

तुम्हारा पत्र मिला जिसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। तुम्हारे पत्रमें लगभग वही बातें कही गई हैं जो कल तुमने मुझसे कहीं थी। मुझे उम्मीद है कि तुमपर कोई आँच नही आयेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६१) से।

२५०. पत्र : भगवानदासको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

मुझे उम्मीद है कि शास्त्रियोंके निबन्धों सहित भेजा मेरा पिछला पत्र आपको मिल गया होगा।

आज मैं इस पत्रके साथ एक और निबन्ध भेज रहा हूँ, जिसे रघुनाथ शास्त्री कोकजे ने लिखा है। उनका निबन्ध विश्वासोत्पादक नही है। उसमें जो दलील दी गई है वह अस्पष्ट है और उसमें विरोधी पक्षकी स्थितिकी भी छानबीन नहीं की गई है। उनकी हिन्दीमें तो बहुत ज्यादा सुधारकी गुंजाइश है। मुझे उम्मीद है, आप इसकी ओर ध्यान देंगे।

मुझे 'आज' कार्यालयसे अखबारोंकी कतरनें नियमितरूपसे मिलती रहती हैं, जिसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। इससे मुझे हिन्दीके अखबारोंमें क्या-कुछ हो रहा है, इसका स्पष्ट रुख मिल जाता है जो मेरे लिए बहुत उपयोगी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६२) से।

२५१. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका सबसे ताजा पत्र मिला। इस पत्रपर तारीख तो नहीं दी गई है, लेकिन यह कल मिला था।

पत्रके प्रथम अंशमें 'सनातन-धर्मके अनुयायियों' द्वारा आयोजित सभामें कुछ लोगों द्वारा अभद्र व्यवहार किये जानेकी शिकायत की गई है। आपने जिस घटनाका उल्लेख किया है उसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। मैं श्री राजगोपालाचारीसे, जो कल यहाँ आनेवाले हैं, इस घटनाकी चर्चा करूँगा। जब कोई भी पक्ष गुण्डागर्दी अथवा बेईमानी करता है तो मुझे दुःख होता है। ईमानदारीपूर्ण मतभेद तो हमेशा रहेगा। लेकिन गालियाँ, पत्थर फेंकने अथवा बेईमानीसे सत्यकी सेवा नहीं की जा सकती।

आपने अपने पत्रके प्रथम अंशमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी मेरे तर्कपर जो टिप्पणी की है, उससे मुझे जो दुःख पहुँचा था वह आपके पत्रके दूसरे अंशको पढ़कर कम हो गया। हुआ यह कि मैं आपका यह पत्र हम चारों कैदियोंके बीचमें पढ़ रहा था और मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं जैसे ही आगे पढ़ने लगा वैसे ही मुझे जोरोंकी हँसी आ गई और इसमें मेरे साथी भी मुक्त मनसे मेरे साथ शामिल हो गये। लेकिन इस हँसीके पीछे मनमें यह वेदना भी थी कि सनातन धर्मके एक प्रतिनिधिके रूपमें आप यह बात भी नहीं समझ सकते कि बीजगणितके आधारपर धर्मकी व्याख्या नहीं की जा सकती। आपने मेरे तर्कके मर्मको न समझकर अप्रासंगिक भाषण जैसा दे डाला है जिसका अन्त आपने बीजगणितके एक हास्यास्पद नियमको बताते हुए किया है।

सच्चे हृदयसे यह सब लिखनेके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। आजतक मुझे जितने भी पत्र मिले हैं, उनमें से केवल आपका पत्र और एक या दो अन्य सज्जनोंके पत्र ही ऐसे हैं जिनके बारेमें मैं कह सकता हूँ कि वे शिष्टतापूर्ण हैं तथा जिनमें युक्तिपूर्ण ढंगसे तर्क प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गई है। आपने यह जो सौजन्य दिखाया है और मुझे यकीन दिलानेका जो सच्चा प्रयत्न किया है उसके उत्तरमें मुझे विशुद्ध मनसे पत्र लिखना चाहिए। मैं आपको बता दूँ कि अबतक मुझे जितने भी पत्र और जितना भी साहित्य प्राप्त हुआ है उसपर से मेरे इस मतकी पुष्टि हुई है कि हमारे बीच अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है उस रूपमें वह हिन्दू-धर्मपर एक बहुत बड़ा कलंक है और एक ऐसी भयंकर भूल है जिसपर हम आज भी अड़े हुए हैं, सिर्फ इस कारण कि हम आलस्यवश हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोंको समझने

और उनपर अमल करनेकी कोशिश ही नहीं करते। इस भूलको लेकर यह जो अशोभनीय दुराग्रह है वह मेरे हृदयको छेदे डाल रहा है। लेकिन मैं आशावादी हूँ। अन्तमें सत्यकी विजय होकर रहेगी, इस बातमें मेरा पक्का विश्वास है। अतएव, मैं जानता हूँ कि अस्पृश्यता दूर हो जायेगी और हिन्दू-धर्म शुद्ध होकर सच्चे धर्मके रूपमें जीवित रहेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६३) से। सी० डब्ल्यू० ९५७३ से भी; सौजन्य: मैसूर सरकार

२५२. पत्र: सी० पी० श्रीनिवास अय्यरको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता जब मैंने यह कहा हो कि 'महाभारत' में बकवास भरी हुई है। मुझे 'महाभारत' के बारेमें कुछ बोलने अथवा लिखनेके बहुत ज्यादा अवसर प्राप्त नहीं हुए हैं, लेकिन जब भी मैंने इसके बारेमें लिखा है तो इसकी तुलना मैंने हीरेकी खानके साथ की है जबकि मैंने 'गीता' की तुलना हीरेकी पेटीके साथ की है। सम्भवतः शंकराचार्यके मनमें यह उपमा थी, लेकिन फिलहाल तो सनातनी लोग, चाहे वे बड़े आदमी हों अथवा छोटे, मेरे ऊपर कुछ भी आरोप लगा सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० पी० श्रीनिवास अय्यर
नॉर्थ विलेज
चित्तूर (कोचीन राज्य)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६५) से।

२५३. पत्र : के० पी० रमण पिल्लैको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसमें आपने यह सूचना दी है कि दक्षिण त्रावणकोरमें कुजीथुराईके समीप कोटेश्वरम महादेवका मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल दिया गया है। मैं यह देखनेकी आशा करता हूँ कि अन्य मन्दिर भी इसका अनुकरण करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत् के० पी० रमण पिल्लै
ओलाकोड
कोलाचेल पोस्ट आफिस
साउथ त्रावणकोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एन० २०१८२) से।

२५४. पत्र : धीरेन्द्रनाथ मुखर्जीको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। फिलहाल मेरे बारेमें इतनी झूठी बातें, जो लगभग अपवादपूर्ण हैं, फैलाई जा रही हैं कि मुझे आपको आगाह कर देना चाहिए कि मेरे बारेमें जो-कुछ भी कहा जाये, आप तबतक उसका विश्वास न करें जबतक मुझसे अथवा मेरे प्रामाणिक लेखोंसे स्वयं उस बातकी सचाईकी जाँच न कर लें। मिसालके तौरपर मैंने संसारसे कभी यह नहीं कहा है कि "हिन्दू-समाजमें जो वंशानुगत जाति-व्यवस्था मिलती है वह कुछ धूर्त लोगोंकी कृत्रिम सृष्टि है।" वंशगत व्यवस्थासे मेरा ख्याल है, आपका अभिप्राय वर्णाश्रम धर्मसे है। यदि ऐसा है तो मैंने इसके बारेमें जो कहा और लिखा है, वह यह है कि मैं वंशानुगत वर्णाश्रम धर्ममें विश्वास रखता हूँ जो हिन्दू-धर्मकी संसारको एक अनुपम देन है।

और फिर हिन्दू-समाजमें अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है, उसका मैंने हमेशा विरोध किया है और इसके लिए यदि जानकी बाजी भी लगानी पड़े तो भी मैं उसका विरोध करता रहूँगा। लेकिन मैंने यह कभी नहीं कहा है कि अस्पृश्यता

नामकी कोई चीज नही है। इसके विपरीत, मैंने यह कहा है कि अमुक प्रकारकी अस्पृश्यता समस्त मानव-जाति और धर्मोमे मिलती है और यह एक आवश्यक संस्था है तथा सच्चे अर्थोमें तो जिस समय लोग प्रकृतिके कुछ नियमोंका पालन कर रहे होते हैं, उस समय समस्त मनुष्य-जाति अस्पृश्य बन जाती है। यह तो प्राकृतिक रूपसे आवश्यक अस्पृश्यताका केवल एक उदाहरण है, लेकिन इसमे कोई पाप नही है।

आज अस्पृश्यता जिस रूपमे प्रचलित है उसके विरोधमें हमारा जो आन्दोलन चल रहा है, उसका अन्तर्जातीय भोज, अन्तर्जातीय विवाह और इस तरह की अन्य बाते किसी भी तरह अंग कदापि नही हैं। मैंने कुछ परिस्थितियोंके अन्तर्गत अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाहके पक्षमे लिखा है, लेकिन वर्तमान बहसके सिलसिलेमें ये सर्वथा अप्रासंगिक हैं। यदि आप ऐसे विषयोंपर, जिनका अस्पृश्यतासे कोई सम्बन्ध नही है, मेरे विचार जानना चाहते है, तो ऐसा आप मेरे लेखोंका अध्ययन करके कर सकते है।

मुझे उम्मीद है, इसमे आपके पत्रमें पूछी गई सारी बातें आ जाती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धीरेन्द्रनाथ मुखर्जी
सेनहाटी पोस्ट आफिस
खुलना जिला (बगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१४३) से।

२५५. पत्र: भुजंगीलालको

२९ जनवरी, १९३३

चि० भुजगीलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मैं तुम्हें समझ न पाया होता तो पत्र ही नहीं लिखता। पर यह भी सच है कि मै तुम्हें और अधिक समझना चाहता हूँ। तुम्हारा यह विचार मुझे बहुत ही अच्छा लगा कि तुम अभ्यासमें दत्तचित्त होकर माता-पिताको प्रसन्न करना चाहते हो। मैं मानता हूँ कि वे तुम्हारी विनयशीलता और संयमसे प्रसन्न होंगे।

मुझे पत्र लिखते रहना।

अपने अक्षर सुधारना। यदि धीरे-धीरे और ध्यानपूर्वक लिखोगे तो अक्षर सुधर जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५९६) से।

२५६. पत्र : केशव गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० केशू (छोटा),

तेरा पत्र मिला। ईश्वर किसी मनुष्यका सोचा-विचारा नही होने देता। हमें तो प्रयत्न करते रहना चाहिए और उसीमे सन्तोष मानना चाहिए। परिणाम तो ईश्वरके ही हाथ है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२८७) से।

२५७. पत्र : रुक्मिणीदेवी बजाजको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिल गया है। तेरी शिकायतको देखते हुए तो तुझे पत्र लिखनेसे मुक्त कर देना चाहिए। मेहमानोंका बोझ क्या होता है यह मैं ठीक जानता हूँ। इसलिए जब यह बोझ तुझपर हो तब तू पत्र न लिख पाये तो कोई बात नही। जबरदस्ती लिखना ही पड़े, यह बात मैं पसन्द नहीं करता। जब तेरा पत्र नहीं आयेगा तो मैं समझ लूंगा कि तू बहुत काममें है और इसलिए नहीं लिख सकी है।

तेरा वजन बढ़ा है, यह ठीक हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१३८) से।

२५८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२९ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरे पत्र पागलपनसे भरे हों या जैसे भी हों, लेकिन मुझे उनकी जरूरत है। इसलिए तू एक भी सप्ताह मुझे पत्रके बिना मत रखना। अब तू कैसी है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२४) से।

२५९. पत्र : बबलभाई मेहताको

२९ जनवरी, १९३३

चि० बबलभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। नाना साहबको अब कुछ भी लिखनेकी जरूरत नहीं है। इस कार्यमें अब विशेष कुछ नहीं किया जा सकेगा। तुमसे जो-कुछ और सेवा बन पड़े, वह करते रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४४४) से।

२६०. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

२९ जनवरी, १९३३

चि० शिवाभाई,

तुमने पत्र लिखा यह ठीक ही किया। यह ठीक है कि तुमपर धर्मसंकट ही है। तुम अपनी अन्तरात्मासे पूछो। वहाँसे जो आवाज उठे उसके अनुसार निर्भय होकर काम करो। इसमें भूल होनेकी सम्भावना है, परन्तु ऐसी भूल सहन करने योग्य हुआ करती है, यह निश्चय जानना। ऐसे प्रसंगोंमें बाहरी चतुराई कुछ काम नहीं आती। इसके परिणामस्वरूप आश्रम छोड़ना धर्म प्रतीत होता हो तो उसे छोड़नेमें संकोच न करना। ब्रह्मचर्यका पालन भी जबरदस्ती नहीं किया जा सकता। यदि नही

पाला जा सके तो हमे अपनी कमजोरी नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेनी चाहिए। और दुनिया जैसा किया करती है वही रास्ता अपना लेना चाहिए। गृहस्थाश्रममें भी संयमकी गुंजाइश तो है ही। जितना पालन किया जा सके, करना।

मुझे लिखते रहना। इस भयसे कि मुझपर बोझ पड़ेगा, पत्र लिखनेमें संकोच न करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५१०) से।

२६१. पत्र : अन्नपूर्णाको

२९ जनवरी, १९३३

चि० अन्नपूर्णा,

तेरे अक्षर सुन्दर तो हैं ही पर तुझे जरा बड़े अक्षर लिखने चाहिए। चुन्नीलाल कहाँ है, यह तो मैं जानता हूँ। तुझे पत्र देता है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४२२) से।

२६२. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

२९ जनवरी, १९३३

चि० पण्डितजी,

आप जैसे-जैसे छारा लोगोंके बारेमें लिखते जाते हैं वैसे-वैसे मुझे लगता है कि इनके दोषोंके लिए हमारा हिन्दू-समाज उत्तरदायी है। अपने धर्मको हमने पहचाना ही नहीं। और यदि पहचान लिया है तो उसका पालन नही किया। अब जो हो सके, सो करना। यदि हम उनके पीछे लग ही जायें तो अवश्य ही उन्हें सुधारा जा सकता है।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २४४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

२६३. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रामचन्द्र,

तेरा पत्र अच्छा है। यह एक अच्छी बात है कि तेरा वजन २० पौंड बढ़ गया है। अभी और बढ़ेगा। जैसे-जैसे स्वास्थ्यमें सुधार हो, वैसे-वैसे मन भी विकसित करना। मुझे लिखते रहना। यदि तुझे थोड़ी उर्दू आती है तो उसे पक्का कर लेना।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ३०३) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

२६४. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तमका पत्र मिला है। बम्बईका प्रयोग शायद उसपर कारगर हो। वहाँ जाँच हो जाये और फिर वह परिणामदायी हो या न हो तब भी वह मुझसे मिल जाये, ऐसा मैंने लिखा है। कितना अच्छा हो यदि दोनोंकी तबीयत बिल्कुल ठीक हो जाये ?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७१) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

२६५. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा पत्र मिला। तू अपनी तबीयतके बारेमें हम सबको निश्चिन्त कर सके तो बहुत अच्छा हो, और यह बात सम्भव है। मैं तुझसे वह बात भी नही करवाना चाहता जिसमे तुझे श्रद्धा न हो। धुरंधरकी सलाह और मदद लोगे यह तो ठीक ही है। योगाश्रम क्या है इसकी जानकारी देना। मादनका भी एक 'हेल्थ होम' या ऐसा ही कुछ है। उसकी जानकारी भी करना। इस कार्यमे भाई खम्भाताकी मदद लेना। उनका पता, २७५ हार्नबी रोड है। इनके साथ भी अपना गहरा सम्बन्ध है। श्री खम्भाता बहुत ही भले आदमी है। वहाँका थोड़ा अनुभव लेनेके बाद मुझसे आकर मिल जाना या कि वहाँ तुझे अनुकूल न आये तो मिल जाना, ऐसी मेरी इच्छा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

२६६. पत्र : रमाबहन जोशीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रमा (जोशी),

तुमने बहुत दिनों बाद पत्र लिखा है क्या इसे मैं तुम्हारी कृपा कहूँ? छगनलाल, मैं जो पत्र लिखवाता हूँ, वे पत्र लिखता है, दफ्तरका काम संभालता है, पत्रोंको यथास्थान रखता है, मेरे लिए खजूर आदि बनाता है, 'गीता' कण्ठस्थ करता है और लिखावट सुधारनेका प्रयत्न करता है। अपना वजन बढ़ानेकी कोशिश भी करता है। इसमें उसे अच्छी सफलता मिली है, यह बात मै पहले ही लिख चुका हूँ। सबेरे-शाम हम चारों लोग सैर करते हैं। इसलिए छगनलालकी चिन्ता करनेका कोई कारण ही नही है।

ऐसा ही विमुसे भी कहना। तिसपर भी वह भाई-भाई करती रहे तो मैं उसे समझदार लड़की नहीं कहूँगा। विमुको तो यह कहना चाहिए कि "यदि भाई

के स्वास्थ्यमें सुधार हो, मन भी शान्त और मजबूत हो तो वे भले ही वहाँ रहें; मैं उनका वियोग सहन कर लूँगी।"

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने, पृष्ठ २८८

२६७. पत्र : आनन्दशंकर बा० ध्रुवको

२९ जनवरी, १९३३

मुझे तो आपकी हमेशा जरूरत रही है; और अब तो और भी ज्यादा है क्योंकि आपको और मालवीयजी को मेरे गुरुका पद सौंपा गया है।[1] अतएव आपको तो अब उसको सुशोभित करनेपर ही छुटकारा है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १००

२६८. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२९ जनवरी, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र अच्छा माना जा सकता है। मैं अभी इतना बढ़िया पत्र नहीं लिख सकूँगा। खेतीका ज्ञान तुम सब खूब हासिल करना। ज्यों-ज्यों ज्ञान में वृद्धि होगी उसमें दिलचस्पी भी बढ़ेगी। ऐसी शिक्षा बढ़िया होती है, यह ध्यान रखना।

तुम लोग हरिजनोंकी सेवा करने जाते हो, इस बातको तो मैं खेतीकी शिक्षासे भी अधिक अच्छी मानता हूँ। यदि तुम लोग मन लगाकर यह सेवा करोगे और उससे उकता नहीं जाओगे तो तुम जिन-जिन हरिजनोंका मन जीत लोगे उन-उन हरिजनोंको उनकी सारी कुटेवोंसे मुक्त कर सकोगे।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. बम्बईके सनातनियोंने लिखा था कि ये दोनों अब गांधीजी के गुरु हो गये हैं। इस टीकाको स्वीकार कर गांधीजी ने हँसीमें उक्त पत्र लिखा था।

२६९. पत्र : अमतुस्सलामको

२९ जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला। डाक्टर शर्माके पास गई सो बहुत अच्छा किया। मुझे खत हर हफ्ते लिखा करो। ज्यादा लिखोगी तो और भी अच्छा। मै जरूर लिखूँगा। बिल्कुल अच्छा होनेपर ही देहली छोड़ो।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७५) से।

२७०. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको[1]

२९ जनवरी, १९३३

भाई मूलचन्द,

(१) आज वर्ण-व्यवस्था ही नहिं रही है और भंगी ऐसी कोई जाति है नहि न चमारकी जाति है। इसलिये यदि व्यवस्था करनी आवश्यक हो जाये तो प्रत्येक व्यक्तिके गुण देखने चाहिये।

(२) यह इच्छाकी बात है।

(३) खान-पान खुशीका सौदा है।

(४) यज्ञोपवीतके बारेमें आज कौन किसको पूछता है? मैं इस बारेमें तटस्थ होनेके कारण मेरे पास कोई अभिप्राय ही नहिं है।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७६९) से।

१. मूलचन्द अग्रवालने निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे: "(१) वर्ण-व्यवस्थाके अनुसार भंगी और चमार किस वर्णमें गिने जाये? (२) एक धन्धा करनेवाला दूसरे धन्धेवालेके साथ विवाह करे या नहीं? (३) अस्पृश्यताको जब मिटाना ही है तब हरिजनोंके साथ खान-पान भी क्यों न किया जाये? (४) यज्ञोपवीतके बारेमें आप तटस्थ हैं। फिर भी यदि ब्राह्मण, वैश्य आदि यज्ञोपवीत ले सकते है तो भंगी, चमार, आदि भी ले सकते है या नहीं?" देखिए, खण्ड ५४ "तीन उलझनें", ७-४-१९३३ भी।

२७१. पत्र : गुजरातके सवर्ण हिन्दुओंको[1]

[३० जनवरी, १९३३ से पूर्व][2]

मै आप लोगोंके बीच १९१५ से आकर बस गया हूँ। मैंने आपसे अक्सर अस्पृश्यताके बारेमे कहा है। आपने अक्सर उसकी निंदा की है और उसे छोड़ देनेका वचन दिया है। इस वचनको पूरा कीजिए अन्यथा . . . इस वाक्यको आप पूरा कर सकते है।

मैंने 'तथाकथित' शब्दका जान-बूझकर प्रयोग किया है। मैं ऊँच या नीचमें विश्वास नही करता। धर्म सिखाता है कि जो व्यक्ति अपनेको ऊँचा समझता है वह पाप करता है। ईश्वर कई वर्गोकी रचना करता है, लेकिन किसी वर्गको ऊँचा या नीचा नहीं बनाता।

मेरे विरुद्ध विज्ञप्तियाँ जारी की जा रही हैं। मुझे गालियाँ दी गई हैं। मेरे लेखोंको संदर्भसे अलग करके उनका मेरे ही विरुद्ध उपयोग किया जा रहा है। इसपर क्रोध मत कीजिए। जो लोग सेवा करते है उनके साथ हमेशा ही ऐसा व्यवहार किया गया है। यदि वे इसे सहन कर लेते है तो वे इससे लाभान्वित होते है। मैं तो बहुत समयसे इसका अभ्यस्त हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३१-१-१९३३

२७२. पत्र : गुजरातके हरिजनोंको

[३० जनवरी, १९३३ से पूर्व][3]

देर या सवेर मन्दिरोंका आपके लिए खुलना निश्चित है। अर्थात्, आप लोगोंको भी सार्वजनिक मन्दिरोंमें उन्हीं शर्तोपर प्रवेश करने दिया जायेगा जिनपर अन्य हिन्दू प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन ईश्वरके भक्तोंको तन और मन, दोनों ही से ज्यादासे-ज्यादा शुद्ध होना चाहिए। यह मत कहिए कि अन्य हिन्दू भी गन्दे हैं। जो लोग गलती करते हैं उनके उदाहरणका अनुकरण मत कीजिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३१-१-१९३३

१. साधन-सूत्रके अनुसार गांधीजी ने यह पत्र "गुजरात के तथाकथित सवर्ण भाई-बहनों" को लिखा था।

२. पत्रकी यह रिपोर्ट ३० जनवरी, १९३३ को प्रकाशित हुई थी।

३. पत्रकी यह रिपोर्ट ३० जनवरी, १९३३ को प्रकाशित हुई थी।

२७३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

३० जनवरी, १९३३

चि० मणिलाल और सुशीला,

न तो तेरा पत्र है और न सुशीलाका ही। तूने [हिन्दुस्तानका] किनारा छोड़ा कि मेरी शिकायत शुरू हो गई।

सीता तो किनारा छोड़ते ही फोड़े-फुन्सियोंसे मुक्त हो गई होगी।

तेरा कारोबार सरलतापूर्वक चलने लगा होगा। आखिर क्या व्यवस्था की, सो सूचित करना। यदि सुखपूर्वक रहना है और प्रतिष्ठा बनाये रखनी है तो किया हुआ कर्ज झटपट उतार देना और फिर कर्ज न करना। कर्ज तो सगे बापके लिए भी नहीं किया जाये। बापके लिए प्राण अर्पण किये जा सकते है, पर धर्म नही। कर्ज करना तो धर्म अर्पित कर देनेके समान है।

मेरा सिलसिला ठीक चल रहा है। उपवास करना होगा या नहीं, और करना होगा तो कब, यह सब मैं नही जानता। पर इतना जरूर जानता हूँ कि जब ईश्वर करवायेगा तभी करूँगा। यदि तू मेरी इतनी बात मानता रहेगा तो तुझे दु:ख नही होगा। यहाँ दौड़ आनेका लोभ भी नहीं करना। जब स्पष्टरूपसे यह जान पड़े कि अब यहाँसे चल पड़ना धर्म है तभी निकलना, अन्यथा तेरा धर्म तो अब वहीं रहकर यथाशक्ति सेवा करना है। तुझे यह मानकर ही इस समय रहना है कि तेरा देश आफ्रिका है।

वहाँके वातावरणमें जो आचरण आवश्यक जान पड़ें उन्हें छोड़कर तुझे अत्यन्त सादगीसे रहना है। गीतापाठ नही छोड़ा जा सकता। १२वाँ अध्याय तो तेरा सम्बल होना चाहिए। वह कठस्थ तो होना ही चाहिए, हृदयमें भी उतर जाना चाहिए और यदि वह वहाँतक पहुँच गया है तो सारा शास्त्र ही वहाँ उतर चुका है।

छगनलाल जोशी मेरे साथ है यह तो मैं तुझे लिख ही चुका हूँ न? हम सब सानन्द हैं।

रामदास भी मजेमें है। देवदास मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमें राजाजी के साथ घूमता है। हो सकता है, आज दोनों मुझसे मिले। बा खेड़ा जिलेमे गई जान पडती है। उसके पत्र आते हैं। राधा और कुसुम बीमार रहा करती हैं। सम्भवत: राधा देवलाली रहेगी। डाह्याभाई एकदम रोगमुक्त हो चुका है। अभी वह वायु-परिवर्तनके लिए पूनामें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०५) से।

२७४. पत्र : क० मा० मुन्शीको

३० जनवरी, १९३३

भाई मुन्शी,

मै तुम्हारे तीन भाषण पढ़ गया। दोमे से तुम्हारा थोड़ा ही परिचय मिल पाता है पर तीसरेमे से ठीक मिल पाया। मुझे वह भाषण अच्छा लगा। सभी तारीख दी गई होती तो अधिक जानकारी मिल पाती। अब तुम्हारी पुस्तकें यहाँ आ गई है, उनमें चचु-प्रवेश करूँगा और अधिक-कुछ लिखने लायक हुआ तो लिखूँगा। तुमने मेरी जिज्ञासा तो बढ़ाई ही है। मुझे तुमसे बहुत सेवा लेनी है अतः तुम्हारी पुस्तकोंसे ही समुचित परिचय मिलेगा।

अब दूसरी बात। कत्रीबाईके वसीयतनामेके तुम भी एक ट्रस्टी हो। हाईस्कूल सम्बन्धी तुम्हारी योजना मैंने देखी। वह भाई मूलजी मेरे पास ले आये थे। हाईकोर्ट के आदेशमें प्राथमिक शिक्षाका समावेश होता है, यह तुम्हारे ध्यानमें होगा। जब ऐसी बात है तो तुमने केवल हाईस्कूलको ही क्यों पसंदगी दी? इसमें भी मै देखता हूँ कि तुमने ऊँचे जीवन-स्तरको ही स्थान दिया है।

तुम इन बातोंपर विचार करना और मुझे लिखना :

(१) 'हाई क्लास हिन्दू', यानी कौन?

(२) जिस मुद्देके आधारपर तुमने अपनी योजना तैयार की है उसमें प्राथमिक शिक्षाको स्थान है या नहीं?

(३) यदि है तो तुमने उसका [प्राथमिक शिक्षाका] समावेश क्यों नही किया है?

(४) हाई स्कूलके छात्रावासको तुमने बहुत खर्चीला नही आँका है?

(५) तुम्हारी योजनामें मातृभाषाका क्या स्थान रखा गया है?

(६) 'हाईक्लास' का मतलब यह तो नहीं न कि उसका अस्पृश्य लोग कोई लाभ ही न ले सकें? मेरे देखनेमें ऐसी योजनाएँ भी आई है कि जहाँ संस्था तो किसी विशेष वर्गके लिए स्थापित की गई है परन्तु बिना उस वर्गको हानि हुए उसमें दूसरे वर्गके लोगोंका समावेश हो सकता है और यदि वह वर्ग-विशेष विरोध न करे तो दूसरोंको उसमें लिये जानेपर कोई प्रतिबन्ध नही होता।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। दोनोंमें से यदि तुम एक भी हाथसे न लिख सकते हो तो न लिखो। किसी साथीकी मदद ली जा सके तो लेना।

लीलावती अभी नहीं मिली है। हम सब सानन्द हैं। हम सबकी ओरसे तुम्हें और तुम्हारे साथियोंको यथायोग्य।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१४४) से।

२७५. पत्र : नारणदास गांधीको

[३० जनवरी, १९३३][१]

चि० नारणदास,

तुम्हारी भेजी भारी-भरकम डाक मिली।

गिरि-कुटुम्बके सम्बन्धमें तुमने जो निर्णय किया है वह ठीक लगता है। उस पर अमल किया जाना ही उचित जान पड़ता है। उसपर दृढ़तापूर्वक अमल करना। यदि हम ऐसा नहीं कर सके तो आश्रम टूट ही जायेगा। उसका श्रेय [उसपर] अमल करनेमें ही है।

रामजीके साथ भी दृढ़तापूर्वक बात करना। उसके सम्बन्धमें भी सब लोगोंसे परामर्श करना। उसे भी बुलाना। हमें तो ऐसा न्याय करना है कि ऐसी ही परि-स्थितियोंमें, मैं तुम्हारे साथ और तुम मेरे साथ वही न्याय कर सको। अहिंसा तो असिधार-व्रत है। सबको यह बात समझ लेनी चाहिए कि आश्रम कुछ हमारी सुविधाओंके लिए नहीं है। वह तो इसलिए है कि हम सभी सेवाके लिए तैयार हो सकें। आत्मशुद्धिके यज्ञमें अपना 'बलिदान दे सकें। स्वार्थका तो इसमें स्थान ही नहीं है।

राधिकाके साथ सन्तोक क्यों नहीं गई? उसकी देखभाल कौन करेगा?

बापू

[पुनश्च :]

तुमने मुझे जो अनाजका माप भेजा है उसका दाम क्या होगा, सो लिखना।

पूनियोंके लिए छक्कड़दासको कष्ट न देना ही ठीक होगा। यहाँ पूनियाँ बनाई ही नहीं जा सकतीं, ऐसी कोई बात नहीं है।

प्रेमाके गलेके लिए आवश्यक इलाज करवाना।

इसके साथ ६ पत्र हैं : प्रेमा, अमीना, मथुरादास, भाऊ, महावीर और नारायणके लिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. **बापुना पत्रो–९ : श्री नारणदास गांधीने,** भाग-२ में यही तिथि दी गई है।

२७६. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

३० जनवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

स्व० राजेन्द्रलाल मित्तरकी एक पुस्तक तुमारे अवलोकनके लिये भेजता हूँ। पढ़नेके बाद मुझे वापिस कीजिये। तुमारी टीकाके साथ उसे मैं पढ़ुंगा। एक बात विचारणीय है [कि] जो अर्थ वे निकालते हैं वही अर्थ वेदाभ्यासी हिन्दु निकालकर गोमेधादि करते थे उसमें तो कोई संदेह नही होगा। यदि ऐसा हि हुआ है तो ऐसा अर्थ निकालनेका कोई ऐतिहासिक या दूसरा कारण है क्या?

मोहनदासके वं० मा०

श्री पंडित सातवलेकर
स्वाध्याय मंडल
औंध[1]
डिस्ट्रिक्ट सतारा[2]

सी० डब्ल्यू: ४७७० से; सौजन्य: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

२७७. पत्र : उषाकान्त मुखर्जीको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी २१ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। आपका पिछले १६ नवम्बरका पत्र पानेकी मुझे याद नहीं है।

आपके सुविस्तृत तर्कके जवाबमें मैं यही कह सकता हूँ कि मैं समय-समयपर जो वक्तव्य देता रहा हूँ आप कृपया उन्हें देख लें। जितना ही मैं इस प्रश्नपर और लोगों द्वारा भेजे गये पत्रोंपर विचार करता हूँ उतना ही मेरा यह मत दृढ़ होता जाता है कि जिस ढंगकी अस्पृश्यता हमारे बीच आज प्रचलित है उसका समर्थन करे, ऐसी कोई बात शास्त्रोंमें नहीं कही गई है। समयके संकेतोंको दौड़ता हुआ आदमी भी देख सकता है, और वह देख सकता है कि अस्पृश्यताकी दीवार ढह कर

१ और २. मूलमें ये शब्द अंग्रेजी लिपिमें हैं।

चूर होती जा रही है। क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि हम सायास इसको नष्ट कर दे और हिन्दू-धर्मको शुद्ध कर डालें? अस्पृश्यताका अपनी ही कमजोरीसे नाश होनेकी प्रक्रिया अन्तमें हिन्दू-धर्मको और कमजोर कर जायेगी। मेरी रायमें आपके पत्रसे स्थितिकी वास्तविकता की समझका अभाव प्रकट होता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत उपाकान्त मुखर्जी
१२ मुखर्जी पाड़ा लेन
कालीघाट, कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७२) से।

२७८. पत्र : मन्मथनाथ सान्यालको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी २४ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। १९२० में लिखे मेरे लेखसे लिया गया उद्धरण बिलकुल ठीक ही लगता है हालाँकि मेरे पास उसकी जाँच करनेका कोई साधन नहीं है। लेकिन उस उद्धरणमें मैंने जो विचार व्यक्त किये है उन्हें मैं आज भी शब्दशः दोहराऊँगा। और श्रीयुत आर० पटवारीको लिखे पत्रमें मैंने वही बात दोहराई है। मैं नहीं जानता कि अब बंगालमें क्या हो रहा है, लेकिन यह बात आप डंकेकी चोटपर कह सकते हैं कि मेरी रायमें अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाह अस्पृश्यता-उन्मूलन आन्दोलनके अंग कदापि नहीं हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मन्मथनाथ सान्याल
डाकखाना कान्तालिया
जिला मेमनसिंह (बंगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७३) से।

२७९. पत्र : कालीमोहन घोषको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय काली बाबू,

आपका पत्र पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई जिसमें आपने हरिजनोंकी सेवामें शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन द्वारा किये जानेवाले कार्योंका विवरण दिया है। आप जो ठोस काम कर रहे हैं उसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

मैं देखता हूँ कि आप इस समय वीरभूमके हरिजनोंका एक जिला-सम्मेलन कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि इससे हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं, दोनोंमें शुद्धीकरणकी जबर्दस्त लहर दौड़ जायेगी और इसके आगे वास्तविक ठोस काम किया जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कालीमोहन घोष
अवैतनिक मन्त्री
हरिजन सेवक सघ
वीरभूम, बंगाल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७४) से।

२८०. पत्र : भगवानदासको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबूजी,

मुझे तो [सम्बोधनका] छोटा रूप ही ज्यादा स्नेहपूर्ण लगता है। बहरहाल म उसी भावसे उसका प्रयोग कर रहा हूँ।

काश मैं अपने नियमको मनवानेके लिए आपको राजी कर सकता। मेरा नियम है कि जबतक अखबार आत्म-निर्भर न हो जाये तबतक उसे प्रकाशित न किया जाये। अगर जनताको अखबार चाहिए तो उसे उसका मूल्य देना चाहिए, और जब अखबार अपना खर्च खुद पूरा न कर सके तो इसके मतलब है कि लोगोंको उसकी चाह नहीं है। ऐसे किसी अखबारके लिए स्वभावत: कोई विज्ञापन नहीं मिलता। उसमें कोई भरतीकी सामग्री नहीं होती। उसमें केवल ऐसी ही सामग्री होती है जिसे दिये बिना सम्पादक रह नहीं सकता और ऐसे अखबारमें काम करनेवाले कर्मचारी भी अपनी आत्म-त्यागकी भावनाके आधारपर चुने जायेंगे। जिस अखबारका अस्तित्व दूसरोंकी कृपापर आधारित हो, कमसे-कम आपका उससे कोई वास्ता नहीं होना चाहिए।

लेकिन अखबार चलानेके बारेमें यदि आपकी कुछ पहलेसे ही दृढ़ धारणाएँ हों और यदि मेरे विचार आपको जँचें नहीं तो आप इन्हें अपने दिमागके कूड़ेकी टोकरीमें फेंक दीजिएगा।

मैं मानता हूँ कि परिशिष्टांकके सम्पादकके नाते आपको पूरा अधिकार है कि जिन लोगोंके विचार आप परिशिष्टांकमें छाप रहे हैं उनके विचारोंपर अपनी टिप्पणी भी जोड़ दें।

वाइसरायके निर्णयसे जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उससे निपटनेके लिए क्या तरीका अपनाया जाये, इसकी खोजमें मैं अपना दिल-दिमाग मथ रहा हूँ। जो कार्रवाई की जानेवाली है, मेरा वक्तव्य तो उसकी भूमिका-मात्र है।

आपने जो सुझाव दिया है, वह मुझे इस अर्थमें व्यवहार्य नहीं लगता कि लोगोंको उसे अपनानेके लिए लम्बा प्रशिक्षण देनेकी जरूरत है। आज जो बहुत बड़ा जनसमुदाय मन्दिरोंमें जाता है, वह दर्शन और उससे प्राप्त होनेवाले आत्मिक लाभमें भक्तिपूर्वक विश्वास करता है। जिन लोगोंको इस लाभसे वंचित रखा गया है, उनकी खातिर वे इस आत्मिक लाभसे अपने आपको वंचित नही करेंगे, और उनकी दृष्टिसे देखा जाये तो यह ठीक भी है। यदि उनको यह समझाया जा सके कि ऐसे किसी मन्दिरमें जानेसे कोई आत्मिक लाभ नही प्राप्त होता जिसके न्यासी अन्यायको चिरस्थायी बनाते हैं, तो यह एक अलग बात होगी। यही सबक है, जो हम लोगोंके दिल-दिमागमें बिठानेकी कोशिश कर रहे हैं, लेकिन जिस हदतक हम चाहते हैं उस हदतक हमें इसमें सफलता नहीं मिली है।

मुझे पता नहीं था कि रोमनलिपि में अपने नामकी सही हिज्जेके बारेमें श्री प्रकाशका कड़ा आग्रह है। देवनागरीमें उसके नामके केवल एक ही हिज्जे हो सकते हैं। एक ऐसी लिपिमें लिखे जानेपर जिसका स्वर-विज्ञान दोषपूर्ण है, इससे कोई खास फर्क नही पड़ता कि उसके क्या हिज्जे किये जाते हैं। तथापि, मैं उसकी इस कमजोरीका ध्यान रखूँगा।

कुछ समय पहले मुझे शिवप्रसादका एक पत्र मिला था जिससे मेरी धारणा यह बनी थी कि वह निरंतर प्रगति कर रहे हैं। लेकिन आपका पत्र इसके ठीक विपरीत सूचना देता प्रतीत होता है। इसलिए मैं चाहूँगा कि श्री प्रकाशके लौटने पर आप मुझे बिलकुल ठीक-ठीक हाल लिखें।

बेशक, अगर आपकी किताबके बारेमें मेरा मत छापनेकी अनुमति आप ले सकें, और अगर मैं उसे भेजनेमें सफल हो सका, तो मुझे भेजनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी। अवश्य मेरे निजी पत्र अखबारोंमें अक्सर छप जाते हैं, पर उससे मेरा कोई लेना-देना नही है। मुझे तो केवल एहतियात बरतनी है कि अस्पृश्यताके विषयको छोड़कर अन्य किसी विषयपर पुस्तकोंके बारेमें अपनी राय या अखबारोंको कोई सन्देश प्रकाशनार्थ न भेजूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७५) से।

२८१. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

मुझे आपका इसी २६ तारीखका पत्र मिला। लक्ष्मणशास्त्री[१] के बारेमें मेरा तार आप फिरसे देखिए तो पायेंगे कि वह काफी ठीक था। आपको वह तार रातको १० बज कर ४५ मिनटपर मिला। अगला दिन मध्यरात्रिके बाद शुरू हो गया। इसलिए लक्ष्मणशास्त्री रातके १०-४५ के बाद २ बजे सुबह पहुँच रहे थे, जैसाकि वे पहुँचे भी। तथापि, मैं आपको इसके बारेमें परेशान नहीं करता क्योंकि यह बहुत ही छोटी-सी बात है; असली वजह यह है कि मैं आपको हरिजन उम्मीदवारोंकी पराजयके बारेमें लिखना चाहता था।[२]

इस हारसे मैं दुखी हुआ हूँ। मैं आपको इस मामलेकी फिरसे जाँच करनेकी तकलीफ नहीं दूँगा। लेकिन मैं आपसे अपनी जबर्दस्त मूर्खता स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। मेरा ऐसा विश्वास था, हालाँकि शायद उसका कोई आधार नहीं था, कि हरिजन उम्मीदवारोंको चुनावमें, विशेषकर उसके आरम्भिक चरणोंमें निर्विरोध चुन लिया जायेगा। लेकिन मैं देखता हूँ कि जबतक सवर्ण हिन्दुओंमें ईमानदारीकी काफी भावना नहीं उत्पन्न हो जाती या जबतक मतदाता-सूचीमें हरिजनोंका बाहुल्य नहीं होगा तबतक बिना सुरक्षित सीटोंके हरिजनोंके निर्वाचनकी सम्भावना बहुत कम है। लेकिन जब न ईमानदारी है और न मतदाता-सूचीमें संख्या-बाहुल्य है, तब हरिजनोंकी सुरक्षाका एकमात्र तरीका सीटोंकी सुरक्षा ही है। कानपुरके इस चुनावसे मेरी आँखें ऐसी खुल गई है जैसी पहले कभी नहीं खुली थीं, और किसी प्रकारकी परम्परा डालनेके प्रस्तावको डॉ० अम्बेडकरने जिस फौरी ढंगसे रद्द कर दिया था, उसका औचित्य अब मैं ठीक समझ सकता हूँ। कानून द्वारा हरिजनोंके लिए सीटोंको सुरक्षित किया जाये, इससे कम किसी भी बातके लिए डॉ० अम्बेडकर तैयार नहीं थे, और सम्भव है कि हमें अपनी स्वार्थलोलुपताके उचित दंड-स्वरूप हर जगह कानून द्वारा सीटोंको सुरक्षित करना पड़ेगा। हमारे सामने ऐसी कोई भयानक स्थिति न उत्पन्न होने पाये, इससे बचनेके खयालसे, अगर मेरा वश चलता तो मैं इस अन्यायको दूर करनेके लिए तीन सवर्ण हिन्दुओंसे उनकी सीटें खाली करवा देता और उनकी जगह तीन हरिजनोंको निर्वाचित हो जाने देता। यदि हरिजन उम्मीदवारोंकी

१. लक्ष्मणशास्त्री जोशी; गांधीजीने श्री कुंजरूको तार दिया था कि वे शास्त्रीको स्टेशनपर लेने आ जायें।

२. कानपुर नगरपालिकाके चुनावमें सभी हरिजन उम्मीदवार हार गये थे।

पराजय हमारी स्वार्थ-लोलुपताका असाधारण उदाहरण थी, तो उपरोक्त कदम इस बातका स्पष्ट और असाधारण उदाहरण होगा कि हममें अपनी भूलका सुधार करनेकी क्षमता है।

इस पत्रका आप जैसा चाहें वैसा उपयोग कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत हृदयनाथ कुंजरू
१ कटरा रोड
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७६) से।

२८२. पत्र : माधवदास और कृष्णा कापड़ियाको

३१ जनवरी, १९३३

भाई माधवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। ईश्वर आपकी रक्षा करे। मेढ़को तार देनेके लिए देवदाससे कहूँगा। वह यहीं है। पर मेढ़ कुछ भेजेगा, ऐसी आशा कम ही है।

चि० कृष्णा,

मुझे पत्र लिखते रहना चाहिए। मेरी कोहनीकी चिन्ताका तो कारण ही नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

श्री माधवदास गोकुलदास
मनोरदास स्ट्रीट
बम्बई, फोर्ट

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

२८३. पत्र : डॉ० रघुवीरसिंह अग्रवालको

३१ जनवरी, १९३३

भाई रघुवीरजी,

आपका खत मिला है। मुझको बहारके डाक्तरोंको बुलानेकी इजाजत नही है। खास परवानगी सरकार देवे तब ही बहारके डाक्तर आ सकते है। इसलिए मैं लाचार हूँ। आपका पुस्तक पढ़ गया हूं और समय मिलनेपर उसमें बताया हुआ प्रयोग करूँगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

डॉ० आर० एस० अग्रवाल[1]
राम आई चैरिटेबल हॉस्पिटल
बुलन्दशहर
यू० पी०

सी० डब्ल्यू० ९६६५ से; सौजन्य : एम० एस० अग्रवाल

२८४. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

३१ जनवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा खत मिला। तुमारी स्थिति समझ सका हूँ। ईश्वर तुमारा मददगार है। तुमारी श्रद्धा तुमको हरेक आपत्तिसे बचा लेगी। सौदपुरमें ही बैठ कर जो कुछ हो सके किया करो। तुमारे स्वास्थ्यका सबंध तुमारी मनोदशाके साथ बहूत है। जितनी निश्चितता बढ़ेगी ऐसे स्वास्थ्य भी बढ़ता जायगा। यहाँ आनेका दिल हो जाय तब अवश्य पहोंच जाओ।

अरुणको लिखनेके लिये प्रेरित करो।

मुझको तो लिखा ही करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९६) से।

१. मूलमें पता अंग्रेजी लिपिमें है।

२८५. पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको

१ फरवरी, १९३३

वाइसराय महोदयके निजी सचिव
नई दिल्ली

प्रिय महोदय,

मन्दिर-प्रवेशसे सम्बन्धित डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके नामसे जाने जानेवाले विषय पर मैंने आपको ३० दिसम्बरको एक तार[1] भेजा था ताकि आप उसे वाइसराय महोदयके सामने रख दें। मुझे उसका औपचारिक या अनौपचारिक किसी प्रकारका उत्तर नहीं मिला है। तथापि, श्रीयुत रंगा अय्यरके विधेयकोंके बारेमें अभी-अभी घोषित निर्णयके बारेमे वाइसराय महोदयके सामने मैं अपना निवेदन प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

हालाँकि मुझे लगता है कि यदि डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी स्वीकृति दे दी जाती तो तात्कालिक रूपसे मानवताके लिए वह ज्यादा कल्याणप्रद होता तथापि, मैं शुक्रगुजार हूँ कि श्रीयुत रगा अय्यरके विधेयकोंको पेश करनेकी अनुमति दे दी गई है, जिनमें से एक विधेयकका मसविदा डॉ० सुब्बारायनके अस्वीकृत विधेयक-जैसा ही है।

यह पत्र भेजनेका मेरा मुद्दा वाइसराय महोदयका ध्यान कुछ ऐसी बातोंकी ओर दिलाना है जिनको देखते यह जरूरी है कि विधेयकोंके उद्देश्यके महत्त्वको देखते हुए जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी विधान-मण्डल द्वारा इसपर विचार करनेके बारेमें सरकारको अनुकूल कार्रवाई करनी चाहिए।

विधान-मण्डलकी कार्य-प्रणालीसे अवगत न होनेके कारण मैंने श्रीयुत एम० आर० जयकरसे मेरी सहायता करने और मेरा मार्गदर्शन करनेका निवेदन किया था। उन्होंने कल मुझे इसके बारेमें बताया। उन्होंने मुझे बताया कि सरकार यदि चाहे तो वह इस बातको सम्भव कर सकती है कि विधेयकोंमें से कमसे-कम एक विधेयक विधान-मण्डलके आगामी अधिवेशनमें पास हो जाये।

यदि ऐसी बात हो तो मैं जोर देकर कहूँगा कि इन विधेयकोंपर तेजीसे विचार करनेके लिए जो आवश्यक हो वैसी पूरी मदद देनेके लिए सरकार नैतिक दृष्टिसे बँधी हुई है। विधान-मण्डलोंमें 'दलित वर्गोंको', जिन्हें अब सामान्यतः 'हरिजन' कहा जाता है, प्रतिनिधित्व देनेसे सम्बन्धित यरवडा-समझौतेको स्वीकार करके

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३२०-१।

सरकारने नैतिक दृष्टिसे अपने आपको इस बातके लिए बाँध लिया है कि जहाँतक उसके वशमे होगा, वह सवर्ण हिन्दुओको इस बातकी सुविधा प्रदान करेगी कि वे यरवडा-समझौतेकी उन अन्य शर्तोका पालन कर सकें जिनका सम्बन्ध सामाजिक और धार्मिक मामलोसे है। जिस हदतक सम्राटकी सरकारने हरिजनोंको विधान-मण्डलमे प्रतिनिधित्व देनेसे सम्बन्धित शर्तकी पुष्टिकी है, उस हदतक उसने उस सम्मेलनके प्रातिनिधिक स्वरूपको भी मान्यता दी है जिसने विभिन्न प्रस्ताव पास किये थे। उनमें से एक इस प्रकार है:[1]

हरिजनोको दिये गये इस वचनको पूरा करनेके विचारसे ही ये विधेयक प्रस्तुत किये गये है। ये विधेयक जरूरी है, उस हदतक जिस हदतक कि हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलनेके सुधारकी प्रगतिमे इग्लैंडका न्यास-कानून बाधक है। मुझे बताया गया है कि ब्रिटिश अदालतोंके निर्णयोंके अनुसार यदि कोई न्यासी मन्दिरको खोले या खुलवाये, और ऐसा करना यदि उस समयकी प्रचलित प्रथा के विपरीत हो जिस समय कि न्यासीने अपने न्यासी-पदका भार ग्रहण किया था, तो इसे न्यासकी शर्तोका उल्लंघन माना जायेगा। इसीलिए यदि प्रचलित प्रथाके अनुसार ऐसा दिखता हो, जैसा कि दिखेगा, कि सामान्यतः हिन्दू मन्दिरोंमें हरिजनो और सवर्णोके प्रवेश करनेकी शर्तमें भेद है, और इस मामलेमें हरिजनोंके प्रवेश करनेके नियम सवर्णोसे भिन्न हैं तो तमाम हिन्दू मन्दिरोके न्यासी या भक्तमंडली अगर चाहें भी तो भी हरिजनोको मन्दिरोंमें प्रवेशकी अनुमति नही दे सकते। इग्लैंडके न्यास कानूनपर आधारित अदालतोके निर्णय न हो तो हिन्दू पंडितों और जन-साधारणके लिए प्रथाको बदल कर सुधार लागू करना सम्भव हो जायेगा।

विधेयकोंका उद्देश्य प्रगतिके मार्गसे इस बाधाको हटाना है और जिन निर्णयोंका ऊपर जिक्र किया गया है, उन निर्णयोंसे पहले जो स्थिति थी उस स्थितिको पुनःस्थापित करना है। वाइसराय महोदयको शायद मालूम न हो कि ऐसे मामले हो चुके हैं जिनमें हरिजनोके ऊपर मन्दिरोमे निर्दोष मनसे और केवल पूजा करनेके खयालसे प्रवेश करनेके कारण जुर्माने किये गये है। हिन्दुओंकी धार्मिक प्रथामें इस प्रकारके दण्डका कोई औचित्य नही है। इस प्रथाके अनुसार मूर्ति और मन्दिरको शुद्ध करनेका विधान है और सवर्ण हिन्दुओंके लिए स्नान करके अपनेको शुद्ध करने का विधान तो है, लेकिन नियमोंका उल्लंघन करनेवाले भक्तके लिए किसी दण्डका विधान नही है।

इसलिए जबतक ये विधेयक पास नहीं हो जाते या सरकार कोई इस-जैसा ही कानून नहीं बनाती तबतक हिन्दुओंके वचनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश पूरा नहीं होगा। मै इस वचनको समयसे यथोचित पूरा करानेके लिए अपनी जानको बन्धक रख चुका हूँ, और इसलिए व्यक्तिगत रूपसे मेरे लिए इस बाधाका अनिश्चित काल तक बना रहना असह्य रूपसे पीड़ाजनक है। और एक कैदीके नाते मुझे लगता है कि सरकारकी सक्रिय सहायता माँगनेका मुझे अधिकार है।

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है। प्रस्तावके पाठके लिए देखिए पृष्ठ १३८-९।

मै धार्मिक मामलोंमें राज्य द्वारा हस्तक्षेप करनेकी कोई माँग नहीं करता। व्यक्तिगत रूपसे मैं उसके विरुद्ध हूँ। वर्तमान मामलेमे हम जो चाहते है वह यह कि राज्यका हस्तक्षेप समाप्त किया जाये।

विधेयकोंको पेश करनेमे और उनपर विचार करनेमें सरकार किस प्रकार मदद कर सकती है, यह बतानेमें मुझे सकोच होता है। ऐसी कोई कोशिश करना मेरी अनधिकार चेष्टा होगी। तथापि, मैं आशा करता हूँ कि मैंने काफी स्पष्ट रूपमे यह दिखा दिया है कि यह एक ऐसा मामला है जिनमें भारत सरकारको हर सम्भव वैध तरीकेसे विधेयकोंके आसानीसे पेश करने और पास करनेमे मदद और सहूलियत पहुँचानी चाहिए।

हालाँकि मैंने इस पत्रको कुछ मित्रोको दिखाया है, लेकिन मैं इसे अखबारोंमें नहीं भेज रहा हूँ।[1]

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२५) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२८६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय चार्ली,

वाइसरायने जिन विधेयकोंको पेश करनेकी स्वीकृति हाल ही में दी है उनके बारेमें वाइसरायको लिखे गये अपने पत्रकी नकल मैं संलग्न कर रहा हूँ। मै ऐसा मान रहा हूँ कि पहले विधेयकपर दिये गये मेरे वक्तव्यको तुम पहले ही देख चुके हो। एक विधेयकके बारेमें, जो लगभग डॉ० सुब्बारायनके विधेयककी नकल जैसा है, मैंने कोई सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दिया है। फर्क इतना ही है कि यह विधेयक मद्रासकी प्रान्तीय कौंसिलमे नही बल्कि केन्द्रीय विधान-सभामें पेश किया जायेगा। जबतक सरकारका रवैया सहायतापूर्ण न हो, बल्कि जबतक वह इस बातके लिए उत्सुक न हो कि उसपर विधान-सभाके इसी ३ तारीखसे शुरू होनेवाले अधिवेशनमें विचार किया जाये, तबतक डर इसी बातका है कि इन विधेयकोंको ताक में रख दिया जायेगा, हालाँकि उन्हें पेश करनेकी अनुमति औपचारिक रूपसे दी जा चुकी है। मेरा तर्क क्या है, इसे तुम वाइसरायको लिखे मेरे पत्रमें देखोगे। जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, यह एक निर्णयात्मक तर्क है और इसके अनुसार सरकारकी यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह विधेयकोंपर तत्काल विचार करनेके लिए सहूलियत दे।

१. वाइसरायके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ९।

वाइसरायको लिखे मेरे पत्रमें जिस तारका जिक्र है उसमें मैंने विस्तारसे तर्क देते हुए यह कहा था कि डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी अनुमति यथाशीघ्र दी जानी चाहिए।

सप्रेम,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ५०/२/३३, पृष्ठ ७; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० १९२८४ से भी

२८७. पत्र : मु० रा० जयकरको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मैं वाइसरायके निजी सचिवके नाम अपने पत्रकी प्रति साथ संलग्न कर रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मैंने आपकी सलाहको ठीक ढंगसे प्रस्तुत किया है। यदि आप वाइसरायको सीधे लिख सकें तो मैं अनुरोध करूँगा कि कृपया अवश्य लिख दें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ५०/२/३३, पृष्ठ ६ से; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० १९२७९ से भी

२८८. पत्र : डॉ० मुहम्मद आलमको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

हम सबकी ओरसे आपको ईद मुबारक। बेगम आलम बड़ी नटखट हैं कि बीमार पड़ गईं। तथापि, मैं आशा करता हूँ कि यह मामूली बुखार था और अपेंडिक्समें कोई खराबी नहीं थी। आपको डाक्टरी निर्देशोंका कड़ाईके साथ पालन करना चाहिए और सक्रिय रूपसे कोई काम हाथमें लेनेसे पहले आप शरीरको स्वस्थ बना लीजिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० शेख मुहम्मद आलम
३३ फिरोजपुर रोड
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२) से।

२८९. पत्र : आलू ई० लालकाकाको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय आलू,

मुझे खुशी है कि तुम दो हरिजन लड़कियोंको प्रवेश दिला सके।[1] नरगिस बहनसे तुम्हें जो आवश्यक धन प्राप्त हुआ उसका क्या फायदा है? तुम्हें आवश्यकता-भरकी यह छोटी-सी रकम पूनामें ही इकट्ठा कर लेनी चाहिए थी। आगेसे तुम्हें अपने अन्दर भरोसा पैदा करना चाहिए। अवश्य ही उन [दोनों] लड़कियोंको मेरा आशीर्वाद प्राप्त है, और जब वे बड़ी हों तो उनसे कहना कि मैं उनसे आशा करता हूँ कि वे हरिजनोंके काममें अच्छी सेविकाएँ बनेंगी।

१. लालकाकाने दो हरिजन कन्याओंको हिंगने, पूनाके कर्वे संस्थानमें प्रवेश दिलाया था, और इस सिलसिलेमें उन्होंने गांधीजी से सन्देश और इन दोनों कन्याओंको अपना आशीर्वाद भेजनेको कहा था।

मुझे पता था। पता नहीं किसने मुझे बताया था कि सिस्टर मैरी वेरियरके साथ शामिल हो रही है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७७) से।

२९०. पत्र : डंकन ग्रीनलेसको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री ग्रीनलेस,

मैं अपने वचनके अनुसार यह पत्र लिख रहा हूँ। मैं आपकी बातका विश्वास किये ले रहा हूँ।[1] मैं हरिजन-कार्यके लिए आपकी सेवाओंका उपयोग करूँगा लेकिन चूँकि आपने हरिजन-सेवाके लिए तन-मन-बुद्धिसे अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं, इसलिए मैंने श्रीयुत घनश्यामदाससे परामर्श करनेके बाद पहले आपको आश्रम भेजनेका निश्चय किया है जहाँ आपको इस बातका थोड़ा-बहुत अनुभव होगा कि हम सेवाका क्या तरीका अपनाते हैं, और इसके बाद जहाँ आपकी सबसे ज्यादा आवश्यकता होगी, हम आपको वहाँ रख देंगे। आश्रमके अनुभवसे आपको विभिन्न तरहके कार्यकर्ताओंके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिलेगा और आप जान सकेंगे कि हरिजन-सेवाका कार्य किस प्रकार संगठित किया जा रहा है। मैं आपके पारिश्रमिककी कोई चर्चा यहाँ नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि यदि मैं आपको ठीक समझा हूँ तो आप उससे ज्यादा कुछ नहीं चाहते जितना शरीर-निर्वाहके लिए काफी हो। आश्रममें रह चुकनेके बाद उसे तय किया जा सकता है। अतः आपने यहाँ मेरे सामने जो मत व्यक्त किया था, वही मत आपका अभी भी हो तो जितनी जल्दी हो सके आप पूना आ जाइए। उसके बाद सब चीजें तय की जा सकती हैं।

हृदयसे आपका,

श्री ग्रीनलेस
द्वारा मैनेजर
इलाहाबाद बैंक लिमिटेड
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७८) से।

१. ग्रीनलेस हरिजन-सेवकका कार्य करना चाहते थे और इसके लिए गांधीजी से परामर्श करना चाहते थे।

२९१. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉक्टर विधान,

मुझे आपका पत्र मिला।[१] घनश्यामदास यहाँ हैं और बम्बईमें क्या हुआ इसके बारेमें वह आपको कुछ बता सकेंगे, क्योंकि सम्मेलनमें कौन-कौन भाग ले रहा है, इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं था। मैंने तो पूना-समझौतेसे अपनेको विशुद्ध हरिजनोंके दृष्टिकोणसे ही सम्बन्धित रखा है, क्योंकि मैं इस सिद्धान्तको लेकर चला था कि जो चीज हरिजनोंके लिए अच्छी है वह आवश्यक रूपसे सवर्ण हिन्दुओंके लिए भी अच्छी है और हरिजनोंका कितना भी भला किया जाये, वह कम ही है। जहाँ तक पृथक् निर्वाचनकी बात है, सरकारी योजनामें पृथक् निर्वाचनकी जो व्यवस्था है उसके साथ समझौतेमें उल्लिखित पृथक् निर्वाचनकी योजना की कोई समानता नहीं है। उम्मीदवारोंके चुनावमें सवर्ण हिन्दुओंकी कोई आवाज नहीं होगी, इसमें शिकायतकी बात नहीं हो सकती। हरिजनों द्वारा चुने गये चार उम्मीदवारोंमें से एक उम्मीदवारके निर्वाचित होनेके बाद सवर्ण हिन्दू मतदाताओं तथा हरिजन मतदाताओं द्वारा संयुक्त रूपसे चुनाव करनेके लिए काफी व्यापक गुंजाइश रहती है। तथापि, आप मुझे वहाँ की स्थितिके बारेमें सूचित कीजिएगा।

पता नहीं कमला इतनी पूरी तरह स्वास्थ्य-लाभ कर सकेगी या नहीं कि सक्रिय रूपसे काम कर सके। अब्दुल अलीमके मामलेके लिए भी आपका धन्यवाद। मैं आशा करता हूँ कि उस नौजवानको पहलेसे ही आपके अस्पतालमें भर्ती किया जा चुका है।

हृदयसे आपका,

डॉ० विधान राय
३६ वेलिंग्टन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२८०) से।

१. डॉ० विधानचन्द्र रायने गांधीजी को लिखा था कि बंगालके सवर्ण हिन्दू पूना-समझौतेमें परिवर्तन करना चाहते हैं, और इसके लिए वे चाहते हैं कि "या तो दलित वर्गोंके लिए सीटोंका आरक्षण बिल्कुल समाप्त कर दिया जाये या फिर आपसी समझौतेसे उनको कुछ कम सीटें दी जायें"; कारण, सवर्ण हिन्दुओंको भय है कि "नये संविधानकी स्थापनाके बाद दूसरे चुनावमें बंगाल विधान-सभामें सवर्ण हिन्दू सदस्योंकी संख्या घटकर ४० रह जायेगी . . .।" (एस० एन० १९२४७)

२९२. पत्र : भाऊ पानसेको

१ फरवरी, १९३३

चि० भाऊ,

तुम्हें बुखार कैसे आ गया? अब ठीक हो गया होगा। राजकोटमें यदि स्वास्थ्य ठीक न हो तो फिर यहीं आ जाना चाहिए। उपवास के बारेमें तब सोचेंगे। राजकोटमें साधारण रूपसे जो खुराक मिले वह लेनी चाहिए। गेहूँकी रोटी, घी-दूध तथा हरी साग-भाजी और फल, जो मिल जायें सो। जमनादासको इस सम्बन्धमें थोड़ी-बहुत जानकारी है। वह जैसा कहे वैसा करना। वहाँ अच्छे वैद्य भी हैं। उन्हें बतानेकी जरूरत पड़े तो शरीरकी जाँच करवाई जाये। मैं यहाँसे तुम्हारा मार्गदर्शन करूँ, उसकी अपेक्षा जमनादास वहीं है और उससे मार्गदर्शन लिया जाये, यह अधिक ठीक जान पड़ता है। यह पत्र जमनादासको भी दिखाना। मुझे पत्र लिखते रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७९४) से।

२९३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तुझे गलेके बारेमें चेतनेकी जरूरत है। मैंने तो पहलेसे ही चेताया था कि गलेका तुरन्त उपयोग तुझे नहीं करना चाहिए। अब मेहरबानी करके डॉ० हरिभाईको गला दिखा दे और जैसा वे कहें, उसके अनुसार चलकर उसे सुधार ले। उसकी उपेक्षा करके दुःख मोल न ले। इसमें हठकी गुंजाइश नहीं है। मेरा हुक्म मानना तेरा धर्म है। सर्दी जड़से जानी चाहिए। गिल्टियाँ सबसे पहले तेरी ही नहीं निकली हैं। हजारोंने निकलवायी हैं और उन्होंने लाभ भी उठाया है। तेरे भाग्यमें नुकसान हो तो दैव जाने। परन्तु हानि सिद्ध करनेसे पहले डॉक्टर जो कहें उसपर अमल कर दिखाना चाहिए। तुझे गला फाड़कर बोलना तो बन्द कर ही देना चाहिए। पूर्ण मौन उत्तम वस्तु है। परन्तु डॉक्टरको दिखाकर मुझे लिखना कि वे क्या कहते हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२५) से।

२९४. सी० एफ० एन्ड्रयूजके नाम तारका मसविदा[1]

२ फरवरी, १९३३

रायटर द्वारा किया गया सार-संक्षेप ठीक है। मानवीय दृष्टिसे कहा जाये तो वाइसरायके निर्णयका यही तर्कसगत नतीजा है। फिलहाल विधेयकों पर वर्तमान अधिवेशनमें विचार करवानेकी कोशिश कर रहा हूँ। सरकार यदि चाहे तो मदद कर सकती है।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२८८) से।

२९५. पत्र : मीराबहनको

प्रात:कालीन प्रार्थनाके बाद, बृहस्पतिवार
२ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

हालाँकि मुझे तुम्हारी साप्ताहिक चिट्ठी नहीं मिली है लेकिन जैसाकि मैं प्रत्येक बृहस्पतिवारकी सुबहको करता हूँ, मुझे तुम्हें पत्र लिखना ही होगा।

इस हफ्तेमें मेरा एक पौंड वजन बढ़ा है। अलोना आहार जारी है। खानेकी चीजें अब साँचेमें ढली पापड़ियाँ, २० खजूर, चार सन्तरे, दो खट्टे नींबू, चार बड़े चम्मच-भर शहद, एक पौंड बकरीका दूध और एक बड़े चम्मच-भर पिसा हुआ बादाम हैं। शहद मैं दो बार गरम पानीके साथ लेता हूँ और हर बार दस ग्रेन सोडा बाईकार्ब भी लेता हूँ, नींबू दो बार ठंडे पानी और सोडा बाईकार्बके साथ लेता हूँ, दूध सुबहके वक्त और बादाम शामको। कभी-कभी पिसे बादामकी जगह आधा पौंड दूध लेता हूँ। इससे तुम्हें मेरे आहारका ठीक अनुमान हो जायेगा। कलसे मैंने बगैर उबला ताजा दूध लेना शुरू किया है। लोगोंका कहना है कि बगैर उबला दूध ताजा और स्वच्छ हो तो उबले दूधसे ज्यादा अच्छा और ज्यादा सुपाच्य होता है। मैं देखूँगा कि इस प्रयोगका परिणाम क्या है।

१. यह एन्ड्रयूजके तारके जवाबमें था, जिसमें कहा गया था: "रायटरने आपको इस प्रकार उद्धृत किया है: अभी अनशनकी घोषणाका कारण नहीं है। अनशनकी धमकीका मंशा सरकारको अटपटी स्थितिमें डालना नहीं, बल्कि सुधारकोंको जगाना है। अब अनशन केवल गुरुवायूरके सवालपर नहीं, बल्कि सारे देशके ऊपर लागू होगा। क्या यह काफी हदतक ठीक और सन्तोषजनक [रिपोर्ट] है?"

भेंट करनेवालोमें अन्य लोगोंके अलावा राजा, बिड़ला, देवदास और मथुरादास थे। ये सभी आज बम्बईके लिए रवाना हो गये होंगे, जहाँसे वे दिल्ली जायेंगे। राजाने मुझे बताया कि देवदासको सहसा ही यह प्रतीति हुई कि वह एक बहुत ही मँजा हुआ और प्रभावकारी वक्ता है। उसने अस्पृश्यता निवारण-कार्यके सिलसिलेमे अपना दक्षिणका दौरा अभी-अभी समाप्त किया है।

राधाकी तबीयत खराब है और वह देवलाली गई है। कुसुमका स्वास्थ्य कुछ सुधरा है। मेरी बार अबतक आश्रम पहुँच गई होंगी। प्रभुदास अब एक पत्नीकी तलाशमें हैं।

हम सब लोग अच्छी तरह है।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

साथमें मैं देवदासके हिन्दी भाषणकी प्रति और उसका [अंग्रेजी] अनुवाद संलग्न कर रहा हूँ। यह एक असाधारण रूपसे अच्छा भाषण है।

[पुनश्च :]

अन्ततः मुझे तुम्हारा साप्ताहिक पत्र मिल गया है, लेकिन बीचवाला पत्र अभी तक नहीं मिला है। आज और लिखनेका समय नही है। इससे आगेकी बातें अगले पत्रमें लिखूंगा। शायद उसे इसी पत्रके अंगके रूपमे माना जायेगा।

ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६१) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९७२७ से भी

२९६. पत्र : गौरीशंकर भार्गवको

२ फरवरी, १९३३

प्रिय गौरीशंकर,

तुम्हारा पत्र मिला। मै तुम्हारे पत्र परसे ऐसा मानता हूँ कि तुम्हारे मुँहपर जो फालिज गिरा था वह अब बिल्कुल ठीक हो गया है। उसकी खबर पाकर मुझे दुःख हुआ था।

क्या तुम्हारा मतलब यह कहनेका है कि बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवेके हरिजन कर्मचारियोंको मन्दिरमें प्रवेश करने दिया जाता है और मन्दिरके अधिकारी और सवर्ण हिन्दू अच्छी तरह जानते है कि वे हरिजन हैं, या तुम्हारा आशय यह है कि चूंकि वे अच्छी वेश-भूषामें होते हैं इसलिए उनकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया जाता?

हरिजनोंके बीच सफाई और स्वच्छताका जीवन लागू करनेके लिए सभी जगह कदम उठाये जा रहे हैं। अतः मुझे खुशी है कि हरिजनोंको यह बात समझानेके लिए तुम एक सम्मेलन[1] कर रहे हो। मैं तुम्हारे सम्मेलनकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ। यदि डॉ० अम्बेडकर मुझसे भेंट करने आये तो मैं इसके बारेमें उनसे बात करूँगा। मैं समझता हूँ कि तुम उनको और श्रीयुत राजगोपालाचारीको पहले ही लिख चुके हो। वह आज रात बम्बईसे दिल्लीके लिए रवाना होंगे। इसलिए तुम उन्हें सीधे लिख सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत गौरीशंकर भार्गव
फूल निवास
सिविल लाइन्स, अजमेर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एन० १९२८७) से।

२९७. पत्र : यू० गोपाल मेननको

२ फरवरी, १९३३

प्रिय गोपाल मेनन,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। फिलहाल इस समय गुरुवायूरके बारेमें पुराने ढंगके सत्याग्रहकी बात नहीं सोचनी है। इस समय तो हमें कानून पास करवाने और अस्पृश्यताके पूर्ण उन्मूलनके लिए लोकमत तैयार करानेकी ओर सारा ध्यान देना है, और साथ ही इस बातकी कोशिश करनी है कि जो मन्दिर निजी सम्पत्ति हैं या जिन मन्दिरोंके न्यासी और वहाँकी जनता, दोनों सहमत हों उन मन्दिरोंको [हरिजनोंके लिए] खुलवाया जाये। अतः हमारा कार्यक्रम त्रिसूत्री होना चाहिए :

पहला तो यह कि सारे देशमें सभाएँ करके भारत सरकारसे अनुरोध किया जाये कि वह अपनी शक्ति-भर दोनों विधेयकोंको पेश करवाने और उनपर विचार करानेकी सारी सुविधाएँ प्रदान करे, और विधानसभाके सभी सदस्योंसे अपील की जाये कि वे इन दोनों विधेयकोंको मानवता और किसीके निजी धर्ममें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिकी माँगके रूपमें देखें और इनके पास होनेमें कोई रोड़ा न अटकायें। साथ ही विधानसभाके हिन्दू सदस्योंसे अपील की जाये कि वे इन विधेयकोंको अपना ठोस समर्थन प्रदान करें ताकि अस्पृश्यताके विषयमें हिन्दुओंको अपने अन्तःकरणके आदेशानुसार कार्य करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाये।

दूसरे, आपको सवर्ण हिन्दुओंके यहाँ एक-एक घर में जाकर प्रचार करना है और उन्हें इस बातको ठोस रूपमें प्रदर्शित करके दिखानेके लिए राजी करना चाहिए

१. हरिजनोंका राजपूताना प्रान्तीय सम्मेलन, जो अजमेरमें २५ और २६ फरवरीको होनेवाला था।

कि आज अस्पृश्यता जिस रूपमें प्रचलित है, उस तरहकी अस्पृश्यतामें विश्वास रखना उन्होंने बन्द कर दिया है।

तीसरे, हरिजनोंमें स्वच्छताके नियमोंका पालन कराने और हिन्दू-धर्ममें जिस प्रकारकी चीजोंके खाने-पीनेका निषेध है, उन वस्तुओंका त्याग करानेके लिए प्रचार किया जाना चाहिए।

और इस सारे कार्यको ऐसे चरित्रवान व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए, जिनका हिन्दू-धर्ममें जीवन्त विश्वास है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२८९) से।

२९८. पत्र : देवदास गांधीको

२ फरवरी, १९३३

चि० देवदास,

तेरे भाषण हिन्दी और अंग्रेजीमें पढ गया। दोनोंमें भाषा अच्छी है। भाषण बहुत संक्षेपमें हैं और विचारोंसे भरपूर हैं। बहुतेरे सुझाव उपयोगी हैं। हिन्दीके सुधार कहाँतक सम्भव हैं, यह कह पाना कठिन है। विविध भाषाओंमे जड़ पदार्थोंके लिंग-भेद अनियमित हैं और उन्हें बदला नहीं जा सकता। इनमें [प्रारम्भ ही से] भेद रहा ही होगा। पर यह कठिनाई अन्य भाषा-भाषियोंको ही लगती है और इसे सहन करना होगा। तेरे सुधार तो बुनियादी हैं, जो भाषाके मूलतक पहुँचते हैं और इसलिए मुझे आज तो लगभग असम्भवसे लगते हैं। भाषाओंको इस प्रकार सरल बनाये जानेके उदाहरण मेरे देखनेमें नही आये। हाँ, सारी भाषाओंकी लिपि यदि एक हो जाये तो बहुत सारी मेहनत बच जानेकी सम्भावना है। पर यह तो भाषाशास्त्रकी बात हुई। मुझे तो केवल तेरे भाषणोंके सौन्दर्यका ही उल्लेख करना था।

तूने तमिलका कुछ अभ्यास कर लिया है?

तेरे साथ बातें नहीं हो पाईं और तू आया भी नहीं, पर चिन्ता नही। अभी तो तेरे पास अच्छे साथी हैं, अतः मैं निश्चिन्त हूँ।

अब तो तू दिल्लीमें है इसलिए उर्दूकी वे किताबें जो तू मुझे भेजनेवाला था, भेज देना। एक छोटा शब्दकोश भी जिसमें हिज्जे सहज ही मिल सकें। यदि उर्दू-अंग्रेजी या अंग्रेजी-उर्दू हो तो अच्छा हो। एक व्याकरण भी; और फिर तेरी इच्छा जो हो सो। मुझे पत्र लिखा करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १९९७) से।

२९९. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२ फरवरी, १९३३

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको भेंट देते हुए महात्मा गांधीने इस बातपर खुशी प्रकट की कि श्री रंगा अय्यरके दूसरे विधेयकको, जो कि डॉ० सुब्बारायनके विधेयककी लगभग नकल-जैसा है, वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त हो गई है। उन्होंने आगे कहा:

मैं अब यही आशा कर सकता हूँ कि विधानसभामें इन विधेयकोंपर तुरन्त विचार किया जाये, इसके लिए हर सुविधा प्रदान की जायेगी। हालाँकि ये गैर-सरकारी विधेयक हैं, लेकिन इनका अखिल भारतीय महत्त्व है, और मानवतावादी दृष्टिकोणसे तो ये विश्वव्यापी महत्त्वके हैं। मैं आशा करता हूँ कि सदस्योंको यह देखनेमें कोई कठिनाई नही होगी कि ये विधेयक किसी व्यक्तिके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं करते, हालाँकि तथ्योंकी घोर अवहेलना करते हुए इसके विपरीत बहुत-कुछ कहा जा रहा है।

राज्यको यदि कड़ीसे-कड़ी निष्पक्षता बरतनी है तो ये विधेयक आवश्यक हैं। इन दोनों विधेयकोंका उद्देश्य प्रगतिके मार्गसे रोड़े हटाना है। इनका उद्देश्य न किसी पर कोई जोर-दबाव डालना है और न किसी धार्मिक प्रथा या रिवाजको बदलना ही है।

इन विधेयकोंको विधानसभाके इसी सत्रमें पेश किये जानेकी क्या सम्भावना है, इस सम्बन्धमें महात्माजी कई प्रमुख व्यक्तियोंसे पूछताछ कर रहे हैं। इसके बारेमें सवाल किये जानेपर उन्होंने कहा कि मै उन लोगोंके प्रमाणपर जो विधान-सभाके सदस्य रहे हैं, यह कह सकता हूँ कि विधेयकोंको पेश कर सकना पूरी तरह सम्भव है; यही नहीं, यदि सदस्य लोग चाहें तो ये विधेयक कानून भी बन सकते हैं। इन विधेयकोंको इसी सत्रमें पेश करानेमें कमसे-कम उचित सहायता देना तो सरकार और सदस्योंके लिए सम्भव है ही।

इन विधेयकोंको जनमत-संग्रहके लिए प्रचारित किया जाना चाहिए, कुछ लोगोंके इस सुझावके बारेमें पूछे जानेपर गांधीजी ने कहा:

मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि ऐसा कोई तरीका नहीं अपनाया जायेगा, क्योंकि इस कानूनकी तहमें जो सवाल है, वह किसी भी दृष्टिसे कोई नया सवाल नही है और विधेयकोंमें कोई ऐसी धाराएँ नहीं हैं जिन्हें समझना कठिन हो। विभिन्न व्यक्तियों और विभिन्न पक्षोंकी राय भी सुविदित है। अतः विधेयकोंको प्रचारित करना मुझे तो केवल विलम्बकारी तरीका ही प्रतीत होता है।

यह पूछे जानेपर कि सर्वश्री बिड़ला, राजगोपालाचारी तथा अन्य लोगोंसे आपकी बातचीतके बाद क्या कोई निश्चित कार्यक्रम निर्धारित किया गया है, गांधीजी ने कहा कि हम लोगोंने अपने विचारोंका आदान-प्रदान किया था और अखिल भारतीय कानूनोंके रूपमें इन विधेयकोंको पेश करनेकी वाइसरायकी अनुमतिके फलितार्थोंको समझनेकी कोशिश की थी। हम लोगोंने, लोकमतको संघटित करने और सनातनियोंकी नीयतकी सचाई प्रदर्शित करनेके लिए क्या तरीके अपनाये जायें, इसके बारेमें विचार किया था। सनातनियों और सुधारकोंके बीच कोई तात्विक मतभेद नहीं है, और सुधारक लोग धार्मिक प्रथाओंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करना या शास्त्रोंकी अवहेलना-उल्लंघन नहीं करना चाहते।

हमने ऐसा महसूस किया कि सनातनियोंके आन्दोलनका मुख्य कारण यह है कि वे सुधारकोंके दृष्टिकोणको समझना ही नहीं चाहते और उन्हें यह सन्देह भी है कि अस्पृश्यता-उन्मूलनके आन्दोलनकी तहमें कोई और गहरी चाल है जिसे सुधारकोंके कार्यक्रममें बताया नहीं गया है। अतः हमने यह स्वीकार किया कि लोकमतको प्रशिक्षित करनेके लिए प्रचार-कार्य जारी रखा जाये और कार्यकर्ताओंको सलाह दी जाये कि वे व्यर्थकी बहसमें न पड़ें, बल्कि समस्याको अधिकसे-अधिक स्पष्ट रूपमें जनताके सामने रखनेपर ही जोर दें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-२-१९३३

३००. पत्र : प्रेमनाथ भार्गवको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

प्रश्नोंकी सूचीके साथ आपने जो पत्र भेजा है उसके लिए धन्यवाद। मैं आपकी प्रश्न-सूची वापस भेज रहा हूँ, जवाब प्रश्नोंके सामने दिये हुए हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रेमनाथ भार्गव
बाग रामसहाय, घासकी मंडी
आगरा

प्रश्न और उत्तर

प्रश्न : पशु-खाल अबवाब समिति (हाइड सेस कमिटी) की रिपोर्ट, जिसकी प्रति साथ संलग्न है, में कहा गया है कि चमड़ा-कमाई उद्योगकी उन्नतिसे दलित वर्ग और किसान लोगोंको बहुत लाभ पहुँचेगा; रिपोर्टमें प्रसंगवशात् मौजूदा भयंकर बर्बादीकी

चर्चा भी की गई है। क्या यह वक्तव्य स्वाभाविक मृत्यु मरनेवाले मवेशियोंकी खालोंके बारेमें पूरी तरह स्वीकार किया जा सकता है? यदि इसे स्वीकार किया जा सकता है तो उक्त उद्योगमें किस प्रकार उन्नति की जाये ताकि उससे दलित वर्गों और किसानोंको अधिकतम लाभ मिल सके?

उत्तर: इसे स्वीकार किया जा सकता है। यह उन्नति तभी आ सकती है जब सभी सम्बन्धित वर्गोंके लोगोंको ऐसे सरल और वैज्ञानिक तरीके सिखाये जायें कि मवेशी जहाँ मरें वहाँ वे पशुके शवको उठा लें और उसके प्रत्येक अंगका किफायती ढंगसे शोधन कर डालें। लेकिन मांसका खाद्यके रूपमें उपयोग न किया जाये। ये तरीके ऐसे होने चाहिए जो व्यक्ति और गाँवोंके लिए उपयुक्त हों।

प्रश्न: क्या वध किये गये पशुओंकी खालको सर्वथा छोड़कर केवल स्वाभाविक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालके कमानेका काम हाथमें लिया जाना चाहिए या चर्म-शोधन उद्योगमें वध किये हुए पशुओंकी खाल भी शामिल रहे, जैसाकि इस समय है? क्या इस उद्योगको एक धन्धेके रूपमें अपनाना सवर्ण हिन्दुओंके लिए अप्रतिष्ठाजनक है?

उत्तर: मैं चाहूँगा कि प्राकृतिक मृत्युसे मरनेवाले पशुओंकी खाल कमानेका धन्धा वध किये गये पशुओंकी खाल कमानेके धन्धेसे बिल्कुल पृथक हो। मेरी रायमें इस धन्धेको अपनाना सवर्ण हिन्दुओंके लिए अप्रतिष्ठाकारक या अधार्मिक कार्य नहीं है। गो-रक्षणके लिए इस उद्योगका गोरक्षामें सहायक कार्यके रूपमें विकास करना अनिवार्य है, और इसलिए इसका विकास लोकोपकारकी दृष्टिसे किया जाना चाहिए।

प्रश्न: प्राकृतिक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालका बड़े पैमानेपर वैज्ञानिक तरीकोंसे शोधकार्य करना क्या निम्नलिखित चीजोंमें सहायक नहीं होगा:

(क) हरिजन बन्धुओंकी आर्थिक उन्नति और हरिजन-सेवक संघके लिए एक कार्य जिसे फौरन हाथमें लिया जा सके।

(ख) देशकी प्राणि-सम्पदाका सुधार।

(ग) शिक्षित बेरोजगारोंके लिए एक नये कार्यक्षेत्रकी सृष्टि।

(घ) गोरक्षा।

उत्तर: मुझे इसमें सन्देह है। गृह-उद्योग या ग्रामोद्योगके रूपमें चमड़ा-शोधन कार्य जरूरी है।

प्रश्न: प्राकृतिक मृत्युसे मरनेवाले पशुओंकी खालका शोधन भी लगभग उतना ही अच्छा हो सकता है जितना कि वध किये पशुओंकी खालका। क्या आपकी सूचना इसके विपरीत है?

उत्तर: मैं मानता हूँ कि यह बात आंशिक रूपमें ठीक है, यानी कि खालको पशुकी मृत्युके फौरन बाद उतार लिया जाये ताकि उसको क्षति न पहुँचने पाये।

प्रश्न: चमड़ेकी वस्तुएँ, विशेषकर जूते बनानेमें अस्तर मुहैया करनेमें कठिनाई अनुभव की जा रही है, क्योंकि अस्तरको पतला और कोमल होना चाहिए। ऐसा चमड़ा केवल जीवित भेड़ और बकरीकी खालसे ही मिलता है। चूंकि भारतके हिन्दुओंमें से काफी लोग मांस खाते हैं, अतः जो भेड़ें और बकरियाँ अनिवार्य रूपसे खानेके उद्देश्यसे काटी जाती हैं, क्या उनकी खालको अस्तर आदिके लिए प्रयुक्त करना केवल प्राकृतिक मृत्यु मरनेवाले पशुओंकी खालका चमड़ा तैयार करनेवाले उद्योगके सिद्धान्तोंके विपरीत होगा?

उत्तर: हालाँकि मैं उत्तर तो इसके विपरीत देना चाहूँगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि खानेके लिए काटी जानेवाली भेड़ों और बकरियोंकी खालोंका उपयोग अधिकांश हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाको ठेस नहीं पहुँचायेगा।

प्रश्न: यदि आगरेमें स्थित आगरा टैनरी वध किये पशुओंकी खालका शोधन बन्द कर दे और केवल प्राकृतिक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालोंका शोधन-कार्य ही करने लगे तो क्या इस संस्थाको आपका आशीर्वाद और विशिष्ट संरक्षण प्राप्त हो सकता है?

उत्तर: कोई भी चर्म-शोधन संस्था जो ऊपर बताये गये ढंगसे अपना कार्य करेगी, यदि वह मेरे बताये तरीकोंके अनुसार कार्य करेगी तो उसे मेरा आशीर्वाद निश्चित ही मिलेगा, - लेकिन जो भी ऐसा करे उसे यह समझ लेना चाहिए कि शुरू-शुरूमें उसे घाटा उठाना पड़ सकता है। रही विशिष्ट संरक्षणकी बात, उसके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९१) से।

३०१. पत्र: एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय बहन,

अपनी महान और नेक माताकी मृत्युकी सूचना देनेवाला स्मृतिकार्ड भेजा, यह आपकी कृपा है। उनके साथ अपनी मुलाकातकी कितनी ही सुखद स्मृतियाँ मेरे मनमें हैं। अपने इस शोकमें कृपया महादेवकी और मेरी सम्वेदना स्वीकार करें, हालाँकि मैं जानता हूँ कि जिन्हें ईश्वरमें आस्था है वे मृत्युको केवल चिर-निद्रा और विस्मृति-मात्र मानते हैं। प्रियजनोंके संसारसे उठ जानेका मनमें शोक न करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६५) से।

३०२. पत्र : एम० एस० शेषाचारीको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। जहाँ कहीं भी धरतीपर लेटकर प्रतिरोध किया गया है, चाहे वह मन्दिरके सामने हो या अन्य किसी स्थानपर, मैंने उसे सत्याग्रहके नियमके विरुद्ध बताते हुए उसकी निंदा की है। कारण, सत्याग्रहमें स्वयंको कष्ट देना इष्ट है, दूसरे व्यक्तिका बलपूर्वक प्रतिरोध करना नहीं। धरतीपर लेट जाना प्रतिरोध करना ही है। सत्याग्रहका स्रष्टा होनेके नाते मैंने उन लोगोंके मार्गदर्शनके लिए कुछ नियम निर्धारित करनेका प्रयत्न किया है जो मेरी बात स्वीकार करते हैं, लेकिन चूँकि मेरा यह दावा नहीं है कि सत्याग्रहके सिद्धान्तका ज्ञान केवल मुझे ही है, इसलिए इस बातकी स्वतन्त्रता हरएक को है कि सत्याग्रहका वह जैसा चाहे वैसा अर्थ करे और अपनी पसन्दके अनुसार उसके नियम निर्धारित करे।

एल्लोरकी लीगके अध्यक्षको लिखे गये मेरे पत्रकी प्रासंगिकता है। 'डॉज'[1] शब्दका शब्दकोशमें जो अर्थ है, वही लगाया जाना है। मुझे पता नही था कि इसका अर्थ किसी व्यक्तिके शरीर परसे पैर रखकर चलना है। एक बार मालवीयजी ने अपने कॉलेजके सामने लेटकर धरना देनेवाले तथाकथित सत्याग्रही विद्यार्थियोंको 'डॉज' देनेके लिए उनके ऊपरसे एक पुल बना दिया था ताकि जो विद्यार्थी कॉलेजमें प्रवेश करनेके अपने अधिकारका प्रयोग करना चाहें वे सुरक्षित रूपसे वैसा कर सकें। इससे जनताको बड़ा मजा आया और लेटे हुए विद्यार्थियोंको बहुत छकना पड़ा। एक भी लेटे हुए छात्रको किसी प्रकारसे कोई चोट नहीं पहुँची और न उसे सताया गया, और यदि मुझे ठीक याद है तो लेटकर धरना देनेवाले विद्यार्थियोंने भी मालवीयजी की इस अहिंसक चतुराईकी सराहना ही की। लेकिन वह तो छकानेका एक तरीका था। शब्दकोशके अनुसार आप किसी भी चीजके पीछे, उसके चारों ओर, नीचे, बीचमें या अन्दर छिप सकते हैं, और इस प्रकार

१. अंग्रेजी शब्द 'डॉज', जिसके अर्थ हैं चकमा देना, छकाना। शेषाचारीने पूछा था कि चार या पाँच कट्टरपंथी ब्राह्मण यदि मन्दिरके सामने लेट जायें और शान्तिपूर्वक अस्पृश्योंके मन्दिर-प्रवेशका प्रतिरोध करें तो उनको चकमा देकर अन्दर जाना सत्याग्रह क्यों नहीं है।

चकमा दे सकते हैं। लेकिन आप मानेंगे कि इस प्रकारसे चकमा देनेमें कोई हिंसा नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० एस० शेषाचारी
७०४ नार्थ अडायावालनजान
श्रीरंगम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९३) से।

३०३. पत्र : नारणदास गांधीको

[३ फरवरी, १९३३][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

महावीरके सम्बन्धमें लिखा मेरा पत्र मिल गया होगा और अब वे सब चले गये होंगे। यदि न गये हों तो साथके इस पत्रसे काम लेना। अब तो यही अच्छा है कि यह प्रश्न अविलम्ब हल हो जाये। यह हल हो जाये तो आश्रममें रहनेवालोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष लिखूँगा।

टाइटस छुट्टीसे अधिक रह गया है, यह अनुचित जान पड़ता है। रुकनेका ठीक कारण जान पड़े तो अधिक सुविधा हो। पर साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि हमारे बूतेके बाहर कोई कारण होनेके अलावा छुट्टीकी मोहलतसे अधिक नहीं रहा जा सकता। इसका अमल टाइटसको लेकर न किया जाये। उसके आनेपर कारण जानकर मुझे लिखना; पर आइन्दाके लिए इस सम्बन्धमें इस प्रकार नियम बनाया जा सकता है :

जो व्यक्ति स्वयं ली हुई अपनी प्रतिज्ञाको भंग करता है, वह यदि उस समय आश्रमसे बाहर है तो उसे तब बाहर ही रह जाना है और यदि वह आश्रममें रहते हुए प्रतिज्ञा भंग करता है तो उसे आश्रम छोड़ जाना है। जिस आश्रमकी हस्ती ही सत्यव्रतका पालन करनेके लिए है, उसमें इस नियमका परिपालन निरपवाद रूपसे किया जाना चाहिए। हाँ, यदि व्रत-भंगका कारण व्रत लेनेवालेकी शक्तिसे बाहर हो तो ऊपर दिया हुआ नियम लागू नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति आश्रमसे छुट्टी लेकर बाहर जाता है तो वह भी यह प्रतिज्ञा करके जाता है कि वह अमुक मुद्दतके भीतर लौट आयेगा। साधारण संस्थाओंमें भी इस नियमका पालन किया जाता है और यदि न किया जा सके तो वह संस्था या तो टूट जाये या अपनी प्रतिष्ठा ही खो बैठे।

१. **बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग-२ में यही तिथि दी गई है।

इस नियमकी चर्चा तुम अपने अनुभवी मण्डलके बीच करना और यदि सब सम्मत हो सको तो इस सभीको पढ़ सुनाना और यदि सारा [आश्रम] समाज अनुकूल जान पड़े तो इसे नियमका कठोरतापूर्वक पालन करना। आश्रमको जो कार्य करना है उसके लिए ऐसे नियमोंका पालन आवश्यक है। मुझे तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इस अस्पृश्यताको ही जड़-मूलसे नष्ट करनेमें हमें मृत्युको भी स्वीकार करना होगा। पर ऐसा बलिदान तो वही दे सकता है जो स्वयं एकदम शुद्ध हो। इतनी सारी बालिकाओंकी देखभाल करते हुए यदि हम नियमोंका सूक्ष्मताके साथ पालन न करें तो हम नष्ट हो जायें। यह तो सहन किया जा सकता है कि आश्रम टूट जाये, पर नियमका भंग तो असह्य होना चाहिए। स्थूल नियमोंके सूक्ष्म पालनमें ही हमारी कसौटी है। सूक्ष्म नियमोंके पालनका साक्षी तो भगवान ही हो सकता है। स्थूल नियमोंके पालनकी बात तो भी जान सकते हैं। पर आश्रम तो मेरा अकेलेका नहीं है, तुम सभीका है। मैंने तो अपने विचार ही व्यक्त किये हैं, इनका पालन करना न करना यह सारी बातें तो तुम्हीं सब लोगोंको देख लेनी है।

महादेवके नाम वसरामका पत्र मिल गया था। उसके नाम मेरे पत्रमें ही इस बातका इशारा है, वह पत्र तुम्हें मिल गया होगा।

छोटूभाईके सम्बन्धमें जैसा तुम लिखते हो वह ठीक है।

मेरे सिरका दर्द तो क्षणिक था। वह मिट्टीकी पट्टीसे दूर हो गया। इस पट्टीका प्रयोग मासिक-धर्मके लिए भी किया जा सकता लिए है।

बापू

[पुनश्च :]

साथके पत्र पढ़ जाना और दे देना। पत्र दुर्गा, कृष्णमैयादेवी, नीमू, लीलाधर, भगवानजी, बा और मेरी बारके लिए हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से।

३०४. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

३ फरवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

बहुत दिनोंके बाद तुम्हारा पत्र मिला। हरिजन भाई काम न करें और अधिक [पारिश्रमिक] लें, क्या ऐसी बात हम दूसरेके बारेमें बरदाश्त करते हैं? नारणदास जो कहता है उसमें तुम्हें क्या खामी दिखाई देती है? क्या वह आठ घंटेका काम न दे? झूठी दया तो हिंसा होती है। उनमें और दूसरोंमें मेरी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। और यदि है भी तो इतना ही कि दूसरोंकी जो बात हम बरदाश्त न कर सकें, इनकी वह भी कर लें। इस सम्बन्धमें तोतारामजी, पंडितजी, चिमनलाल आदि

के साथ चर्चा करना और बातको समझना। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी विचार-धाराकी भूलको समझो अथवा मेरी भूल हो तो मुझे बताओ।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५१) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पंड्या

३०५. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

३ फरवरी, १९३३

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गिरि-परिवारके बारेमें तो मुझे तुम्हें कुछ लिखना नहीं है। नमक छोड़ देनेसे तथा कुछ अन्य प्रयोगोसे मैंने दमेकी बीमारी मिटते देखी है। उसीके आधारपर मैंने अपनी आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तक[1] में नमक छोड़ देनेके बारेमें लिखा है। यहाँ तो वैसे चमत्कारिक अनुभव हो ही नहीं पाये जैसे दक्षिण आफ्रिकामें हुए थे और मैं अन्य कार्योंमें भी बहुत उलझ गया और इसलिए प्रयोग कर ही नहीं सका। पर यदि तुम यह प्रयोग कर देखो तो उसमें हानि-जैसी तो कोई बात ही नहीं है। इसमें धूपमें बैठे-बैठे कूने-स्नान भी लिया जा सकता है। सिरपर धूप न पड़े, इसलिए सिरपर मिट्टीकी पट्टी या गीला रुमाल ही रखना चाहिए। कूनेका स्नान खाली पेट करना चाहिए। खानेमें केवल फलाहार और दूध ही होना चाहिए। फलोंमें पपीता-मोसम्बी काफी होंगे। दस्त तो साफ आना ही चाहिए। यदि नहीं हो तो एनिमासे लेना चाहिए। नित्य ही धीरे-धीरे श्वासोच्छ्वास लेने चाहिए। ऐसा करनेसे कदाचित लाभ हो। प्राणायाम ठीक तौरसे न आता हो तो आश्रममें जिसे आता हो उससे सीख लेना। इसके लाभ तो असंख्य हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २४३७५) से।

१. **आरोग्यकी कुंजी**, जो पहले "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान" शीर्षक लेखमालाके रूपमें छपी थी; देखिए खण्ड ११ और १२।

३०६. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

३ फरवरी, १९३३

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। खजूर, मुनक्का, किशमिश, केला अभी बन्द रखना। सवेरे मोसम्बी या ताजे अंगूरोंका रस लेना। दूध अच्छा मिलता होगा। सहज रूपसे हजम हो जाये उतना ही लेना। मीठा दही लिया जा सकता है। शहद दूधके साथ ही लिया करना। पानी, नीबू और शहद भी लेना। या शहदके साथ दस ग्रेन खानेका सोडा लेना। अनार और सेवका रस लिया जा सकता है। जबतक घाव बन्द न हो तबतक इतना बस है। पूरे पके हुए टमाटरका बिना उबाले रस निकाल कर लेना। अभी थोड़ा हो तो भी चलेगा। सान्ताक्रूजमें गौरीशंकर रहते है, उनसे मिलना। पुरुषोत्तम उनसे इलाज करवाता है। कैवल्यधाममें भी पूछताछ करना। गोमतीबहन गौरीशंकरको जानती है। अहिंसाके बारेमें [तुमने जो लिखा है], पढ़ूँगा। रोहितका ध्यान रखना। उसे आशीष।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७५) से; सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

३०७. पत्र : मोहनलाल म० भट्टको

३ फरवरी, १९३३

संसार ज्यामितिकी नपी-तुली आकृति नही है, परन्तु किसी विलक्षण कलाकारकी कूँचीसे उत्पन्न हुई महाकला है, जिसका माप भी कलाकार ही जानता है। हम उसका माप नहीं निकाल सकते। इसलिए हमारे भाग्यमें सिर्फ निष्काम प्रयत्न ही रह जाता है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ११३

३०८. पत्र : मगनभाई पी० देसाईको

३ फरवरी, १९३३

हम बड़ोंके बलका अनुकरण करें, उनकी कमजोरीका कभी नहीं। बड़ोंकी लाल आँखोंमें प्रेम देखें, उनके लाड़से दूर भागें। मोहमयी दया के वश होकर वे बहुत कुछ करनेकी इजाजत दें, बहुत-कुछ करनेको कहें, तब लोहे-जैसे सख्त बनकर उनसे इनकार करें। मैं एक बार यदि कहूँ कि हरगिज झूठ न बोलना, मगर मुश्किलमें पड़कर झूठके सामने आँखे बन्द कर लूँ, तब मेरी आँखोंकी पलकोंको पकड़कर जोरसे खोल देनेमें तुम्हारी भक्ति होगी, मेरे इस दोषको दरगुजर करनेमें द्रोह होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३ पृष्ठ ११३-४

३०९. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

३ फरवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

आपका पत्र मिला। हरिजन सेवक मंडलकी ओरसे एक हिन्दी साप्ताहिक दिल्लीसे निकलेगा। तदुपरांत और कुछ निकालनेकी आवश्यकता रहती है? अगर है तो क्यों? अथवा आप मराठीमें निकालनेकी बात तो नहीं कर रहे है? लक्ष्मणशास्त्री मिलने पर उनसे बात करुंगा।

आपका,

मोहनदास

पंडित सातवलेकरजी
स्वाध्याय मंडल
औंध[1]
डिस्ट्रिक्ट सतारा[2]

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७७१) से; सौजन्य : श्री० दा० सातवलेकर

१ और २. मूलमें ये शब्द अंग्रेजी लिपिमें हैं।

३१०. पत्र : पल्लथ रामनको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे कोई शक नहीं है कि जब तथाकथित ऊँची जातियाँ या ऊँचे वर्ग ऊँच-नीचके भेदभावको भुला देंगे और अस्पृश्यताका त्याग कर देंगे तब हरिजन लोग भी आपसकी अस्पृश्यताका त्याग कर देंगे।

नायडियों[1] की जो उत्पत्ति आपने बताई है यदि वह ऐतिहासिक दृष्टिसे सही हो तो बड़ी दिलचस्प और शिक्षाप्रद है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पल्लथ रामन
"साहित्य सदन"
पालघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९४) से।

३११. पत्र : भगवानदासको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र और साथमें विशेषांककी १५ प्रतियाँ मिलीं। मैंने श्रीयुत घनश्यामदाससे खर्चके बारेमें बात की थी। उन्होंने कहा कि वह निश्चय ही आपको चन्दा भेजेंगे और आपको पत्र भी लिखेंगे। यदि वह पहले ही न भेज चुके हों तो क्या आप इस पत्रका उद्धरण देते हुए उन्हें याद दिलानेकी कृपा करेंगे?

जातिके बारेमें आपका क्या कहना है, सो मैं जानता हूँ। जातिसे मेरा अर्थ वर्ण नहीं है। मैं वर्ण और जातिमें बहुत बड़ा अन्तर मानता हूँ। जातिका विकास अपेक्षतया आधुनिक कालमें हुआ है। इसका कुछ भौतिक उपयोग था, और शायद अभी भी हो, लेकिन मुझे लगता है कि इसकी उपयोगिता अब समाप्त हो चुकी है, और किसी भी सूरत में जाति एक सामाजिक संस्था है जिसका कोई आध्यात्मिक आधार नहीं है, जैसाकि वर्णका है। लेकिन इस बारेमें अवसर आनेपर और समय

१. केरलकी एक अस्पृश्य जाति; देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ १४९-५०।

मिला तो मैं लिखना चाहूँगा। इस बीच आपको जब समय मिले अपने विचार मुझे लिखते रहें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९५) से।

३१२. पत्र : एल० एल० येलीगरको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पिछले माहकी ३० तारीखका पत्र और उसके साथ बहन महादेवीके वचनोंमें से एक वचनके बारेमें लिखा व्याख्यात्मक लेख प्राप्त हुए थे। धन्यवाद। समय मिलते ही मैं लेखको पढ़कर आपको लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एल० येलीगर
द्वारा के० एम० सम्मीगट्टी
स्कूल मास्टर, होसायल्लापुर
धारवाड़

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९६) से।

३१३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। यदि दामोदरलालजी आपको कोई रकम भेजे तो बेशक आप उसे वैसे ही स्वीकार कर लीजिएगा, जैसे किसी भी अन्य व्यक्तिका भेजा स्वीकार करेंगे, लेकिन मेरी रायमें इस विषयमें उनसे कहा नही जा सकता। जब तक वह बिना माँगे हुए और स्वेच्छासे न दें तबतक हमें उनकी आर्थिक सहायता न ही मिले तो ठीक।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत घनश्यानदास बिड़ला
बिड़ला हाउस
अलबुकर्क रोड
नई दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२९८) से। सी० डब्ल्यू० ७९२६ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३१४. पत्र : नरहरि डी० परीखको

४ फरवरी, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। अपनी कमजोरियोंको हम जानने लगे है, यह शुभ चिह्न है। हमें लोग मूर्ख माने अथवा अव्यावहारिक पशु, पर हम असत्य न बोलें और असत्याचरण न करे। ऐसे प्रसगोंपर सत्यका पालन अत्यन्त कठिन होता है, यह तुम्हारा अनुभव खरा है। पर जिसका कठिनाइयोंने भी पालन किया जाये, वही धर्म होता है। जब सागर शान्त हो, उस समय जो पतवारको सँभाले रहता है वह कुशल माँझी नही होता; कुशल माँझी तो वह होता है जो तूफानी सागरमें नावको डूबनेसे बचाये। पर 'बीती ताहि बिसारिये', उसका क्या शोक किया जाये। उससे जो सबक ग्रहण करना था, कर लिया। अब भविष्यमें कौन-सी जवाबदारी उठाई जाये और कौन-सी नहीं, इसका निर्णय ईश्वरपर छोड़ देना। हमे तो केवल इतना निश्चय कर लेना है कि कैसी भी स्थिति हो, हम सत्यका पालन करेंगें। और हमें यह विश्वास भी बनाये रखना है कि जो लोग ईश्वरके भरोसे हैं उनकी कसौटी वह उनकी शक्तिसे बाहर नहीं करता। खेद इस बातका है कि हम उसके अधीन ही नहीं रहते। यदि उसके अधीन बने रहें तो यह प्रश्न ही क्यों उठे कि सत्यका पालन करनेसे यहाँ हमारी आबरू जमती है या मामला बिगड़ जाता है, या कि हमारे साथी कहीं नाराज तो नहीं हो जायेंगे? इन सारी झंझटोंका भार ढोनेवाला तो ईश्वर ही है।

पर यह लिखनेका उद्देश्य तो इतना ही है कि जो-कुछ हो गया है उसका दुखड़ा तुम न रोओ। मेरा यही कहना है।

कुवलयानन्दके आश्रमका वर्णन लिखना। वहाँ शिक्षा कौन देता है? क्या-क्या सिखाया जाता है? क्या खर्च पडता है?

बच्चोके दाँतोंकी देखभाल करना माताको सीखना चाहिए। यह सबक तुम्हें और मणिबहनको लेना चाहिए। बच्चोंकी खुराक बिलकुल नरम और अधिक स्टार्चवाली नही होनी चाहिए। उन्हें चीनी और गुड़ कम ही देना चाहिए। इनके बदले गन्नेके मौसममें उन्हें गन्ना खूब खाने देना चाहिए। गन्नेका मौसम न रहे तो अजीर, मुनक्का और खजूर-जैसे मीठे फल दिये जा सकते हैं। सुबह दातौनके समय बच्चोंके पास खड़ी रहकर माताको उन्हें ठीक ढंगसे दाँत घिसकर दातौन करना सिखाना चाहिए, और कोयला तथा नमकका छना हुआ मंजन करवाना चाहिए। खानेके बाद ठीक ढंगसे कुल्ले करवाना चाहिए और दाँतों और मसूड़ोंको अँगुलीसे घिसवाना चाहिए।

साफ बात तो यह है कि हम माता-पिता होनेके लायक कदाचित् ही हैं। जो लोग बच्चोंके पालन-पोषणका वैज्ञानिक ढंग नहीं सीखे, उन्हें बच्चे पैदा करनेका अधिकार कैसे मिलना चाहिए? इस एक ही प्रश्नके कारण कुछ लोगोंने ब्रह्मचर्यकी खोज की और दूसरोंने 'बर्थकंट्रोल' की। यह दूसरा तो भयंकर है और नाशकारी है। और इनके बीचका वर्ग आलसी और लापरवाह लोगोंका है जो बर्थकंट्रोल के समर्थकोंसे भी अधिक भयंकर और विनाशकारी है।

दाँतों ही के बहाने मणिके मनमें बाल-संगोपनका पूरा शास्त्र भरना। उसे बच्चोंके मल-मूत्रकी भी परीक्षा करनी चाहिए। उसकी आँखें, उसके कान, नाखून, उसका श्वास, उसकी जीभ, उसकी भाषा, यानी कि उसकी दिन-भरकी सारी चेष्टाओंपर ध्यान रखना चाहिए।

इन सबको करनेकी एक बार आदत पड़ी कि यह सब स्वाभाविक बन जाता है।

गोमतीसे कहना कि वह जब आना चाहे, आ जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०५४) से।

३१५. पत्र : आनन्दी ल० आसरको

४ फरवरी, १९३३

चि० आनन्दी,

तेरा पत्र मिला। तेरा बुखार हमारे आशीर्वादसे नहीं, परन्तु तेरे खुदके पराक्रमसे ही मिटेगा। तुझे पूर्ण आराम लेना चाहिए। आराम यानी खटियामें पड़े रहना। पड़े-पड़े थोड़ा पढ़ना। खाना भी खाट ही पर। खानेमें दूध, दही और फल। उबला हुआ साग और रोटी खानी हो तो भले ही खाई जा सकती है। पर पड़े-पड़े ही वह पच जाये फिर चिन्ता नहीं। दूध पीना ही चाहिए। यदि इतना करे तो अवश्य अच्छी हो सकती है।

आशीर्वाद तो अठारह वर्षके लिए, तीनके ही क्यों, चारके ले। छगनभाईके नहीं चाहिए? पृथुराजको मुझे पत्र लिखना चाहिए। उसे क्या हुआ है? उसकी दवा कौन करता है? वह स्वयं क्या करता है? रोहिणी अपने नामके नक्षत्रकी तरह सुशोभित हो रही है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०६८) से; सौजन्य : आनन्दीबहन पु० बुच

३१६. वक्तव्य : 'हरिजन' के बारेमें

[५ फरवरी, १९३३ से पूर्व][1]

हरिजन मेवक संघके तत्वावधानमें प्रकाशित होनेवाले 'हरिजन' के अंग्रेजी संस्करणका प्रथम अंक[2] इसी माह शनिवार, ११ तारीखको प्रकाशित होगा। इसे आर्य भूषण प्रेसमें छापा जायेगा। सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटीके श्री ए० एन० पटवर्धन इसके घोषित मुद्रक और प्रकाशक हैं। श्री आर० वी० शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०, सम्पादक हैं। श्री शास्त्री कलकत्तेमें साझेदारीमें एक लाभकारी पदपर थे जिसे उन्होंने हाल ही में छोड़ दिया और मात्र जीवन-यापनके लिए पर्याप्त वेतनपर अपनी सेवाएँ हरिजन सेवक संघके मंत्री श्री अ० वि० ठक्करको अर्पित कर दीं। जब यह निश्चय किया गया कि इस अंग्रेजी-संस्करणको पूनासे प्रकाशित करना है, तब मैंने श्री ठक्करसे पूछा कि क्या वह श्री शास्त्रीको सम्पादन-कार्यके लिए मुक्त करते हैं और क्या श्री शास्त्री इस भारको स्वीकार करेंगे। दोनोंने सहर्ष सहमति दे दी।

मुझसे जिस हदतक बन पड़ेगा, मैं पत्रकी सामग्रीमें अपना पूरा अंशदान करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि पत्रके कृपालु ग्राहकोंकी संख्या काफी बड़ी होगी। हमारी इच्छा पत्रको पूरी तरह आत्म-निर्भर बनानेकी है। देशमें इसका वार्षिक मूल्य डाक-खर्च सहित ४ रुपये और बिना डाक-खर्चके ३ रुपये होगा, और विदेशोंमें इसका चन्दा ५ रुपये ८ आने होगा। एक प्रतिका मूल्य एक आना होगा। जो लोग ग्राहक बनना चाहते हैं वे कृपया अपने नाम और चन्देकी रकम रुपयों या टिकटोंके रूपमें श्री पटवर्धनको भेजें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-२-१९३३

१. देखिए "पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", ५-२-१९३३।

२. जनवरी, १९३२ में गांधीजी की गिरफ्तारीके बाद **यंग इंडिया** का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। उसका अन्तिम अंक १४ जनवरी, १९३२ का था। जब अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन तेजी पकड़ने लगा तब गांधीजी ने अपने विचारोंके प्रसारके लिए **हरिजन** नामक पत्रिका निकालनेका निश्चय किया। इसका पहला अंक आर० वी० शास्त्रीके सम्पादकत्वमें पूनासे ११ फरवरी, १९३३ को निकला। १३ अप्रैल, १९३५ से महादेव देसाई इसके सम्पादक हो गये। १९४० में सविनय अवज्ञा आन्दोलनके दौरान पत्रका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। १८ जनवरी, १९४२ से **हरिजन** नवजीवन प्रेस, अहमदाबादसे फिर छपने लगा। लेकिन २१ अगस्त, १९४२ को इस पत्रपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। १० जनवरी, १९४६ को प्रतिबन्ध हटनेके बाद यह पत्र प्यारेलालके सम्पादकत्वमें फिरसे निकाला गया। वह २२ फरवरी, १९४८ तक इसके सम्पादक रहे। बादमें क्रमशः श्री किशोरलाल जी० मशरूवाला और अन्तमें मगनभाई पी० देसाई इसके सम्पादक रहे। **हरिजन** का प्रकाशन मार्च, १९५६ में बन्द कर दिया गया।

३१७. सन्देश : हरिजन सम्मेलन, कोलाबाको

५ फरवरी, १९३३

मुझे आशा है कि सम्मेलन रचनात्मक प्रस्तावोंको, उन्हे कार्यान्वित करनेके पूरे इरादेके साथ, पास करेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-२-१९३३

३१८. पत्र : ई० ई० डॉयलको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

श्री एन्ड्र्यूजको भेजे गये मेरे तारके[1] सम्बन्धमें बम्बई सरकारका आदेश मेजर भंडारीने मुझे अभी-अभी दिखाया है। चूँकि यह जरूरी था कि वह तार फौरन भेज दिया जाये, इसलिए मैंने मेजर भंडारीसे अनुरोध किया है कि वह कृपया मेरे निजी खातेमें से रकम निकाल लें, जो वास्तवमें मेरी निजी सम्पत्ति नही है। मैं आशा कर रहा हूँ कि सरकार अपने आदेशपर पुर्नविचार करेगी और मेरे निजी खातेमे से निकाली गई रकम वापस जमा कर दी जायेगी। आदेशपर पुर्नविचार करनेको कहनेका मेरा कारण यह है। दाँतके डॉक्टरको जो भारी भुगतान किया गया वह न किया जाता तो मेरे खातेमें अच्छी खासी रकम जमा थी। आपको याद होगा कि दाँतके डॉक्टरको आपके सुझावपर बुलाया गया था, मेरे सुझावपर नहीं। यह भी, कि जब आपने कहा कि मुझे दाँतोंकी नई प्लेट लगवा लेनी चाहिए तब मैंने अपने एक दनदानसाज मित्र डॉ० देसाईको बुलवा देनेको कहा था; और मैंने आपको अपने २८ जून, १९३२ के पत्रमें यह भी बताया था कि मैंने उनका नाम इस कारण सुझाया है, क्योंकि "मै सरकारके ऊपर नये दाँतोंकी प्लेट बनवानेका खर्च नही थोपना चाहता" था और मै जानता था कि "डॉ० देसाई मेरे लिए अगर दाँतोंकी कोई प्लेट बनायेंगे तो उसका पैसा मुझसे नहीं लेना चाहेंगे।" आप देखेंगे कि मै नये दाँतोंकी प्लेट बिना पैसेके प्राप्त कर सकता था, और उस समय मैंने यह सोचा भी नही था कि दाँतोंका खर्च यदि देना ही होगा तो वह मेरे मासिक

१. देखिए "सी० एफ० एन्ड्र्यूज के नाम तारका मसविदा", २-२-१९३३।

भत्तेमें से दिया जायेगा। जैसाकि आप जानते हैं, मैं हर महीने सौ रुपयोंमें से जितना बचा सकता था बचाता जा रहा था। लेकिन आपने अपनी ही पसन्दका एक दाँतका डॉक्टर बुलानेका निश्चय किया। मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी, और जब मेजर भंडारीने मुझे बिल दिखाया और मुझे बताया कि यह रकम मेरे भत्तेमें से दी जानी है, तब मैंने आपत्ति तो की, लेकिन मैं कोई विवाद नहीं उठाना चाहता था; क्योंकि मैंने यह नहीं सोचा था कि उस समय मेरे हिसाबमें जो रकम बची हुई थी उसमें से मैं कुछ खर्च करना चाहूँगा।

लेकिन जो नई परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं, उनमें मैं आग्रह करूँगा कि दाँत-सम्बन्धी खर्चको मेरे खातेसे हटा दिया जाये, और यदि ऐसा कर दिया जाये तो मेरे हिसाबमें फौरन उतनी रकम जमा हो जायेगी। मैं यह भी सुझाव दूँगा कि सरदार वल्लभ-भाई पटेल और मेरे खाते मिला दिये जायें। उनके खातेमें अभी भी रकम जमा है। इसलिए अगर इन दोनों खातोंको मिला दिया जाये तो बचत निकलेगी। मैंने सरदारसे पूछा है और वह बिल्कुल राजी हैं कि हमारे खाते मिला दिये जायें। तथ्य यह है कि हम दोनोंने मेजर भंडारीसे ऐसा करनेका अक्सर सुझाव दिया है।

मुझे अक्सर तार भेजनेकी जरूरत होगी, खास तौरसे इस समय, इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप कृपया इस मसलेपर सरकारसे यथाशीघ्र निर्णय प्राप्त कर लें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० १०

३१९. पत्र : बिल लैशको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय फादर लैश,

आप मुझ-जैसे बेचारे आदमीको उलझनमें डाल देते हैं। कौन पिता है, कौन भाई है, कब है और शायद यह भी कि क्यों? लेकिन यह तो यों ही रहा।

आप साबरमतीमें हैं, यह जानकर अच्छा लगा। मुझे आशा है कि आपको सी० एस० एस० ए० में जैसा आराम था, वैसा ही आराम आप यहाँ भी अनुभव करेंगे, और यह भी बहुत अच्छा है कि आप ऐसे समय वहाँ हैं जब मेरी बार भी वहीं है। साबरमती आश्रम आनेवाले प्रत्येक नवागन्तुकसे मैं यह वचन लेता हूँ कि वह मुझे आश्रमके बारेमें अपनी राय बतायेगा, और विशेष रूपसे उसने वहाँ जो त्रुटियाँ देखी हों उन्हें वह स्पष्ट रूपसे मुझे बतायेगा। आपको भी कृपापूर्वक यह वचन देना होगा।

अब रही आपकी कठिनाईकी बात। "जिसको हम प्यार करते हैं, उसकी भावनाको चोट पहुँचानेके डरसे अपने विवेक और स्वभावके विपरीत काम करने पर बाध्य होना" आवश्यक रूपसे बुरी बात नही है, बशर्ते कि हम जो चीज करते है वह न केवल खुद बुरी नही है, बल्कि नैतिक दृष्टिसे करने योग्य है। आप देखेंगे कि मैंने आपके ही शब्दोंकी नकल की है। इसके विपरीत प्रेमवश होकर ही सही, किसी गलत चीजको करनेके लिए बाध्य होना असंदिग्ध रूपसे गलत है। लेकिन वैसी स्थितिमे वह प्रेम खुद भी गलत है। यह मेरे लिए अच्छा है कि मै आपसे प्रेम करूँ और आपका प्रेम मुझे मिले। लेकिन प्रेमकी खातिर गलत काम करना मेरे लिए अनैतिक बात है। यदि ऐसा कुछ होनेकी कोई भी सम्भावना हो तो हमें एक-दूसरेकी संगतसे बचना चाहिए।

ये दो बातें कहनेके बाद अब मै इनके प्रमाणमें संसारके अनुभवको दृष्टान्त रूपमें प्रस्तुत करता हूँ। सही हो या गलत, यह एक तथ्य है कि बहुतसे मामलोंमें यदि स्त्री और पुरुष नेक और भले हैं, तो नेकी या भलाईकी खातिर नहीं, उस प्रेमकी खातिर हैं जो उन्हें दूसरोसे है या जो उन्हें दूसरोंसे प्राप्त होता है। इन मामलोंमे इस प्रकारका प्रेम हमें गिरनेसे बचाता है। यह बात शायद आप आसानीसे स्वीकार कर लेंगे कि संसारपर जिन लोगोंने सबसे अधिक नैतिक दबाव डाला उन महान व्यक्तियोंमें ईसामसीह भी एक थे और हैं। आप वैसे एक अत्यन्त कमजोर व्यक्ति हैं, लेकिन ईसामसीह आपको सही काम करनेके लिए बराबर दबाते हैं, हालाँकि आपका कमजोर शरीर चाहेगा कि आप गलत काम करें, और अजीब बात यह है कि उन्होंने आपको जंजीरोंमें जकड़कर बाँध रखा है। फिर भी आप भजनोंमें उनके गुणगान करते हैं। यदि कुछ लोग आपकी विवशता और कमजोरीपर हँसते है तो आप उसका बुरा नहीं मानते। यह उत्तर मत दीजिए: "लेकिन ईसामसीह तो ईश्वरके अवतार थे।" मैंने आपको यह दिखानेके लिए कि रोजमर्राके जीवनमें क्या हो रहा है, एक अत्यन्त सशक्त दृष्टान्त दिया है। किसीको ईश्वरका सहारा है; कुछ बेचारोंका सहारा उनके माता-पिता हैं। कुछ अन्य लोग, जैसे मै, ऐसे है जो अपनी पत्नी, पुत्रों और मित्रोंका सहारा लेते हैं। बहुत समय नहीं हुआ जब मैं लगभग गिर गया था, लेकिन देवदास, जो उस समय मेरे साथ रह रहा था, महादेव, मथुरादास और अन्य लोग जो मुझे उस समय घेरे हुए थे, और जिनके बारेमें मैं मानता था कि वे मेरा अवलम्ब लिये हुए हैं, इन लोगोंके खयालने और मेरी पत्नीके खयालने मुझे पतनसे बचा लिया। उनके प्रेमने मुझे इतना कसकर और मजबूतीसे जकड़ रखा था कि मैं उस बन्धनको तोड़ नहीं पाया, हालाँकि मेरा दुर्बल शरीर जंजीरको तोड़-ताड़ डालने और नरककी आगमें कूद पड़नेको पूरी शक्तिसे मचल रहा था।

इस प्रकारका प्रेमका दबाव था — अन्य किसी भी प्रकारका नही — जिसे मैं अपने अनशनके जरिये लोगोंपर डालना चाहता था; और ऊपरके इन सभी दृष्टान्तोंमें जो चीज समान है, वह है सही काम करना। लोग प्रेमके दबावमें आकर एक सही काम करें और बादमें वही काम प्रेमकी खातिर करें तो इसमें कुछ भी गलत

नही है। आशा है, मै अपना मुद्दा स्पष्ट कर सका हूँ, भले ही आपको मै कायल न कर सका होऊँ।

ईश्वरके कन्धे इतने विशाल है कि वे किसी गलत चीजका दायित्व भी उठा सकते है; ऐसा कहकर मै आपकी बातका खण्डन कर रहा हूँ, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेगे। ईसाइयतकी भाषामे कहे, तो क्या वह पापके उस बोझको भी सरलतासे नही उठाता जिसे मनुष्यके लिए उठा सकना सम्भव नही है? यह अन्तर्विरोध हमारे उद्देश्यके ख्यालसे अनावश्यक है; लेकिन मैंने सोचा कि मैं आपका ध्यान इस त्रुटिकी ओर दिला दूँ जो मेरी समझमें स्पष्ट ही गलतीसे हो गई है। जबतक मै पूरी सचाईके साथ यह विश्वास करता हूँ कि मैंने अपना अनशन ईश्वरकी प्रेरणासे किया था तबतक वह निश्चय ही ठीक था। लेकिन यदि अनजानेसे भी किसी अनैतिक चीजके समर्थनमे अनशन किया गया हो तो ईश्वरकी शरणके रहते हुए भी मै उसके दोपसे मुक्त होनेका दावा नहीं कर सकता। इसलिए किसी कामके पीछे जो मन्शा है वह ठीक होना चाहिए, सामने जो उद्देश्य हो वह ठीक होना चाहिए, और ठीक मन्शासे किया गया स्वयं कार्य भी ठीक होना चाहिए। अतः इस श्रृंखलामें यदि बीचकी कड़ी, अर्थात्, कार्य हिंसात्मक है तो वह मन्शा और उद्देश्य, दोनोंको दूषित कर देगी। इसीलिए विशुद्ध अहिंसा जरूरी है — विचारमें अहिंसा, वचनमें अहिंसा और कर्ममें अहिंसा। और चूँकि 'गीता' कहती है कि "मनुष्य वास्तवमें केवल अपने कर्मोंको ही नियन्त्रित कर सकता है,"[1] इसलिए यदि कर्म ठीक हैं तो बाकी चीजें वह इत्मीनानसे ईश्वरके ऊपर छोड़ सकता है, तथा वह इच्छासे और समझ-बूझकर ऐसा करे अथवा न करे, लेकिन बाकी चीजें केवल ईश्वरके ही हाथमें हैं।

मुझे पूरी आशा है कि आपका पैर अब बिल्कुल ठीक है। यदि नहीं, तो अब मैं आपसे मृत्तिका-उपचार करनेको नही कहूँगा, बल्कि नारणदाससे कहूँगा कि वह आपको किसी डॉक्टरके पास भेजे या आपके लिए कोई डॉक्टर बुलाये। छोटी-सी तकलीफके साथ भी खेल करना ठीक नहीं है।

हम सबकी ओरसे प्यार।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०) से।

१. अध्याय २, ४७।

३२०. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

५ फरवरी, १९३३

यह पत्र आपको मिलनेसे पहले ही आप अखबारोंमें देख चुके होंगे कि 'हरिजन' नामक एक अंग्रेजी-साप्ताहिक आर्यभूषण प्रेस द्वारा पूनासे प्रकाशित किया जायेगा। पटवर्धन इसके मुद्रक और प्रकाशक होंगे और आर० वी० शास्त्री, जिन्हें आप अच्छी तरह जानते हैं, सम्पादक होंगे। बेशक, मैं पत्रके लिए लिखता रहूँगा और इसकी नीतिका निर्देशन भी करूँगा। यह पत्र पूरी तरह हरिजनोंके कार्यके निमित्त समर्पित होगा। अगर आपका जरा भी मन हो, तो मैं चाहूँगा कि आप अपनी अनोखी शैलीमें सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनोंके लिए एक सन्देश भेज दें। यह सन्देश आप किस रूपमें देंगे, यह मैं पूरी तरह आपपर ही छोड़ता हूँ।

मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हैं।

राइट ऑनरेबिल शास्त्री

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२९९) से।

३२१. पत्र : एन० सी० केलकरको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री केलकर,

अस्पृश्यता-विरोधी अभियानमें मैं आपकी सहायता बेशक बहुत चाहता हूँ। किस हद तक और किस प्रकारकी सहायता आप दे सकते हैं, यह तो आप ही जान सकते हैं। लेकिन कृपया इतना समझ ले कि मैं भिखारीकी तरह आपका दरवाजा खटखटा रहा हूँ। आपको जब फुर्सत मिले, आप पहलेसे मुलाकात तय करके बुधवार, बृहस्पतिवार और रविवारको छोड़कर किसी भी दिन मुझसे कृपया अवश्य मिलें।

जैसाकि आप जानते हैं, 'हरिजन' नामक एक अंग्रेजी-साप्ताहिक पत्र शीघ्र ही निकलनेवाला है। मैं हर सप्ताह बुधवार और बृहस्पतिवारको पूरे दिन उसीके काममें व्यस्त रहूँगा, और रविवारका दिन जेल-अधिकारियोंके लिए खराब है। यदि आपका मन हो तो मैं चाहूँगा कि आप 'हरिजन' के लिए अपना सन्देश भी दें।

प्राप्त सूचनाओंके अनुसार मैं समझता हूँ कि लन्दनकी हालकी यात्रासे आपको काफी स्वास्थ्य-लाभ हुआ है।

हृदयसे आपका,

एन० सी० केलकर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९३००) से।

३२२. पत्र : आर० वेंकट शिवुडुको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र तथा अस्पृश्यता-विरोधी लीग द्वारा जो-जो काम किया जाता है, उसके मुद्दोंका विवरण-पत्र प्राप्त हुए। मैं देखता हूँ कि सात मुद्दे हैं जिनमें से पाँच तो आन्दोलन या प्रचार-कार्य जारी रखनेके बारेमें हैं, एक मुद्दा सत्याग्रहके सम्बन्धमें है, और एकका सम्बन्ध धन-संग्रह और खर्चके प्रबन्धसे है। मेरी सलाह है कि इन सभीको बिल्कुल काट दिया जाये और लीगका काम कार्यकर्त्ताओं द्वारा व्यक्तिगत तौरपर वास्तविक रचनात्मक-कार्य करनेतक ही सीमित कर दिया जाये। बंजर भूमि, राजनीतिक अधिकार, या शिक्षा-सम्बन्धी मामलोंके सिलसिलेमें भी आन्दोलन करना बिल्कुल गैर-जरूरी है। आज आपको जिस चीजकी जरूरत है वह यह कि जितने ज्यादा लोगोंको सम्भव हो, शिक्षित करें और जितने ज्यादा लोगोंका कर सकें उतने ज्यादा लोगोंकी आर्थिक तकलीफ दूर करें और जितने मन्दिर खोल सकना सम्भव हो, उतने मन्दिर खोलें। इसके लिए कुछ प्रचार-कार्यकी जरूरत हो सकती है, लेकिन यह स्वयं रचनात्मक-कार्यका ही अंग है और इसमें सदस्योंका सारा समय नहीं लग सकता। इस समय किसी चीजके लिए सत्याग्रह करनेका कोई सवाल नहीं है। ऐसा मेरा विचार है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० वेंकट शिवुडु
हरिजन सेवा समिति
ब्रोडीपेट, गुन्टूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०१) से।

३२३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

मैं तुम्हारे लम्बे पत्रको लेकर कार्रवाई करता रहा हूँ। मैंने पत्रको श्रीयुत पटवर्धनको दिया था और उनसे बतानेको कहा कि पुस्तकके प्रकाशनके बिलके सम्बन्धमें क्या कुछ अधिक दाम लिये गये हैं। उन्होंने वसुकाकासे सम्पर्क स्थापित किया, और उनका कहना है कि तुमने उन्हें पुस्तक कभी दिखाई ही नहीं, लेकिन एक आठ पेजकी डिमाई आकारकी पुस्तककी छपाई कितनी लेंगे, उनसे यह बतानेको कहा था। जब उन्होंने प्रूफ देखे और तुमने जो सुधार किये हैं उन्हें देखा, तब उन्होंने कहा कि कुछ दृष्टियोंसे आर्यभूषण प्रेसका बिल उनके बिलसे कम है। इस प्रकार कम्पोजिंगके लिए आर्यभूषणका बिल १८ रुपये है, वही उतने ही कामके लिए चित्रशालावालोंका ३६ रुपये होगा; छपाईके लिए आर्यभूषणका ३ रुपये और चित्रशालावालोंका ५ रुपये होगा; कागजके लिए आर्यभूषणका ४ रुपये और चित्रशालावालोंका ८ रुपये होगा; और चित्रशालाने जो बिल दिया है, वह भी ३२ रुपयेका है जबकि आर्यभूषणका २५ रु० ८ आने है। कवरके लिए आर्यभूषणने ७ रुपये लिये हैं, जबकि चित्रशालावाले ७ रुपये ८ आने लेंगे; बँधाईके लिए आर्यभूषणने ७ रुपये ८ आने लिये हैं, जबकि चित्रशालावाले १० रुपये लेंगे।

इस प्रकार 'तुम देखोगे कि हर कदमपर तुम गलत हो। अच्छा हो कि तुम अपनी गलती देख सको।

हृदयसे तुम्हारा,

प्रोफेसर एन० एच० पुरन्दरे
पूना २

[पुनश्च:]

इस पत्रके टाइप होनेसे पहले मुझे तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुम देखोगे कि तुम्हारी बातोंका जवाब ऊपर पहले ही दिया जा चुका है। लेकिन यदि तुम वसु काका जोशीसे बिलोंको औपचारिक रूपसे देख जानेको कहोगे तो मैं आर्यभूषणवाला बिल खुशीसे उनको दे दूँगा और उनसे कहूँगा कि वह बतायें कि उनकी रायमें वह उचित है या नहीं। मैं उनकी रायको अन्तिम मानकर स्वीकार कर लूँगा, और जितनी किताबें पहले ही बिक चुकी हैं उनकी जो कीमत प्राप्त हो चुकी है उतना

पैसा वसुकाका जोशी द्वारा निर्धारित रकममें से कम करके शेष रकम जब तुम चुका दोगे तो किताबें तुम्हारे हवाले कर दी जायेगी।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०२) से।

३२४. पत्र : सीनूको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय सीनू,

तुम्हारे पत्र, और तुमने जो बहुत ही अच्छे फोटो भेजे हैं, उनके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। इनसे मुझे तुम सब लोग जो काम कर रहे हो, उसका अच्छा अन्दाज मिल गया।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०३) से।

३२५. पत्र : टी० सुन्दरम्‌को

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो लिखा है[1] कृपया उसे पढ़ने और सुधारनेके लिए मुझसे मत कहिए। ऐसा करना सचमुच मेरी सामर्थ्यसे बाहर है, और मैंने जो-कुछ थोड़ा-सा पढ़ा है, उस परसे आपको मेरी सलाह है कि आप मन्दिर-प्रवेश या अन्य किसी चीजके बारेमें अखबारोंमें कुछ भी लिखनेसे बाज आयें। आपका अपनी लेखनी पर तनिक भी संयम नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० सुन्दरम्
टाइपिस्ट
टेप्पाकुलम डाकखाना
त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०४) से।

१. 'मन्दिर-प्रवेश समझौते' पर।

३२६. पत्र : टी० एम० कृष्णमूर्तिको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। सबसे पहले तो मैं आपकी आशका दूर करके आपको यह बताना चाहूँगा कि इस समय जो लोग किसी मन्दिरमें जाकर पूजा करनेके अधिकारी है, जबतक उनकी बहुत बड़ी सख्याकी सहमति नही होगी तबतक कोई भी मन्दिर हरिजनोके लिए नहीं खोला जायेगा। इसलिए मन्दिर-त्याग करनेका कभी कोई कारण नही होगा। और जहाँतक मै जानता हूँ, जो मन्दिर पहले ही खोले जा चुके हैं——और कमसे-कम ५०० मन्दिर हैं जो खोले जा चुके हैं——उनका चन्द लोगोंको छोड़कर साधारण मन्दिर जानेवालोंने त्याग नहीं किया है।

मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रार्थनाके द्वारा ही लोगोंके दिल बदले जा सकते है, लेकिन मेरा अनुभव और बहुतसे लोगोंका अनुभव दिखाता है कि बिना उपवासके भावप्रवण प्रार्थना हो ही नही सकती। भूतकालमे, मेरे उपवास भावप्रवण प्रार्थनाकी अभिव्यक्ति-स्वरूप रहे है, और यदि आगे उपवास होना होगा तो भविष्यमें भी वे वैसे ही होंगे, ऐसी मेरी आशा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० एम० कृष्णमूर्ति
२/१९ चेंगलराय मुदाली स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०५) से।

३२७. पत्र : द० बा० कालेलकरको

५ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। दाँत पहले और जल्दी निकलवा डालने थे। अब तो सिर्फ तेरह नही, जितने दाँत निकलवा डालनेकी जरूरत मालूम पड़े उतने निकलवा दिये जायें। जिस तरह बहुत-सी दाइयोंसे परिचर्या बिगड़ती है, उसी प्रकार बहुतसे डॉक्टरोंके बारेमें भी समझो। जबतक दाँतोंके बारेमें निर्भय नहीं हो जाते तबतक बम्बईमें ही बने रहो। ऐसा मत मानना कि इसमें किसी भी प्रकारकी धर्मपराङ्मुखता है।

वहाँ बैठे-बैठे तुम कई तरहकी सेवा कर सकते हो। दाँतका उपचार चलते हुए तुम खुली हवामें रहो और जितना शरीर आसानीसे सहन कर ले उतनी दूर घूमने जाओ। रोज पन्द्रह मीलतक घूमने जा सकते हो। मुझे यकीन है कि तुम जल्दी सो जाते होगे और जल्दी उठ जाते होगे। प्रातःकालके समय घूमने जाना चाहिए। फिलहाल भोजनमें सभी प्रकारका स्टार्च छोड़ देना आवश्यक है। अच्छा तो यह है कि दूध, दही, घी और सन्तरा तथा मोसम्बीका रस लो। इन चीजोंको चबानेकी जरूरत नही पड़ती। स्टार्चको मुँहमें शर्करा-रूप कर लेना पड़ता है। तुम्हारे दाँतोकी आजकी हालतमें यह सम्भव नही है, इसलिए मैंने जो भोजन सुझाया है वही लेना उचित है। यदि तुम चाहो तो लौकी या कोई हरी सब्जी ले सकते हो। किन्तु इनकी भी जरूरत नही है।

मेरे दाँतोंके बारेमे चिन्ता मत करना। कुहनीके बारेमें यहाँके डॉक्टर फिक्र नहीं करते हैं। इसलिए मै क्यों फिक्र करूँ? अपना डॉक्टर बुलवानेके लिए तो अनुमति लेनी पड़ती है, वह कौन देगा? पूरा विश्वास रखो कि मैं अपने शरीरके विषयमें लापरवाह बिल्कुल नहीं हूँ। जिस क्षण शंका होगी मैं उसके बाद एक क्षण भी चैनसे नहीं बैठूंगा। मैं स्वतः जिस बातकी चिन्ता करनेके लिए तैयार हूँ और जिसकी चिन्ता कर रहा हूँ, उसकी चिन्ता तुम क्यों करो?

बालके विषयमे तुमने जो लिखा है सो बिल्कुल ठीक है। वह बम्बई पहुँच जाये तब मुझे लिखना। मेरा खयाल है कि 'हरिजन' शनिवारको निकल जायेगा।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९०) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

३२८. पत्र : बलवन्तसिंहको[1]

५ फरवरी, १९३३

भाई बलवन्तसिंह,

तुम्हारा खत मिला है।

१. गुरुमें स्थितप्रज्ञके गुण होने चाहिये। ऐसा सर्वगुणसंपन्न कोई मनुष्य मुझे नहिं मिला है। थोडे बहोत अंशमें ऐसे गुण तो कईयोंमें प्रत्येक देशमें मिले हैं।

२. सुखदुःखमें, मानापमानमें सम रहनेका तात्पर्य यह है कि अपमान होनेसे खिन्न नहिं बनना मान मिलनेसे फूल नहिं जाना। अपमानका अथवा दुःखका इलाज नहिं करना ऐसा कभी नहिं है।

१. इस पत्रपर अंग्रेजीमें निम्नलिखित टिप्पणी लिखी हुई है, जो स्पष्टतया जेल-अधिकारियोंके लिए थी: "इसमें केवल धार्मिक प्रश्नोंके उत्तर है। एम० के० जी०"।

३. भक्तके गुण प्रयत्न साध्य है। प्रयत्न कैसे किया जाय वह उसी अध्याय[१] में बताया गया है। लेकिन उससे भिन्न प्रयत्नसे भी ऐसे गुण प्राप्त हो सकें तो कोई रुकावट नहिं है।

४. निद्रा प्रयत्नसे निर्दोष हो सकती है। निर्दोष निद्रा उसका नाम है जिसमें जागनेके पश्चात निद्रा सिवाय और किसी वस्तुका ज्ञान नहिं रहता है और सुखका अनुभव रहता है। यद्यपि गीतादि का पाठ किया जाता है तो भी अनजानपनमें अनेक विचार आते जाते हैं। जब आत्मा गीतामय अथवा कहो भगवानमय हो जाता है तब शुद्ध निद्राका सम्भव होता है। इसलिए आज जो प्रयत्न गीतामय होनेका चलता है उसीको श्रध्धापूर्वक कायम रखा जाय।

५. 'रामायण' पर भी लिखनेका विचार तो रहता हि है किन्तु समयाभावसे रह गया है। यों तो अब कोई आवश्यकता नहिं रहती है। जो अनासक्तियोग[२] का अभ्यास अच्छि तरह करेगा वह 'रामायण'का रहस्य भी अपने आप घटा लेगा।

६. 'रामायण' में यदि इतिहास है तो वह गौण वस्तु है। अध्यात्म प्रधान वस्तु है। इतिहासके निमित्त धर्मका बोध दिया गया है। इस कारण रामको परमात्मा रावणको ईश्वर विमुख शक्ति समझकर सारी 'रामायण' पढ़ना। समझो राम कृष्ण है उनका दल पांडव सेना है, रावण दुर्योधन है। महाभारत और रामायणमें एक हि दृष्टि है।

गुरुमुखी ग्रंथोंका अध्यन कर रहे हो सो भी अच्छा है। 'गीता' कण्ठ करनेकी प्रतिज्ञाका पालन किया जाय।

भाई फुलचंदके पत्रका उत्तर दिया गया है। आशा है यह पत्र मिल जायगा।[३]

हम सब अच्छे है।

सबको
बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८६९) से।

१. **गीता** का १२ वाँ अध्याय।

२. **गीता** पर गांधीजी की टीका; देखिए खण्ड ४१।

३. इससे पहले बलवन्तसिंहको लिखा एक पत्र गुम हो गया था। देखिए खण्ड ५२, "पत्र: फूलचन्द बी० शाहको", पृष्ठ ४०३।

३२९. पत्र : जी० टी० हिंगोरानीको

[६ फरवरी, १९३३ से पूर्व][1]

आपको अधीर नहीं होना चाहिए। अभी फिलहाल कोई सत्याग्रह नहीं किया जाना चाहिए। हमें लोकमतको प्रशिक्षित करना चाहिए और कट्टरपंथियोंके साथ नर्मीसे पेश आना चाहिए। याद रखिए कि कट्टरपंथी लोगोंमें आज जो पूर्वग्रह है, ये ही पूर्वग्रह किसी समय हमारे मनमें भी थे। आपको सबसे पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि ये न्यासी लोग हैं जो मन्दिरोंको खोलनेसे इनकार करते हैं, या ये मन्दिरमें जानेवाले लोग हैं जो हरिजनोंका प्रवेश सहन नही करते। इसकी खातिर आपको वैज्ञानिक और ठीक-ठीक ढंगसे जनमत-संग्रह करना चाहिए। किसी मन्दिरमें जो लोग जानेके अधिकारी है, केवल उन्ही लोगोंके मत लिये जाने चाहिए। होटल और सेलूनोंके मालिकोंकी स्थितिमें जरा फर्क है। उन्हें अपनी रोटी-रोजीका विचार भी करना है और उनसे खतरा मोल लेनेकी अपेक्षा नही की जानी चाहिए। इसलिए आपको चाहिए कि आप [इन होटलों और सेलूनोंमें जानेवाले] वास्तविक ग्राहकोंका मत-संग्रह करें, और यदि ग्राहकोंको कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि होटलों और सेलूनोंके मालिकोंको खुशी होगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-२-१९३३

३३०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

६ फरवरी, १९३३

सचिव, बम्बई सरकार

गृह विभाग

प्रिय महोदय,

मैं साथमें श्रीमती मीराबाई (स्लेड) का पिछली २८ तारीखका पत्र संलग्न कर रहा हूँ, जो मुझे आज ही दिया गया है। यह अपनी कहानी आप कहता है। यह पत्र मेरी चिन्तातुर पूछताछके उत्तरमें था, इसलिए मुझे और पहले दिया जा सकता था। इस पत्रको लिखनेके बाद मुझे उनका सामान्य साप्ताहिक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि सिविल सर्जनने उनकी जाँच की थी और उनका तबादला करनेकी सिफारिशकी है। कुमारी स्लेड अपने साप्ताहिक पत्रोंमें बार-बार इस बातकी

१. यह पत्र कराचीमें ६ फरवरी, १९३३ को प्रकाशित हुआ था।

३३१. भेंट : मैकरेको[1]

६ फरवरी, १९३३[2]

बेशक, कुछ ऐसी बातें हो सकती हैं जिनपर हममें मतभेद हो, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि जिनपर हममें सहमति हो ऐसी इतनी सारी बातें भी होंगी कि कोई वास्तविक कठिनाई होगी ही नही। कठिनाई हो या न हो, इस मामलेमें मेरा रास्ता स्पष्ट है; मैं बारम्बार कह चुका हूँ कि सवर्णोने तथाकथित अस्पृश्योंके साथ अन्याय किया है, और अब हममे से जिन लोगोंने इस अन्यायकी व्यापकताको समझ लिया है, उन्हें इसके लिए प्रायश्चित करना है।

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ४४/३५, १९३३, पृष्ठ १६-८; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

३३२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मुझे तुम्हारे कई पत्र मिले हैं। जहाँतक हालोवेके द्वितीय संस्करणकी बात है, हमें फिलहाल उसका विचार छोड़ देना होगा।

जहाँतक द्वितीय हरिजन-दिवसकी बात है, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि इससे पहलेवाले हरिजन-दिवसपर कितना चन्दा इकट्ठा हुआ था?

यह तो बहुत खीझ होनेकी बात है कि हिन्दी 'हरिजन' इतना समय ले रहा है। पता नहीं मैंने तुम्हें या घनश्यामदासको दिल्लीके एक व्यक्तिका यह प्रस्ताव भेजा है या नहीं कि हम उसका साप्ताहिक पत्र 'संजय' ले लें, जिसे वह इस समय प्रकाशित करता है। उससे मिलना उपयोगी हो सकता है। उसका कहना है कि इन्द्र उसे जानता है।

अंग्रेजी-संस्करण शनिवारको निकलेगा। हम पहले संस्करणकी १०,००० प्रतियाँ छाप रहे हैं। यदि पत्र आत्म-निर्भर नहीं बनता तो इसे बन्द कर दिया जायेगा,

१. इसे आर० एम० मैक्सवेलके १४ फरवरीके उस पत्रसे उद्धृत किया गया है, जो उन्होंने गृह-सचिव, एम० जी० हैलेटको लिखा था।

२. **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ १२९ से।

और यदि सभी प्रान्तीय बोर्ड अमुक संख्यामें इसकी प्रतियाँ खरीदें तो यह निश्चय ही आत्म-निर्भर बन जायेगा। यदि ये बोर्ड प्रभावी ढंगसे कार्य करनेवाली संस्थाएँ है तो उन्हें अपने कार्यकर्ताओंके लिए इन प्रतियोंकी आवश्यकता होनी ही चाहिए। प्रत्येक ऐसे संगठनका अपना एक मुख-पत्र होना आवश्यक है। यह बात तुमपर भी लागू होती है। कृपया मुझे तारसे सूचित करो कि तुम कितनी प्रतियाँ चाहोगे, और तुम्हें जितनी प्रतियोंकी जरूरत हो उनका पैसा तुम्हें अग्रिम देना होगा। तुम कमसे-कम जितनी प्रतियाँ जरूरी हों, उतनी मँगा सकते हो ताकि तुम्हारे यहाँ भी पैसा व्यर्थ न जाये। निस्सन्देह तुम्हें कुछ प्रतियाँ मुफ्त बाँटनी होंगी।

मै यह भी चाहूँगा कि तुम पटवर्धनको ५०० रुपयेका चेक या ड्राफ्ट भेज दो। मेरे पास ५४४ रुपये ६ आने थे जो मैं तुम्हारे खातेमें डालनेकी सोच रहा था, लेकिन अब मै यह रकम पटवर्धनको दे रहा हूँ। यह तुम्हारी ओरसे पत्रको दिया गया कर्ज माना जायेगा, और जैसे ही ग्राहकोंके चन्दे प्राप्त हो जायेंगे, यह कर्ज वापस कर दिया जायेगा। इसलिए तुम अपने खातेमें [५][१] ४४ रु० ६ आ० मेरी ओरसे अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्यके लिए प्राप्त दर्ज कर लेना तथा ५४४ रु० ६ आने 'हरिजन'के नाम और डाल देना। यह रकम उस ५०० रुपयेके अतिरिक्त है जो मैंने तुम्हें वहाँसे भेजनेको कहा है। पटवर्धनको काम चलानेके लिए १००० रुपयेसे ज्यादाकी शायद जरूरत नहीं होगी। चन्देकी रकमें मिलनी शुरू हों, उससे पहले टिकटों, वेतनादि और कागजके लिए धन खर्च करना ही होगा।

यदि 'हरिजन'मे प्रकाशनार्थ कोई खबर देनी हो तो तुम शास्त्रीको तार भेज देना। वस्तुतः यदि तुम्हें सभी बोर्डोसे रिपोर्टें प्राप्त होती रहती हैं तब तो तुम्हें प्रति सप्ताह तारसे खबर भेज सकनी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०८) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ लिखावट अस्पष्ट है।

३३३. पत्र : विश्वनाथप्रसाद मिश्रको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[१] हालाँकि सभी निर्वाचित संस्थाओंमें हरिजनोंको चुना जाता देखकर मुझे हर्ष होगा, लेकिन परिणामोंके बारेमें पहलेसे कोई राय देकर मुझे निर्वाचनमें दखल नहीं देना चाहिए। एक कैदीके लिए ऐसा करना उचित नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वकील
छपरा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०६) से।

३३४. पत्र : भगवानदासको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

अरबीके एक प्रोफेसरने 'मनुस्मृति'का अरबीमें अनुवाद करनेका काम हाथमें लिया है और मुझसे इस काममें अपनी मदद करनेको लिखा है। वह खुद संस्कृत नहीं जानते। मैंने उन्हें चेता दिया है कि वह 'मनुस्मृति'के नामसे प्रचलित छपे हुए पाठको वास्तविक न मानें। जब मैंने इस पुस्तकको पढ़ा तो उसके कई श्लोकोंके नैतिक सौन्दर्यने मुझे बहुत अनुप्राणित किया, लेकिन साथ ही उसके कुछ श्लोक मुझे नैतिक शिक्षाकी भावनाके सर्वथा विपरीत लगे और उनके प्रति मेरे मनमें घृणा पैदा हुई। इसलिए मैंने सदैव ऐसा माना है कि छपा हुआ पाठ एक ही व्यक्तिकी रचना नहीं है, और न इसे किसी एक ही कालमें लिखा गया है। मेरी मान्यता है कि मूल श्लोक जब लिखे गये थे उसके बाद कालान्तरमें उसमें बहुत-सी चीजें अलगसे जोड़ दी गई। मेरा मन ऐसा कहता है, इसके सिवा मेरे पास अपने इस कथनका कोई आधार नहीं है। तथापि, आपने इस पुस्तकका गहरा अध्ययन किया है और शायद

१. विश्वनाथप्रसादने बिहार-उड़ीसा विधान परिषदकी सदस्यताके लिए होनेवाले उप-चुनावमें एक हरिजन उम्मीदवारकी सफलताके लिए गांधीजी से अपना आशीर्वाद भेजनेका अनुरोध किया था।

सभी स्मृतियोंका तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। यदि आप किसी निष्कर्षपर पहुँचे हों और यदि आपने इसके ऊपर कुछ लिखा हो तो मैं आपकी राय जानना चाहूँगा; अथवा, यदि आप किसी ऐसे व्यक्तिको जानते हों जिसने 'मनुस्मृति' के सम्बन्धमें वही धारणा व्यक्त की है जो मेरी है, अथवा यह कि उसने परस्पर-विरोधी श्लोकोंमें किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया है, यह बता सकें तो मैं चाहूँगा कि आप मुझे सूचित करें। इस समय 'हरिजन' का कार्य कन्धोंपर आ पड़नेके कारण मैं बहुत व्यस्त हूँ। मैं प्रिन्सिपल ध्रुवको इस विषयमें अलगसे लिखना चाहता था, लेकिन इस इच्छाका त्याग करके मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप इस पत्रको ही उनके पास भेज दें ताकि वह मुझे अपनी राय भी लिख सकें। मैंने प्रोफेसर हक्कीको चेतावनी दे दी है कि मैंने जो दृष्टिकोण सुझाया है, उसपर ठीक तरहसे जाँच-पड़ताल किये बिना वह छपे हुए पाठका ही अनुवाद न करें। लेकिन मैंने जो सुझाव दिया है, यदि उसके अनुसार वह काम करना चाहें तो जबतक स्वयं मुझे कोई प्रामाणिक मार्गदर्शन न मिले तबतक मैं उनकी मदद नहीं कर सकता। मेरे सन्तोषके लिए तो मेरी सहजबुद्धि ही काफी है, लेकिन जहाँतक दूसरोंका सवाल है, यदि मैं कायल कर देनेवाला बाह्य साक्ष्य अपनी सहजबुद्धिके समर्थनमें न पेश कर सकूँ तो महज मेरी सहजबुद्धि उनका मार्गदर्शक नहीं हो सकती।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०८) से।

३३५. पत्र : एन० आर० क्षीरसागरको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[1] आप जो कहते हैं सो मैं समझता हूँ। यदि हरिजन लोग हिन्दू न होते तो संस्कार आवश्यक होगा। लेकिन हिन्दुओंके लिए मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पहले किसी संस्कारकी जरूरत नहीं है। लेकिन उन्हें आनुष्ठानिक स्वच्छता आदिका पालन तो अवश्य करना होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० आर० क्षीरसागर
१५, नभिकाम स्ट्रीट
वेल्लोर (एन० ए०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०९) से।

१. क्षीरसागरने लिखा था: "अभीतक यह तथ्य निश्चित रूपसे स्थिर नहीं हुआ है कि अस्पृश्य लोग वास्तवमें हिन्दू हैं।"

३३६. पत्र : हरिभाऊ फाटकको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय हरिभाऊ फाटक,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इसका दुःख है कि श्री माटेको ऐसा लगा कि उस दिन उनके साथ बहस करते हुए मैंने अधीरता या क्रोधसे काम लिया। यदि ऐसा कुछ हुआ हो तो मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। निश्चय ही ऐसा कोई मन्शा मेरा नहीं था। वह आकर मुझसे सारी चीजपर चर्चा कर सकते हैं। मैं वादा करता हूँ कि उनके बोलते समय मैं बिल्कुल चुप रहूँगा और उनकी बातको सुनूँगा। आखिरकार मेरा तो काम ही है अपना सन्देश देना और जो लोग मुझसे भिन्न विचार रखते हैं, उनको अपनी रायका बनाना; किसीके ऊपर अपने विचार थोपनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है, और मैं अधीर या क्रुद्ध होकर किसीको अपना अनुयायी नही बना सकता। वह जिस मित्रको चाहें अपने साथ ला सकते हैं। निराशासे बचनेके लिए पहलेसे समय नियत कर लें। अब चूँकि मुझे 'हरिजन' का काम भी देखना है, इसलिए मैं बुधवार या बृहस्पतिवारको मुलाकातका वक्त नहीं दे सकता। शुक्रवार और शनिवार बिल्कुल ठीक रहेंगे।

अब तुम्हारे पत्रकी विषय-वस्तुको लें। श्री माटेका यह सोचना बिल्कुल गलत है कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकपर मतदान करनेका अधिकार हिन्दुओंको नही होगा, लेकिन उनके अतिरिक्त अन्य सबको होगा। और मैं यह बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर सकता हूँ कि बाध्यताका कतई कोई सवाल नहीं है। न हमारी तनिक भी ऐसी इच्छा है कि हिन्दू सदस्य यदि न चाहते हों तो भी विधेयक पास हो जाये। पहले विधेयकमें तो मन्दिरोंका कोई उल्लेख भी नहीं है। निर्दोष विधेयककी जो कल्पना की जा सकती है वैसा विधेयक यह है। इसका उद्देश्य तो देशकी दण्ड-विधिसे अस्पृश्यताको बिल्कुल हटा देना ही है। निश्चय ही जब पहली बार अदालतोंसे अस्पृश्यताको कानूनी दर्जा देनेको कहा गया तो यह एक बहुत बड़ी गलती थी। मैं जानना चाहूँगा कि किस रूपमें इन दोनोंमें से कोई भी विधेयक किसीकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप करता है।

यशोदाबाईके बारेमें जानकर दुःख हुआ। मैं निश्चय ही उसे लिखूँगा।

चरखेकी जहाँतक बात है, जैसाकि तुम जानते हो, कानिटकर वही चीज पूनामें बना रहा था। उसका लड़का भी जानता है। मेरे पास जो नमूना लाया गया था उसमें मैंने कुछ सुधार सुझाये थे। उनको बारडोलीसे लानेके मतलब होंगे प्रति चरखा ज्यादा नहीं तो चार आने रेल-भाड़ा, जबकि पूरा चरखा स्थानीय तौरपर और

सस्तेमें बनाया जा सकता है। लेकिन यदि उन्हें बारडोलीसे ही मँगाना है, तो मैं आसानीसे मँगवा सकता हूँ।

दो बोतल तेल जिन्होंने बनाया है उन्हें धन्यवाद कहिएगा। मेरे पास अभी भी काफी नारायण तेल बचा हुआ है। मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि जबतक मैं माँगू नहीं तबतक वे और न भेजें, और मैं वचन देता हूँ कि जो तेल उन्होंने इतनी कृपापूर्वक भेजा है, वह खत्म हो जानेपर मै और माँग लूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०१७५) से।

३३७. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

आशा है कि तुम वहाँ अच्छा काम कर रहे होगे।

जगद्गुरुके तारके उत्तरमे रंगा अय्यरने जो वक्तव्य दिया है वह मुझे बिल्कुल पसन्द नही आया। गुरुवायूरमें हुई जनमत-गणनाके बावजूद उन्होंने वक्तव्यमें कहा है कि मलाबारके हिन्दू मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध हैं। उन्होंने सनातनियोंको उद्देश्यकी ईमानदारी, रूढ़िवादिता आदि-आदिका प्रमाणपत्र दे डाला है और मुझे बुद्धसे मिलते-जुलते व्यक्तिके रूपमे प्रस्तुत किया है। यदि तीनों वक्तव्य सही होते तो उनके खिलाफ कहनेको कुछ नहीं होता, भले ही वे किसीके लिए कितने ही अटपटे क्यों न हों। लेकिन ये तीनों वक्तव्य गलत हैं। गुरुवायूरकी जनमत-गणनाके सिवा मलाबारके हिन्दुओंकी राय कोई नहीं जानता। त्रावणकोरके बारेमें आपकी साक्षी रंगा अय्यरकी रायके विरुद्ध है। सनातनी लोग यदि एक भी ऐसा आदमी पेश न कर सकें जो विवेक-संगत बातको सुननेके लिए और सुधारकोंके दृष्टिकोणको समझनेके लिए तैयार हो तो वे अच्छा प्रमाणपत्र पानेके योग्य नहीं हो सकते। वे सुधारकोंकी माँगको बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं, और फिर मुझे बुद्धकी उपमा देना तो सुधारके अनुष्ठानको पहले ही से बिगाड़ देने-जैसा है, क्योंकि रूढ़िवादी लोग मानते है कि बुद्ध नास्तिक थे और वेदोंकी प्रामाणिकता, वर्णाश्रम, आदि सभी चीजोंको अस्वीकार करते थे। उन्हें इस बातका गर्व है कि बौद्धधर्मको देशसे खदेड़कर बाहर निकालनेके लिए शंकर खड़े हुए, और स्वभावत: यदि मैं उनकी कल्पनामें बुद्ध-जैसा हूँ तो वे मुझे भी खदेड़ निकालना चाहेंगे। इसलिए रंगा अय्यरके सबसे ताजा बयानको देखकर उनकी वकालतकी तरफसे मेरा भय बढ़ गया है।

आशा है, देवदासके दिल्ली पहुँचनेपर उसे मेरा पत्र मिला होगा। उसका जो पत्र मुझे अभी-अभी मिला है, उसमें उसकी बातोंका उत्तर मेरेवाले पत्रमें पहले ही

दिया जा चुका है। मैं इस समय 'हरिजन' के काममें बहुत अधिक व्यस्त होनेके कारण तुम्हें और अधिक नहीं लिख सकता और न देवदासको अलगसे लिख सकता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१७६) से।

३३८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

७ फरवरी, १९३३

विधानसभामें कल हुए प्रश्नोत्तरोंको ध्यानमें रखते हुए अपने १४ जनवरीके वक्तव्यको[1] और अधिक स्पष्ट करनेका अनुरोध किये जानेपर गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे कहा :

मैंने जो लिखा था, वह ठीक है। मैं अपने वक्तव्यमें जो कह चुका हूँ उसमें और कुछ नहीं जोड़ना चाहता।

गांधीजी का ध्यान उनके इस वक्तव्यके सिलसिलेमें पूछे गये विभिन्न प्रश्नों और उत्तरोंकी ओर, विशेष रूपसे सदनमें दिये गये सर हैरी हेगके उस बयानकी ओर दिलाया गया जिसमें उन्होंने गांधीजी के वक्तव्यके बम्बई कांग्रेस बुलेटिनमें लगाये गये अर्थकी चर्चा की थी। गांधीजी ने उत्तर दिया :

यदि लोग मेरे लेखोंके अलग-अलग अर्थ लगायें तो मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? मेरे लिए यह कोई नया अनुभव नहीं है। मेरा वक्तव्य बिल्कुल स्पष्ट है। आप उसका निश्चय ही सही अर्थ ढूँढ़ सकते हैं। मेरा वक्तव्य अनेकार्थी हो, ऐसा मेरा इरादा निश्चय ही नहीं रहा है, लेकिन इसे सम्पूर्ण रूपमें पढ़ा जाना चाहिए। वाक्योंको सन्दर्भसे अलग करके देखनेपर आप उनके अनेक अर्थ लगा सकते हैं।

गांधीजी अपनी वाक्-स्वतन्त्रतापर लगी मर्यादाका सदा ध्यान रखते हैं, इसलिए उन्होंने इस सम्बन्धमें पूछे गये और ज्यादा सीधे प्रश्नोंका उत्तर यह कहते हुए देनेसे इनकार कर दिया कि :

अब आप रपटीली जमीनपर पाँव रख रहे हैं।

गांधीजी के विरुद्ध कुछ लोगोंने असंगतताका आरोप लगाया था, क्योंकि असहयोगी होते हुए भी उन्होंने मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमें सरकार और विधानसभा की सहायता माँगी थी। इस विषयमें प्रश्न किये जानेपर गांधीजी ने कहा कि इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए मुझे राजनीतिकी चर्चा करनी पड़ेगी, जो मैं नहीं कर सकता। उन्होंने कहा :

१. यह वक्तव्य वास्तवमें ७ जनवरीको लिखा गया था; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३९३-५।

इसलिए मुझे अपनी प्रतिष्ठाको हानि पहुँचनेका खतरा उठाना होगा। लेकिन मैं अपनी ईमानदारीको अपनी प्रतिष्ठासे ज्यादा मूल्यवान मानता हूँ, और यदि वह सुरक्षित रही तो प्रतिष्ठा अपनी चिन्ता आप कर लेगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ८-२-१९३३

३३९. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

७ फरवरी, १९३३

पुरीके शंकराचार्य द्वारा श्री रंगा अय्यरको लिखे पत्र और श्री अय्यर द्वारा दिये गये उसके उत्तरके बारेमें टिप्पणी करते हुए गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे एक भेंटमें कहा:

मुझे सचमुच दुःख है कि जगदगुरुने विधेयकोंके बारेमें वह पत्र लिखा। मैं ऐसा माननेका साहस करता हूँ कि ये विधेयक किसी भी रूपमें धार्मिक स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप नहीं करते। इसके विपरीत, वे उसकी चिन्तापूर्वक रक्षा ही करते हैं। और जगद्गुरुने जो मिसाल दी है, न वही सही है। विधेयकमें ऐसी कोई तकनीकी बात नहीं है जिसको समझनेके लिए तकनीकी बारीकीका ज्ञान होना जरूरी हो। पूजा करनेवाले इस बातका निश्चय करनेके लिए बराबर स्वतन्त्र हैं कि वे पूजा-प्रार्थनाके लिए किन लोगोंको अपने साथ ले जायेंगे। अगर आप चाहें, तो इसे धर्म-परिवर्तन भी कह सकते हैं। लेकिन आप लोगोंको उनके इस अधिकारसे वंचित नहीं कर सकते।

किसी मन्दिरका नियमन करनेवाले आगमके विरुद्ध हो तो भी उसमें पूजा करनेवाले शत-प्रतिशत लोगोंको जिसे चाहें, उसे मन्दिरमें प्रवेश करने देनेसे कौन रोक सकता है? जो अधिकार वास्तवमें कभी छीना ही नहीं जाना चाहिए था, उस अधिकारको जनताको फिरसे देनेमें किसी प्रकारका धार्मिक हस्तक्षेप नहीं है। और यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि शत-प्रतिशत पूजा करनेवाले यदि चाहें तो वे मन्दिरमें प्रवेशके नियमको बदल सकते हैं, तो यह बात आसानीसे मानी जा सकती है कि काफी बहुमतमें होनेपर उनको मन्दिर-प्रवेशके सवालका निर्णय करनेका अधिकार होना चाहिए, और यह अधिकार उसी हदतक होना चाहिए जिस हदतक कि वे अल्पसंख्यकों द्वारा बहुसंख्यकोंसे पृथक्, एकान्तमें पूजा करनेके अधिकारमें हस्तक्षेप न करें।

जगद्गुरु-जैसे एक जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा उसी धर्मके अनुयायी और उन्हीं शास्त्रोंको माननेका दावा करनेवाले सुधारकोंको सनातन-धर्मका त्याग करनेवाले विद्रोही बताना निश्चय ही एक गम्भीर बात है। यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती कि विधेयकोंका पास किया जाना असंवैधानिक कार्य किस प्रकार समझा जा सकता है।

अतः जगद्‌गुरुके पत्रपर तो कुछ आपत्तियाँ उठाई ही जा सकती है, लेकिन मुझे खेद है कि श्री रंगा अय्यरके जवाबमें भी कुछ सुधारकी जरूरत है। मैं इतना निश्चित नही हूँ जितना कि वह हैं कि मलाबारके हिन्दू विधेयकोंके विरुद्ध है और इस प्रकार हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके भी विरुद्ध हैं। गुरुवायूरकी जनमत-गणना इसके विपरीत संकेत करती है। मलाबारमें होकर आनेवाले प्रत्यक्षदर्शियोंने भी मुझे बताया है कि लोकमत तो किसी भी प्रकार मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध नहीं है। लेकिन यह तो ऐसा सवाल है जिसे यदि दोनों पक्ष संयुक्त निरीक्षणमें अनौपचारिक रूपसे जनमत गणना कराना स्वीकार कर लें, तो किसी भी जगह तय किया जा सकता है।

फिर, श्री रंगा अय्यरने अपने उत्साह और मेरे प्रति अपने अन्धप्रेम में पड़कर एक दुर्भाग्यपूर्ण तुलना कर डाली है। मैं किसी भी प्रकार अपनेको इस लायक नहीं समझता कि मेरी तुलना बुद्धसे की जाये। मै अपनेको एक अत्यन्त सामान्य मनुष्य मानता हूँ, एक ऐसा तुच्छ कार्यकर्ता जो मनुष्यसे हो सकनेवाली कोई भी गलती कर सकता है। मै तो एक विनम्र सत्यान्वेषी-मात्र हूँ। लेकिन यह तुलना एक अन्य कारणसे भी दुर्भाग्यपूर्ण है। सनातनी लोग कहेगे कि बुद्ध एक नास्तिक थे और वह वेदोंके प्रमाणको स्वीकार नही करते थे और उनकी दैवी उत्पत्तिमें विश्वास नहीं करते थे। ऐसी बात नहीं कि बुद्ध वस्तुतः नास्तिक थे या वेदोमें विश्वास नहीं करते थे। लेकिन वह वास्तवमें क्या थे, उसकी चर्चा यहाँ प्रासंगिक नहीं है। इसलिए यदि मुझे भी नास्तिक समझा जाता है या वेदोंकी दैवी उत्पत्तिमें अविश्वास करनेवाला माना जाता है तो मुझे इस बातका अधिकार ही नहीं रहता कि मैं एक सुधारकके नाते यह कह सकूँ कि वे अस्पृश्यताके प्रचलित स्वरूपको अस्वीकार कर दें, क्योंकि शास्त्रोंको यदि सम्पूर्ण रूपसे लिया जाये तो अस्पृश्यता सर्वथा शास्त्र-विरुद्ध है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८-२-१९३३

३४०. पत्र : मथुरादास जैनको[1]

८ फरवरी, १९३३

प्रिय मथुरादास,

आखिरकार तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। तुम्हारा अनशन रोकनेके लिए मुझे कड़ी और नपी-तुली भाषाका प्रयोग करना जरूरी हो गया था। चूँकि तुमने यह अनशन इस कारण किया था कि मैने कोई चीजकी थी या नहीं की थी, इसलिए मुझे यह अधिकार हाथमें लेना पड़ा और मैंने यह माननेकी धृष्टता भी की कि मै तुम्हें इतनी अच्छी तरह तो जानता ही हूँ कि तुम्हें तार द्वारा ऐसा अनतिक्रमणीय आदेश दे सकूँ। अब चूँकि तुम दावा करते हो कि तुम मेरे लेखों और मेरे कार्योंके जरिये मुझे जानते हो, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैंने अपने तारमें जिस

१. देखिए "पत्र : डॉ० परशुराम शर्माको", २५-१-१९३३ भी।

अधिकारपूर्ण स्वरका प्रयोग किया था वह बिल्कुल उचित ही था। तुम्हें याद रखना चाहिए कि मैंने वही किया था जो कि एक जिम्मेदार डॉक्टर अपने मरीजके साथ करता है, और मुझे खुशी है कि तुमने तुरन्त अपना अनशन तोड़कर मेरे आदेशका उत्तर दिया। तुम्हारा पत्र पानेके बाद भी मुझे पूरा निश्चय है कि तुमने मेरे तारके अनुसार कार्य करके अच्छा किया।

चूँकि तुम खुद अंग्रेजीमें नहीं लिख सकते इसलिए उर्दूमें ही लिखो, लेकिन साफ और बड़े अक्षर लिखोगे तो मैं उसे समझ लूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत मथुरादास जैन
जीरा
जिला फिरोजपुर, पंजाब

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९४२) से।

३४१. पत्र : एस० ए० के० सुब्रह्मण्यम्को[1]

[९ फरवरी, १९३३ से पूर्व][2]

मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि जो लोग दलित वर्गोंको अपने मुर्दे हिन्दुओंकी कब्रगाहोंमें दफनानेसे रोकते हैं, वे धार्मिक सत्यके विरुद्ध आचरण करते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-२-१९३३

३४२. पत्र : मीराबहनको

[९ फरवरी, १९३३][3]

चि० मीरा,

तुम्हारा साप्ताहिक पत्र यथासमय आ गया। उसके मुझे मिलनेसे ठीक दो दिन पहले तुम्हारा अपनी दशाका वर्णन करनेवाला विशेष पत्र पहुँचा था। इसपर मैंने सरकारको एक पत्र भेजकर प्रार्थना की है कि वह तुम्हारी बदली यरवडा कर

१. पेनांग बस्तीमें हिन्दुओंकी कब्रगाहोंके ऊपर सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गोंके बीच चल रहे विवादके बारेमें सुब्रह्मण्यमने गांधीजी को पत्र लिखा था। यह पत्र उसीके उत्तरमें था।

२. यह पत्र ९ फरवरी, १९३३ को प्रकाशित किया गया था।

३. साधन-सूत्रमें "९-१-१९३३" दिया हुआ है, जो निश्चय ही भूल हैं क्योंकि "विशेष पत्र" पर तारीख २८-१-१९३३ दी हुई थी। देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिव को", ६-२-१९३३।

दे और विशेषज्ञोंसे तुम्हारी जाँच करवाये। मैंने वही किया जो हर दृष्टिसे अपना फर्ज समझा। किसी कैदीको अपनी जेल-बदलीकी माँग करनेका हक नहीं होता। असाधारण परिस्थितिके सिवाय उसे जिस हालतमें रखा जाये, उसीमें रहना पड़ता है। जब मैं हावर्डके[1] जमानेके जेल-जीवनका विचार करता हूँ और आजकलके जेल-जीवनको देखता हूँ तो स्थितिमें सुधार देखकर चकित हो जाता हूँ। फिर भी जिन कैदियोंको अन्त.करणकी खातिर जेल जाना पड़ता है उनके लिए इस जीवन और उस जीवनमें कोई फर्क नही होना चाहिए। उन्हें तो हावर्डके जमानेके जीवनको भी सहर्ष स्वीकार करनेको तैयार रहना चाहिए। कारण, उन्हें शरीरके आराम और प्रियजनोंसे साक्षात्कारके सुखकी अपेक्षा अन्त.करण अधिक प्रिय है। इसलिए एक तरफ तो शरीरको अच्छी स्थितिमें रखने और दूसरी सुविधाएँ प्राप्त करनेके सब प्रामाणिक और वैध प्रयत्न होने चाहिए और दूसरी तरफ निराशाको पूरी अनासक्तिके साथ शिरोधार्य करना चाहिए। तुम्हें अपनी सारी हालत सिविल सर्जनको बताते रहना चाहिए और अपनी पहलेकी गाँठोंका इतिहास बता देना चाहिए। काश, तुमने उनके बारेमें मुझे पहले लिख दिया होता। खैर, अब मामला सरकारके हाथमें है और उससे भी ज्यादा ईश्वरके हाथमें है। "उसकी मरजीके वगैर पत्ता भी नहीं हिलता।"

'गीता' के जिस अंशका तुमने उल्लेख किया है वह संयमपूर्ण आदतोंसे सम्बन्ध रखता है। मेरे दिमागमें यह चीज नहीं थी। जो अंश मेरे ध्यानमें था वह अन्तिम अध्यायके ५२वें श्लोकमें है। मैं उसका अनुवाद यों करूँगा : "जिसे एकान्त प्रिय है, जो अल्पाहार करता है, जिसका मन, वचन और कर्मपर पूरा काबू है, जो ध्यानमें लगा रहता है और आसक्तियोंसे सदा मुक्त है।"

तुम्हें अपने भोजनकी मात्राकी शिकायत होनेका कोई कारण नहीं है। तुम अव्यावहारिक मात्राके हिसाबसे चलनेका दुस्साहस नहीं कर सकतीं। हमारे बहुत-से भाई-बहनोंके लिए इससे दुगुनी मात्रा भी सचमुच कम होगी। दूसरे लोग कितनी खुराक लेते हैं, इसका विचार किये बिना तुम्हें तो अपने ही शरीरकी हालतसे निर्णय करना चाहिए। हमें इतना ही समझ लेना चाहिए कि स्वेच्छापूर्वक अल्पाहार दुनियाकी कठिनतम वस्तुओंमें से एक है। समय-समयपर पूरा उपवास कर लेनेकी अपेक्षा यह सदाका उपवास कहीं ज्यादा मुश्किल है। स्वेच्छापूर्वक अल्पाहार करनेसे पूरा सन्तुलन, यानी शरीर और मनको पूर्ण स्वस्थ होना ही चाहिए। हम तो प्रयत्न-भर ही कर सकते हैं।

मेरा भोजन और वजन, जैसा पिछले हफ्ते लिखा था, वैसा ही है। कुहनीका भी वही हाल है जो पहले था। अब मैं उसकी परवाह नहीं करता। मेरा खयाल है कि मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि मैंने कातना पुनः आरम्भ कर दिया है। शायद पिछले सप्ताह मंगलवारको आरम्भ किया। मैं मुलाकातियोंसे बातें करते वक्त कातता हूँ। कोई न्यूनतम मात्रा निश्चित नहीं की है। अभी तो १६० तारतक भी नहीं पहुँचा हूँ। कलकी संख्या सबसे अधिक, यानी १४१ थी। अंक ४० से ऊपर है।

१. जॉन हावर्ड (१७२६-९०), जेल-सुधारक।

तुमने देवदासके बारेमें जो-कुछ बताया, वह सच है। उसका विवाह बहुत सुखपूर्ण सिद्ध होना चाहिए। लक्ष्मी[1] भी निखरती जा रही है। ऐसा लगता है कि यह एक शुद्ध प्रेमका मामला है जिसके पीछे उच्चादर्श है। देवदासको राजाजी की सेवा सदासे ही प्रिय रही है। उन्हें वह अपना अंग्रेजीका शिक्षक मानता है। उनसे अच्छा शिक्षक उसे नहीं मिल सकता था।

'हरिजन' प्रकाशित होनेवाला है। उसकी तैयारीमें इस वक्त मैं, और हम सभी बहुत व्यस्त हैं। मुझे एक बहुत अच्छा सम्पादक और उतना ही अच्छा एक व्यवस्थापक मिल गया है। प्रेस सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीका है, जिसके साथ मेरा आध्यात्मिक सम्बन्ध कहा जा सकता है। इसलिए मुझे व्यवस्थाकी तफसीलके बारेमें चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। ईश्वरका कोप यदि भयानक है तो साथ ही वह महान और दयालु भी है।

हम सबकी ओरसे प्यार। इस समय सुबहके सवा पाँच बजे हैं।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६२) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९७२८ से भी

३४३. पत्र: केशवराव जेढेको

९ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

हमारी इसी ७ तारीखकी बातचीतके सन्दर्भमें मुझे आशा है कि सत्यशोधक समाजके सदस्य हरिजन सेवक संघ द्वारा निर्धारित सीमाओंके अन्दर रहते हुए तन-मनसे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमें कूद पड़ेंगे। मैं जानता हूँ कि सत्यशोधक समाज ब्राह्मणवादके और वर्णाश्रमके विरुद्ध है। वर्तमान आन्दोलनका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है और यह ब्राह्मणवादके विरुद्ध आन्दोलन नहीं है। यह शुद्ध रूपसे अस्पृश्यताके विरुद्ध है, क्योंकि [हरिजन सेवक] संघ ऐसा नहीं मानता कि अस्पृश्यता ब्राह्मण-धर्मका अंग है। हमें यहाँ ब्राह्मणवादको और उन ब्राह्मणोंको मिला नहीं देना चाहिए जो अस्पृश्यताके कट्टर समर्थक हैं। कारण, हमारे बीच बहुतसे ब्राह्मण हैं, और उनकी संख्या बराबर बढ़ रही है, जो अस्पृश्यताके उतने ही ज्यादा विरोधी हैं जितने कि आप और मैं हो सकते हैं।

हृदयसे आपका,

केशवराव जेढे
जेढे मैन्शन, पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१९१) से।

१. राजाजी की पुत्री।

३४४. पत्र : ई० ई० डॉयलको

तुरन्त

९ फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा मुझे भेजा गया एक पत्र सरकारने रोक लिया है। उसके बारेमें सरकारके आदेशका सार कल मेजर भण्डारीने मुझे सूचित किया। पत्रमें क्या लिखा है, यह न जाननेके कारण मैं उसके बारेमें कुछ नही कह सकता। आज सुबहके 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में मैंने देखा है कि अप्पासाहब पटवर्धनने अपने राशनमें कमी कर दी है। स्वभावत: इससे मैं उद्विग्न हो गया हूँ। यदि आप मुझे बतायेंगे कि इस समाचारमें कोई तथ्य है या नही तो मैं आपका आभार मानूँगा।

स्वयंसेवक कैदियों द्वारा सफाईका काम करनेके बारेमें भारत सरकारके क्या आदेश हैं, क्या यह भी आप बतानेकी कृपा करेंगे?

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३१९

३४५. पत्र : रामजीको

९ फरवरी, १९३३

भाईश्री रामजी,

रणजीत पण्डितकी पत्नी और स्वर्गीय मोतीलालजी की पुत्री सरूपबहन इस समय बम्बईमें है। यदि आप अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके अन्तर्गत उसकी काठियावाड़की यात्राका प्रबन्ध करें तो अच्छा होगा। इसके लिए आपको चन्दा इकट्ठा करना चाहिए और कदाचित् लोगोंपर भी इसका कुछ असर हो। सरूपबहन फिलहाल तो यही काम करनेवाली है। काठियावाड़में उसकी सेवाओंका उपयोग किया जा सके, इस उद्देश्यसे उसे रोका गया है। उसका विवाह एक काठियावाड़ीसे हुआ है, इस कारण हमारा उसपर अधिकार है। यदि आप उसे बुलानेकी इच्छा रखते हैं तो आप मुझे

तार देना और कार्यक्रम भेजना। यात्राके दौरान उसके साथ कौन रहेगा? यदि सरलादेवीको ले जा सको अथवा वहाँकी ही कोई बहन हो तो बेहतर होगा। यदि वह गुजरातमें भी थोड़ी जगहोंपर जाये तो कदाचित ठीक होगा। इसके लिए मैं अहमदाबाद लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / २०) से।

३४६. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

९ फरवरी, १९३३

महात्मा गांधीने रत्नगिरि जेलके एक राजनीतिक कैदी, अप्पासाहब पटवर्धनके कथित अनशनके सिलसिलेमें सरकारको पत्र लिखा है[1], और सरकारका उत्तर मिलने पर वह अपना अगला कदम निश्चित करेंगे।

मुझे उनके अनशन, या राशनसे कम भोजन लेनेके बारेमें जो जानकारी है, वह अखबारकी रिपोर्टसे ही है। इसके सिवा और कोई जानकारी नही है। अवश्य यह खबर चिन्तोत्पादक है। अप्पासाहब और भारतीय जेलोंमें अस्पृश्यताको लेकर इससे पूर्व मैंने जो-कुछ किया था, इसका उससे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।[2] मैने सरकारसे अधिकृत सूचना माँगी है, और इस बीच मैं आशा कर रहा हूँ कि अखबारकी खबर गलत है।

यह पूछे जानेपर कि क्या पटवर्धनके अनशनका आप समर्थन करेंगे, गांधीजी ने कहा कि मेरे पास सारे तथ्य नहीं हैं इसलिए मै फिलहाल कुछ नहीं कहना चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०-२-१९३३

१. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", पृष्ठ २७३।

२. राजनीतिक कैदियोंको भंगीका काम करनेकी अनुमति दी जाये, इस सवालपर पटवर्धनकी सहानुभूतिमें ४ दिसम्बर, १९३३ को गांधीजी ने जो अनशन शुरू किया था, उसे उन्होंने स्थगित कर दिया था। देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ११९-२१ और १३७।

३४७. तार: मणिलाल जे० व्यासको

[९ फरवरी, १९३३ के पश्चात्]

मणिलाल[१]
हरिजन सेवक संघ
बन्दर रोड
कराची

तुम्हारा पत्र मिला।[२] संयुक्त चुनाव-पद्धतिमें मेरी रायमें सीटोंका संरक्षण अवश्यक बशर्ते जमशेद[३] और अन्य विशेषज्ञ सहमत हों।

गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१९४) से।

३४८. पत्र: ई० ई० डॉयलको

तुरन्त

१० फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मैंने अप्पासाहब पटवर्धनके बारेमें आपसे जो पूछताछ[४] की थी, मुझे आशा थी कि इस समय (दिनमें ११ बजे) तक आपका उसके जवाबमें मुझे उत्तर मिल जायेगा। मैं चाहूँगा कि आप मेरी जिज्ञासाका उत्तर कृपया आज दे दें और मेरी बढ़ती हुई चिन्ताको समाप्त कर दें।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३२३

१. सिन्धमें हरिजन सेवक संघके संयुक्त मन्त्री।

२. ९ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमें मणिलालने लिखा था कि चूँकि कराची नगरपालिका विधेयक विधानसभामें पेश किया जानेवाला है, इसलिए उसमें हरिजनोंके लिए सीटोंके संरक्षणकी व्यवस्था शामिल की जानी चाहिए।

३. कराची नगरपालिकाके अध्यक्ष, जमशेद एन० मेहता।

४. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", पृष्ठ २७३।

३४९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे पत्र मिले। जहाँतक जितेन्द्रलाल बनर्जी और बी० सी० चटर्जीका सवाल है, मेरा ख्याल है, तुम्हें उनके पत्रोंका सार्वजनिक रूपसे कोई उत्तर नहीं देना चाहिए, लेकिन तुम्हें रामानन्द बाबूसे चुपचाप पत्र-व्यवहार करते जाना चाहिए। मैं उन लोगोंसे और डॉ० विधानसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। कमसे-कम इस समय तो किसी सार्वजनिक विवादकी आवश्यकता नही है।

'हरिजन' के बारेमें तुम्हारे पत्रका जहाँतक सवाल है, पत्र भेज चुकनेके बाद घनश्यामदास यहाँ आये थे और उन्होंने मौखिक स्वीकृति दे दी। इससे अधिककी जरूरत नहीं थी। तथापि, तुम्हारे रिकॉर्डमें लिखित अनुमति होनी चाहिए।

इसके साथ ही तुम्हारे पास 'हरिजन' भी होगा। मैं आशा कर रहा हूँ कि वह पूर्णतया आत्मनिर्भर होगा।

सोसाइटीके नामके प्रस्तावित परिवर्तनके बारेमें जो ज्ञापन है, वह भी मेरे पास है। तुमने और हरिजी ने जो निर्णय दिया है, वह मैंने देख लिया है। उसके बारेमें अभी और कुछ कहनेकी जरूरत नही है, और मैं समझता हूँ कि यह निर्णय अवश्यम्भावी था।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०९) से।

३५०. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय होरेस,

यह पत्र तुम्हें केवल यह बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि तुम्हारे पूर्ण स्वास्थ्य-लाभके लिए हम सबकी प्रार्थनाएँ तुम्हारे साथ हैं और हम सब कामना करते हैं कि तुम फिरसे स्वस्थ और सशक्त हो।

मैं 'हरिजन' के बारेमें तुम्हारी और जैक हॉयलैंडकी आलोचनात्मक राय चाहता हूँ। जैक हॉयलैंडको मैं इस हफ्ते पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

तुम्हें और ऑलिवको हम सबकी ओरसे प्यार।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४१९) से।

३५१. पत्र : सूबेदार घटगे और अन्य लोगोंको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

पूना नगरपालिकाके मुख्याधिकारीके निजी सहायकके पदके लिए ए० जे० सोनोनेकी अर्जी, और उसके बारेमें हमारी जो बातचीत हुई थी, उसके सन्दर्भमें मुझे यह कहना है कि मैं ऐसे मामलोंमें कोई राय नहीं दे सकता, लेकिन निर्देशक सिद्धान्तके रूपमें यह कह सकता हूँ कि यदि उम्मीदवारोंकी योग्यता एक-जैसी हो तो वैसी स्थितिमें दलित-वर्गके उम्मीदवारको प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सूबेदार घटगे और अन्य लोग
पूना शहर नगरपालिका
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२००) से।

३५२. पत्र : बर्नार्डको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बर्नार्ड,

तुम्हारे बहनोईकी आकस्मिक मृत्युका समाचार जानकर मुझे दुःख हुआ। लेकिन जन्म और मृत्युका चक्कर तो हमारे साथ हमेशा ही लगा रहता है, और यदि जन्मसे हमें हर्ष होता है तो उस हर्षको आनेवाली मृत्युके ज्ञानके जरिये काट देना चाहिए, और यदि मृत्युका शोक हो तो भावी जन्मके ज्ञानसे उस दुःखका निराकरण कर देना चाहिए।

फ्लोरेंसने ऑपरेशनके बादसे अपना दिल कठोर बना लिया है। पहले वह लम्बे और अच्छे पत्र लिखा करती थी; अब वह बिल्कुल चुप्पी साधे हुए है।

इस सप्ताह तुम्हें 'हरिजन' के प्रथम अंककी दस प्रतियाँ मिलेंगी। तुम कमसे-कम दस ऐसे ग्राहक बनानेकी कोशिश करो जो अपना चन्दा अग्रिम भेज दें। इससे

कमीशनमें कुछ बचत हो जायेगी। लेकिन यदि तुम्हें ग्राहक न मिल सकें तो चिन्ता करनेकी जरूरत नही है। बस, इतना ध्यान रहे कि यदि तुम भेजनेको नहीं लिखोगे तो अगले हफ्ते प्रतियाँ तुम्हारे पास नही भेजी जायेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२०४) से।

३५३. पत्र : भगवानदासको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र मिला, जिसके लिए अनेकानेक धन्यवाद। मेरा ख्याल है कि सौजन्यताके नाते और अपने रिकार्डकी खातिर हमें रघुनाथ शास्त्री कोकजेका निबन्ध छाप देना चाहिए।

खर्चके बारेमें मैं आपको पहले ही लिख चुका हूँ। घनश्यामदासने आपको चन्दा भेजनेका मुझसे वादा किया है और मुझसे कहा है कि वह आपको भी लिखेंगे। यदि पहले ही न कर चुके हों तो आशा है कि आप उन्हें याद दिला देंगे।

शास्त्री धारूरकरके उत्तर केवल आपकी जानकारी और आपके सन्तोषके लिए भेजे गये थे। उन्हें प्रकाशित करना कतई जरूरी नहीं है।

मैं जानता हूँ कि आप महादेवको पत्र लिखकर मेरा समय बचाना चाहते हैं, लेकिन ऐसा न करें तो भी ठीक है। इससे विलम्ब हो सकता है, और फिर आपके पत्र मुझपर कोई भार नहीं डालते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२०५) से।

३५४. पत्र : गुलचेन लम्सडनको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। इस बार सर हेनरी लॉरेंसने आपको ठीक ही बताया कि 'अबाइड विद मी' मेरे प्रिय भजनोंमें से है।[1] हालाँकि मैं एक सच्चा हिन्दू हूँ, या शायद इसीलिए कि मैं एक सच्चा हिन्दू हूँ, मुझे दूसरे धर्मोके धार्मिक भजनोंको पसन्द करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती, और अनेक ईसाइयोंके साथ घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेके कारण, मैं जब नौजवान था, तभी मुझे कुछ भजन बहुत पसन्द आ गये थे। आपको शायद यह जानकर खुशी होगी कि इनमें से "लीड काइंडली लाइट" वाला

१. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ ४८६ भी।

भजन मुझे सबसे ज्यादा प्रिय है। लेकिन और भी भजन हैं जिनके बारेमें आपको जानना जरूरी नहीं है।

जहाँतक अनशनकी बात है, मैं आपको बता दूँ कि आपको बिल्कुल गलत सूचना दी गई है। मेरे अनशनका उद्देश्य राजनीतिक कतई नही था। यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक कार्य था, ठीक वैसा ही जैसा बुद्धका। फर्क इतना ही था कि मेरा अनशन कहीं ज्यादा तुच्छ पैमानेपर था।

मैं आपको एक नया साप्ताहिक पत्र भेज रहा हूँ जो इसी सप्ताह प्रकाशित हो रहा है। आपके पत्रको देखते हुए शायद आपको इसमें कुछ दिलचस्प लगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५२८) से; सौजन्य : श्रीमती ह्यू लम्सडेन

३५५. पत्र : एस्थर मेननको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बिटिया,

हाँ। तुमने इस बार मुझे कुछ हफ्तोंतक पत्र नहीं लिखा और मैं सोच रहा था कि क्या कारण है। इस बार मैं तुम्हें लम्बा पत्र नहीं लिखूँगा, क्योंकि 'हरिजन' नामक नये साप्ताहिकमें मैं इतना व्यस्त रहता हूँ कि अन्य किसी चीजका समय ही नहीं मिलता। इस पत्रके साथ ही उसकी भी प्रति पहुँचेगी; देखना।

मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि चार्ली एन्ड्रयूजकी उपस्थिति तुम्हारे और बच्चोंके लिए कितनी आनन्ददायक होगी। तुम लोगोंके बीच उनकी उपस्थितिसे मेरे मनमें भी तुम लोगोंकी तरफसे जो चिन्ताका भार था, वह उतर गया है।

तुम सबको हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (नं० ११८) से; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९८ से भी

३५६. पत्र: मार्गरेट स्पीगलको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

मैं आशा करता हूँ कि तुम्हें मेरे पत्र मिलते रहे हैं। तुमने जो प्यारे फोटो-चित्र भेजे हैं, वे मुझे मिले। फोटो-एल्बम सभीको पसन्द आया।

मुझे खुशी है कि तुम माताजी की सहमतिसे शाकाहार-व्रतका पालन कर पा रही हो। मुझे आशा है कि इससे तुम्हारे शरीरको कोई हानि नहीं होगी। इस सादे आहारपर ही आत्माका विकास हो सकता है। लेकिन मेरी अपेक्षा तुम ज्यादा मितव्ययी हो, ऐसा तुम इतने विश्वासपूर्वक मत मानो। मैं एक वक्तके भोजनपर ५ पेंस खर्च करता हूँ। लन्दनमें अक्सर मैंने ६ पेंसमें तीन वक्त भोजन किया है। यह बात तुम्हारे पक्षमें हो सकती है कि ऐसा मैंने तब किया था जब चीजें आजकी अपेक्षा सस्ती थीं। मैंने लन्दनमें यह १८९० में किया था। तुम उस समय पैदा भी नहीं हुई थीं, हुई थीं क्या?

तुम्हें इसी डाकसे 'हरिजन' मिलेगा। आशा है, तुम उसे पसन्द करोगी।

प्यार।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३५७. इसके फलितार्थ

अभी उस दिन अमेरिकाके लिए रवाना होनेसे पहले रेवरेंड स्टेनली जोन्स मुझसे मुलाकात करने आये थे।[1] उन्होंने कहा कि अमेरिकामें उनसे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके बारेमें बहुत-से सवाल पूछे जायेंगे, और इसलिए उनके कुछ सवाल थे जिनके कि जवाब वह मुझसे चाहते थे। मुझे उनके आनेसे खुशी हुई थी और मैंने उनके सवालोंका सहर्ष उत्तर दिया। मेरा विचार यहाँ हमारे बीच हुई सारी बातचीतको और उनके प्रश्नों तथा शंकाओंको उद्धृत करनेका नहीं है, लेकिन उनके मुख्य प्रश्नों और अपने उत्तरोंका सार मैं पाठकोंके सामने रख रहा हूँ। उनका पहला सवाल था:

१. ४ फरवरी, १९३३ को; इस भेंटकी महादेव देसाई द्वारा दी गई रिपोर्ट **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ १२२-६ में प्रकाशित हुई थी।

आप इस आन्दोलनको केवल अस्पृश्यता-उन्मूलनतक ही क्यों सीमित करते हैं? पूरी जाति-व्यवस्थाको ही आप क्यों नहीं समाप्त कर देते? यदि जाति और जातिके बीच अन्तर है और जाति तथा अस्पृश्यताके बीच अन्तर है तो क्या यह केवल मात्राका ही भेद नहीं है?

उत्तर: हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है, वह मेरी रायमें ईश्वर और मनुष्यके प्रति पाप है, और इसलिए वह जहरकी तरह धीरे-धीरे हिन्दू-धर्मको ही खोखला किये डाल रही है। मेरी रायमें यदि हम हिन्दू-शास्त्रोंको सम्पूर्ण रूपमें लें तो उनमें अस्पृश्यताका कहीं समर्थन नहीं किया गया है। एक स्वस्थ प्रकारकी अस्पृश्यता तो शास्त्रोंमें मिलती है, और वह सभी धर्मोंमें पाई जाती है। यह स्वच्छता-सफाईका एक नियम है। यह अस्पृश्यता तो अनन्त कालतक कायम रहेगी। लेकिन जिस प्रकारकी अस्पृश्यता आज भारतमें प्रचलित है, वह एक वीभत्स चीज है और विभिन्न प्रान्तोंमें, यहाँतक कि विभिन्न जिलोंमें भी उसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसने 'अस्पृश्यों' और 'स्पृश्यों' दोनोंको पतित किया है। इसने ४ करोड़ लोगोंके विकासको अवरुद्ध कर दिया है। उन्हें जीवनकी सामान्य सुविधाओंसे भी वंचित रखा गया है। अतः जितनी जल्दी इसको समाप्त कर दिया जाये उतना ही भारतके लिए अच्छा है और शायद सामान्य रूपसे सारी मानवताके लिए अच्छा है।

जाति-प्रथाके बारेमें ऐसा नहीं है। भारतमें बहुत-सारी जातियाँ हैं। ये जातियाँ एक सामाजिक संस्था हैं। जैसाकि स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरने ठीक ही कहा था, हर जाति एक व्यापार-संघ है। किसी समय ये एक बहुत उपयोगी उद्देश्य सिद्ध करती थीं, जैसाकि शायद कुछ हदतक वे अब भी करती हैं। इस संस्थाने अपने जो प्रतिबन्ध थे, उनमें और ज्यादा प्रतिबन्ध जोड़ लिये हैं, जो मेरी दृष्टिमें अवांछनीय हैं, और कालान्तरमें उनका खत्म हो जाना निश्चित है। उनमें पापपूर्ण जैसा कुछ नहीं है। इन प्रतिबन्धोंके कारण इनसे पीड़ित लोगोंकी आर्थिक प्रगतिमें बाधा पहुँचती है। लेकिन ये प्रतिबन्ध उनकी आत्मिक उन्नतिके मार्गमें बाधा-स्वरूप नहीं हैं। इसलिए जाति-प्रथा और अस्पृश्यताके बीचका भेद मात्राका नहीं, बल्कि किस्मका है। 'अस्पृश्य' व्यक्तिका स्थान सम्भ्रान्त समाजके दायरेसे बाहर है। उसके साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार भी नहीं किया जाता। वह एक बहिष्कृत व्यक्ति है जिसे उसके साथके अन्य मनुष्योंने, जो उसके साथ एक ही मंचपर खड़े थे, मंचसे नीचे अन्धकूपमें ढकेल दिया है। इसलिए यह भेद कुछ-कुछ स्वर्ग और नरकके बीचके भेदके समान है।

जाति-प्रथाके बारेमें एक चीज और याद रखनी चाहिए। मेरी दृष्टिमें जाति-प्रथा वर्णाश्रम-धर्मसे भिन्न चीज है। जाति-प्रथा सामाजिक आवश्यकताका जवाब है, जबकि वर्णाश्रम हिन्दूशास्त्रों पर आधारित है। जाति-प्रथाके बारेमें यह बात नहीं है। जबकि जातियाँ बहुत-सारी हैं (कुछ समाप्त होती जा रही हैं और नई जातियाँ जन्म ले रही हैं), वर्ण तो चार ही हैं, जैसेकि सदैव थे। मेरा वर्णाश्रममें दृढ़ विश्वास है। इससे पहले भी मुझे ऐसा माननेमें कोई हिचक नहीं हुई है कि वर्णाश्रम

मानव-जातिको हिन्दू-धर्मकी भेंट-स्वरूप है। जहाँतक मैं देख सका हूँ, इस धर्मको स्वीकार करना आत्मिक विकासकी एक शर्त है। लेकिन यहाँ हिन्दू-धर्ममें इन चार विख्यात विभागोंके बारेमें मैं अपने विचारोंको विस्तारसे नहीं बताऊँगा। हमारे मौजूदा उद्देश्यके ख्यालसे उनपर विचार करना प्रासंगिक नहीं है। लेकिन मैं यह स्वीकार करना चाहूँगा कि आज इस वर्णाश्रम-धर्मका शुद्ध रूपमें पालन नहीं किया जा रहा है। वर्णकी बड़ी जबर्दस्त गड़बड़ फैली हुई है, और यदि हिन्दू-धर्मको संसारमें एक जीवन्त शक्ति बनना है तो हमें उसका सच्चा उद्देश्य समझना होगा और उसको पुनरुज्जीवित करना होगा। लेकिन जबतक अस्पृश्यताका नासूर नष्ट नहीं किया जाता तबतक हम वैसा नहीं कर सकते। हीन और श्रेष्ठकी धारणाको ध्वस्त करना होगा। ये चार विभाग कोई एकके-ऊपर-एक करके ऊर्ध्वाकार नहीं बने हैं बल्कि समतलपर समानताके आधारपर बने हुए हैं, और प्रत्येक विभाग सौंपे हुए अपने-अपने कामको कर रहा है। धर्ममय जीवन विशेषाधिकारोंका नहीं बल्कि कर्त्तव्योंका जीवन होता है। कर्त्तव्यकी पूर्तिसे विशेषाधिकार आ सकते हैं, जैसाकि वे सभीके मामलेमें आते हैं। ईश्वरकी पोथीमें अपना काम अच्छी तरह पूरा करनेवाले ब्राह्मणको भी उतने ही अंक प्राप्त होते हैं जितने अंक किसी भंगीको अपना काम ठीकसे करनेपर मिलेंगे। दूसरा प्रश्न था :

> **आप हरिजनोंके लिए मन्दिर-प्रवेश क्यों चाहते हैं? क्या हिन्दू-धर्ममें मन्दिर सबसे हेय वस्तु नहीं हैं?**

उत्तर : मैं एक क्षणके लिए भी ऐसा नहीं सोचता। हिन्दुओंके लिए मन्दिर वैसे ही हैं जैसे ईसाइयोंके लिए गिरजे। मेरी रायमें हम सभी मूर्तिपूजक हैं; यह बात कि हिन्दू-धर्ममें मन्दिरोंमें हम लोग पत्थर या धातुकी प्रतिमाएँ रखते है, इससे मेरी निगाहमें कोई फर्क नहीं पड़ता। सरल भक्तिभावके साथ मन्दिरोंमें जानेवाले हजारों हिन्दुओंको वही आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है जो सरल भक्तिसे गिरजोंमें जानेवाले ईसाइयोंको होता है। आप किसी हिन्दूको मन्दिरसे वंचित कर दीजिए तो आप उसे उस चीजसे वंचित कर देंगे, जिसे वह सामान्यतः जीवनमें सबसे ज्यादा मूल्यवान मानता है। यह बात बिलकुल सच है कि अनेक हिन्दू-मन्दिरोंके बारेमें अन्धविश्वास फैल गया है तथा उनके गिर्द बुराइयाँतक उत्पन्न हो गई हैं। लेकिन यह तो मन्दिर-सुधारके पक्षमें तर्क है, हरिजन या किसी हिन्दूकी निगाहमें उन मन्दिरोंकी महत्ता कम करनेके पक्षमें नहीं। यह मेरी दृढ़ धारणा है कि मन्दिर हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग हैं। उनका तीसरा सवाल था :

> **क्या आपका अनशन शुद्ध जोर-जबरदस्ती नहीं था?**

उत्तर : यदि यह मान लिया जाये कि इस अनशनके पीछे प्रेमकी प्रेरणा थी तो जरूर यह जोर-जबरदस्ती थी, लेकिन उसी हदतक जिस हदतक कि माता-पिताका अपने बच्चोंके लिए या बच्चोंका माता-पिताके लिए, या पतिका पत्नीके लिए और पत्नीका पतिके लिए जो प्रेम है, या एक महत्त्वपूर्ण और व्यापक दृष्टान्त लें तो ईसा मसीहको अपना सर्वस्व माननेवाले लोगोंके प्रति ईसाका जो प्रेम है, उसे जोर-जबरदस्ती

कहा जा सकता हो। लाखों ईसाइयोंका यह दृढ़ और पवित्र विश्वास है कि ईसाका प्रेम उन्हें पतनसे बचाता है, और ऐसा वह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके विरुद्ध करता है। ईसाका प्रेम ऐसा है, जो हजारों अनुयायियोंकी बुद्धि और भावनाको ईसाके प्रेमके आगे झुका देता है। मैं जानता हूँ कि बचपनमें मेरे माता-पिताके प्रेमने मुझे पाप-कर्मोसे बचाया था, और पचास सालकी उम्रके बाद भी मेरे बच्चों और मित्रोंके प्रेमने मुझे नरकमें जानेसे निश्चित रूपसे रोका है। यदि उनके प्रेमका निश्चित और अभिभूत कर देनेवाला प्रभाव न होता तो मैं अवश्य नरकमें कूद पड़ता। और, यदि इस तमाम प्रेमको जोर-जबरदस्ती माना जा सकता है तो जिस प्रेमने मुझे अनशन करनेकी प्रेरणा दी, वह प्रेम और मेरा वह अनशन भी जोर-जबरदस्ती था, लेकिन किसी अन्य दूसरे अर्थमें कदापि नहीं। हिन्दू-धर्ममें उपवासकी बड़ी महत्ता है, जैसीकि शायद किसी अन्य धर्ममें नहीं है, और हालाँकि जो लोग उपवास करनेके अधिकारी नहीं हैं, उन्होंने उपवास करके इसका दुरुपयोग किया है, लेकिन कुल मिलाकर इसने हिन्दू-धर्मका सबसे ज्यादा हित किया है। मैं मानता हूँ कि बिना उपवासके प्रार्थना ही नहीं होती और बिना प्रार्थनाके सच्चा उपवास नहीं होता। मेरा अनशन एक पीड़ित आत्माकी प्रार्थना-स्वरूप था।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३५८. डॉ० अम्बेडकर और जाति

डॉ० अम्बेडकरका निम्नलिखित पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है :

पिछले शनिवारको हमारी बातचीतके अन्तमें[1] आपने अपने नये साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' के प्रथम अंकमें प्रकाशित करनेके लिए मुझसे एक सन्देश भेजनेको कहा था। मुझे लगता है कि मैं कोई सन्देश नहीं दे सकता। कारण, मुझे लगता है कि मेरे लिए यह मान बैठना अनुचित साहसकी बात होगी कि हिन्दुओंकी नजरमें मेरा इतना महत्त्व है कि वे मेरे किसी सन्देशका आदर करेंगे। मैं तो केवल मनुष्यसे मनुष्यके नाते अपनी बात कह सकता हूँ। अतः यह शायद वांछनीय होगा कि हिन्दुओंके सामाजिक संगठनकी जिस महत्त्वपूर्ण समस्याको आपने अपने हाथमें लिया है, उसके सम्बन्धमें हिन्दुओंको मेरे विचारोंकी जानकारी हो जाये। इसलिए मैं साथका वक्तव्य आपके 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ।

१. देखिए परिशिष्ट १०।

वक्तव्य

अछूत लोग जाति-प्रथाकी उपज हैं। जबतक जातियाँ हैं तबतक अछूत भी रहेंगे। जाति-प्रथाका नाश हुए बिना अछूतोंकी मुक्ति सम्भव नहीं है। हिन्दू-धर्ममें से जबतक इस घृणित और पापपूर्ण सिद्धान्तका उन्मूलन नहीं किया जाता, तबतक आनेवाले संघर्षमें हिन्दुओंको कोई चीज बचा नहीं सकती और यह धर्म जिन्दा नहीं रह सकता।

दामोदर हॉल
परेल, बम्बई १२
७ फरवरी, १९३३

बी० आर० अम्बेडकर

डॉ० अम्बेडकरके मनमें बहुत कटुता है। ऐसा अनुभव करनेके लिए उनके पास समुचित कारण हैं। उन्होंने उदार शिक्षा प्राप्त की है। औसत शिक्षित भारतीयमें जितनी प्रतिभा और बुद्धि होती है उससे अधिक प्रतिभा और बुद्धि उनमें है। भारतके बाहर आदर और स्नेहसे उनका स्वागत किया जाता है। परन्तु भारतमें हिन्दुओंके बीच पग-पगपर उन्हें यह स्मरण कराया जाता है कि वे हिन्दू-समाजके अछूतोंमें से एक हैं। इसमें उनके लिए लज्जाकी कोई बात नहीं है, क्योंकि उन्होंने हिन्दू-समाजके साथ कोई अन्याय नहीं किया है। उनका शरीर उतना ही शुद्ध और स्वच्छ है जितना किसी शुद्धसे-शुद्ध और अपनी श्रेष्ठताका अधिकसे-अधिक भान रखनेवाले ब्राह्मणका हो सकता है। और उनके भीतर क्या है, इसके बारेमें दुनिया उतना ही जानती है जितना वह हमारे बारेमें जानती है। इस सबके बावजूद वह यह विश्वास करते हैं कि "यह मान लेना उनके लिए एक अत्यन्त अनुचित साहसकी बात होगी कि वे हिन्दुओंकी नजरमें इतना महत्त्व रखते हैं, जिसके कारण हिन्दू उनके किसी सन्देशका आदर करेंगे।" यह सवर्ण हिन्दुओंके लिए लज्जाकी बात है, न कि डॉ० अम्बेडकरके लिए। लेकिन मैं उन्हें यह महसूस कराना चाहता हूँ कि आज ऐसे हजारों सवर्ण हिन्दू हैं, जो उनके सन्देशको उसी आदरसे सुनेंगे और उसको वही महत्त्व देंगे जो महत्त्व वे अन्य किसी नेताके सन्देशको देंगे; और उनकी दृष्टिमें कोई व्यक्ति न तो ऊँचा है और न नीचा है। मैं डॉ० अम्बेडकरको यह बताना चाहूँगा कि 'हरिजन' मेरा साप्ताहिक नहीं है। जहाँतक स्वामित्वके अधिकारोंका सम्बन्ध है, यह साप्ताहिक हरिजन सेवक संघका है और इसलिए मैं चाहूँगा कि वह यह महसूस करें कि 'हरिजन' पत्र जैसे अन्य किसी हिन्दूका है वैसे ही उनका भी है।

जहाँतक उनके सन्देशके मुख्य स्वरका प्रश्न है, जाति-प्रथाके बारेमें उनका जो मत है वही बहुतसे शिक्षित हिन्दुओंका भी है। लेकिन मैं उस मतके साथ सहमत नहीं हो सका हूँ। मैं वर्णाश्रमसे भिन्न जाति-प्रथाको भी 'पापपूर्ण और घृणित प्रथा' नहीं मानता। उस प्रथाकी अपनी मर्यादाएँ और दोष अवश्य हैं, लेकिन अस्पृश्यताकी तरह वह पापपूर्ण नहीं है; और यदि अस्पृश्यता जाति-प्रथाकी उपज है, तो वह उसी

अर्थमें उपज है जिस अर्थमें शरीरका बढ़ा हुआ कोई भद्दा अंग होता है या फसलके साथ उग आनेवाला घास-पात होता है। अस्पृश्योंके कारण जातिको नष्ट करना उसी तरह गलत होगा जिस तरह शरीरमें बढ़े हुए किसी भद्दे अंगके कारण शरीरको नष्ट करना या घास-पातके कारण फसलको नष्ट करना। इसलिए अस्पृश्यता, जिस अर्थमें हम उसे समझते हैं, उस अर्थमें जड़से नष्ट कर दी जानी चाहिए। अगर सम्पूर्ण प्रथाको नाशसे बचाना हो तो अस्पृश्यता हिन्दू-समाजका ऐसा अनावश्यक अंग है जिसे दूर कर देना चाहिए। इसलिए अस्पृश्यता जाति-प्रथाकी उपज नही है, परन्तु उस ऊँच-नीचके भेदकी उपज है, जो हिन्दू-धर्ममें पैठ गया है और उसे घुनकी तरह भीतरसे खाये जा रहा है। इसलिए अस्पृश्यतापर किया जानेवाला आक्रमण इस 'ऊँच-नीचके भेद' पर किया जानेवाला आक्रमण है। जिस क्षण अस्पृश्यताका नाश हो जायेगा उसी क्षण जाति-प्रथा स्वयं शुद्ध हो जायेगी; अर्थात्, मेरे स्वप्नके अनुसार वह सच्चे वर्णाश्रमका — समाजके चार विभागोंका — रूप ले लेगी, जिनमें से प्रत्येक विभाग एक-दूसरेका पूरक होगा, कोई एक-दूसरेसे श्रेष्ठ या हीन नहीं होगा तथा प्रत्येक विभाग सम्पूर्ण हिन्दू-धर्मके लिए समान रूपसे आवश्यक होगा। यहाँ इस बातकी जाँच करना जरूरी नहीं है कि यह कैसे हो सकता है और वह वर्णाश्रम क्या वस्तु है। परन्तु ऐसी मेरी श्रद्धा होनेके कारण अपने उन आदरणीय देशबन्धुओंसे — डॉ० अम्बेडकर भी उनमें हैं — मेरा सदा नम्र मतभेद रहा है, जिनकी यह राय रही है कि अस्पृश्यता वर्णाश्रम-धर्मका नाश किये बिना नहीं मिटेगी। उन्होंने वर्ण और जातिके बीच कोई भेद नहीं किया है। लेकिन यह एक अलग बात हुई। आज सारे हिन्दू सुधारक — फिर वे वर्णाश्रममें विश्वास करते हों या नही — अस्पृश्य, अछूतके साथ न्याय करनेके लिए एकमत हो गये हैं। अस्पृश्यताका विरोध करना दोनों ही का काम है। इसलिए आजकी संयुक्त लड़ाई अस्पृश्यता-निवारणतक सीमित कर दी गई है। और मैं डॉ० अम्बेडकर तथा उनके-जैसे विचार रखनेवाले अन्य लोगोंको निमन्त्रण देता हूँ कि वे उत्साहसे अस्पृश्यता-रूपी राक्षसके विरुद्ध चलनेवाले इस आन्दोलनमें कूद पड़ें। बहुत सम्भव है कि आन्दोलनके अन्तमें हम सब यह पायें कि वर्णाश्रम-व्यवस्थाके विरुद्ध लड़नेका कोई कारण नहीं है। परन्तु यदि उस समय भी वर्णाश्रम-व्यवस्था भद्दी मालूम हो, तो सारा हिन्दू-समाज उसके विरुद्ध लड़ेगा। अस्पृश्यताके विरुद्ध यह आन्दोलन दबावका नहीं, परन्तु हृदय-परिवर्तनका आन्दोलन है। मेरी आशा है कि आन्दोलनके अन्तमें हम सब अपने-आपको एक ही शिविरमें खड़ा पायेंगे। यदि परिणाम इससे भिन्न आये तो इसका विचार करनेके लिए काफी समय रहेगा कि वर्णाश्रमके विरुद्ध कैसे और कौन लड़े।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३५९. अस्पृश्यता

अस्पृश्यता अपने जिस स्वरूपमें आज प्रचलित है, वह हिन्दू-धर्मके ऊपर सबसे बड़ा कलंक है। (सनातनियोंसे क्षमा माँगते हुए कहूँगा कि) यह शास्त्रोंके विरुद्ध है। किसी आदमीको केवल जन्मके कारण अस्पृश्य समझा जाये, उसे निकटतक न आने दिया जाये या उसको देखनातक पाप समझा जाये, यह बात मानवताके बुनियादी सिद्धान्तोंके विरुद्ध है, विवेकके विरुद्ध है। इन विशेषणोंसे अस्पृश्यताका पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अमुक पुरुषों, स्त्रियों और उनके बच्चोंके लिए सवर्ण हिन्दू कहे जानेवाले लोगोंको छूना, निर्धारित दूरीसे निकट आ जाना या दिखाई भी पड़ना अपराध है। दु:खकी बात तो यह है कि करोड़ों हिन्दू अस्पृश्यताकी प्रथामें इस प्रकार विश्वास करते हैं जैसे इसका विधान हिन्दू-धर्ममें किया गया हो।

खुशीकी बात है कि हिन्दू सुधारक इस प्रथाके प्रति घृणासे भर उठे हैं। वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सम्पूर्ण रूपसे हिन्दूशास्त्रों को देखा जाये तो उनमें इसका कोई समर्थन नही किया गया है। संदर्भसे अलग करके देखनेपर कुछ अलग-थलग ऐसे पाठ जरूर हैं जिन्हें निस्सन्देह इस प्रथाके समर्थनमें पेश किया जा सकता है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानव-जातिकी किसी भी बुराईके समर्थनमें कुछ प्रमाण पेश किये जा सकते हैं। लेकिन शास्त्रोंमें ऐसे प्रमाण भरे पड़े हैं जिनके आधारपर किसी भी ऐसी चीजको हिन्दू-धर्मके विपरीत मानकर तुरन्त रद्द किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूपसे मानवता या नैतिकताके, अहिंसा या सत्यके सिद्धान्तके विरुद्ध है।

अस्पृश्यताके विरुद्ध यह आन्दोलन दिनोंदिन बल पकड़ता जा रहा है। पिछले सितम्बरमें सम्पूर्ण हिन्दू भारतका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करनेवाले प्रमुख हिन्दू नेताओंने एक जगह इकट्ठे होकर एक प्रस्ताव[1] पास किया, जिसमें उन्होंने अस्पृश्यताकी भर्त्सना की और संकल्प किया कि वे उसे कानूनके जरिये समाप्त करेंगे; सम्भव हुआ तो वर्तमान सरकारके शासनकालमें ही, और इसमें सफलता न मिली तो उस समय जब भारतकी अपनी संसद होगी।

अस्पृश्यताके जिन चिह्नोंको मिटाना है उनमें से एक है मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशपर निषेध। संघर्षके दौरान पता चला कि भारतकी ब्रिटिश अदालतोंने इस दूषित प्रथाको मान्यता प्रदान कर दी है, इस हदतक कि 'अस्पृश्यों' द्वारा किये जानेवाले अमुक काम ब्रिटिश भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत अपराधोंकी सूचीमें शामिल मान लिये गये। उदाहरणके लिए, एक 'अस्पृश्य' द्वारा किसी हिन्दू-मन्दिरमें प्रवेश करना भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत अपराधके रूपमें दण्डनीय होगा।

१. देखिए पृष्ठ १३८-९।

अतः मन्दिर-प्रवेशका आन्दोलन आगे बढ़ सके, उससे पहले यह जरूरी हो गया है कि इस असंगतिको खत्म कराया जाये। इसी उद्देश्यको लेकर श्रीयुत रंगा अय्यरने दो विधेयक केन्द्रीय विधानसभामें पेश करनेकी नोटिस दी है। प्रान्तीय सरकारोंकी राय पता करनेके बाद वाइसराय महोदयने इन विधेयकोंको पेश करनेकी अनुमति दे दी है। लेकिन चूँकि ये गैर-सरकारी विधेयक हैं, इसलिए जबतक सरकार और विधानसभा के सदस्य विधेयकोंपर विचार किये जानेके मार्गमे रोड़ा अटकानेसे बाज न आये तबतक विधेयकोंके पास होकर कानून बन सकनेकी उम्मीद कम ही है। ऐसा कहा जा सकता है कि धार्मिक मामलोंमें तटस्थता बरतनेके लिए वचनबद्ध होनेके कारण सरकार किसी भी सूरतमें कमसे-कम प्रथम विधेयकको पास करानेमें मदद देनेको बाध्य है, क्योंकि इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि ब्रिटिश भारतीय अदालतोंके फैसलोंके प्रभावको वह खत्म कर दे। इस विधेयकमें अस्पृश्यताके पीछे जो कानूनी मान्यता थी उसको वापस ले लिया गया है।

इस देशके निवासी जो विभिन्न धर्म मानते है उन धर्मोंमें अनेक ऐसी प्रथाएँ प्रचलित है जिनका उल्लघन अपराधकी श्रेणीमें नहीं रखा जायेगा, हालाँकि धार्मिक दृष्टिसे ऐसे उल्लघनको अत्यन्त गम्भीर जरूर माना जायेगा। उदाहरणके लिए हिन्दू-धर्ममें किसी हिन्दूका गोमांस खाना एक अपराध है, लेकिन वह भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत दण्डनीय नहीं है, और यह ठीक ही है। तब फिर क्या कोई कारण है कि भारतके सामान्य कानूनके अन्तर्गत अस्पृश्यताकी प्रथाके उल्लंघनके लिए किसीको दंडित किया जाये? यदि हिन्दूशास्त्रों को जाननेवाले ऐसे बहुतसे हिन्दू पंडित हैं जो शास्त्रोंमें अस्पृश्यताके समर्थनमे प्रमाण पाते हैं, तो ऐसे कितने ही विद्वान हिन्दू भी हैं जो इसके विपरीत मत रखते है। हालाँकि पंडितोंकी यह राय अखबारोंमें पहले ही प्रकाशित हो चुकी है, लेकिन पाठक उसे सरलतासे देख सकें इसलिए उसे यहीं अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सभी पंडित रूढ़िवादी हिन्दू है और अपने धर्मसे उनको उतना ही प्रेम है जितना कि उनसे भिन्न मत रखनेवाले विद्वानोंको है। २५ जनवरी, १९३३ को अखिल भारतीय सनातन-धर्म सभाका अधिवेशन पंडित मालवीयजी की अध्यक्षतामें हुआ था, जिसमें एक सौ से अधिक विद्वानोंने भाग लिया था। इसमें इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया गया कि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशका उतना ही अधिकार है जितना शेष हिन्दुओंको।

यदि ये विधेयक पास नहीं होते तो यह स्पष्ट है कि सुधारका मुख्य भाग अनिश्चित कालके लिए लटका रह जायेगा। धर्मके मामलोंमें तटस्थताका अर्थ धार्मिक अवरोध और सुधारके रास्तेमें बाधा डालना नहीं है।

सनातनियोंके प्रति पूरे सम्मानके बावजूद "धर्म संकटमें है" का नारा समझमें नहीं आता। उक्त दोनों विधेयकोंमें से किसी भी विधेयकके अन्तर्गत एक भी मन्दिर उस मन्दिरमें जानेवाले लोगोंके बहुमतकी मर्जीके बिना हरिजनोंके लिए नहीं खोला जायेगा। दूसरे विधेयकमें यह बात स्पष्ट रूपसे कह दी गई है। पहला विधेयक इस प्रश्नपर तटस्थ है। यह किसी हरिजनको मन्दिरमें बल-प्रयोग करके प्रवेश करनेमें

सहायता नहीं देता। सुधारक लोग अपने विरोधियोंको अपनी इच्छा माननेके लिए बाध्य करनेके इच्छुक नहीं हैं। वे अस्पृश्यताके सवालपर यथासम्भव शुद्धतम और न्यायसम्मत तरीकोंसे अपने विरोधियोंको, वे अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक, हृदय-परिवर्तन द्वारा अपने मतका समर्थक बनाना चाहते हैं।

कहा जाता है कि खुद हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेशका अधिकार नहीं चाहते और वे केवल अपनी आर्थिक और राजनीतिक अवस्थामें सुधार चाहते हैं। यह सुधार तो सुधारक लोग भी चाहते हैं, लेकिन वे ऐसा मानते हैं कि यदि धार्मिक समानता स्थापित हो जाये तो आर्थिक और राजनीतिक दशामें सुधार ज्यादा जल्दी आ सकेगा। सुधारक लोग इस बातको नही मानते कि हरिजन लोग मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं चाहते। लेकिन यह हो सकता है कि हरिजनोंको सवर्ण हिन्दुओं और खुद हिन्दू-धर्मसे इतनी विरक्ति हो चुकी है कि वे उनसे अब कुछ नहीं चाहते। मुमकिन है कि वे उदासीनतापूर्ण असन्तोषका अनुभव करते हुए धार्मिक परिधिके बाहर ही रहना पसन्द करें। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किया गया कोई प्रायश्चित्त मुमकिन है कि बहुत देरसे किया गया सिद्ध हो।

तथापि, जो सवर्ण हिन्दू यह समझते हैं कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मके ऊपर एक कलंक-स्वरूप है, उन्हें अस्पृश्यता-रूपी पापका प्रायश्चित्त करना है। इसलिए हरिजन लोग मन्दिरोंमें प्रवेश चाहते हों या न चाहते हों, सवर्ण हिन्दुओंको हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलने हैं, ठीक उन्हीं शर्तोंपर जिनपर कि अन्य हिन्दू प्रवेश कर सकते हैं। जिस सवर्ण हिन्दूमें कुछ भी आत्मसम्मानकी भावना है उसके लिए मन्दिर-प्रवेशपर लगा निषेध पिछले सितम्बरमें बम्बईमें किये गये संकल्पका लगातार भंग है। जिन लोगोंने संसार और ईश्वरके सामने यह वचन दिया था कि वे हरिजनोंके लिए मन्दिरोंको खुलवा देंगे, उन्हें अपने वचनको पूरा करनेके लिए आवश्यकता होनेपर अपना सब-कुछ बलिदान करना होगा। यह हो सकता है कि वे हिन्दुओंके विचारोंका प्रतिनिधित्व न करते हों। वैसी दशामें उन्हें पराजय स्वीकार करनी होगी और समुचित प्रायश्चित्त करना होगा। मन्दिर-प्रवेश एक ऐसा आध्यात्मिक-कार्य होगा जो अस्पृश्योंके लिए स्वतन्त्रताका सन्देश-स्वरूप होगा और उन्हें यह विश्वास दिलायेगा कि वे ईश्वरके समक्ष अछूत नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६०. पाठकोंसे

'हरिजन' का अंग्रेजी संस्करण मेरे अनुरोधपर, और सुधार-विषयक पत्रिकाओंके सम्बन्धमें बहुत समयसे मेरे जो विचार रहे हैं, उन विचारोंके अनुसार हरिजन सेवक संघ द्वारा और हरिजन सेवक संघके लिए प्रकाशित किया जा रहा है।

यह पत्र ऐसा मानकर प्रकाशित किया जा रहा है कि :

१. दुर्भाग्यवश हिन्दी संस्करण दक्षिण भारत और शायद बंगालमें अभी उपयोगी नहीं हो सकता,

२. विभिन्न प्रान्तोंके लोगोंके लिए अपने प्रान्तोंके अलावा अन्य प्रान्तोंमें सुधारकी सप्ताह प्रति सप्ताह प्रगतिका हाल जानना जरूरी है,

३. यह आन्दोलन मुख्यतः हिन्दुओंका आन्दोलन होते हुए भी चूँकि इसका विश्व-व्यापी महत्त्व है, और इसे यदि सम्भव हो तो सारी मानव-जातिकी सहानुभूतिकी अपेक्षा है, अतः यह आवश्यक है कि ससारको इसके फलितार्थों और इसकी प्रगतिके बारेमें बराबर अवगत रखा जाये।

यदि ये धारणाएँ सही हैं तो 'हरिजन' एक महसूस की जानेवाली कमीको पूरी करेगा और इसी कारण आत्म-निर्भर बन जायेगा। यदि नहीं बनता तो इसका प्रकाशन बन्द हो जाना चाहिए। इसे घाटेपर प्रकाशित करते रहनेका मतलब है कि इस पर जितना खर्च आये, उतना रुपया हरिजनोंके मुँहसे छीनना। इस बातकी कोशिश की जा रही है कि संघको प्राप्त होनेवाली चन्देकी हर पाईको मात्र हरिजन सेवा और अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनको बढ़ानेके काममें खर्च किया जाये।

आप देखेंगे कि अखबारको चलानेके लिए एक भी विज्ञापन नहीं लिया जा रहा है। इसे तो केवल प्राप्त होनेवाले चन्देपर ही निर्भर करना है।

आप अपने लिए या अपने भारतीय या विदेशी मित्रोंके लिए, या संस्थाओं, जैसे पुस्तकालय, के लिए या गरीब और योग्य हरिजनोंके लिए चन्दा भेज सकते हैं।

फिलहाल दस हजार प्रतियाँ छापी जा रही हैं। कुछ प्रतियाँ शिष्टाचारके लिए और कुछ प्रतियाँ आदान-प्रदानमें निःशुल्क भेजी जायेंगी। लेकिन यह सूची सीमित ही हो सकती है। आपके लिए इस सूचीको लम्बा करना सम्भव है। मैं चाहूँगा कि हर अंग्रेजी जाननेवाला हरिजन छात्र और अस्पृश्यता-निवारणके लिए काम करनेवाला हर कार्यकर्ता एक प्रमाणित अर्जी देनेपर इसकी मुफ्त प्रति पाये। ऐसा तभी मुमकिन है, जब प्रत्येक पाठक, जो अपने चन्देके अतिरिक्त भी दे सकता हो, हमारे साथ सक्रिय सहयोग करे।

प्रान्तीय संगठनोंको जितनी प्रतियाँ चाहिए, उतनेकी सूचना समय रहते देनी चाहिए और उनका मूल्य चेक या मनीआर्डर द्वारा साथ ही भेजना चाहिए।

यह तो रहा इस अपीलका आर्थिक पक्ष।

यदि आप सुधारक हैं तो मैं जानता हूँ कि आप अपने इस आर्थिक दायित्वको निभायेंगे। लेकिन दायित्वके इस अंशका निर्वाह करनेके आवश्यक परिणामोंको निभाना ज्यादा कठिन है। अपने लिए या दूसरोंके लिए चन्दा देकर आप इस महान अनुष्ठानमें प्रत्येक ऐसे वैध तरीकेसे जो आपके लिए सम्भव हो, योगदान करनेका अधिकार खरीद लेते हैं; या कहें कि आप योगदान करनेका अपना कर्त्तव्य स्वीकार करते हैं। उदाहरणार्थ, आप 'हरिजन' का सन्देश उन लोगोंके बीच फैलानेमें सक्रिय रूपसे सहायक हो सकते हैं, जो इस सुधारका विरोध कर रहे हैं। इसके लिए विशेष योग्यताकी आवश्यकता है। आपके लिए आत्म-नियन्त्रण जरूरी है। इस समय विरोधी लोग क्रोधसे भरे हुए हैं। उनमें से कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि सनातन-धर्म ऐसे जबरदस्त खतरेमें है जैसा खतरा कि उसपर पहले कभी नहीं रहा। सुधारका जितना कुछ मतलब है, उससे ज्यादाकी वे कल्पना करते हैं और इसीलिए सुधारकोंकी मंशामें तरह-तरहकी शंकाएँ करते हैं। आपको अपनी नम्रता और भद्रतासे उनकी शंकाओं और सन्देहोंको दूर करना है और उन्हें यह समझनेमें मदद करना है कि सुधारका क्या अर्थ है।

यदि आप ध्यानपूर्वक 'हरिजन' को पढ़ेंगे तो वह आपको इस नाजुक कार्यके लिए सक्षम बनायेगा। वह आपको अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके सिलसिलेमें भारतके विभिन्न भागोंमें हुए कार्योंका साप्ताहिक विवरण देगा। वह आपको यह भी बतायेगा कि दूसरे लोग क्या कर रहे हैं और विरोधी लोग क्या कह रहे हैं। वह कार्यकर्ताओंकी कमजोरियों और गलतियोंको भी स्पष्ट करके सामने रखेगा। क्या आप एक असहनीय जुएसे चार करोड़ मनुष्योंको मुक्त करने और हिन्दू-धर्मको शुद्ध बनानेके इस आन्दोलनमें सहकर्मी बनना चाहेंगे?

लेकिन मुझे तो आशा है कि कुछ विरोधी भी 'हरिजन' के ग्राहक बनेंगे। मैं अदम्य आशावादी व्यक्ति हूँ। मेरा अपने विरोधियोंसे कोई झगड़ा नहीं है। यदि 'हरिजन' सत्यका पक्षपोषक है और यदि सुधारकोंमें धीरज है तो आजके विरोधी कलके सुधारक बन जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६१. 'हरिजन' क्यों ?

कई पत्र-लेखकोंने मुझसे पूछा है कि मैंने अस्पृश्योंके लिए 'हरिजन' नाम क्यों चुना है। कुछ अंग्रेज मित्रोंने मुझे उसका अर्थ बतानेको कहा है। यह मेरा गढ़ा हुआ नाम नहीं है। कुछ साल पहले कई अछूत पत्र-लेखकोंने इस बातकी शिकायत की कि मैं 'नवजीवन' में 'अस्पृश्य' शब्दका प्रयोग करता हूँ।[1] अस्पृश्यके शाब्दिक अर्थ है अछूत। तब मैंने उनसे कोई बेहतर नाम सुझानेको कहा, और इसपर एक अस्पृश्य पत्र-लेखकने गुजरातके एक सर्वप्रथम ज्ञात सन्त-कविके प्रमाणपर 'हरिजन' शब्द अपनानेका सुझाव दिया। हालाँकि जो उद्धरण उसने भेजा था, वह इस शब्दको स्वीकार करनेके पक्षमें दिये गये उसके तर्कके पक्षमें बिल्कुल सटीक नहीं बैठता था तथापि, मुझे लगा कि यह एक अच्छा शब्द है। हरिजनके अर्थ हैं, 'वह व्यक्ति जो ईश्वरका प्रिय हो।' संसार-भरके धर्म ईश्वरको अनाथोंका मित्र, बेसहारोंका सहारा और निर्बलोंका रक्षक कहकर बताते हैं। सारी दुनियाको छोड़ दें तो भारतमें उन चार करोड़ या इनसे ज्यादा हिन्दुओंसे ज्यादा मित्रहीन, लाचार और निर्बल और कौन हो सकता है, जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है? अतः यदि किसी मानव-समूहको ईश्वरका प्रिय कहना उचित है तो वह निश्चय ही ये मित्रहीन, लाचार और तिरस्कृत लोग हैं। यही कारण है कि इस पत्र-व्यवहारके बादसे मैंने अस्पृश्योंके लिए 'हरिजन' नामका प्रयोग किया है। और जब ईश्वरने मुझे जेल भोगते हुए भी उनकी सेवाका काम सौंपनेका निश्चय किया तब मैं उनके लिए अन्य किसी शब्दका प्रयोग नहीं कर सकता था। मैं 'अस्पृश्य' शब्दसे और उसके जो फलितार्थ हैं उनसे घृणा करता हूँ। ऐसा नहीं है कि नामके परिवर्तनसे उनके दर्जेमें कोई अन्तर पड़ता है। लेकिन इससे कमसे-कम एक ऐसे शब्दके प्रयोगसे तो हम बच ही जाते हैं जो स्वयंमें तिरस्कारसूचक है। जब सवर्ण हिन्दू अपने आन्तरिक विश्वासवश और इसीलिए स्वेच्छासे मौजूदा अस्पृश्यताको दूर कर देंगे तब हम सभी लोग हरिजन कहलायेंगे, क्योंकि मेरी नम्र रायमें तब सवर्ण हिन्दू ईश्वरके प्रिय बन जायेंगे और तब उन्हें ईश्वरका प्रिय या हरिजन कहना उपयुक्त ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

१. देखिए खण्ड ४७, पृष्ठ २६९।

३६२. माँगना या देना?

बहुत-से मित्रोंने मुझे पत्र लिखकर तत्त्वतः निम्नलिखित सवाल पूछा है:

> ऐसा क्यों है कि आप, जो हमेशासे सरकार और विधानसभाओंके साथ असहयोग करनेकी बात करते रहे हैं, अब वर्तमान विधानसभा द्वारा अस्पृश्यता विधेयकोंको पास करानेके लिए प्रचार कर रहे हैं और इस प्रकार सरकार और विधानसभा, दोनोंके साथ सहयोग कर रहे हैं?

अखबारोंके प्रतिनिधि भी मुझसे यही सवाल करते रहे हैं। मैंने दोनोंको यह कहकर टाल दिया है कि मैं एक कैदीकी हैसियतसे इस सवालका जवाब उतनी पूरी तरहसे नहीं दे सकूँगा जितनी पूरी तरह देना चाहूँगा। लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ कि संसारमें ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है, जिसे सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें एक ही प्रकारसे लागू किया जा सके। विभिन्न परिस्थितियोंमें एक ही सिद्धान्त भिन्न-भिन्न ढंगसे लागू होता है। उदाहरणार्थ, किसी भूखसे पीड़ित व्यक्तिके प्रति मेरा जो प्रेम है वह मुझे उस व्यक्तिका पेट भरनेके लिए प्रेरित करेगा। बहुत अधिक भोजनके कारण अजीर्णके शिकार हुए अपने बेटेके प्रति मेरा प्रेम उसे भूखा रखनेको प्रेरित करेगा, भले ही वह खानेके लिए रोये-पीटे। आज मैं अपने सनातनी मित्रोंके साथ असहयोग कर रहा हूँ, लेकिन मैं अपने प्रश्नकर्त्ताओंसे चाहूँगा कि वे मेरे असहयोगका विश्लेषण करें, और ऐसा करनेपर वे पायेंगे कि उनसे असहयोग करते हुए भी मैं उनसे अपने आन्दोलनमें सहयोग माँग रहा हूँ। बिल्कुल इसी प्रकार मैं जितना चाहूँ सरकारसे या किसी संस्थासे असहयोग करूँ, लेकिन यदि मैं यह न जानूँ कि मैं उनका सहयोग प्राप्त करनेके लिए ही उनसे असहयोग कर रहा हूँ, तो मैं बहुत मूर्ख व्यक्ति होऊँगा। अतः इस समय मैं अपने उद्देश्यको आगे बढ़ानेके लिए सरकार और विधानसभा का सहयोग माँग रहा हूँ, क्योंकि मैं इस उद्देश्यको बहुत पवित्र और कुल मिलाकर बहुत अच्छा मानता हूँ। पहले बताये कारणवश मैं इससे ज्यादा कुछ नही कह सकता, और पाठकको उसका सम्मान करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६३. एक अतिदेय नागरिक सुधार

श्रीयुत हीरालाल ए० शाह लिखते हैं:[1]

श्री शाह द्वारा दिया गया सुझाव नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों द्वारा विचार किये जानेके उतना ही योग्य है जितना व्यक्तियों द्वारा, लेकिन विशेष रूपसे नगरपालिकाओं द्वारा। सामूहिक स्वच्छता तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब एक सामूहिक अन्तःकरण हो और सार्वजनिक स्थानोंपर सफाईके लिए सामूहिक आग्रह हो। हमारी सड़कों और पाखानोंकी, भले ही वे सार्वजनिक हों या निजी, गन्दगीके लिए अस्पृश्यता काफी हद तक जिम्मेदार है। आरम्भमें अस्पृश्यता स्वच्छताका एक नियम था, और भारतके बाहर दुनियामें अब भी है। कहनेका मतलब यह है कि कोई भी व्यक्ति जिसे भंगीका काम करना होता है, चाहे वह वेतनभोगी भंगी हो या मुफ्त काम करनेवाली माँ, जबतक गंदा काम करनेके बाद वह स्वच्छ नहीं हो जाता तबतक वह अस्वच्छ ही है। यदि भंगीको हमेशाके लिए अशुद्ध माननेके बजाय उसे एक भाईकी तरह माना जाये और उसे समाजके लिए कोई अशुद्ध सेवा करनेके बाद शुद्ध होनेका अवसर दिया जाये, बल्कि उसे शुद्ध होनेके लिए मजबूर किया जाये, तो फिर वह अपने समाजमें समाजके किसी भी अन्य सदस्यकी भाँति ही स्वीकार्य माना जाना चाहिए। अतः इस मामलेमें नगरपालिकाएँ नेतृत्व प्रदान कर सकती हैं, लेकिन वे तबतक ऐसा नहीं करेंगी जबतक नागरिक लोग उसपर आग्रह नहीं करते। यह सच ही कहा गया है कि नागरिकोंकी आत्माको छोड़कर, नगरपालिकाओंकी अपनी कोई आत्मा नहीं होती। इसलिए श्रीयुत शाहके सुझावकी सभी सम्बन्धित पक्षोंसे सिफारिश करनेके साथ ही मैं श्री शाहसे अनुरोध करूँगा कि वह एक ही चीजपर अपनी शक्ति केन्द्रित करें और जनता तथा नगरपालिकाके सामने इस अत्यन्त आवश्यक सुधारके लिए आन्दोलन करें। इसलिए उन्हें चाहिए कि वह अपनी जो शक्ति लगा सकें उस शक्तिका बम्बईकी जनताको शिक्षित करनेमें प्रयोग करें जहाँकि वह रहते हैं, ठोस उपाय निकालें और विभिन्न हल्कोंमें उस सुझावको जनता द्वारा स्वीकार करायें, और वह शीघ्र ही पायेंगे कि उनके प्रयत्नोंको पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

१. यहाँ नहीं दिया गया है। हीरालाल शाहने लिखा था कि भंगियोंको कामके बाद स्वच्छ बननेके लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

३६४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय महोदय,

इसी ८ तारीखको मेजर भंडारीने मुझे सूचित किया कि सरकारने अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा मुझे भेजा गया एक पत्र रोकनेका फैसला किया है। अगली सुबह मैंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक अनुच्छेद इस आशयका देखा कि अप्पासाहबने अपने भोजनमें कटौती कर दी है। इसपर मैंने उसी दिन कर्नल डॉयलको पत्र[1] लिखकर इस खबरके बारेमें पूछताछ की और जेलोंमें स्वयंसेवी कैदियों द्वारा सफाईका काम करनेके बारेमें भारत सरकारके आदेशोंकी सूचना माँगी। कोई उत्तर न मिलनेपर मैंने कल याद दिलाते हुए उन्हें एक पत्र और लिखा।[2] उसके बाद मुझे भारत सरकारके आदेशोंकी एक प्रति तो मिल गई है, लेकिन अप्पासाहबके बारेमें अपनी पूछताछका कोई जवाब नहीं मिला है। मेरी दृष्टिमें यह मामला मेरे सम्मानके लिए अत्यन्त गम्भीर महत्त्व रखता है। अधिकारियों और मेरे बीच लम्बे पत्र-व्यवहारके परिणाम-स्वरूप पत्र-व्यवहारके मुद्देके बारेमें एक समझौता हुआ था, और कर्नल डॉयलके कहने पर मैंने पिछले ६ दिसम्बरको अप्पासाहब पटवर्धनको निम्नलिखित तार भेजा था।[3]

यह इस बातका पूर्वाभास देता है कि यदि सरकारने प्रतिकूल निर्णय किया तो वह फिरसे अनशन करेंगे।

सरकार देखेगी कि इस मामलेमें अप्पासाहबको प्रभावित करनेवाला कोई भी निर्णय मुझे भी समान रूपसे प्रभावित करता है। इस मामलेमें १ दिसम्बर और आजतक जो भी पत्राचार हुआ है, उसको देखते हुए मेरे अनुसार तो सरकारने मेरे कार्यके औचित्यको स्वीकार कर लिया है। मैं आशा करता हूँ कि सरकारका इरादा अपने रुखको बदलने और मेरा अप्पासाहबके साथ सम्पर्क काट देनेका नहीं है। इसलिए फिलहाल मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या अप्पासाहब इस समय आंशिक भूख हड़तालपर हैं या इधर हाल ही में थे, और क्या उनको और उनके साथियोंको अब सफाईका काम करनेकी अनुमति दे दी गई है अथवा नहीं।

अप्पासाहबकी आंशिक भूख हड़तालकी खबरके कारण मेरे मनमें तनाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, और इसीलिए मैं मेजर भंडारीसे अनुरोध कर रहा हूँ कि यदि उन्हें अधिकार हो तो वह इस पत्रका सार तार या टेलिफोन द्वारा सरकारको सूचित

१. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", ९-२-१९३३।
२. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", १०-२-१९३३।
३. यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ १३७।

कर दें, और यदि न हो तो कर्नल डॉयलसे वैसा करनेका अनुरोध कर दें। मुझे आशा है कि सरकार शीघ्र उत्तर देकर मेरा तनाव दूर करनेकी कृपा करेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३२९

३६५. पत्र : वी० एम० नावलेको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका इसी ८ तारीखका पत्र मिला। यदि आप मेरी सलाह मानें तो मैं कहूँगा, "धीरे-धीरे कीजिए, धीरज रखिए, भालकर[1] जो-कुछ कहते हैं उसका बुरा न मानिए", बल्कि आपके हिस्सेमें जो सेवा करनेको आये उसे ईमानदारीसे अच्छी प्रकार कीजिए।

हृदयसे आपका,

डॉ० वी० एम० नावले
४४४, रास्ता पेठ
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१२) से।

१. एल० बी० भोपटकर, एक रूढ़िवादी मराठी पत्र **भाला** के सम्पादक।

३६६. पत्र : जगन्नाथ पंतको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मै आपके पत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ और उसकी कद्र करता हूँ। 'हरिजन'के स्तम्भोंमें मैंने जो-कुछ कहा है, उससे आगे जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है क्योंकि वह विश्वास-भंग होगा। इसलिए 'हरिजन' में प्रकाशित "माँगना या देना?" शीर्षक लेख[१] आपकी दिलजमई नही करता तो मैं आपसे यही कह सकता हूँ कि आप मेरे प्रति धीरजसे काम लें और हरिजनोंकी सेवा पूरे हृदयसे करते रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जगन्नाथ पंत
रामनगर
नैनीताल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१३) से।

३६७. पत्र : बबन गोखलेको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय गाखले[२],

तुम्हारा टिप्पण[३] पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने अभी तक पैम्फलेट देखा नहीं है, लेकिन यथासमय वह मुझे मिल जायेगा।

यदि श्री और श्रीमती वाडियाके लिए सुविधाजनक हो तो मुझे उनसे इसी मंगलवार १४ तारीखको दिनमें २ बजे मिलकर खुशी होगी। यदि न हो, तो फिर इसी शुक्रवार १७ तारीखको २ बजे।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत बी० गोखले
गिरगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१४) से।

१. दिनांक ११ फरवरी, १९३३ का।
२. चम्पारनमें गांधीजी के साथी कार्यकर्ता; देखिए खण्ड १४।
३. श्रीमती सोफिया वाडियाके एक व्याख्यानकी रिपोर्ट।

३६८. पत्र : पी० नारायणन नायरको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय नारायणन,

महादेव देसाईको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने देखा है। पत्र-लेखकने 'मातृभूमि' के जिस लेखका जिक्र किया है उसकी कतरनें भेजनेको मैंने उससे कहा है। उनके मिलते ही मै निश्चित ही उन्हें तुम्हें भेजूँगा। इस बीच मुझे तुम्हारे इस आश्वासनसे खुशी हुई कि 'मातृभूमि' किसी जातिको गाली देनेके स्तरपर कभी नहीं उतरता।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१५) से।

३६९. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय रामानन्द बाबू,

यरवडा-समझौतेके बारेमें मैंने पिछले माह २० तारीखको जो पत्र लिखा था उसके ऊपर आपने जो इतनी तकलीफ उठाई, उसका धन्यवाद। समझौतेके बारेमें 'माडर्न रिव्यू' में[1] जो-कुछ छपा था, वह सब मैं पढ़ चुका था और अच्छा होता कि मैं आपको पहले ही बता देता कि मै वह सब पढ़ चुका हूँ, ताकि उसकी प्रतियाँ भेजनेकी जहमतसे आप बच जाते; मैं आपसे यह भी पूछना चाहता था कि बंगालमें जो आन्दोलन खड़ा किया जा रहा है उसको दृष्टिमें रखते हुए क्या आपको कोई और विचार प्रकट करने हैं। मैं उतना खराब नहीं हूँ जितना मैं जेलके बाहर हुआ करता था। उस समय मेरे पास और पत्रिकाएँ तो छोड़िए, 'मॉडर्न रिव्यू' तक को पढ़नेके लिए क्षण-भरका भी अवकाश नहीं होता था। जेलके अन्दर मुझे 'मॉडर्न रिव्यू' पढ़नेका समय अभीतक मिलता रहा था, जिसे आप इतनी कृपापूर्वक और नियमपूर्वक हर महीने भेजते रहे हैं।

१. अक्टूबर, १९३२ का अंक।

अपने पत्रमें[1] आपने जो दलील दी है वह मैं अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन उससे मैं सहमत नहीं हूँ। यरवडा-समझौतेके बारेमें जब मैंने आपकी टिप्पणी पढ़ी तो मुझे आश्चर्य भी हुआ। कारण, मैंने सुना था कि डॉ० मुंजेके इस वक्तव्यमें आपकी सहमति थी कि जहाँतक हिन्दू महासभाका सम्बन्ध है, वह इस बातके लिए बिल्कुल तैयार हैं कि शत-प्रतिशत सीटें दलित वर्गोको दे दी जायें। यह वक्तव्य पढ़कर मुझे खुशी हुई थी, और उससे भी ज्यादा खुशी तब हुई थी जब मैंने सुना कि आपने दिलसे इस वक्तव्यका समर्थन किया था।

मेरी खुदकी स्थिति बुनियादी तौरपर आपसे भिन्न है। यदि कोई संरक्षण होना ही था, और मैंने देखा कि संरक्षण तो होना ही था, तब हम उसे देनेमें कंजूसीका व्यवहार नहीं कर सकते थे। हरिजन प्रतिनिधि जितनी सीटें चाहते थे उतनी सीटें देनेके लिए हम बाध्य थे, और उनकी जनसंख्याके हिसाबसे जितनी सीटें होती थीं उतनी तो निश्चित ही देनी थीं। मैंने जो-कुछ किया, वह शुद्ध विश्वासके आधार पर किया। यदि हमें उसके कारण हानि उठानी पड़े तो दोष और किसीका नहीं, हमारा ही है। अगर हम उनके प्रति केवल कठोर न्यायका ही व्यवहार करेंगे तो हम कभी कष्ट-सहन नहीं कर सकते। हम उदार हो ही नहीं सकते, क्योंकि आनेवाले बहुत वर्षोतक इस बातका खतरा नही है कि हम उन्हें कुछ बहुत ज्यादा दे डालें। मेरी इच्छा है कि मैं हर सवर्ण हिन्दूको बता सकूँ कि उन्होंने हरिजनोंके साथ कितना बड़ा और जबरदस्त अन्याय किया है। न ही मुझे इसमें एतराज है कि जो लोग अभीतक अपनेको सवर्ण हिन्दू दर्ज करवाते रहे है, वे पंजीयन अधिकारियोंके पास दौड-भाग करके अपने-आपको हरिजन वर्गमें दर्ज कराने लगें। मैं इसका बुरा नहीं मानता, क्योंकि प्रतिदिन हमें सवर्ण हिन्दुओं और अछूतोंके बीचका फर्क मिटानेकी दिशामें आगे बढ़ते जाना है, यहाँतक कि सवर्ण हिन्दूके लिए हरिजन वर्गमें दर्ज किया जाना सौभाग्यकी बात होगी।

अगर यह बात सच है कि सच्चे अर्थमें अस्पृश्य कहला सकें, ऐसे लोग बंगालमें बहुत कम हैं—और मेरा खयाल है कि यह बात सच है—लेकिन उनकी गणना अस्पृश्य वर्गोमें इसलिए की जाती है, क्योंकि वे अस्पृश्यतासे भिन्न अन्य प्रकारकी सामाजिक निर्योग्यताओंके शिकार हैं, तब तो मैं कहूँगा कि अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा बंगाल कहीं बेहतर स्थितिमें है। जहाँतक मेरा सवाल है, मैं कहता हूँ कि ऐसे सब लोगोंको जिनकी आर्थिक स्थिति खराब है और जो किसी भी सामाजिक निर्योग्यतासे पीड़ित हैं, सभी जगह अपने-आपको हरिजन वर्गमें दर्ज करवाने दिया जाये, बशर्ते

१. इसमें रामानन्द चटर्जीने लिखा था: "मेरी निजी राय पूना-समझौतेके विरुद्ध है, यानीकि जिस हदतक उसका सम्बन्ध बंगालसे है। दलितोंके लिए सीटोंके संरक्षणसे उनका भला नहीं होगा जो सचमुच 'दलित' हैं 'अस्पृश्य' हैं।... इस समय दलित वर्गोके जो लोग विधान परिषदके सदस्य हैं वे सामान्यतः राष्ट्रवादी पार्टियोंका विरोध करते हैं और नौकरशाही-समर्थक मुसलमानोंका साथ देते हैं। ८० सीटोंमें से ३० सीटें दलित जातियोंको देनेके मतलब होंगे कि बंगालकी भावी विधान परिषदमें राष्ट्रवादी पार्टी लगभग समाप्त हो जायेगी...।" (एस० एन० २०१५५)।

कि कोई व्यक्ति स्वेच्छासे अपनेको हरिजन दर्ज करवा सकता हो। एक यही तथ्य अस्पृश्यताको मजबूत बनानेके बजाय, जिसका कि आपको डर है, अस्पृश्यताको समाप्त करनेमें एक कारगर तत्त्व होगा।

और अन्तिम बात यह कि मुझे आपकी तरह यह भय नहीं है कि चुनावोंमें केवल वे ही हरिजन चुने जायेंगे जिन्हें शिक्षित और प्रबुद्ध कहा जा सकता है। बेशक, यदि सुधारक जागरूक नहीं रहा या ईमानदार नहीं होगा तो यह चीज और ऐसी ही अन्य बहुत-सी चीजें होंगी। किन्तु यदि वह सच्चा है और सक्रिय है, तो अस्पृश्यता एक मृतप्राय वस्तु रह जायेगी और आज जो लोग सामाजिक और बौद्धिक दृष्टिसे समाजमें निम्नतर स्तरपर है उन्हें उनका उचित हक प्राप्त होगा। और यदि आपके तर्कों और भयोंकी तहमें यह सन्देह हो कि सुधारक लोग वैसे नहीं है जैसाकि उन्हें होना चाहिए तो एक क्षणके लिए, केवल एक क्षणके लिए, मेरे मनमें भी ऐसा सन्देह करनेका लोभ होगा। लेकिन मैं जन्मजात आशावादी हूँ। मुझे अपनी ईमानदारी और अपने कार्यमें विश्वास है। अतः मैं अपने साथियोंके ऊपर सन्देह करनेसे इनकार करता हूँ। यही कारण है कि मैंने आपके तर्कोंके जवाबमें ये तर्क दिये है। मैं आपसे कहूँगा कि आप भी मेरी तरह सुधार और सुधारकोंमें विश्वास लाइए और मेरी ही तरह ऐसा मानिए कि यदि हम सच्चे हैं तो हरिजन भी सच्चे होंगे, और सब-कुछ ठीक हो जायेगा। यदि आपको मेरे पत्रमें ऐसी कोई चीज न मिले जो आपके दिलको छुए तो मैं चाहूँगा कि आप मुझसे बहस कीजिए और मेरे तर्कोंको काटकर खण्ड-खण्ड कर दीजिए। आपके लिए मेरे मनमें जो आदर है, वह आप जानते हैं। अगर यह आदर-भाव कुछ और बढ़ सकता हो तो आपकी स्पष्ट और निर्भीक अलोचनासे वह और बढ़ेगा। मैं इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि हम यरवडा-समझौते और उसके फलितार्थोंके बारेमें मनमें पूर्णरूपसे आवश्स्त और निश्चित हो सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रामानन्द चटर्जी
द्वारा 'मॉडर्न रिव्यू'
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१७) से।

३७०. पत्र : पी० सुब्बारायनको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सुब्बारायन,

मैं आपको आपके पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हालाँकि आपका भी विधेयक[1] दिल्ली चला गया है तथापि, आपने उसमें तथा दूसरा जो ज्यादा व्यापक विधेयक है, इन दोनोंमें दिलचस्पी लेना बन्द नहीं किया है और आप तथा श्रीमती सुब्बारायन दोनों मिलकर सामान्य रूपसे तथा विशेष रूपसे विधेयकोंके सन्दर्भमें अपनी ओरसे उनके उद्देश्योंको आगे बढ़ानेके लिए जो-कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं।

आप दोनोंको मेरा अभिवादन।

हृदयसे आपका,

डॉ० पी० सुब्बारायन
फेयरलॉन्स
एगमोर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१८)से।

३७१. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय वरदाचारी,

मुझे आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। मैं कलकी कार्यवाही के[2] विवरणकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस सप्ताहके 'हरिजन' में जिस प्रकारकी राय प्रकाशित हुई है, उसी प्रकारका कोई संक्षिप्त वक्तव्य यदि आप किसीसे प्राप्त करके मुझे अगले सप्ताहके 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ भेज सकें तो जरूर भेजिए। किसी

१. मन्दिर-प्रवेशके बारेमें; देखिए पृष्ठ १५ की पाद-टिप्पणी ३।

२. वैष्णव सम्प्रदायके मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशके सवालपर विचार करनेके लिए होनेवाली पंडितों और महत्त्वपूर्ण नागरिकोंकी सभाकी कार्यवाही।

सुविदित पंडित या पंडितों द्वारा इस रायके समर्थनमें कोई वक्तव्य ही हो तो मैं उसे पाना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० एस० वरदाचारी
अखिल भारतीय चरखा संघ खादी वस्त्रालय
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२०) से।

३७२. पत्र : पी० आर० ठाकुरको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी ६ तारीखके पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने ऐसा कभी नहीं माना है कि अस्पृश्यताकी समस्या-मात्र मन्दिर-प्रवेशसे हल की जा सकती है। लेकिन मैं यह जरूर मानता हूँ कि अन्य लोगोंके साथ बराबरीके आधारपर मन्दिर-प्रवेशका अधिकार हरिजनोंको मिले बगैर यह कभी हल नहीं हो सकती, और मैं यह भी मानता हूँ कि आर्थिक और शैक्षणिक प्रगतिकी रफ्तारमें मन्दिर-प्रवेशसे तेजी लाई जा सकती है, क्योंकि मन्दिर-प्रवेश तो अस्पृश्यताके अन्तका द्योतक है। कोई अस्पृश्य आदमी कितना ही पढ़ा-लिखा हो, कितना ही धनवान हो, लेकिन फिर भी रहेगा अस्पृश्य ही; लेकिन मन्दिर-प्रवेशके जरिये धार्मिक समानताका दर्जा पाते ही उसकी अस्पृश्यता उड़नछू हो जायेगी। इसके साथ ही मैं भी आपकी तरह ऐसा मानता हूँ कि मन्दिर-प्रवेशके आगे शैक्षणिक या आर्थिक प्रगतिकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, और न इन चीजोंको मन्दिर-प्रवेशके सवालके आगे गौण मानना चाहिए। वस्तुतः शैक्षणिक और आर्थिक प्रगतिके कार्यक्रमको जितनी तेजीसे लागू किया जा सकता है, किया जा रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० ठाकुर
उपाध्यक्ष
अखिल-बंगाल दलित वर्ग संघ
१२७/१ रसा रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२१) से।

३७३. पत्र : प्रभावतीको

११ फरवरी, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमारा खत कल ही मिला। बहुत अच्छा था। जो गीता पाठ करते हैं वह चिंता मात्र छोड़ देते हैं। मैं तो जानता हूं कि तुमको जब फिट आता है तो कारण कुछ न कुछ चिंता ही रहती है। जयप्रकाशको यदि हर चौदा दिन खत लिखनेकी आवश्यकता रहे तो उनको ही लिखा करो और जयप्रकाश मुझे खबर देता रहे। यदि महिनेमें एक खत उसके लिये काफी हो तो मुझको प्रतिमास एक खत मिला करेगा तो काफी होगा। बा तो फिर जेलमें गई है। साबरमती है। मीरांबहनको भी वहीं ले गये हैं, मीरांबहनका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ रहा था इसलिये साबरमती ले गये हैं। बा पर तुमारा खत है वह साबरमती भेज दूगा। तुमारा अभ्यास अच्छा है, इंग्रेजी सब समज लेती है? तुमको शिक्षा देनेका काम मिला था सो बहूत अच्छा हुआ।

कांता से कहो मैं उसको जान बूझकर नहिं लिखता हूं ताकि दूसरे खत जो उसको मिलना ही चाहिये उसके मिलनेमें बाधा न हो। मुझे उसकी खबर तो सुमंगल के मार्फत मिलते ही रहते है।

मृत्युञ्जय और विद्यावती मुझे कभी लिखते ही नहिं है। पिताजीके स्वास्थ्यके हाल मिला करते है। आश्रमकी बहनोंके बारेमें कोई बड़ी शिकायत तो थी ही नहिं। कुछ भी हो उसमे न तो तुमारा कहि नाम था न कांताका। हां काम तो मेरा बडता जाता है। उसमें छगनभाई आने से कुछ मदद तो मिलती हि है। बाकी जो काम मेरेसे ही हो सकता है उसमें तो कौन हिस्सा ले सके? वह तो या रह जाता है या किस ढंगमें मुझको ही कर लेना पड़ता है। छूटनेके बाद अवश्य मुझे मिलो।

मेरी शरीर प्रकृति बिलकुल अच्छी है। दूध और फल खाता हूं। दूध सवा रतल लेता हूं और नारंगी खजूर और पपीता। कोई वार थोड़ी पीसी हुई भुंजी बादाम। वजन १०३ के आसपास रहता है। कोनीका दर्द तो कायम हो गया है। उसमें कोई चिंताका कारण नहिं है। मैं नित्य कात लेता हूं लेकिन कम। सो के आसपास होता है। सरदार, महादेव, छगनलाल सब अच्छे हैं। तुमको अखबार कौनसे मिल सकते हैं? मैं "हरिजन" निकाल रहा हूं वह मिल सकता है? मीरांबहनका खत हर हफता आता है। वह किसीको मिलती नहिं है इसलिये हर हफता लिख सकती है।

बापुके दोनोंको आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अगर तुम्हें गुजरातीमें पत्र लिखा जाये तो दिया जायगा कि हिन्दीमें ही लिखना चाहिये ?

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४३३) से।

३७४. सन्देश : विधानसभाके सदस्योंको

११ फरवरी, १९३३

मैं आशा कर रहा हूँ कि सदस्यगण मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंके गुणावगुणोंके बारेमें चाहे जो भी राय रखते हों, लेकिन वे सभी मिलकर इस बातका प्रयास करेंगे कि इन विधेयकोंपर सभाके इसी सत्रमें विचार किया जा सके।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-२-१९३३

३७५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको[1]

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

रविवारको आपको 'हरिजन' की ५०० प्रतियोंका पार्सल मिला होगा। मैं नहीं जानता कि आप इन्हें किस प्रकार वितरित करेंगे, लेकिन मेरा ख्याल है कि मैं यहाँसे जो सुझा सकता हूँ उनसे ज्यादा बेहतर उपाय आप सोच सकते हैं। मुफस्सिलमें जो मित्र हैं उनमें से जितने ज्यादा हो सकें उतने ज्यादा लोगोंको आप कृपया ग्राहक बनायें और अखबार बेचनेवालोंसे आप सड़कोंपर इनकी बिक्रीका प्रबन्ध कीजिए। पता नहीं आप खादी प्रतिष्ठानको 'हरिजन' का एजेन्ट बनाना चाहेंगे या नहीं। लेकिन यदि आपको लगे कि प्रतिष्ठान यह काम हाथमें नहीं ले सकता तो कृपया ज्यादा-से-ज्यादा ग्राहक बनानेकी कोशिश कीजिए और रुपया इकट्ठा करके कुल रकमका चेक भेज दीजिए और इस प्रकार जो पैसा बचे, उसे 'हरिजन' के लिए बचाइए। लेकिन यदि आप प्रतिष्ठानको एजेंसी दिलाना चाहें तो कृपया सीधे मैनेजरको सूचना दे दीजिए कि आप कितनी प्रतियाँ चाहेंगे।

हेमप्रभादेवीको प्रणाम-सहित,

हृदयसे आपका,
महादेव

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६२५ बी) से।

१. यह पत्र महादेव देसाईके हाथका लिखा हुआ है और इसपर उनके ही हस्ताक्षर हैं। गांधीजी ने प्रति-हस्ताक्षर किये थे।

३७६. पत्र : एफ० मेरी बारको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे तुम्हारे पत्र मिले, लेकिन यह खबर भी मिली है कि तुम दमेसे पीड़ित हो। क्या तुम अपनी क्षमतासे ज्यादा नहीं कर रही हो? तुम शरीरसे उसकी क्षमतासे ज्यादा काम लेनेमें सफल नहीं होगी। विनीत भावसे अपनी सीमाओंको स्वीकार कर लो। आश्रममें किसी व्यक्तिसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह अपनी शक्तिसे ज्यादा काम करे। नंगे पाँव मत चलो और सरको धूपमें खुला न रखो। कुएँसे पानी न खींचो। इस बातपर आग्रह रखो कि तुम्हें फल मिलें। जरूरत होनेपर डॉक्टरको बुलाया जाये। तुम मेरी बेटी बनी हो। अब बेटी सरीखी हो, यह सिद्ध करनेका और मेरे निर्देशोका पालन करके जल्दीसे स्वस्थ हो जानेका तुम्हें अवसर है। आशा है, तुम्हें अगर ठंडे पानीसे नहानेकी आदत नहीं है तो तुम गरम पानीसे स्नान करती होगी।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९१) से। सी० डब्ल्यू० ३३१६ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

३७७. पत्र : जी० एम० थावड़ेको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिला। धन्यवाद। हरिजनोंके लिए एक पृथक विश्वविद्यालयका विचार आकर्षक है, लेकिन एक पृथक विश्वविद्यालयकी स्थापना करना जरूरी नहीं है। उसकी जगह हमारे सामने श्री डेविडकी योजना है, जिसके बारेमें आप पहले ही पढ़ चुके होंगे और पिछले सप्ताहके 'हरिजन' में उसके बारेमें कुछ और बातें आप देख सकते हैं। यह योजना लचीली और कम खर्चीली है, इस अर्थमें कि इसके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाला प्रत्येक रुपया सीधा हरिजनोंकी पढ़ाईके मदमें जायेगा, और चुने हुए हरिजन छात्रोंको उच्चतर शिक्षा देनेका यह सबसे शीघ्र फलदायी तरीका भी है। यदि श्री डेविडकी योजना सफल सिद्ध होती है तो इसका विस्तार भी किया जा सकता है, ताकि आगे चुने जानेवाले छात्रोंको पढ़ाईके लिए विदेश भेजा जा सके।

औद्योगिक शिक्षाको भी मैं बिल्कुल वही महत्त्व दूँगा जो उच्चतर शिक्षाको दूँगा।

मै सिनेमा कभी गया नहीं हूँ, इसलिए सिनेमा-शो के बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। बेहतर वर्गके लोगोंको अपने यहाँ हरिजनोंको घरेलू नौकर रखनेके लिए राजी करनेकी दिशामें प्रयत्न किया जा रहा है और मैं समझता हूँ कि ऐसा होने भी लगा है।

जाति-प्रथाके बारेमें मेरे विचार जाननेके लिए मै आपको पिछले सप्ताहका 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दूँगा।

मैं ऐसा मान रहा हूँ कि आपने अपने पत्रकी एक प्रति, और यदि प्रति नहीं तो कमसे-कम इसी आशयका एक पत्र सेंट्रल बोर्डको भेजा है।

हृदयसे आपका,

जी० एम० थावड़े
सहायक महामन्त्री
अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ
नागपुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२९) से।

३७८. पत्र : नी० को

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय नी०,

कुमार दिवाकरसिंह, जिन्हें तुम देवुला कहती हो, ने तुम्हारा पत्र मुझे दिया था।

मुझे अपने पुत्रके रूपमें सम्बोधित करनेका ढंग बड़ा अजीब है। मैं अपनी माँ को बरसों पहले खो चुका था। मै बहुत तेजीसे बेटियाँ और बहनें बना रहा हूँ। लेकिन माँ मुझे नहीं मिली है। उम्र कोई बाधा नहीं है। यदि तुम मेरे मनमें अपने प्रति माता-जैसा आदर-भाव पैदा कर सको तो इससे ज्यादा खुशी मुझे और किसी चीजसे नही होगी। लेकिन मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि तुम्हारे पत्रने मेरे मनमें शंका पैदा कर दी है। इसमें से उन्मादकी गन्ध आती है। अपने जिस मित्रको तुमने भेजा है, उससे बात करनेसे मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि उसके बारेमें तुम्हारी राय ठीक नहीं है। मुझे वह एक असंतुलित मनवाला नौजवान प्रतीत होता है। वह इलाहाबादमें कुछ कर सकेगा, ऐसा नहीं लगता।

लेकिन इससे भी ज्यादा गम्भीर तो है तुम्हारे चरित्रपर लगाया गया लांछन, जिसकी सूचना मुझे कल एक अप्रत्याशित सूत्रसे मिली। जिस व्यक्तिने मुझे सचेत किया है वे एक बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और मुझे गलत सूचना देनेमें उनका कोई मंशा नहीं हो सकता। उन्होंने मुझे केवल सचेत किया है कि मै तुम्हारे हाथमें न खेलूँ; यह अवश्य है कि इन मित्रको कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है।

लेकिन जिन लोगोंके बारेमें मुझे ऐसी सूचनाएँ मिलती हैं और जिनके कल्याणम मेरी दिलचस्पी होती है, जैसीकि तुममें है, उनसे उन्हें छिपाना मेरे स्वभावके प्रतिकूल है। तुम्हारे पहलेके पत्रोंसे मेरी धारणा तुम्हारे बारेमें अच्छी बनी थी, और मैंने सोचा था कि मै सत्यकी समान-सेवामें तुम्हारा उपयोग कर सकता हूँ। लेकिन इस सूचनाने और उसके साथ ही तुम्हारे सबसे ताजे पत्रने मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न कर दिया है। मैं आशा करता हूँ कि इस सन्देहका कोई पुष्ट आधार नही है।

यदि तुम्हें मेरी रायकी कुछ भी परवाह है तो तुम सब काम छोड़कर चुप-चाप पूना आ जाओ, अपना सामान स्टेशनपर छोड़ो, और किसी भी दिन सुबह ९ बजेके बाद मेरे पास आओ ताकि मै तुम्हें आमने-सामने देख सकूँ और तुमसे कुछ सीधे सवाल पूछ सकूँ।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००४१) से।

३७९. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई।[१] अमतुस्सलामके तुम्हारे साथ रहनेमें मुझे बड़ी तसल्ली रहती है। उसे अच्छा कर देनेकी तुम्हारी योग्यतामें उसको बड़ा विश्वास है। मुझे तो आशा है कि वह पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जायेगी। मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारी कठिनाइयाँ शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगी। मुझे प्रसन्नता है कि तुम आश्रमके जीवनके लिए अपनेको तैयार कर रहे हो। यदि तुम आश्रममें जा सको तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ १८

१. अमतुस्सलामने डॉ० शर्माको बताया था कि गांधीजी आश्रमवासियोंके लिए उचित प्राकृतिक चिकित्साकी व्यवस्थाके लिए चिन्तित हैं और उन्होंने डॉ० शर्माको कुछ दिनोंतक आश्रममें जाकर रहनेके लिए लिखा है। यह जाननेपर डॉ० शर्माने गांधीजी को लिखा था कि हाथमें लिया हुआ काम समाप्त करके मै शीघ्र ही आश्रम चला जाऊँगा।

३८०. पत्र : देवदास गांधीको

१२ [फरवरी][1], १९३३

चि० देवदास,

तेरा पत्र मिला। हिन्दीमें सुझाये गये अपने सुधारोंको तू किस प्रकार सम्भव मानता है, यह समय पाकर लिखना। करौलबागमे डॉ० शर्माका एक 'सन-रे' (सूर्य-किरण-चिकित्सा) अस्पताल है। अमतुस्सलामबहन वहाँ भरती हुई है। डॉ० शर्मामें उसे बड़ा विश्वास है। समय निकालकर उससे परिचय करना और जिन बातोसे तू प्रभावित हो उन्हें सीखना। अस्पतालका वर्णन भी करना। अमतुस्सलामसे मिलना और उससे तबीयतका हाल पूछना। उर्दू शब्दकोश (छोटावाला)का ध्यान होगा ही। राजाजीके सम्बन्धमें तूने जो लिखा, उसका ध्यान रखूँगा। पत्र लिखनेका आलस न किया करना। 'हरिजन' के सम्बन्धमें उनकी और अपनी राय लिखना। वे 'हरिजन' [के लिए] कुछ लिखें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १९९२) से।

३८१. पत्र : रमाबहन जोशीको

१२ फरवरी, १९३३

चि० रमा,

यह क्या बात है? हर हफ्ते पत्र लिखनेकी प्रतिज्ञा की, और उसे प्रथम अवसरपर ही तोड़ दिया। लेकिन याद रखना कि मैं ऐसे ही छोड़ देनेवाला नहीं हूँ। पहले तो वचन ही नहीं देना चाहिए, लेकिन वचन देनेके बाद तो प्राण देकर भी उसका पालन करना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३६१) से।

१. डाककी मुहर और **हरिजन** के उल्लेखसे; साधन-सूत्रमें "१२-१-३३" तिथि दी हुई है जो स्पष्टतया भूल है।

३८२. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

१२ फरवरी, १९३३

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र अधूरा-जैसा नहीं लगा। मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा।

व्रत भंग होनेपर जो प्रायश्चित्त किया जाता है, उसमें परस्पर कोई सीधा सम्बन्ध तो होना ही चाहिए। असत्य भाषणका प्रायश्चित्त मौन होना चाहिए, मद्य-त्याग नहीं; यद्यपि मद्य-त्याग तो हर कालमें उचित ही है। मद्य यदि असत्यका कारण हो तो उसका परित्याग उस दृष्टिसे भी आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार तुमने जिस स्थानपर अपनी पत्नीका विकारमय स्पर्श किया हो तो तुम्हें उस स्थानका त्याग या एक निश्चित समयतक स्त्री-दर्शनका भी त्याग करना चाहिए। इतना कर लेनेपर अपने प्रायश्चित्तकी याद बनाये रखनेके लिए मिष्टान्न आदिका त्याग भी इष्ट माना जा सकता है। पर तुम तो स्वयं सावधान हो; तुम्हें तो अपने दोषोंका भान है, अतः तुम्हारा उद्धार तो हो ही जायेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५१२) से।

३८३. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

१२ फरवरी, १९३३

चि० रामभाऊ,

इस बार तुमने अपने हस्ताक्षर बंगालीमें किये हैं। यह सब विचारपूर्वक किया जाये तो अच्छा ही है। संस्कृत, बंगाली, उर्दू, तमिल, पंजाबी, सिंधी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और अंग्रेजी एक ही नवयुवक सीखे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं होनी चाहिए; क्योंकि इन सारी भाषाओंमें एकदम भिन्न भाषा तो तीन ही मानी जायेंगी – अंग्रेजी, संस्कृत और तमिल। बाकी तो सबकी-सब या तो संस्कृतकी पुत्रियाँ हैं, या तमिलकी। पर दिलचस्पी हो तभी सीखी जा सकती हैं।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३०४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

३८४. पत्र : द० बा० कालेलकरको

१२ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। दाँत यदि आते समय कष्ट होता है तो जाते समय क्यों न हो। तुम्हें दूध शुद्ध मिलता है? निरे दूधसे कमजोरी आती है और दस्त होते हैं, यह तुम्हारा अनुभव है; तथापि, मुझे लगता है कि यह प्रयोग कर देखने लायक है। दूध हजम होनेके लिए अनाजकी आवश्यकता तो होनी ही नहीं चाहिए। यह तो इस बातका सूचक है कि शरीरमें कोई खराबी है। दूध और फल हजम हों तभी गेहूँ लिया जा सकता है, ऐसी मेरी मान्यता है और इसे मैं छोड़ नहीं सकता। ऐसा माना जाता है कि अनाजकी मददसे दूध पचता है। वह पचता नहीं है, किन्तु जहर रूपसे शरीरमें रहकर ताकत (देने) की झूठी कल्पना देता है। यदि दूध साफ और ताजा मिलता हो तो कच्चा ही लेनेका प्रयोग कर देखने लायक है। मैं तो आजकल कच्चा ही लेता हूँ। मुझे तो कोई नुकसान नहीं हुआ। इसको लेते हुए अभी इतना समय नहीं हो पाया है कि मैं यह कह सकूँ कि इससे फायदा ही हुआ है। अभी तो इसे केवल १५ दिन ही हुए हैं।

तुम्हें अपने घुटनोंकी मालिश करवानी चाहिए। अभीसे बूढ़े होकर काम नहीं चलेगा। मैं तो अभी ३ बजे ही उठ बैठा हूँ यानी, गुरु और मंगल सिरपर ही विराजे हुए हैं। आकाश-दर्शनका रस तो जारी ही है। डोरपर चढ़े और नीचे गिर पड़े, अतः क्या कहा जाये?[1] सोमवारको बड़ी दूरबीन आनेवाली है।

'हरिजन' के बारेमें अपनी राय देना। लिखने योग्य कोई विषय सूझे तो लिखना। भाषाकी चिन्ता मत करना। यदि कोई ऐसे प्रश्न हों जिनकी मैं चर्चा कर सकूँ तो लिख भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९३)से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१. गांधीजी और कालेलकर १९३० में यरवडा जेलमें इकट्ठे ही थे। गांधीजीके लेखोंके लिए देखिए खण्ड ४९, "आकाश-दर्शन"।

३८५. पत्र : बाल कालेलकरको

१२ फरवरी, १९३३

चि० बाल,

तेरा पत्र मिला।

बुखार दूर करनेके लिए उपवास कर लिया, यह बहुत ठीक किया।

निर्दोष अण्डेसे मेरा मतलब है, जिस अण्डेमें से बच्चा नहीं निकलता। मैंने तो इसे खाद्य माना है। वैद्यकीय दृष्टिसे उसके अनेक उपयोग हैं। हाँ, ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे उसके सेवनमें दोष होनेकी पूरी सम्भावना है। पर यह बात तो बीमारोंपर लागू नहीं होती। इसके विरोधमें दो दलीलें हैं। धार्मिक दृष्टिसे यह खाद्य पदार्थोंमें अनावश्यक वृद्धि है और निरामिषाहारकी दृष्टिसे यह उतना ही दूषित है जितना कि दूध। गायको दुहते समय भी दर्द होता होगा, पर सम्भवतः मुर्गीको कदाचित ऐसे अण्डोंका भार ढोना और उनके लिए बन्धनमें रहना अपेक्षाकृत कहीं अधिक कष्टदायी होता होगा। हम जिस मांसका त्याग करते हैं, वैसा मांस तो यह है ही नहीं। औषधिके रूपमें निर्दोष अण्डेका प्रयोग आवश्यक हो सकता है। इस विषयपर मेरा पूरा अभिप्राय इसमें आ गया है। दैनन्दिनी रखना। कताई-यज्ञको न भूलना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९४)से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

३८६. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१२ फरवरी, १९३३

पण्डितजी का पत्र मिल गया है, निराशाजनक है। फिर भी मेरे लिए तो प्रसादी-रूप ही है। मैं भी उन्हें मुझसे मिल जानेके लिए ही तार करता हूँ। . . . यदि पण्डितजी न आयें तो तेरा वहाँ पहुँचना कदाचित आवश्यक हो जाये।

मेरे उपवासके बारेमें तू निश्चिंत रहना। मैं निरीक्षण कर रहा हूँ। मैं एक भी कदम बिना विचारे नहीं लूँगा, यद्यपि यह हो सकता है कि तुम सबके गले [अपनी बात] न उतार सकूँ। तुम सब मुझे सच्चा बना रहने दो। जिस दिन मैं खोटा पड़ जाऊँगा उस दिन मुझे धराशायी हुआ समझो। 'खोटा' यानी सत्यकी प्रतीति हो जानेपर उसका अनुसरण न करनेवाला।

मुझे जो सेंक दिया जाता है वह 'डायथर्मी' ही है, पर उससे कोई लाभ नहीं है। यहाँका बड़ा डॉक्टर तो कहता है कि यह बुढ़ापेका ही एक चिह्न है। यह

कल्पना भी दरगुजर करने-जैसी तो नहीं है। यदि ऐसा ही हो, तो भी इसका खेद क्या किया जाये? इसका उपाय तो सादा जीवन और उस-उस अंगसे परिश्रम कम . . .।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२०

३८७. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

१२ फरवरी, १९३३

भाई मूलचंदजी,

प्रश्न और उत्तर[1] अवसर पाकर कहिं भी दे दुंगा।

बापू

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८३३) से।

३८८. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

१२ फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

यदि 'महादेव' नाम ज्योतिषके अनुकूल नहि है तो पिताजीसे दो चार अनुकूल नाम मांगो और मुझे भेजो। उसमेंसे मैं पसंद कर दुं। पिताजी ही खुद क्यों नाम न पाडे छे? तुम दोनों अच्छे होंगे। आनंदको आशीर्वाद।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

१. देखिए "पत्र : मूलचन्द अग्रवालको", २९-१-१९३३।

३८९. पत्र : अमतुस्सलामको

१२ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारे खत मिले हैं। देहली सीधी चली गई सो अच्छा किया। अब जब तक बिल्कुल ठीक न हो जाए वहाँ ही रहना। अच्छी होने पर मुझे मिलकर आश्रम जाना। डाक्टर शर्मा आश्रम जानेके लिए तैयार हो रहे हैं सुनकर मुझे अच्छा लगता है।

दिलमें चाहे तब खत लिखा करो। तुमको खत भेजनेमें मुझे कोई तकलीफ नहीं हो सकती। न लिखनेसे जरूर रंज होगा।

कुदसियाको लिखो मुझे लिखती रहे। पटियालेमें कैसे रहती है?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७६) से।

३९०. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१२/१३ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

जनताके नाम निकाली गई तुम्हारी और जी०[1] की अपील मैंने पढ़ी है। तुम लोगोंने अनशन और उसकी सम्भावनाकी चर्चा भी क्यों की है? यदि अनशन करना ही पड़ा, और यदि इस अनशनको आध्यात्मिक अनशन होना है, तो उसकी चर्चा करके तुम उसकी आध्यात्मिकताको कम कर रहे हो। यदि मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी विधेयक विधान सभाके इस सत्रमें नहीं पास हुए, या कभी भी पास न हों, तो भी मैं स्वयं ही नहीं कह सकता कि मेरा अनशन निश्चित ही है। मेरी राय है कि तुम्हें उसका विचार अपने मनसे बिलकुल निकाल देना चाहिए और जनताके मनको उस विचारसे सर्वथा मुक्त होकर काम करने देना चाहिए। जब अनशन होगा और उसका स्वरूप यदि आध्यात्मिक होगा तो उसका स्वतः प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि वह अनशन एक रुग्ण अथवा अहम्मन्य मस्तिष्ककी उपज होगा तो वह केवल शरीरको यन्त्रणा पहुँचायेगा और उसकी सूचना पानेवाले व्यक्तियोंको अपने-अपने स्वभावके अनुसार मेरे प्रति तरस अथवा नफरत पैदा होगी।

फिर, आपको पण्डित मालवीयजी के रुखपर[2] भी गम्भीरतासे विचार करना है। वह विधेयकोंके सख्त खिलाफ हैं, विशेषकर यदि इन्हें लोकमत जाननेके लिए

१. घनश्यामदास बिड़ला।

२. बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट ११।

जनतामें घुमाया नहीं जाना है। बेशक, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। मैं उन्हें पत्र लिखूँगा, लेकिन आप तनिक भी समय निकाल सकें तो उनसे अवश्य मिलें, या फिर अकेले देवदासको ही भेज दीजिए। लेकिन इसमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। आपको जो ठीक जँचे, वही कीजिए। बाहरके वातावरणसे तो आप ही लोग परिचित हैं। मुझे तो केवल सुनी-सुनाई जानकारी है, इसलिए वह बेकार है।

मेरी डॉ० ए०[1] के साथ मुलाकात हुई। इसे एक प्रकारसे अत्यन्त असन्तोषजनक भेंट कहा जा सकता है। उन्हें मना पाना सम्भव नहीं है। दूसरे प्रकारसे भेंट संतोषजनक रही। मैं उन्हें जितना जानता था अब उससे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ।

इस पत्रको कृपया जी० और ठक्कर बापाको भी दिखा देना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२३०) से।

३९१. च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा

[१३ फरवरी, १९३३][2]

सी० आर०,

आप किसी भी स्थितिमें अनशनकी सम्भावनाका जिक्र कहीं न करें। ऐसा जिक्र अशोभनीय और अप्रासंगिक है। लेकिन असेम्बलीके सदस्योंसे, विशेष रूपसे हिन्दू सदस्योंसे कहें कि भारतके सम्मानके लिए जरूरी है कि अस्पृश्यता विधेयकोंपर इसी सत्रमें विचार किया जाये। यदि सितम्बरमें हुई बम्बईकी सभा हिन्दू लोकमतकी प्रतिनिधि थी तो हिन्दू सदस्य इन विधेयकोंको आगे बढ़ाकर अपने वचनको पूरा करनेके लिए बँधे हुए हैं। यदि हिन्दुओंके सम्मानको भारतका सम्मान भी माना जा सकता हो तो मेरी रायमें इन विधेयकोंपर निष्पक्ष विचार किये जानेमें मदद करना अन्य सदस्योंका भी कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि दोनोंमें से किसी भी विधेयकका मंशा एक भी व्यक्तिपर जोर दबाव डालने या किसीके धर्ममें हस्तक्षेप करनेका नहीं है। मौजूदा स्थिति आत्माका गला घोंटनेवाली है।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०२३० ए) से।

१. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर।

२. यह और इससे पहला शीर्षक, इन दोनोंका मसविदा गांधीजी ने एक ही कागजपर लिखा था। यह तार पृष्ठ ५ और ६ पर है, जबकि पिछला शीर्षक १ से ४ पर है।

३९२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१३ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

यह मौनवारका प्रातःकाल है। तीन बजे उठकर तेरा पत्र हाथमें लिया है। यह पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा है। मुझे जो चाहिए सो सब तूने लिखा है। मैंने स्त्रियोंसे जो-कुछ पानेकी कल्पना की है वह सब इसमें है। तूने जो बातें लिखी हैं उनमें कोई आडम्बर नही है; ऊपरसे वे छोटी मालूम होती हैं, लेकिन सत्यान्वेषीके लिए वे अत्यन्त उपयोगी हैं। ऐसे तटस्थ पत्रसे मुझे ज्ञान मिलता है और मैं तेरा और दूसरोंका मार्गदर्शन कर सकता हूँ।

सचमुच आश्रम धर्मशाला है। धर्मशालाके दो अर्थ हैं : दानमें दिया हुआ निवास-स्थान तथा धर्मको जाननेका और जानकर उसके पालनका प्रयत्न करनेका स्थान। इस दूसरे अर्थमें आश्रम धर्मशाला है। परन्तु सत्य ही धर्म है, इसलिए आश्रम सत्यकी खोज करके उसके अनुसार चलनेका प्रयत्न करनेकी यानी, सत्यका आग्रह रखनेकी शाला अर्थात्, सत्याग्रह आश्रम है।

हमें सत्यकी खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है। इसलिए आश्रम एक विशाल कुटुम्ब बनता जा रहा है। फिर भी वह इससे अधिक है, क्योंकि वह धर्मके लिए है, धर्म उसके लिए नहीं है। इसके अलावा, वह शिक्षालय है और नहीं भी है; क्योंकि वह कुटुम्ब है इसलिए सामान्य शिक्षाके बाह्य नियम उसपर जड़-भरतकी तरह लागू नहीं किये जा सकते। नियमकी आत्माकी रक्षाके लिए नियमकी देहके बाह्य स्वरूपका त्याग करना पड़ता है।

अब यह बात जरा विस्तारसे समझाता हूँ। लक्ष्मीके पालन-पोषणमें हमारी, तेरी परीक्षा है। कुटुम्बके बच्चोंके बारेमें हम क्या करते हैं? अपनी सगी बहनके बारेमें तू क्या करती है? लक्ष्मी नियमका पालन न करे, नियम न जाने, इसमें दोष मेरा है, बादमें तेरा है। बीचके और लोगोंको मैं छोड़ देता हूँ, नारणदासको भी छोड़ देता हूँ; क्योंकि उसे प्रत्येकके लिए जिम्मेदार मानकर उससे उसके धर्मका पालन नहीं कराया जा सकता। वह काम ही स्त्रीका है और उसमें भी जिसके हाथमें वह आया हो उसका अधिक है। मेरा अपराध पहला है, क्योंकि (आश्रमकी) कल्पनाका पिता मैं हूँ और माता भी मैं हूँ। पिताके धर्मका तो मैंने पालन किया, परन्तु माताके धर्मका पालन नहीं किया; क्योंकि मैं यहाँ-वहाँ फिरता रहा। इसलिए शायद मुझे लक्ष्मीको अपने जिम्मे लेना ही नहीं चाहिए था। परन्तु मैं कौन? ईश्वरका दास। लक्ष्मीको ढूँढ़ने मैं नहीं गया था। उसे ईश्वरने भेजा। वही उसकी रक्षा करेगा। उसे सँभालनेवाली पहले बा, बादमें सन्तोक, फिर गंगाबहन और अब तू है। तुममें से

भी किसीने उसकी माँग नहीं की थी। समय और परिस्थितिवश वह तुम लोगोंके हाथोंमें आई। अब तुझसे जो बने सो कर। जहाँ पूछना उचित हो वहाँ मुझसे पूछ। थकना नहीं, निराश न होना, श्रद्धा रखना और उसपर प्रेम उड़ेलना। अन्तमें इसका हल ईश्वर निकालेगा। वह हरिजनोंकी प्रतिनिधि बनकर हमसे ऋण चुकवाने आई है। वह अपूर्ण और आलसी है, इसका पाप तेरे, मेरे और सवर्ण हिन्दुओंपर है। जैसा किया वैसा भरें। उसका विवाह करनेकी व्यवस्था करता हूँ। मारुतिके बारेमें लक्ष्मीदाससे पुछवाया है। दूधाभाईको भी लिखा है।

आश्रममें दूसरी लड़कियाँ और लड़के आते जा रहे हैं, इससे घबराना मत। जितने नियमोंका पालन वे करें उतना ही उनका लाभ समझना। जबतक उनका व्यवहार सहन हो तबतक उन्हें रहने दें। सहन न हो तब छुट्टी दे दें। धर्मशालामें पथिकोंका मुकाम स्थायी नहीं होता। कुटुम्बीजन भी स्थायी रूपसे नहीं रहते। जो आश्रमके चौखटेमें समायेंगे वे रहेंगे। जो नहीं समायेंगे, वे चले जायेंगे। इसका हर्ष-शोक क्या? फिर, अभी तो हम और कुछ कर भी नहीं सकते। जहाँतक शक्ति है वहाँतक जो चला आये और जिसपर हमारी आँख जरा जम जाये उसको हम दाखिल कर लें। बहुत-से तो अपने-आप ही भाग जायेंगे। हमारे नियम ही बहुतोंको भगा देंगे। जो आयेगा उसे मेहनत तो करनी ही होगी, पाखाने साफ करने होंगे। भोजन दवाके तौरपर खाना होगा। वहाँ गुड़ भी नहीं मिलता और जब चाहें तब गेहूँ भी नहीं मिलता। आश्रम गरीबों, कंगालों और भूखों मरनेवाले लोगोंका प्रतिनिधि है, यह हम रोज साबित करते रहें तो सदा सुरक्षित और सुखी रहेंगे। इसलिए आश्रममें रोज सादगी बढ़नी चाहिए; नियमोंका पालन रोज कड़ा होना चाहिए। अग्नि अपने स्वरूपमें रहे तो जो जीव उसमें निभ न सकें, वे रह ही नहीं सकते। यह अग्निका दोष नहीं, परन्तु गुण है। इसी तरह हम स्वयं ही अपने स्वरूपमें नहीं रहते, इसलिए सारी मुसीबतें पैदा होती हैं। सादगी वगैरहकी कड़ाईकी जो बात लिख रहा हूँ वह हमारे ही लिए है। हममें इसकी मात्रा रोज बढ़नी चाहिए। हमने अपनी रक्षाका मार्ग अपने अन्तरमें ढूँढ़ा है, बाहर नहीं। और हम यानी, आश्रममें समझ-बूझकर रहनेवाले अर्थात् मैं, तू और प्रत्येक व्यक्ति। जिन नियमोंका पालन सब आश्रमवासी करें, उन्हींका मैं पालन करूँ, यह बात ठीक नहीं है। मुझसे जिन नियमोंका अधिकसे-अधिक पालन हो सके, उनका पालन मुझे तो करना ही चाहिए। इसमें आश्रमकी उन्नतिकी कुंजी है। दूसरेके प्रति उदारता रखनी चाहिए, अपने प्रति कृपणता। ऐसा करते हुए भी हम अपने प्रति मुश्किलसे ही किंचित् विवेक बरतेंगे, क्योंकि बहुत बार दूसरोंके प्रति दिखाई जानेवाली उदारता सच्ची उदारता नहीं होती। और बहुत सम्भव है कि अपने प्रति दिखाई जानेवाली कृपणता केवल आभासमात्र हो।

लड़कियोंके लिए आदर्श अखण्ड ब्रह्मचर्य होना चाहिए, उसीमें आदर्श विवाह समाया हुआ है। विवाहकी तालीम देनेकी जरूरत नहीं होती। यह सम्बन्ध देहधारीके स्वभावमें ही रहता है। इस स्वभावको कुछ नियन्त्रणमें रखनेके लिए विवाह-विधिकी रचना हुई। इस स्वभावपर पूर्ण अंकुश ही ब्रह्मचर्य है। जो पूर्ण अंकुशका पालन

करेगी, वह विवाह-रूपी मर्यादित अंकुशका तो पालन करेगी ही। परन्तु विवाह जिसका पहलेसे ही आदर्श बना हुआ है, वह विवाहका स्वरूप भी नहीं समझेगी। विकारोंके लिए तालीम कैसी? वे तो अपने-आप फूट निकलेंगे। परन्तु जो लड़की ब्रह्मचारिणी है, उसे घरकी व्यवस्था चलानेका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना होगा। शिशु-पालनका ज्ञान तो प्राप्त करना ही चाहिए। वह गुफामें बैठकर कुमारी नहीं मानी जा सकती। कुमारी सारे जगतसे विवाह करती है, सारे जगतकी माता बनती है, पुत्री बनती है, सारी दुनियाका कारबार चलाने लायक बनती है। भले ही ऐसी कोई कुमारी पैदा न हुई हो। परन्तु आदर्श तो यही है। इसलिए शिक्षा सबके लिए एक-सी ही होगी। मुझे लगता है कि मैंने यह स्पष्ट कर दिया है। लेकिन न हुआ हो, तो फिरसे स्पष्ट करा लेना।

उस मुसलमान बहनके बारेमें हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए।

लड़कियोंको जो 'फिट' आते हैं उनकी जड़ हमारा अधूरापन है। यदि हम जरा भी ठीकसे आगे बढ़े हों, तो नौजवानोंकी हस्ती हमें भयंकर नहीं लगेगी। परन्तु जहाँ खतरा मालूम हो वहाँ नौजवानोंको छुट्टी दे देनी चाहिए। नयोंको लेना बन्द करना हो तो किया जा सकता है।

मेरी सारी आशाएँ नारणदासमें समाई हुई हैं। मेरी कल्पनाका नारणदास ही आश्रमका मन्त्री हो, तो सब कुशल ही समझना चाहिए। उसके विषयमें मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही है। वह सही सिद्ध होगी तो जो दूसरे पुराने आश्रमवासी है, वे आगे बढ़ते ही रहेंगे और सबका कल्याण ही होगा। आश्रममें आदमी बहुत हैं, परन्तु आश्रमी थोड़े हैं। इसलिए मनपर बोझ बना रहता है। ऐसी अत्यन्त अपूर्ण स्थितिमें तुम सबसे जो बन सके उतना करो।

आश्रम मुझे मापनेका एक गज है। मैं जहाँ होता हूँ वहाँ आश्रमको साथ लेकर घूमता हूँ। शरीर कहीं भी हो, आत्मा मेरी वहीं रहती है। उसमें जो दोष हैं वे सब दृश्य अथवा अदृश्य रूपमें मुझमें होने ही चाहिए। तुम सबको पहचाननेमें मेरी भूल हुई हो तो वह दोष मेरा नहीं तो किसका है? परन्तु मैं अपनेको ही न पहचानूँ तो तुम सबका काजी कैसे बन सकता हूँ? जब नाम चुनता हूँ तो छगनलाल और मगनलालके सिवा मैं किसीको ढूँढ़ने नहीं गया। उन्हें ईश्वरने मेरी परीक्षा लेने या मेरी सहायता करनेके लिए भेजा है।

यह तेरी भूल है कि तू डॉ० पटेलके पास नहीं गई। डॉक्टरसे इस प्रकार चिट्ठी द्वारा नहीं पूछा जा सकता। तू मौन ले ले। डॉक्टरको गला दिखाकर, जो वह कहे वैसा ही कर। इसमें हठ करना ठीक नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२६) से।

३९३. पत्र : हिन्दू केन्द्रीय समितिको

१३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्रो,

१. आपके इसी ४ तारीखके पत्रके जवाबमें लिखे गये मेरे पत्रके सन्दर्भमें अब आगे मुझे यह कहना है कि मैंने हिन्दू केन्द्रीय समितिके वक्तव्यको बहुत ध्यानसे पढ़ा है और वक्तव्यको पढ़नेके बाद जब मैंने अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियोंके अलावा विशिष्ट वकीलोंके नाम समितिके मूल सदस्योंके रूपमें देखे तो मेरा दिल दुःखसे भर गया।

२. वक्तव्यमें किये गये इस दावेको लीजिए :

> **हम मानते हैं कि हिन्दू-समाजके विभागोंमें किसी हीन भावनाका कोई सवाल नहीं है, और इस देशके करुणामय और मानवतावादी ऋषियों द्वारा जो परम्पराएँ स्थापित की गई हैं उनका इतनी शताब्दियोंसे पालन करनेवाले रूढ़िवादी हिन्दुओंने कोई पाप नहीं किया है।**

क्या हमारी इन्द्रियोंकी साक्षीसे इस दावेकी पुष्टि होती है? यदि समिति यह कहती कि हिन्दूशास्त्रों में ऊँच-नीच-जैसी कोई चीज नहीं है, तो मैं तत्काल सहमत हो जाता। लेकिन अस्पृश्यता आज जिस रूपमें प्रचलित है, और तथाकथित अस्पृश्योंको जिस प्रकार अलग बस्तियोंमें रखा जाता है और जिस प्रकार वे जीवनकी लगभग सभी सुविधाओंसे वंचित हैं, वह निश्चित ही उनके हीन दर्जेका प्रमाण है। इन निर्योग्यताओंकी चर्चा सार्वजनिक अखबारोंमें अक्सर की गई है। इसलिए ऐसा लगता है कि समानताके सिद्धान्तकी आधुनिक हिन्दू-समाजने जान-बूझकर निर्दयतापूर्वक अवहेलना की है। क्या समिति एक भी ऐसा काम बता सकती है जो रूढ़िवादी हिन्दुओंने दलित वर्गोंकी आर्थिक और भौतिक दशाको सुधारनेके लिए किया हो? और क्या 'दलित' कहलानेवाले एक वर्गका अस्तित्व स्वयंमें उपर्युक्त दावेका पर्याप्त रूपसे खण्डन नहीं है?

३. समितिने इसके बाद आगे कहा है :

> **देशके कई स्थानोंमें सवर्ण हिन्दुओंकी भी ऐसी काफी बड़ी संख्या है, जो आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे पंचमोंसे कहीं ज्यादा खराब स्थितिमें हैं।**

मैं सवर्ण हिन्दुओंके ऐसे वर्गसे अनभिज्ञ हूँ जो आर्थिक और सांस्कृतिक, दोनों दृष्टियोंसे पंचमोंकी अपेक्षा खराब स्थितिमें है, और यदि ऐसे वर्ग हैं तो मैं उनके नाम जानना चाहूँगा।

४. समितिकी तीसरी बात, जिसकी ओर मैं ध्यान दिलाऊँगा, यह है :

> **यह कहना सत्यका उपहास होगा कि गाँवोंमें सवर्ण हिन्दुओंका व्यवहार पंचमों या हरिजनोंके प्रति उदारतापूर्ण नहीं रहा है।**

क्या सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनोंके लिए अपनी पत्तलकी जूठन छोड़ देना; उनको पेट भर खाना न नसीब हो, इतने कम वेतनपर उनसे काम करवाना; उन्हें डॉक्टरों, स्कूल-मास्टरो, नाइयों और लगभग उन सभी सुविधाओं और सेवाओंसे जिनके कि सवर्ण हिन्दू अभ्यस्त हैं, वंचित कर देना सवर्ण हिन्दुओंकी उदारता है?

५. समितिका एक अन्य कथन यह है:

> **उच्चतर वर्गोंको छोड़कर देशमें बेरोजगारीकी कोई समस्या अब नहीं है।**

यह बयान निश्चय ही ऐतिहासिक और सरकारी रिकार्डोंमें उपलब्ध सर्वज्ञात तथ्योंके बिल्कुल विपरीत है।

६. समिति आगे कहती है:

> **रूढ़िवादी हिन्दूका पहला सिद्धान्त है कि भूखोंको हमेशा भोजन दान किया जाये और उसे वह हमेशा अपना धार्मिक कर्त्तव्य मानता है, और ईश्वरसे उसकी पहली प्रार्थना यही रही है कि मानवमात्र का कल्याण हो।**

यह सिद्धान्त बेशक मौजूद है। क्या समितिके पास कोई सबूत है कि रूढ़िवादी हिन्दुओंने हरिजनोंके प्रति इस सिद्धान्तके अनुसार आचरण किया है?

७. समिति आगे कहती है:

> **श्री गांधी द्वारा अनशनकी घोषणा करनेके बाद कांग्रेसने यद्यपि अस्पृश्यता-निवारण और मन्दिर-प्रवेशके लिए होनेवाले आन्दोलनमें अपने-आपको पूरी तरह झोंक दिया है तथापि, एक क्षणके लिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि दलित वर्गोंके आर्थिक और भौतिक उत्थानके लिए उसने कोई खास काम किया है।**

समितिको जानना चाहिए कि कांग्रेसके लिए इस आन्दोलनमें अपने-आपको पूरी तरह झोंक देना सम्भव नहीं है। यह आन्दोलन हरिजन सेवक संघ द्वारा संगठित सामान्य हिन्दू-जनता द्वारा चलाया जा रहा है। संघ बिना पार्टीका भेदभाव किये अस्पृश्यता-निवारणके लिए सभीकी सहायता माँगता है। इस संघने एक व्यापक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया है। जहाँतक खुद कांग्रेसका सवाल है, उसके हिन्दू सदस्योंने हरिजनोंकी जैसी सेवा आजतक की है वैसी सेवा उस प्रकारके किसी संगठन द्वारा की गई सेवासे कम नहीं है।

८. लेकिन समिति आगे कहती है:

> **यदि हरिजनोंके इस उत्थानके लिए आन्दोलनमें शरीक होनेका आह्वान ऐसे लोगों द्वारा किया जाता है जो मन्दिर-प्रवेश करानेको तुले हुए हैं, तो रूढ़िवादी हिन्दू उसे सन्देहकी निगाहसे देखे बगैर नहीं रह सकते, खास तौरसे जब इस आह्वानसे पहले गांधीका यह नारा है: 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझ पर छोड़ दो।'**

मैं यह नहीं समझ पाता कि जो लोग मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दबावसे नहीं, बल्कि हृदय-परिवर्तन द्वारा दिलानेके खुले रूपसे समर्थक हैं, उन लोगों द्वारा हरिजनोंके उत्थानमें शरीक होनेके आह्वानको सन्देहकी निगाहसे क्यों देखा जाना चाहिए। और 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड़ दो', मेरे इस कथनपर इतना जोर देनेका क्या मतलब हो सकता है? मैं इतना उदार हूँ कि यह मान लूँ कि 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड़ दो' इस वक्तव्यका पहली बार प्रयोग किस सन्दर्भमें किया गया था, उसे जाने बिना समितिने अपने वाक्यकी रचना की है। यह बात उन पत्र-लेखकोंको उत्तर देते हुए कही गई थी जो सत्याग्रह करने और अन्य मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए खुलवानेकी खातिर कुछ तेज कदम उठानेके लिए अधीर थे। आन्दोलनको नियत सीमाओंमें मर्यादित रखने, और अनशनके रूपमें सीधी कार्रवाईको कमसे-कम फिलहाल श्रीयुत केलप्पन और अपनेतक सीमित रखनेके लिए मैंने पत्र-लेखकोंसे कहा : "मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड़ दो और आर्थिक तथा शैक्षणिक उत्थानके रचनात्मक कार्यको लेकर आगे बढ़ते रहो"। इसकी सत्यताकी पुष्टि समिति चाहे तो मेरे लेखसे सरलतापूर्वक कर सकती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि ऊपर उद्धृत किये गये वाक्यमें समितिके सदस्योंने मेरे विरुद्ध जो पूर्वाग्रह प्रकट किया है, उसे वे अपने मनसे निकाल देंगे।

९. समितिके वक्तव्यका अगला वाक्य इस प्रकार है :

> **यदि श्री गांधी और उनके अनुयायी यह वादा करें कि वे मन्दिरों और अन्य धार्मिक संस्थाओंको देशके मिश्रित विधान-मण्डलोंके हस्तक्षेपसे बचायेंगे तो हम उनके साथ पूरे दिलसे सहयोग करनेको तैयार हैं।**

मैंने बार-बार दिखाया है कि विधान-सभाके सामने जो दो विधेयक हैं उनका उद्देश्य मन्दिरों या अन्य धार्मिक संस्थाओंके मामलेमें हस्तक्षेप करना नहीं है। उनका उद्देश्य यह है कि कानूनी अदालतोंके अमुक निर्णयोंसे पूर्व जो स्थिति थी, जिससे कि समितिके वकील सदस्य परिचित हैं, उस स्थितिको यथावत स्थापित किया जाये। मैं अपनी ओरसे और अपने साथी कार्यकर्ताओंकी ओरसे यह आश्वासन दे सकता हूँ कि हमारा उद्देश्य धार्मिक मामलोंमें विधान-मण्डलोंसे हस्तक्षेप करानेका नहीं है, और यदि समिति अस्पृश्यता-निवारणके सामान्य आन्दोलनमें सहायता करे —— शास्त्रोंमें उल्लिखित स्वच्छताके हितमें वांछनीय ढंगकी अस्पृश्यताके विरुद्ध नहीं, बल्कि मेरी रायमें आजकलकी प्रचलित अस्पृश्यताके विरुद्ध, जो मेरी रायमें अवांछनीय ढंगकी अस्पृश्यता है —— तो समिति जल्दी ही देखेगी कि घबराने या सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है, और यदि कभी भी यह सिद्ध किया जा सके कि विधेयकोंमें कुछ चीजें ऐसी हैं जो धार्मिक स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप-स्वरूप हैं तो उस त्रुटिको बिना कठिनाईके दूर किया जा सकता है।

१०. समितिके वक्तव्यके अन्तिम दो वाक्योंमें जो भाव व्यक्त किये गये हैं मैं उनसे पूरी तरह सहमत हो सकता हूँ; क्योंकि जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, 'समाज, सभ्यता और समानताके पाश्चात्य आदर्शों' को आँख बन्द करके इस देशमें लागू करनेकी

मेरी कोई इच्छा नहीं है। पश्चिमी सभ्यताके विरुद्ध मैंने जितना लिखा है, और अपने लिखेके अनुसार आचरण करनेका मैंने जितना प्रयत्न किया है, शायद उतना और किसीने नहीं लिखा या किया है, और हिन्दूजाति-व्यवस्थाको नष्ट करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है, बशर्ते कि जाति-व्यवस्थाका अर्थ वर्णाश्रम धर्म हो। यही कारण है कि इस अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनको मन्दिर-प्रवेशके सिवा उन्हीं चीजों तक सीमित रखा गया है जिनका वर्णन समितिने किया है, और जहाँतक मन्दिर-प्रवेशका सवाल है, यह बात निर्णयात्मक रूपसे सिद्ध की जा सकती है कि मन्दिरोंमें जोर-जबरदस्तीसे प्रवेश करनेका कोई इरादा नहीं है, बल्कि समुचित और अनुशासित आन्दोलनके जरिये हिन्दू-लोकमतमें परिवर्तन लाकर मन्दिरोंको खुलवानेका इरादा है; और ऐसा मत-परिवर्तन शास्त्रोंकी भावनाके प्रतिकूल नहीं है।

११. समितिके वक्तव्यका मेरा जो विश्लेषण है, यदि समिति उसे निष्पक्ष भावसे पढ़ेगी तो मुझे आशा है, वह देखेगीके कि जिस किसीने यह वक्तव्य तैयार किया है उसने समितिके सदस्योंके मुँहसे ऐसे दावे करा दिये हैं जिन्हें तथ्योंसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। मुझे भेजा वक्तव्य हालाँकि उस वक्तव्यकी नकलमात्र है जो अखबारोंमें पहले ही भेजा जा चुका है, लेकिन वक्तव्यको पढ़नेपर मैंने देखा कि समितिकी स्वीकारोक्तिके अनुसार ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनपर समिति और सुधारकोंके मत एक हैं, और मतभेदोंपर जोर देनेके लिए जो दावे किये गये हैं वे बिल्कुल न सही तो अधिकांशमें कल्पित थे और उन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। मुझे लगा कि मैं समितिको एक खानगी पत्र लिखकर वक्तव्यकी स्पष्ट त्रुटियोंकी ओर उसका ध्यान दिलाऊँ, और देखूँ कि क्या हम एक समान मंचपर मिलकर इकट्ठा नहीं हो सकते।

१२. तथापि, यदि समिति ऐसा समझती है कि वक्तव्यमें किये गये सभी दावोंकी पुष्टि की जा सकती है और मैं आत्म-प्रवंचनाका शिकार हूँ तो अपनी भूल-सुधार कर मुझे खुशी होगी। यदि समितिको मेरे पत्रमें कोई अच्छाई दिखाई पड़े तो मैं उसे निमंत्रित करता हूँ कि वह मेरे साथ बातचीत करनेके लिए एक या एकाधिक प्रतिनिधि भेजे, ताकि हम साथ मिलकर काम कर सकनेकी सम्भावनाओंपर विचार कर सकें या कमसे-कम सिद्धान्तोंके सवालपर जो वास्तविक मतभेद हैं उन्हें ही समझ सकें। आपका जवाब न आनेतक मैं इस पत्रको अखबारोंको नहीं भेज रहा हूँ। लेकिन यदि समिति इस पत्रको निराशाजनक माने तो वह इसे प्रकाशित करानेको स्वतन्त्र है।

हृदयसे आपका,

अवैतनिक मन्त्रिगण
हिन्दू केन्द्रीय समिति
४५९ मिंट स्ट्रीट
पी० टी०, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२३२) से।

३९४. पत्र : रामजीको

१३ फरवरी, १९३३

भाईश्री रामजी,

आपका तार मिला। सरूपबहनका ससुरालका नाम विजयलक्ष्मी है। उसका बम्बईका पता है: मेहर मैनशन, लेबर्नम रोड, गामदेवी। मैंने उसे आपका तार और सुझाव भेजे हैं। वहाँ पहुँचनेके बाद उसे अपना खर्च न उठाने देना। उसे राजा और रानियोंसे मिलवाना। यदि कोई विनम्र स्वभावके सनातनी हों तो उनसे भी परिचय करवाना। आप उससे बहुत भाग-दौड़ न करवाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२०) से।

३९५. पत्र : एम० एस० अणेको

१३ फरवरी, १९३३

मैं सेनापति नहीं रहा। मैं तो मृतशरीर हूँ। मेरी तो सिविल मृत्यु हो गई है, इसलिए मैं सेनापतिके पदसे हट गया हूँ। इतना ही नहीं, मैं तो मामूली सैनिक भी नहीं रहा। तुम्हारे सेनापति और प्यादे सब बाहर हैं। जो लोग संशय करते हैं उनसे मैंने कहा — यो ध्रुवाणि परित्यज्य आदि।[1] इससे ज्यादा स्पष्टीकरण और कौन कर सकता है? सरकारने मेरे वचनोंका सही अर्थ किया है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४१

१. यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव च॥

३९६. पत्र : उर्मिलादेवीको

१३ फरवरी, १९३३

शरीरको आराम देनेका किसीको अधिकार नहीं है। आत्माका आराम हमेशा सम्भव है। हाँ, इसके लिए मनुष्यमें ऐसा संकल्प होना चाहिए। यही अनासक्तियोग है। जो व्यक्ति अनासक्त भावसे काम करता है वह शरीरसे थकता ही नही। यदि थक जाये तो तुरन्त सो जाता है और इस तरह अत्यन्त आराम पा लेता है। अनासक्तिके कारण आत्माको तो हमेशा आराम ही मिलेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३ पृष्ठ १४१

३९७. एक पत्र

१३ फरवरी, १९३३

पठान रखनेके विचारको तुम भूल गये होगे।[1] अपनी पत्नीके हाथों मार खाकर यदि मनमें रोष न आये तो हमें खुशीसे झूम उठना चाहिए। स्त्रियोंको मारनेवाले पति तो सैकड़ों मिलेंगे, जबकि दस हजार स्त्रियोंमें से एक भी ऐसी स्त्री नहीं मिलेगी जो पतिको पीटती हो अथवा पिटवाती हो। ...[2] भले ही इस अल्प संख्यावालियों में से है। तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसका उपयोग करना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४१

१. अपनी स्त्रीसे डरकर कि कहीं वह किरायेपर रखे हुए अपने आदमियोंसे, प्रेषी उसकी महिला-मित्रों और घरमें रखी हुई दो लड़कियोंकी पिटवाई न करवाये, प्रेषीने पठान रखनेका विचार किया था।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ नाम नहीं दिया गया है।

३९८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको[1]

१३ फरवरी, १९३३

यह पूछे जानेपर कि क्या अप्पासाहबके मामलेमें विशेष रूपसे अनुमति दी गई थी, श्री गांधीने उत्तर देनेसे इनकार कर दिया। लेकिन पता चला है कि भारत सरकारके नये आदेशोंके अनुसार ऊँची जातिके हिन्दुओंको स्वेच्छासे सफाईका काम करनेकी अनुमति तो दे दी गई है, लेकिन किसी कैदी विशेषको यह काम करने या न करने देनेकी अनुमति देनेका विवेकाधिकार जेल सुपरिंटेंडेंटको होगा।

यह पूछे जानेपर कि आप इस विषयको इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हैं, श्री गांधीने कहा कि अस्पृश्यताको हर स्थानसे समाप्त होना है, और जेलोंमें तो इसका खत्म होना सबसे ज्यादा जरूरी है। जेलोंमें अस्पृश्यता नहीं रह सकती, जहाँ कि कैदी लोग ऊँची जाति और नीची जातिके भेद-भावोंपर आग्रह नहीं कर सकते और जहाँ उन्हें हर प्रकारका सेवा-कार्य, जिसमें तथाकथित नीची जातियोंपर थोपी जानेवाली सेवा शामिल है, करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

यह पूछे जानेपर कि ऊँची जातियोंके जो लोग जेलोंके बाहर हैं क्या आप उन्हें भी भंगीका काम करनेकी सलाह देंगे, श्री गांधीने कहा :

मैं निश्चय ही ऊँची जातिवालोंसे अपेक्षा करूँगा कि वे स्वेच्छापूर्वक ऐसे सभी उपयोगी सेवा-कार्य करें, जो आज चन्द जातियोंके लोग ही करते हैं। यह विचार ही मेरे लिए घृण्य है कि संसारमें जो सेवा-कार्य सबसे अधिक आवश्यक है उसे अपमानजनक माना जायेगा या उससे पाप लगेगा। जब सफाई-सेवाको सम्मानजनक धन्धोंमें गिना जाने लगेगा तब हमारे गाँवोंकी शक्ल ही कुछ और होगी और जब हम ऐसा मानना बन्द कर देंगे कि आवश्यक सफाईका काम करनेके लिए हाथमें झाड़ू-पंजा और बाल्टी पकड़ना अपमानजनक है, तब हमारे शहरोंकी सड़कें आज जितनी गन्दी हैं, उतनी गन्दी नही होंगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-२-१९३३

१. अप्पासाहब पटवर्धनने रत्नागिरि जेलमें स्वेच्छासे भंगीका काम करनेकी अनुमति पानेके बाद अपना आंशिक अनशन समाप्त कर दिया था। गांधीजीको इसकी सूचना मिलनेके बाद उनसे एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने यह भेंट की थी।

३९९. तार : मदनमोहन मालवीयको

१४ फरवरी, १९३३

आपका पत्र मिला। मेरा सुझाव है कि किसी निश्चित निर्णयपर पहुँचनेसे पहले आप महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर बातचीत करनेके लिए यहाँ आयें। बम्बईमें किये गये संकल्पको देखते हुए मैं विधेयकोंको अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। ये विधेयक बाध्यकारी नहीं हैं लेकिन अन्त:करणकी स्वतन्त्रताको पुनर्स्थापित करते हैं। अखबारोंमें खबर छपी है कि आपने विधेयकोंका विरोध करते हुए मुझे पत्र लिखा है। क्या आप चाहते है कि इस समय अपने पत्रको प्रकाशित कर दिया जाये। आपके तारकी प्रतीक्षा है।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४००. पत्र : श्रीप्रकाशको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

तुम्हारा पत्र यद्यपि विवादमय है, फिर भी उसे पाकर मुझे खुशी हुई। मुझे कोई सन्देह नहीं है कि गाँवके शान्त वातावरणमें तुम शीघ्र ही अपना खोया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त कर लोगे और टूटी हुई हिम्मत फिर बँध जायेगी। तुम बूढ़े नही हो, लेकिन भावुक और अत्यन्त संवेदनशील स्वभावका होनेके कारण तुम तरह-तरहकी खराब बातोंकी कल्पना करते रहते हो। तुम्हें तो आगे अनेक वर्षोंतक सक्रिय जीवन जीना है और सेवा करनी है। बहुत-से लोग हैं जिन्हें तुम्हारी अपेक्षा कही अधिक शारीरिक कष्ट भोगने पड़े हैं और फिर भी मैं देखता हूँ कि वे आज शारीरिक दृष्टिसे पूर्णत: स्वस्थ है और उनके मनमें उमंग है। तुमने अपनी तरुणावस्थामें पढ़ा होगा कि "स्वस्थ शरीरमे स्वस्थ मस्तिष्क रहता है", और शरीरके स्वस्थ होते ही मनपर उसका स्वास्थ्यकारी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिए फिलहाल तुम्हें केवल अपना खोया हुआ स्वास्थ्य वापस पानेकी चिन्ता करनी चाहिए और परिवार, देश या दुनियाके बारेमें परेशान नहीं होना चाहिए। तुम इन तीनोंमें से किसीके भी

१. मालवीयजी के उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट १२।

निर्माता नहीं हो सकते, लेकिन इन तीनोंकी प्रगतिमें तुम अपना योगदान कर सकते हो। जीवनकी एक सच्ची योजनामें एककी प्रगतिसे सभीकी प्रगति होती है।

अपने चारों ओर घटित होनेवाली घटनाओंके बारेमें अपने अनुभव तुम मुझे बिल्कुल मत लिखो। वह मेरे लिए मुहरबन्द किताब-जैसी होगी। जिस अखबारके मुझे मिलनेकी इजाजत है उनसे जितना-कुछ मैं जान लूँ, जान लूँ, बस। और जैसा मेरा स्वभाव है, उनको जाननेकी मुझे कोई इच्छा भी नहीं है। एक कैदी कानूनी दृष्टिसे बाहरवालोंके लिए मरा-जैसा होता है, और यह ठीक भी है। यदि वह निषिद्ध प्रदेशमें ताक-झाँक करनेको लालायित होता है तो वह उस प्रेतात्माकी भाँति है, जो यमदूत द्वारा इस संसारसे उठा लिया जानेके बाद यदि संसारके साथ सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करे तो हमारे विश्वासके अनुसार दुराचरण करता है। जो कैदी एक प्रेतकी भाँति दुराचरण करता है वह जिस दुनियाको पीछे छोड़ आया है, उस दुनियाके साथ वास्तविक सम्पर्क स्थापित करनेमें विफल होता है, और इस व्यर्थकी चेष्टामें वह थोड़ा-बहुत सुख भी खो बैठता है, जो एक कैदीतकके हिस्सेमें पड़ता है। इस सुन्दर सत्यको समझकर मैंने प्रेत-जैसा दुराचरण कभी नहीं किया है।

अपने नामके हिज्जेके बारेमें तुमने जो-कुछ कहा है, उसे मैं ध्यानमें रखूँगा।[1] पिताजी ने मुझे बताया था कि तुम अपने नामके सही हिज्जेपर बहुत आग्रह रखते हो। अब तुमने उनके साथ जैसे-को-तैसा व्यवहार किया है और तुम्हारा कहना है कि आग्रही वह हैं, तुम नहीं। मैंने पिता-पुत्रके बीच फूटका बीज बो दिया है। अब तुम लोग आपसमें निपट लेना। मैं परवाह नहीं करता, क्योंकि मैं तो सुरक्षित बैठा हूँ और चूँकि तुम्हारी इजाजत है, इसलिए मैं अपने ही ढंगसे तुम्हारे नामके हिज्जे करता रहूँगा।

तुम्हारे स्वास्थ्यकी मुझे चिन्ता भले न हो, लेकिन शिवप्रसादके स्वास्थ्यके बारेमें मैं बहुत चिन्तित हूँ। अब मैं समझता हूँ कि मुझसे अपने स्वास्थ्यके बारेमें साप्ताहिक विवरण भेजनेका वादा करनेके बाद वह चुप क्यों है। मुझे गहरा दुःख है। मैं उसे लिखूँगा, लेकिन किसी भी सूरतमें तुम्हें जो समाचार मिले वह मुझे भेजते रहना, और बाहरी दुनियाकी खबर चाहे न देना, लेकिन अपनी प्रगतिके बारेमें मुझे लिखते रहना।

बच्चोंको हमारी याद दिलाना और उनको हम सभीका प्यार कहना। तुम्हें भी हम सब प्यार भेजते हैं।

बापू

[अंग्रेजीसे]

श्रीप्रकाश पेपर्स, फाइल नं० जी०-२; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. देखिए "पत्र : भगवानदासको", ३१-१-१९३३।

४०१. पत्र: पी० एन० राजभोजको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय राजभोज,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं देखता हूँ कि तुम जल्दबाजीमें हो। मैंने तुम्हारी योजना पर विचार किया है और मैंने सेठ जमनालालजी से भी चर्चा की है। मेरे खयालसे इस समय तुम्हें अपना पूरा ध्यान अपने होस्टलकी ओर लगाना चाहिए। यदि तुम उसे छात्रोंके लिए एक आदर्श घर बनाना चाहते हो तो निश्चय ही उसमें तुम्हारा बहुत काफी समय लग जायेगा, और फिर तुम उस रोजमर्राके कामसे थोड़ा अवकाश सार्वजनिक कार्योंके लिए चाहोगे। यदि तुमने एक आश्रम चलानेका भार ले लिया तो तुम्हें पूरी तरह उसीमें लग जाना होगा, और फिर उसके लिए ऐसी योग्यताएँ भी तुममें होनी चाहिए जो सम्भव है आज तुम्हारे अन्दर न हों। किसी भी सूरतमें, यह देखते हुए कि तुम्हारे अन्दर यह उच्चाकांक्षा है, मैं चाहूँगा कि जब तुम अवसर निकाल सको तो आश्रममें तीन महीने गुजारो और आश्रमका जीवन जीनेकी कोशिश करो। यह निश्चय ही तुम्हारे हर कार्यमें काम आयेगा।

मेरा निश्चित मत है कि तुम्हें 'दलित बन्धु' फिरसे शुरू करनेका विचार छोड़ देना चाहिए। 'हरिजन' के मराठी-संस्करणका जहाँतक सवाल है, मैं स्वयं उसका विचार कर रहा हूँ। तुमने देखा है कि मेरा नियम है कि ऐसा कोई पत्र न निकालूँ जो आत्म-निर्भर न हो सके। मेरे लिए यह इस बातकी कसौटी है कि जनता उसे चाहती है। बहुत विरल मामलोंमें ही कोई ऐसा पत्र निकाला जा सकता है जो शुरूमें घाटेपर चले।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत पी० एन० राजभोज
२०७ घोरपड़े पेठ
पूना २

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८९) से।

४०२. पत्र : टी० के० एस० राजनको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आपने पहले ही हरिजनोंके बीच काम शुरू कर दिया है। आप आजसे एक पखवाड़े बाद अपने कार्यके परिणामोंकी सूचना मुझे दीजिएगा और तब मैं बताऊँगा कि और क्या-कुछ किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० एस० राजन
सेलम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४१) से।

४०३. पत्र : के० वी० राधाकृष्ण शास्त्रीको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[१] मिला। धन्यवाद। मुझे खेद है कि आपने जो सलाह दी है उसे मैं नहीं अपना सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वी० राधाकृष्ण शास्त्री
वेपरी
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४२) से।

१. इसमें राधाकृष्ण शास्त्रीने लिखा था : "अच्छा हो कि आप अपनेको जेलसे रिहा करा लें . . . [और] . . . स्वदेशीके लिए कार्य करें।"

४०४. पत्र : मु० रा० जयकरको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मेरे पत्रका तुरन्त उत्तर देनेके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे खुशी है कि आपने वाइसरायको पत्र लिखा है।[1] मुझे कोई शक नहीं है कि उसका असर होगा। आपने विधान-सभामें जो विधेयक पेश करना चाहा था उसकी दो प्रतियाँ भेजनेके लिए भी धन्यवाद, और चूँकि आपने मेरा इतना लिहाज करके मुझे विधेयककी दो प्रतियाँ दी हैं, इसलिए मैं एक प्रति तुरन्त राजगोपालाचारीको भेज रहा हूँ, ताकि वह उसका जैसा उपयोग करना चाहें करें। मैं सम्भवतः उसका उपयोग 'हरिजन' के आगामी अंकके लिए करूँगा।[2] मुझे आशा है कि आपको पहले अंककी एक प्रति मिली होगी। यदि आपको उसे पढ़नेका समय मिला हो तो मैं आपकी आलोचनाकी कद्र करूँगा और अस्पृश्यताके सवालपर शास्त्रोंकी व्याख्याके बारेमें आपके विचार प्रकाशनार्थ चाहूँगा। यदि आप अपने विचार भेजनेका समय निकाल सकें तो संस्कृतके एक विद्वान और विधि-शास्त्रीके नाते उनका बहुत महत्त्व होगा।

हृदयसे आपका,

श्री मु० रा० जयकर
आश्रम
विंटर रोड
मलाबार हिल
बम्बई ६

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०२४३) से।

१. विधानसभा में अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंके बारेमें क्या कार्य-विधि अपनाई जाये, इसके विषयमें।
२. देखिए "अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार", १८-२-१९३३।

४०५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

साथमें श्री जयकरके उस विधेयककी नकल संलग्न है जिसे उन्होंने अपने समयकी विधानसभा में पेश करनेकी कोशिश की थी, और उनके पत्रकी नकल भी। उनके विधेयकका पाठ तुम्हारे कामका हो सकता है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४९) से।

४०६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र मिला।[1] मैं स्थिति समझता हूँ। हम तो केवल जो सम्भव है वही कर सकते हैं, और फिर जो परिणाम हो उसकी प्रतीक्षा करें। यह मनुष्यके वशके बाहरकी बात है। मुझे मालवीयजी का एक लम्बा पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने विधेयकोंको पेश करनेका एकदम विरोध किया है और किसी भी सूरतमें उनका आग्रह है कि विधेयकोंपर लोकमत लिया जाना चाहिए। मैंने उन्हें सुझाव दिया है कि किसी निर्णयपर पहुँचनेसे पहले वह यहाँ आयें और सारी चीजपर मेरे साथ बात कर लें। मैंने राजाजी को सलाह दी है[2] कि उन्हें उनके पास जाना चाहिए या देवदासको भेजना चाहिए। मुझे पता नहीं कि तुम्हारे जानेसे कोई फायदा है या नहीं। इसे मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ।

बंगालके बारेमें आशा है तुमने रामानन्द बाबूको लिखा मेरा पत्र[3] देखा होगा। और अब डॉ० अम्बेडकर भी मैदानमें आ गये हैं।

१. इसमें बिड़लाने लिखा था : "सरकार यदि मदद करे, तभी विधेयकको इस सत्रमें पेश करके एक प्रवर समितिके हवाले किया जा सकता है, और शिमलामें होनेवाले अगले सत्रमें उसे पास किया जा सकता है। यदि सरकार अड़ंगा लगायेगी तो विधेयक इस सत्रमें भी पेश नहीं हो सकता। लेकिन सरकार इससे आगे जानेको तैयार नहीं होगी। वह आग्रह करेगी कि विधेयकको लोकमत जाननेके लिए प्रचारित किया जाये . . .।"

२. देखिए "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

३. देखिए "पत्र : रामानन्द चटर्जीको", ११-२-१९३३।

मेरे अनशनकी सम्भावनाको लेकर लाभ उठानेके बारेमें मैं जो अनुभव करता हूँ उसे मैंने राजाजी को पत्र लिखकर बताया है और उन्हें तार[1] भी भेजा है। मेरी समझमें ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। अनशनकी बातको मनसे बिल्कुल ही निकाल देना चाहिए। इस प्रकार लाभ उठानेसे अनशनका जो-कुछ भी आध्यात्मिक मूल्य है, वह खत्म हो जाता है। अनशनकी सम्भावना है, इस ज्ञानसे तुम्हारे कार्यपर असर पड़े तो पड़े, लेकिन दूसरोंके कार्योंको प्रभावित करनेके लिए इस सूचनाका उपयोग तुम्हें नहीं करना चाहिए। यह तो नाजायज दबाव डालने-जैसा होगा। मेरी इच्छा है कि आगेसे तुम उसका जिक्र कहीं मत करो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४४) से।

४०७. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

१४ फरवरी, १९३३

आपका कार्ड मिला। उसमें आपने एक लम्बा पत्र लिखनेका जिक्र किया है। मैंने उसकी राह देखी, पर वह नहीं आया, इसीलिए यह लिख रहा हूँ। हरिजनोंमें शौचादिके नियमोंका पालन हो, इसके लिए निरन्तर प्रयत्न चालू हैं। मेरे काममें दूसरे लोग भले ही हिस्सा न बँटायें, पर आप क्यों नहीं लेते? और जो ग्राह्य है उसमें मदद क्यों न करें? मैं एक ऐसा आदमी हूँ जो संकल्प कर लेता है तो उसका पालन करता है — इस सम्बन्धमें तो आपके मनमें शंका नहीं है न? मेरे पूर्वजोंने इसी पटवारी-कुटुम्बके साथ अपना सम्बन्ध बनाया; और उसीका अनुसरण करते हुए स्वयं मैं भी आपका ऋणी हो गया और इसीलिए आपको एक आदरणीय बुजुर्ग मानता आया हूँ। इस पूज्यभावको मैं क्यों छोड़ूँ? और आप भी इसे छुड़वानेको क्यों उतारू हैं? क्या मतभेद हो जाता है इसीलिए? मतभेद तो मेरी बहनके साथ भी हैं? पर इसी कारण वह मेरी बड़ी बहन नहीं रह जाती, ऐसी बात नहीं है। ऐसा ही घनिष्ठताका सम्बन्ध पटवारियोंके साथ भी पिछली अर्ध-शताब्दीसे रहा है और उसे मैं अपनी ओरसे तो नहीं तोड़ूँगा।

छगनभाईको प्रणाम।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०२३९) से।

१. देखिए "च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा", १३-२-१९३३।

४०८. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१४ फरवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा कार्ड मिला। बिना किसी प्रकारकी उतावली किये योगाश्रमसे जितना कुछ लाभ लिया जा सके, लेना। मैंने ऐसे कई लोगोंको पछताते देखा है, जिन्होंने यह मान लिया कि थोड़े ही समयमें उन्होंने बहुत-कुछ हासिल कर लिया है। इसलिए उतावली करनेकी जरूरत नहीं। मदनसे उपचार करवानेकी जरूरत नहीं है, पर उसकी संस्था है या नहीं और [है तो] कैसी चलती है, यह जानकारी कर लेना ठीक होगा। यहाँ शनिवारको १२ बजे आना। यदि मथुरादासको आना हो तो वह भी साथमें आ जाये। दूसरे लोग भी, जिन्हें आनेकी इजाजत हो और जो आना चाहें, आ सकते हैं। मिलने आनेके सम्बन्धमें मेरे पास किसीका पत्र नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०८) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

४०९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१४ फरवरी, १९३३

मैंने डॉ० अम्बेडकरका वक्तव्य[1] बहुत ध्यानसे पढ़ा है और उससे मुझे जो दु:ख हुआ है उसे मैं छिपा नहीं सकता, लेकिन मैं यह भी स्वीकार करूँगा कि जैसा वक्तव्य उन्होंने दिया है वैसा वक्तव्य देनेका उन्हें पूरा अधिकार है। हरिजनोंको सदियोंसे घोर अन्याय झेलने पड़े हैं, और डॉ० अम्बेडकर तथा अन्य शिक्षित हरिजनोंको इन अन्यायोंका पूरा बोध है। मुझे तो आश्चर्य इस बातका है कि वह और ज्यादा कटु और क्रुद्ध क्यों नहीं हैं।

अत: उनकी स्थितिकी यह सफाई देनेके बाद मैं उस हदतक जानेको तैयार नहीं हूँ जिस हदतक डॉ० अम्बेडकर चाहते हैं कि मैं जाऊँ। उन्होंने मुझसे एक सीधा सवाल पूछा है और मुझसे उतना ही सीधा और स्पष्ट जवाब पानेके वह अधिकारी हैं।

१. देखिए परिशिष्ट १३।

मैंने स्वेच्छासे अपनेको हरिजन माना है और अपने इस सौभाग्यकी पात्रता अपनेमें लानेके लिए मैंने हरिजनोंकी भावनाओंकी गहराईमें उतरनेकी कोशिश की है। मैं उनके साथ रहा हूँ, उनके साथ मैंने भोजन किया है, और मेरे खयालोंमें और मेरी प्रार्थनाओंमें उनका सबसे पहला स्थान रहा है। ऐसा मैंने उनके साथ कोई अहसान करनेके खयालसे नहीं, बल्कि धार्मिक कर्त्तव्य मानकर किया है।

हिन्दू-घरानेमें पैदा होनेके कारण ही मैं हिन्दू नहीं हूँ, बल्कि मैं विश्वासपूर्वक और अपनी पसन्दसे भी हिन्दू हूँ। मैं उसे जैसा समझता हूँ, और उसकी जैसी मेरी व्याख्या है, उससे मुझे यहाँ और परलोक, दोनोंमें जो सान्त्वना मिलनी चाहिए, वह मिलती है और मिलेगी। हिन्दू-धर्म मेरी कई गुत्थियोंको हल कर देता है। लेकिन आज हिन्दू-धर्ममें जैसा आचरण किया जाता है, उसमें अस्पृश्यता-रूपी बहुत बड़ा कलंक भी मौजूद है — आज अस्पृश्यताके जो अर्थ समझे जाते हैं, उस अस्पृश्यताका कलंक अर्थात्, मनुष्य-मनुष्यके बीच भेद-भाव जिसमें एक मनुष्य सीढ़ीके सबसे ऊपरी सिरेपर बैठा हुआ है और दूसरा सबसे नीचे। यदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी पितासे पुत्रको मिलनेवाली श्रेष्ठता और हीनताका यह सिद्धान्त हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग है और उसमें तनिक भी परिवर्तनकी कोई भी सम्भावना नहीं है, तो डॉ० अम्बेडकरकी तरह ही मैं भी हिन्दू-धर्मका सदस्य नहीं रहना चाहता। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि अनन्तकालके लिए नरकवासका यह सिद्धान्त हिन्दू-धर्म और शास्त्रोंके लिए — जैसा कि मैं शास्त्रोंको समझा हूँ — बिल्कुल अनजानी चीजें हैं। मेरी कल्पनाके हिन्दू-धर्ममें श्रेष्ठता या हीनता-जैसी कोई चीज नहीं है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति या वर्ग अन्य वर्गोंके ऊपर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना चाहे तो उसके विरुद्ध मैं डॉ० अम्बेडकरके साथ मिलकर अन्ततक लड़नेको तैयार हूँ। अस्पृश्यताके विरुद्ध मेरी लड़ाई इस जघन्य सिद्धान्तके खिलाफ लड़ाई है। हिन्दुओंके दिलसे यदि अस्पृश्यताका विचार निकल जाये तो समझिए कि श्रेष्ठता और हीनताका विचार भी खत्म हो गया।

लेकिन जब डॉ० अम्बेडकर वर्णाश्रम-धर्मके ही विरुद्ध लड़ना चाहते हों तो मैं उनका साथ नहीं दे सकता, क्योंकि वर्णाश्रमको मैं हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग मानता हूँ। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि डॉ० अम्बेडकरकी कल्पनाके अनुसार जो वर्णाश्रम-धर्म है, उसका आज पालन किया जा रहा है, लेकिन वर्णाश्रम-धर्मकी मेरी कल्पना वैसी नहीं है। मेरी रायमें आज वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म, दोनों ही प्रसुप्तावस्थामें हैं, और अगर मुझसे पूछा जाये कि आज कौन-सा वर्ण सक्रिय रूपसे प्रचलित है तो मैं कहूँगा कि शूद्र-वर्ण, इसलिए नहीं कि शूद्र-वर्ण सबसे निचला वर्ण है बल्कि इसलिए कि यही एक वर्ण है जो बचा हुआ है। बेशक ज्ञान, शक्ति और धन एक तरहसे मौजूद हैं। लेकिन वर्ण-धर्मकी धार्मिक कल्पनाके अनुसार इन तीनोंका व्यक्तिगत उद्देश्य-साधनके लिए नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगतिके लिए उपयोग किया जाना चाहिए। आज जो एक चीज सभीके लिए खुली हुई है वह है सेवा, जो आध्यात्मिक उद्देश्यके लिए वर्णाश्रम-धर्ममें भी शामिल है। सेवाकी उस भावनाके जरिये आध्यात्मिक ज्ञानकी, उस ज्ञानकी रक्षा करनेवाली शक्तिको, और ज्ञान तथा शक्तिको जीवित रखनेवाले धनको

पुनरुज्जीवित कर सकना सम्भव है। तब जिन लोगोंके पास ज्ञान होगा, और जो उस ज्ञानका समाजके हेतु उपयोग करेंगे वे ब्राह्मण होंगे, समाजके हित उस शक्तिका प्रयोग करनेवाले क्षत्रिय होंगे और जो लोग समाजके हित धनोपार्जन करेंगे और धनका व्यय करेंगे वे वैश्य होंगे। वे लोग अपने अस्तित्वके लिए शूद्रोंपर निर्भर करेंगे, जोकि वास्तविक सेवाका साकार रूप होंगे। मेरे लिए सच्चा वर्णाश्रम यह है, और इस धर्ममें श्रेष्ठ या हीनका कोई सवाल ही नहीं है।

शूद्र-समाजके लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने कि ब्राह्मण लोग। प्रत्येकमें कमोबेश वे सभी गुण होंगे, और उन्हें वे सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो समाजके अन्य वर्गोको होंगे, लेकिन प्रत्येक वर्णके लोग अपने-अपने वर्णके लिए नियत की गई विशेष सेवाओंको सम्पन्न करेंगे। इस प्रकार इस कल्पनामें विशेषाधिकारोंका कोई सवाल नही है, केवल कर्त्तव्य और सेवा ही इसमें होगी।

मैं डॉ० अम्बेडकरसे कहूँगा कि वह अपनी कटुता और क्रोधका त्याग करें और अपने पूर्वजोंके धर्मकी खूबियोंको जाननेकी कोशिश करें। वह सवर्ण हिन्दुओंको जितनी चाहें उतनी गाली दें, लेकिन हिन्दू-धर्मका निष्पक्ष मनसे अध्ययन किये बिना हिन्दू-धर्मको गाली न दें, और यदि यह धर्म संकटकी इस घड़ीमें उनको सहारा न दे सके तो फिर वह खुशीसे इसको त्याग दें।

अब मन्दिर-प्रवेशकी बात लें। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ कि हरिजन लोग इसकी भीख नहीं माँग सकते, और न उन्हें माँगनी ही चाहिए। यह सवर्ण हिन्दुओंके ऊपर है कि वे या तो पूरे मनसे मन्दिर खोल दें या फिर बिल्कुल न खोलें। मैं फिर कहूँगा कि मन्दिरोंको खोलना सवर्ण हिन्दुओंका हरिजनोंके प्रति एक कर्त्तव्य है। मैं आशा करता हूँ कि डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्यका अभिप्राय यह नहीं है कि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशके अधिकारसे वंचित किया जाना खलता नहीं है, क्योंकि मैं व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि उनमे हजारों लोग ऐसे है जिनके लिए इस अधिकारसे वंचित किया जाना एक गम्भीर बात है। बेशक, उनकी आर्थिक और शैक्षणिक दशाओंमें सुधारकी जरूरत है। लेकिन यह सुधार मन्दिरोंमें प्रवेश द्वारा और उन सभी धार्मिक सान्त्वनाओंके जरिये ही सम्भव है जिसके कि आज सवर्ण हिन्दू अधिकारी हैं। यह धार्मिक समानता कानूनके जरिये भी प्राप्त नहीं की जा सकती। यह तभी प्राप्त हो सकती है जब सवर्ण हिन्दुओंका हृदय-परिवर्तन हो जाये। विधानसभा के सामने जो विधयक हैं उनका उद्देश्य जोर-जबरदस्तीसे मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए खोलना नहीं है, बल्कि सवर्ण हिन्दुओंके लिए इस बातको सम्भव बनाना है कि जब उनमें से अधिकांशका हृदय-परिवर्तन हो जाये तब वे मन्दिरोंके दरवाजे खोल सकें।

डॉ० अम्बेडकरने केवल दूसरे विधेयक (डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके नमूनेपर बनाये गये मन्दिर-प्रवेश विधेयक)की चर्चा करते हुए उसकी आलोचना की है। मेरी रायमें इस विधेयकका उद्देश्य सवर्ण हिन्दुओंकी भावनाकी कसौटी करना है। जब हृदय-परिवर्तन हो जायेगा तब मन्दिर खोल दिये जायेंगे। निश्चय ही डॉ० अम्बेडकर मन्दिरोंको जबरदस्ती खुलवाना नहीं चाहते। मैं एक क्षणके लिए भी ऐसा विचार नहीं

करता, जैसाकि वह करते हैं, कि आज सवर्ण हिन्दुओंका बहुमत हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलनेको तैयार नहीं है। गुरुवायूरकी जनमत-गणनाके महत्त्वको डॉ० अम्बेडकरने घटाकर बतानेकी कोशिश की है, लेकिन वह असंदिग्ध रूपसे सवर्ण हिन्दुओंमें हृदय-परिवर्तनके पक्षमें है। मदुरैमें हुई जनमत-गणनाका हाल ही में प्रकाशित परिणाम भी इसी दिशामें संकेत करता है। सवर्ण हिन्दुओंको अपनी राय व्यक्त करनेका अवसर देनेके बाद भी अगर गुंजाइश रहे, तो उस समय असन्तोष और निराशा व्यक्त करनेका काफी मौका रहेगा। मैं देखता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर पहले विधेयक (अस्पृश्यता-विधेयक)के बारेमें खामोश हैं। इसके अन्तर्गत धर्म-निरपेक्ष-कानून धार्मिक विश्वासोंको जो मान्यता देते रहे हैं वह खत्म हो जायेगी। मुझे आशा है कि उन्हें इस विधेयकपर कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन उन्हें आपत्ति हो अथवा न हो, सवर्ण हिन्दुओंको अपना एक कर्त्तव्य पूरा करना है अर्थात्, इन विधेयकोंको जल्दीसे-जल्दी पास करवाना है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १५-२-१९३३; **हिन्दुस्तान टाइम्स**, १५-२-१९३३ भी

४१०. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

दो मसले हैं जिनकी मैंने आपसे चर्चा की है और जिनके बारेमें आपने मुझे बताया है कि आपको कुछ करनेका अधिकार नहीं है।

पहला मामला भारत सरकारके आदेशोंके अनुसार मुझे अखबार देनेका है, और इन आदेशोंमें मुझे अस्पृश्यता-विरोधी प्रचार करनेकी विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। मुझे भेजे जानेवाले अखबारोंके ऊपर आप जो नियंत्रण बरतते रहे हैं उनके बावजूद अभीतक मैं किसी प्रकार अपना काम चलाता रहा हूँ। इन अखबारोंके न मिलनेके कारण बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें मेरे ध्यानमें नहीं आ पाती और इसकी तरफ मैंने आपका ध्यान पहले ही दिलाया है। आपके विभागके कर्मचारी कितने ही सावधान क्यों न हों, वे हमेशा इस बातका पूरा निश्चय नहीं कर सकते कि उन्हें अस्पृश्यतासे सम्बन्धित सभी कतरनें मिल जायें। कुछ अखबार, जैसे डॉ० अम्बेडकरका अखबार, ऐसे हैं जिन्हें मेरा पूरी तरह और सावधानीके साथ देखना आवश्यक है। भारत सरकारके आदेशोंका जो अर्थ मैंने समझा है, उसके अनुसार पत्रों और अखबारोंको मुझे तुरन्त दिये जानेपर कोई प्रतिबन्ध लगानेका विचार उनमें नहीं है। यह स्पष्ट है कि ऐसी चीजें यदि मुझे ठीक समयपर नहीं मिलतीं तो मैं प्रचार-कार्य नहीं चला सकता। इसलिए मेरा अनुरोध है कि मेरे लिए आनेवाले सभी ऐसे अखबार, जो निषिद्ध साहित्यकी श्रेणीमें नहीं आते, आनेके साथ ही मुझे दे दिये

जायें। बेशक, उनसे मेरा काम पूरा होते ही उन्हें मुझसे वापस ले लिया जा सकता है। यह आश्वासन दोहराना अनावश्यक है कि जिस एक उद्देश्यकी तरफ मेरी शक्ति और ध्यान इस समय लगा हुआ है, उसके अलावा इन अखबारोंका मेरे लिए कोई उपयोग नहीं है। इसलिए इस मामलेमें यदि आप शीघ्र ही आवश्यक निर्देश प्राप्त कर सकें तो मैं आपका आभारी होऊँगा।

दूसरे मामलेका सम्बन्ध नये साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' से है, जो हरिजन सेवक संघके हितमें पूनासे निकाला जा रहा है। स्वभावतः उसकी नीतिका नियन्त्रण मैं कर रहा हूँ और इसे मेरी प्रेरणापर प्रकाशित किया जा रहा है। अतः इसे अनन्य रूपसे केवल अस्पृश्यता-सम्बन्धी विषयोंकी ही चर्चा करनी होती है, और इसीलिए यह एक सामाजिक और धार्मिक साप्ताहिक है। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या इसकी प्रतियाँ मेरे साथियों और साथी-कैदियोंको, चाहे वे 'बी' क्लासके कैदी हों या 'सी' क्लासके हों, भेजी जा सकती हैं अथवा नहीं। मेरे अनुरोधपर यदि आप कृपापूर्वक सरकारी निर्देश मँगा सकें तो मैं आभारी होऊँगा। मैं सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर दिलाना चाहता हूँ कि १९२२ में जब मैं इस जेलमें एक दण्डित कैदीके रूपमें भर्ती हुआ था और जब भोजन और पाखाना-पेशाबघरकी सुविधाओंको छोड़कर मुझे अन्य ऐसी कोई सुविधा नहीं दी गई थी जो अन्य कैदियोंको नहीं प्राप्त थी तब भी मुझे शुद्ध सामाजिक धार्मिक ढंगके अखबारोंको प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं थी। अतः मैं आशा करता हूँ कि मेरे मित्र, साथी कैदियोंको 'हरिजन' देनेमें इस बार भी कोई कठिनाई नहीं होगी।

और अन्तमें, यदि आप श्रीमती मीराबहन (स्लेड) और अप्पासाहब पटवर्धनके बारेमें मेरे पत्रों[1] पर सरकार द्वारा तुरन्त ध्यान दिये जानेके लिए सरकारको मेरा धन्यवाद कहेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (४), भाग २, पृष्ठ १२३ से

१. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", ६ फरवरी और ११ फरवरी, १९३३।

४११. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे सुन्दर पत्र[1] के उत्तरमें अच्छा पत्र लिखनेकी आशासे मैं तुम्हें लिखना टालता गया। पर अब अधिक देर नहीं कर सकता। रोज काम बढ़ रहा है। इसलिए मुझे अभी जैसा भी लिखा जा सके, लिखना होगा। पता नहीं तुम्हें 'हरिजन' जैसा निर्दोष पत्र भी दिया जाता है या नहीं। मैं तो इस आशासे भेज रहा हूँ कि तुम्हें मिल जाता होगा। यदि मिलता हो तो मुझे अपनी राय लिखो। सनातनियोंके विरुद्ध लड़ाई दिन-ब-दिन दिलचस्प होती जा रही है। साथ ही अधिकाधिक कठिन भी। एक अच्छी बात यह है कि वे दीर्घकालीन मानसिक आलस्यसे जाग उठे हैं। मुझपर जिन गालियोंकी बौछार ये कर रहे हैं वे अजीब ताजगी लानेवाली हैं। दुनिया-भरकी बुराइयाँ और भ्रष्टाचार मुझमें मौजूद है। मगर तूफान ठंडा हो जायेगा, क्योंकि मैं अहिंसाकी, अप्रतिशोधकी, रामबाण दवाका प्रयोग कर रहा हूँ। मैं गालियोंकी जितनी ही उपेक्षा करता हूँ उतनी ही वे भयंकर होती जा रही हैं। परन्तु यह तो दीपकके आसपास पतंगेका मृत्यु-नृत्य है। बेचारे राजगोपालाचारी और देवदासकी भी अच्छी खबर ली जा रही है। लक्ष्मीकी सगाईको बीचमें घसीटकर उस बारेमें गन्दे आरोप गढ़े जा रहे हैं। अस्पृश्यताका समर्थन इस तरह किया जा रहा है!

घरेलू मुलाकातके तौरपर इन्दु[2] और अस्पृश्यताके बारेमें सरूप और कृष्णा[3] मुझसे कुछ दिन पहले मिली थीं। इन्दुका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और वह बिल्कुल प्रसन्न दिखाई देती थी। सरूप अस्पृश्यता-निवारणके लिए काठियावाड़ और गुजरातमें थोड़े दिनका दौरा कर रही है और कृष्णा इलाहाबाद जानेवाली थी। देवदास दिल्लीमें है और राजाजी की, जो अस्पृश्यता-निवारणके लिए कानून बनवानेमें विधान-सभाके सदस्योंसे सम्पर्क कर रहे हैं, मदद कर रहा है। हमारा समय पूरी तरह अस्पृश्यताके काममे लग रहा है। सरदार वल्लभभाई बाहर जानेवाले पत्रोंकी बढ़ती हुई संख्याके लिए सारे लिफाफे बनाकर देते हैं। वे समाचारपत्रोंको परिश्रमसे पढ़ते हैं और अस्पृश्यताके विषयमें और न जाने कहाँ-कहाँकी छोटी-छोटी बातोंकी जानकारी खोद-खोदकर निकाल लाते हैं। विनोदके भी वह अक्षय भण्डार हैं। मुआयनेका दिन उनके लिए वैसा ही होता है जैसा और कोई दिन। वह कभी कोई माँग नहीं करते

१. देखिए परिशिष्ट १४।

२. इन्दिरा गांधी।

३. कृष्णा हठीसिंह।

मेरा कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता जब मैं कोई-न-कोई माँग न रखूँ। पता नहीं, हम दोनोंमें से कौन अधिक सुखी है। मुँह फुलाये बिना मैं अपनी हारको सहन कर सकूँ तो मै भी उनकी तरह सुखी क्यों नहीं हो सकता!

तुम्हारे एकान्त और तुम्हारे अध्ययनसे हम सबको ईर्ष्या होती है। यह सच है कि हम लोगोंके ऊपर जो भार है उसे खुद हम लोगोंने ही ओढ़ा है, या यों कहें की उसके लिए मै ही जिम्मेदार हूँ। मैंने वल्लभभाईकी संस्कृतका अच्छा पंडित बननेकी सारी आशा चूर-चूर कर दी है। वह हरिजन-कार्यकी उत्तेजनाके बीचमें अपने अध्ययनपर ध्यान नहीं जमा सकते। बंगालके फुटबालके खिलाड़ी जैसे अपने खेलमें मजा पाते है वैसे ही वल्लभभाई चटपटी आलोचनाका आनन्द लेते हैं। महादेव तो, जैसा शौकतने वर्णन किया था, टोलीके हम्माल बने हुए हैं। कितना भी काम हो, वह उसे ज्यादा नहीं मानते, न कोई काम ऐसा है जो वह कर न सकते हों। छगनलाल जोशी अभी पैर जमानेमें लगे हुए हैं। लेकिन मजेमें है। बसन्त आ रहा है, उनपर भी बहार आये बिना नहीं रह सकती। वैसे हमारी टोली काफी सुमेल ढंगकी है। हम खेलके नियमोंका पालन करते हैं और वर्णाश्रम-धर्मके नियमोंका कठोर पालन करनेवाला एक खासा भद्र परिवार बने हुए हैं। इससे डॉक्टर अम्बेडकर और मेरी मिली-भगत शीघ्र ही सनातनियोंके लिए नई सनसनीका सामान मुहैया कर देगी। मेरी परेशानी बढ़ जायेगी, परन्तु विश्वास रखो कि वह मेरी मोल ली हुई नहीं होगी। अब मेरे पास इतना ही कहनेका स्थान और समय रह गया है कि हम सबको आशा है कि तुम्हारी चतुर्मुखी प्रगति बराबर जारी होगी।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृष्ठ १०९-१०

४१२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

त्रावणकोरके ईसाई पुलाया लोगोंके बारेमें आपका इसी ९ तारीखका पत्र मिला। यदि वे अनुपगम्य हैं तो मैं नहीं जानता कि हम उन्हें अपनी सेवासे वंचित कर सकते हैं या नहीं। आखिरकार, यह सेवा है क्या? ईसाई अनुपगम्योंको हम स्कूलोंमें दाखिला देनेसे मना नहीं कर सकते और न कुओंका प्रयोग करनेसे ही मना कर सकते हैं। फिर, हम उनके साथ उसी कुएँका इस्तेमाल करनेसे इनकार नहीं कर सकते। लेकिन मन्दिरोंके मामलेमें हमें रेखा खींचनी पड़ेगी। इसलिए आप कह सकते हैं कि ईसाई अनुपगम्योंको उन सभी नागरिक सेवाओंको प्राप्त करनेका अधिकार होगा,

जिसके अधिकारी अन्य अनुपगम्य लोग हैं। जब व्यक्तिगत छात्रवृत्तियाँ देनेका सवाल आयेगा तव कठिनाई हो सकती है। लेकिन मैं उस कठिनाईकी पहलेसे ही कल्पना करके उसके विरुद्ध कोई प्रबन्ध करनेके पक्षमें नहीं हूँ। जब कठिनाई आयेगी तब हम उससे निपट लेंगे। तथापि, यह सब मेरा निजी दृष्टिकोण है और तुम्हें जो ठीक लगे वैसा करना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११०) से।

४१३. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे इसी ११ तारीखके पत्रके संदर्भमें, श्री साइमन[1] के पत्रकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनसे निश्चयपूर्वक पूछना चाहिए कि क्या उनकी देखरेखमें काम करनेवाले नौजवान शुद्ध सेवाकी भावनासे अस्पृश्योंके बीच ईमानदारीसे काम कर सकते हैं और उनके मनमें अस्पृश्योंको ईसाई बनानेकी लेशमात्र इच्छा तो नहीं होगी। उनकी आकांक्षा यह होनी चाहिए कि वे अस्पृश्योंको ज्यादा बेहतर हिन्दू और समाजका ज्यादा बेहतर सदस्य बनायें। तुम्हें श्री साइमनसे साफ कह देना चाहिए कि जबतक हमें यह गारंटी नहीं दी जायेगी तबतक हम गैर-हिन्दू संस्थाओंका उपयोग करनेका प्रयोग नहीं कर सकते। यदि श्री साइमन इन शर्तों पर काम करना स्वीकार करते हैं तो उनको काम सौंपा जाये और उनसे कहा जाये कि वह कमसे-कम हर पखवाड़े तुम्हें अपने कामकी रिपोर्ट दें, और साथ ही [हरिजन सेवा] संघकी स्थानीय शाखासे सम्पर्क रखें। सेंट स्टीफेन्स कॉलेजके ईसाई मित्रोंसे तुम्हें यह भी पता चलाना चाहिए कि श्री साइमनके बारेमें वे क्या जानते हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११११) से; एस० एन० २०२५२ से भी

१. एम० आर० साइमन, लन्दन-स्थित चिल्ड्रेन्स स्पेशल सर्विस मिशनके प्रतिनिधि। उन्होंने ठक्कर बापासे अनुरोध किया था कि वह अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्यके लिए उनके मिशनके कुछ लोगोंकी सेवाएँ स्वीकार करें।

४१४. पत्र : हरदयाल नागको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय हरदयाल बाबू,

मुझे आपका प्रमुदित पत्र मिला। मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी सामर्थ्य-भर रोग[1] से संघर्ष कर रहे हैं, और हालाँकि आप परिवारके सबसे वृद्ध सदस्य हैं लेकिन आपमें अभी भी इस रोगसे लड़नेकी पर्याप्त ताकत है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२५५) से।

४१५. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ जेठाभाई, जीवराम और बुधाभाईके लिए पत्र भेज रहा हूँ। साथ ही जीवरामका लिखा पत्र भी सब लोगोंके पढ़नेके लिए भेजता हूँ। इसमें उसकी भावना के दर्शन होते हैं और इस बातके भी कि उड़ीसाका काम वह कितनी भक्तिपूर्वक कर रहा है। पत्रको लौटानेकी जरूरत नहीं है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. अस्पृश्यताका रोग।

४१६. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

१५ फरवरी, १९३३

चि० जानकीबहन,

जमनालालका अभिप्राय यही है कि ओमको[1] अलग करना ही चाहिए। उनका अगला सुझाव यह है कि ओमको वारुताईके पास रख देना। वारुताई ठीक तरह देखभाल करनेवाला है। लेकिन अगर उसमें तुम्हें आपत्ति हो तो अपनी इच्छाके अनुसार तुम उसे आश्रममें अथवा शारदा-मन्दिरमें रखो। इन तीनोंमें से एक जगह तुरन्त पसन्द करके और आवश्यक प्रबन्ध करके मुझे खबर भेजना। तीनोंमें वारुताईवाली जगह तुम्हें ज्यादा अच्छी लगेगी, ऐसा जमनालालका खयाल है और उन्हें खुदको भी यह अधिक अच्छी लगती है।

जमनालाल केसरबहनके बारेमें तो जुदा कर देनेका प्रबन्ध यहाँसे निकलनेपर तुरन्त करनेका विचार रखते हैं।

ऐसी बातोंमें कर्त्तव्य-पालन करनेके विषयमें ढील न करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९१०) से।

४१७. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१५ फ़रवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

आपका तार मिला। सरूपरानी जवाहरलालकी माताजी नहीं, उसकी बहन सरूप बहन है जो रणजीत पंडितकी पत्नी है और बम्बईमें रहती है। पंडित राजकोटके हैं, इसलिए सरूपबहन काठियावाड़ी कही जाये। उसका ससुरालका नाम विजयलक्ष्मी है। वह १९ को भावनगर पहुँचेगी। रामजी भाईसे मिल लेना और अपना कार्यक्रम अवश्य सम्पन्न करना। सरूपबहनका पता है मेहर विला, लेबरनम रोड, गामदेवी, बम्बई। 'हरिजन' के लिए यदि गुजरातकी प्रगतिका साप्ताहिक अहवाल भिजवाया जा सके तो भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९६२) से।

१. जानकीबहनकी कन्या, उमा।

४१८. पत्र : रुक्मिणीदेवी और बनारसीलाल बजाजको

१५ फरवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरे एक कार्डमें सवाल पूछे गये हैं, उसका जवाब रह गया है। चरखासंघ के लिए जो सूत काता जाता है उसे कोई दूसरा उतारे और गुंडी बनाये तो यह यज्ञका भंग हुआ तो नहीं माना जायेगा। पर जितना गुड़ डाला जायेगा, उतना ही मीठा होगा, इस न्यायके अनुसार सूतके पीछे जितनी मेहनत उठाई जायेगी, यज्ञ उतना ही परिपूर्ण माना जायेगा। चरखा एक व्यक्ति तैयार करे, सूतको नमी दूसरा दे, गिनती तीसरा करे, गुंडी चौथा बाँधे और मैं केवल कातूँ तो सब यज्ञमें तो गिना जायेगा, पर ३३$\frac{1}{3}$ उत्तीर्णांक-भर ही तो मिलेंगे।

राधाकी नाव कमजोर तो है ही। किनारे लग जाये तो ठीक।

चि० बनारसीलाल,

जमनालालजी मजेमें हैं। जानकीबहन आ गई हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१५३) से।

४१९. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

आपके दोनों पत्रों[1] और तारके लिए धन्यवाद। मैं असेम्बलीके सदस्योंसे अपने ढंगसे सम्पर्क कर रहा हूँ। हालाँकि मैंने वाइसरायको लिखा है[2], लेकिन उनका कोई

१. २ और ११ फरवरीके। अपने २ फरवरी, १९३३ के पत्रमें डॉ० सप्रूने अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके प्रति सहानुभूति और समर्थन व्यक्त करते हुए लिखा था: "...कि इतने नरम विधेयकके भी इस विधान-सभामें, जैसीकि वह इस समय गठित है, पास होनेकी सम्भावना नहीं है। इस बीच मेरी सलाह है कि आप अपने हस्ताक्षरसे एक अपील विधानसभा के सदस्योंसे करें कि वे विधेयकको आगे बढ़ायें। मुझे भय है कि विधेयकको प्रचारित करवानेकी एक कोशिश की जायेगी जो मेरी रायमें विधेयकको कुछ समयके लिए ताकपर धर देनेके समान होगा। ऐसा माना जा सकता है कि रूढ़िवादी लोग विधेयकका विरोध करेंगे। मेरी रायमें संघर्ष अवश्यम्भावी है।" ११ फरवरीके उनके पत्रके अंशोंके लिए देखिए "अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार", २५-२-१९३३।

२. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।

जवाब नहीं आया है। राजगोपालाचारी और घनश्यामदास विधानसभा के सदस्योंकी रायको संघटित करनेके लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। मैं देखता हूँ कि आपने केवल एक ही विधेयकपर[१] विचार किया है। मैं चाहूँगा कि आप दूसरेपर भी विचार करें। यह एक बहुत छोटा-सा विधेयक है। वह भी विधानसभा के सामने है, और विधानसभा में पेश करनेकी अनुमति दोनोंमें से इसीको पहले मिली थी। इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि यदि विचार किया जाना है तो विधानसभा के चालू सत्रमें पहले इसीपर विचार किया जायेगा।

आपकी सुविधाके लिए मैं राजगोपालाचारीकी पुस्तिका भेज रहा हूँ, जिसमें दोनों विधेयक दिये हुए हैं। यदि यह पुस्तिका आपको इस पत्रके साथ-ही-साथ न मिले तो शायद आप प्रथम विधेयकको 'लीडर' के कार्यालयसे मँगानेमें बुरा नहीं मानेंगे।

मेरा सुझाव है कि आप वाइसरायको पत्र लिखें। श्री जयकरने मेरे अनुरोध पर उन्हें लिखा है।

मेरे स्वास्थ्यके बारेमें आपने पूछताछ की, इसके लिए धन्यवाद। मैं बिल्कुल चुस्त-दुरुस्त हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५८८)से। गांधी-सप्रू करेस्पांडेंस से भी; सौजन्य : कलकत्ताका राष्ट्रीय पुस्तकालय

४२०. पत्र : एल० आर० पांगारकरको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे पास जितना समय था उसकी सीमामें मैंने आपको ज्यादासे-ज्यादा विस्तृत उत्तर भेजनेका प्रयत्न किया था।

मैं आपके इस सुझावका पूरी परह अनुमोदन करता हूँ कि जिस प्रकार अन्य लोग जो-कुछ जानना चाहते हैं, उसे वे ईश्वरसे और शास्त्रोंसे प्राप्त करते हैं उसी प्रकार मुझे भी करना चाहिए। कुछ लोग केवल भयंकर भूलें करके ही सीखते हैं। मैंने अक्सर अपनेको वैसा करते पाया है, लेकिन उसका मुझे खेद नहीं है, और खेद न होनेका सीधा-सादा कारण यह है कि जिस समय मैंने भूलें कीं, उनका मुझे कतई भान नहीं था। मैं सावधान रहनेकी कोशिश करता हूँ, लेकिन कितना ही सावधान क्यों न रहूँ, जबतक मैं पूर्ण मानव नहीं बन जाता तबतक अनजानेमें होनेवाली भूलोंसे मै नहीं बच सकता। लेकिन भूलोंका ज्ञान होते ही जबतक मुझमें

१. अस्पृश्यता विषयक रंगा अय्यरका विधेयक।

उन भूलोंको स्पष्ट रूपसे और पूरी तरह स्वीकार करनेका माद्दा बना हुआ है, तबतक यह मेरे लिए अच्छा है और मेरी भूलोंसे प्रभावित होनेवालों तकके लिए अच्छा है। अगर भूल करनेके भयसे मैं कार्य करनेमें हिचकूँ, तब तो मैं सत्यतक पहुँचनेमें कभी सफल ही नहीं होऊँगा।

मैं आग्रहपूर्वक फिर कहता हूँ कि विधानसभा के सामने जो विधेयक है, उनका उद्देश्य किसीको भी अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध कार्य करनेके लिए विवश करनेका नहीं है। मैं आपके दृष्टिकोणको अच्छी तरह समझता हूँ। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपना दृष्टिकोण आपको नहीं समझा पा रहा हूँ। इसलिए मैं आपसे यही कह सकता हूँ कि आप मेरे प्रति सहिष्णुतासे काम लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० आर० पांगारकर
नासिक सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६२) से।

४२१. पत्र : डंकन ग्रीनलेसको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आश्चर्य ही कर रहा था कि मेरे पत्रका[1] क्या हुआ कि तभी आपका इसी १० तारीखका पत्र मुझे मिला। निश्चय ही जिन लोगोंके साथ आपको काम करना है, जबतक आप उन्हें नहीं जान जाते और वे आपको नहीं जान लेते, तबतक प्रतिज्ञाका सवाल नहीं उठता।[2] आशा है, आपको अपना बक्सा मिल गया होगा। मैं आपके आगमनकी प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६३) से।

१. देखिए "पत्र : डंकन ग्रीनलेसको", १-२-१९३३।

२. ग्रीनलेसने आश्रममें जाकर रहनेके अवसरका स्वागत किया था, बशर्ते कि दोनों पक्ष उनके आश्रम-आवासको प्रयोगके रूपमें लें और भविष्यके बारेमें किसी भी पक्षकी ओरसे कोई वादा न हो।

४२२. पत्र : बी० आर० अम्बेडकरको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० अम्बेडकर,

आपके इसी १२ तारीखके पत्र और उसके साथ संलग्न आपके वक्तव्यके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे एसोसिएटेड प्रेससे कोई चीज नहीं मिली, लेकिन मैंने उसे दैनिक अखबारमें देखा। आशा है, आपने मेरा उत्तर[1] देखा होगा। काश कि आप मेरा दृष्टिकोण समझ सकते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६५) से।

४२३. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१६ फरवरी, १९३३

'न्यूज क्रॉनिकल' में छपे इस वक्तव्यपर टीका करते हुए कि अस्पृश्यता एक ऐसी बुराई है जिसका मात्र कानून बनाकर उन्मूलन करना असाधारण रूपसे कठिन है, श्री गांधीने कहा :

जब भारतमें ही ऐसे बहुत-से लोग हैं जो हठपूर्वक यह माननेसे इनकार करते हैं कि दोनों विधेयकोंमें बाध्यकारिता-जैसी कोई चीज नहीं है, तब 'न्यूज क्रॉनिकल' के लेखकने जिस अज्ञानका परिचय दिया है उसपर मुझे आश्चर्य नही होता। अगर अस्पृश्यताको कानूनके जरिये समाप्त करनेका कोई विधेयक होता, तब मैं कठिनाई समझ सकता था।

फिर आगे लेखकने पूछा है कि सरकारने मानवताकी जिस भावनासे बाध्य होकर सती-प्रथाको समाप्त किया था, क्या अस्पृश्यताको समाप्त करना भी उसे उसी प्रकार अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए। निश्चय ही सती-प्रथा उन्मूलन कानून और वर्तमान विधेयकोंके बीच तुलना करना अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। सती-प्रथा एक कानूनन दण्डनीय अपराध है, जबकि वर्तमान विधेयकोंमें अस्पृश्यताकी कानूनी मान्यता समाप्त की गई है। मेरी रायमें जब लोकमत किसी सुधारके लिए तैयार हो गया हो, उस समय उन सुधारोंको अपनानेमें सुधारकोंकी सहायता करना कर्त्तव्य है। ब्रिटिश

१. देखिए "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।

पत्रकारोंको सुधारकोंकी सही स्थितिको स्वीकार करना चाहिए। सुधारक लोग बाध्यकारी उपायोंसे सुधार नहीं लागू करना चाहते। इन विधेयकोंको पास न करना सुधारोंकी प्रगतिके मार्गमें रोड़ा अटकाने-जैसा होगा —— वे सुधार जिन्हें जबरदस्त कठिनाइयोंके बावजूद सुधारक लोग लागू करानेके लिए प्रयत्नशील हैं।

यह पूछे जानेपर कि विधेयकोंको सरलतासे पास करानेके लिए विधानसभा के सदस्योंको राजी करनेके लिए आप कुछ कर रहे हैं या नहीं, श्री गांधीने कहा कि मैंने अपना मामला सदस्योंके सामने रखने, और प्रत्येक सदस्य की सहायता प्राप्त करनेके लिए —— हिन्दू सदस्योंसे विधेयकोंका समर्थन करने, गैर-हिन्दू सदस्योंसे विधेयकोंपर इसी सत्रमें विचार करानेके लिए रास्ता आसान बनानेके लिए —— श्री राजगोपालाचारीको वहाँ भेजकर सबसे कारगर कदम उठाया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-२-१९३३

४२४. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१७ फरवरी, १९३३

चि० गंगाबहन,

मैंने तुम्हें एक पोस्टकार्ड लिखा था। उसके उत्तरकी आशा कम ही थी; कारण कि दूसरोंको लिखनेसे तुम्हें जितने पत्र लिखनेका हक है वह तुरन्त खत्म हो जाता। तुम्हारी खबर तो मुझे मिलती ही रहती थी। अब जेलसे छूटनेपर मुझे पूरा हाल लिखकर भेजना। मैं और सारे साथी सानन्द हैं। लेकिन यह सब समाचार तुम्हें मीराबहनको लिखे पत्रसे[1] मालूम होंगे।

यहाँकी [जेलकी] बहनोंको मैं लिखता ही रहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७९६) से; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१. देखिए अगला शीर्षक।

४२५. पत्र : मीराबहनको

१७ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

मैं यह पत्र शुक्रवारको प्रातः सवा तीन बजे शुरू कर रहा हूँ। मालूम होता है अब मुझे तुम्हारा साप्ताहिक पत्र बुधवारको सुबह न मिलकर गुरुवारको तीसरे पहर मिला करेगा। यह मेरे लिए अधिक अनुकूल है। कारण, बुधवार और गुरुवारको मेरे पास निजी पत्रोंके लिए वक्त नहीं रहता। ये दोनों दिन 'हरिजन' के लिए चाहिए। गुरुवारको शामके ६ बजेतक सब सामग्री मेरे हाथोंसे निकल जानी चाहिए। इसलिए यद्यपि और दिनों भी मुझे 'हरिजन' के लिए लिखना तो पड़ेगा, मगर बुधवार और गुरुवार तो पूरी तरह उसीके लिए लगाने पड़ेंगे। यह लगभग पहले-जैसी ही स्थिति है।

मैंने सोचा था कि शायद अतिरिक्त टिप्पणी लिखनी पड़ेगी, परन्तु नहीं लिखी और असाधारण प्रयत्नके बगैर लिख भी नहीं सकता था।

तुम्हारे पत्रसे ज्ञात हुआ कि तुम्हें रातको तालेमें बन्द नहीं किया जाता। इस आजादीका तुम्हें पूरा लाभ उठाना चाहिए। तुम्हारे लिए जिस उत्तम भोजनकी जरूरत है, वह है तमाम दिन और तमाम रात ताजी हवा। जैसा मुझे मालूम हुआ है, अगर तुम्हारे चौकमें बहुतसे नीमके पेड़ हैं तो तुम्हें दिनभर खुलेमे काम करना चाहिए। ओस पड़े या न पड़े, रात-भर तुम्हें सीधे आकाशके नीचे सोना चाहिए, पेड़ोंकी छाया तकमें नहीं। तारोंके साथ अत्यन्त सीधा सम्पर्क निहायत जरूरी है। यदि शरीर पैरोंसे गर्दनतक, और जरूरत हो तो सिरतक अच्छी तरह ढका हुआ हो और जबतक होंठ बिल्कुल बन्द हों और तुम्हें यकीन हो कि तुम नाकसे ही साँस ले रही हो, तबतक ओससे कोई हानि नही होगी। इसके इत्मीनानके लिए सोते समय चित लेटकर और पैर पूरी तरह फैलाकर तुम्हें कुछ गहरी साँसें ले लेनी चाहिए। इस तरह साँस लेनेके लिए तुम्हें कुछ निश्चित समय, हर बार लगभग पाँच मिनट अलग निकाल रखने चाहिए। बादमे हमेशा नाकके जरिए साँस लेनेकी तुम्हारी आदत पड़ जायेगी। जो लोग अभ्यासके बिना ही यह समझते हैं कि वे कुदरतन नाकसे साँस लेते हैं, उनका यह समझना सदा ठीक नहीं होगा। वे मुँहसे कब साँस ले लेते हैं, इसका उन्हें ध्यान नहीं रहता। दुर्भाग्यसे अधिकांश लोगोंको ठीक तरह सांस लेनेकी आदत डालनी पड़ती है। जो स्वच्छ वायुका सेवन करते हैं, शुद्ध पानी पीते हैं, ठीक तरहका भोजन ठीक मात्रामें और ठीक ढंगसे खाते हैं और मुनासिब व्यायाम करते हैं, उन्हें क्षयरोग नहीं हो सकता।

तुम्हें आर्थर रोडसे हटा देनेपर मैंने सरकारको धन्यवाद दिया है। उसने यह काम तत्परता और अच्छे ढंगसे कर दिया। यह सच है कि मैंने निश्चित रूपसे यरवडा

तबादला करनेकी माँग की थी। मगर उसके पास तुम्हारा यहाँ तबादला न करनेके लिए अपने उचित कारण होंगे। मैं तुम्हें जानता हूँ, इसलिए कह सकता हूँ कि दूसरे नम्बरकी जगह बेशक साबरमती है। यदि तुमने यह समझ लिया हो कि भले ही मेरा शरीर यरवडामें पड़ा है, परन्तु मेरी आत्मा तो साबरमतीमें ही निवास करती है, तो साबरमती तुम्हारे लिए उत्तम स्थान है। आत्माके बिना शरीर ऐसा ही है, जैसे शाहजहाँके बगैर ताज —— महज एक मकबरा!

तुम्हें अपनी गाँठोंका सब हाल आर्थर रोड जेलके सर्जनको बता देना चाहिए था। हम तबादलेकी माँग न भी करें, परन्तु अपनी हालत बता देना तो हमारा फर्ज है। कारण, अधिकारी हमारे शरीरोंको यह उम्मीद रखकर अपने कब्जेमें रखते हैं कि हम उन्हें उनकी हालतके सारे समाचार बताते रहेंगे। अगर हम नहीं बताते तो जेलके नियमोंका पूरा न सही, कमसे-कम जाब्तेमें तो भंग करते ही हैं। इसलिए तुम हर खराबीकी खबर सुपरिंटेंडेंटको देना। सरकारने मुझे बताया है कि वे एक आई० एम० एस० अफसर हैं और इसलिए एक योग्य चिकित्सक हैं। तुम्हें अपने शरीरको सोलहों आने रोगमुक्त बना लेनेकी कोशिश करनी चाहिए।

मेरे लिए यह बड़ी खुशीकी बात है कि बा और गंगाबहन और कुसुम तुम्हारे साथ हैं। क्या तुम औरोंसे नहीं मिल सकतीं।

गंगाबहन[1] और कुसुमसे कहना कि मैंने दोनोंको पत्र लिखे थे। उनके और बा के लिए पत्र साथमें हैं। अगर उन्हें पत्र पानेका अधिकार या इजाजत हो, तो तुम उन्हें हाथो-हाथ दे देना। उनमें कुशल समाचारोंके सिवाय कुछ नहीं है।

मेरा वजन और भोजन ज्योंका-त्यों है और यही हाल कुहनियोंका भी है।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

अभी-अभी वेरियरसे सूचना मिली है कि वेरियर ईस्टर-सप्ताहके दौरान गुरुवारको, अर्थात् १३ अप्रैलको मेरी जिलेटसे विवाह कर रहा है।

[पुनश्च :]

अवश्य ही इस पत्रमें मैंने जो सूचनाएँ दी हैं, उन सबमें सुपरिटेंडेंट फेर-बदल कर सकते हैं।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६३) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७२९ से भी

१. गंगाबहन वैद्य; उनके पत्रके लिए देखिए पिछला शीर्षक।

४२६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय चार्ली,

आशा है कि मेरे पत्र तुम्हें नियमित रूपसे मिल रहे हैं। डॉ० अम्बेडकरका वक्तव्य और मेरा उत्तर[1] साथ संलग्न है। बाकी तुम 'हरिजन' में देख लेना। मैं यह भी चाहता हूँ कि तुम दोनों हरिजन नेताओं, राजन और देवरुखकरके वक्तव्य पढ लो।

वाइसरायको जो मैंने पत्र[2] लिखा था उसका उत्तर[3] मुझे अब मिल गया है। पत्रका अभिप्राय यह है कि वाइसराय विधेयकोंको घुमानेका आग्रह करते हैं और असेम्बलीमें भी अधिकांश लोग इसका विरोध करेंगे, ऐसी आशा कम है। मुझे एतराज नहीं है। इससे सिर्फ यह जाहिर होता है कि व्यक्तिको किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है; और ऊपरसे मालवीयजीकी असहमति अलग है। यह कानूनी कठिनाई एक अप्रत्याशित वज्रपात-जैसा है, लेकिन इन कठिनाइयोंका भी सामना करना पड़ता है। मुझे आशा थी कि सरकार सुधारकी प्रगतिमें बाधा डालनेमें सहायक नहीं होगी। ईश्वर मेरा मार्ग-दर्शन करेगा। तुम चिन्ता मत करना।

हम सबकी ओरसे प्यार।

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९८०) से; एस० एन० २०२६९ से भी

४२७. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा पत्र मिला, साथमें संलग्न दो पत्र भी, जो तुमने एन्ड्रयूजकी जेबमें से खोज निकाले थे।

अब चूँकि मैं तुम्हें 'हरिजन' के रूपमें एक लम्बा पत्र दे रहा हूँ, इसलिए कभी-कभी को छोड़कर मुझसे व्यक्तिगत पत्रोंकी आशा मत रखना।

१. देखिए "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।

२. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।

३. देखिए परिशिष्ट ९।

मुझे मालूम है कि तुम पूरे जोर-शोरके साथ काम कर रही हो और हम केवल इतना ही कर सकते हैं। फल तो उस अनन्त शक्तिके हाथोंमें है, इसलिए हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

एन्ड्रचूजके पत्रके साथ मैंने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण कतरनें संलग्नकी हैं। उन सबको ले लेना और पढ़ जाना।

हम दोनोंकी ओरसे प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६१) से।

४२८ पत्र : एफ० मेरी बारको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

दमा पाल लेनेके बादसे तुमने लिखना बन्द कर दिया है। मै समझता हूँ कि तुम अच्छी हो। इतना ही काफी नहीं है। तुम्हें पूरी तरहसे स्वास्थ्य-लाभ करना है। आशा है कि तुम्हारा भोजन ठीक होगा। दाल हलका भोजन नहीं है। तुम्हें इससे परहेज करना चाहिए। तुम्हारा आहार है रोटी, सब्जी, दूध और फल।

कृपया अपने अनुभवोंके बारेमें मुझे जरूर बताना।[1] क्या फादर लैश वहाँ आरामसे थे?

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९२) से। सी० डब्ल्यू० ३३१७ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१. उस समय मेरी बार और फादर लैश साबरमती आश्रममें ठहरे हुए थे; देखिए "पत्र : बिल लैशको", ५-२-१९३३।

४२९. पत्र : एस्थर मेननको

१७ फरवरी, १९३३

प्यारी बिटिया,

आजकल मेरा समय जरूरतसे ज्यादा व्यस्त रहता है। पूरे दो दिन तो सब कुछ छोड़कर 'हरिजन' को देने पड़ते हैं। इसलिए मेरे स्नेहपत्र जो पहले ही छोटे हुआ करते थे, अब और भी छोटे हुआ करेंगे। लेकिन इतनी तसल्ली तो है कि तुम्हें 'हरिजन' के रूपमें मेरा आम पत्र मिल रहा है।

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मेरी लन्दन-यात्राका तुम्हारे लिए क्या महत्त्व था। ईश्वरके रहस्यपूर्ण तरीकोंको हम नहीं जानते। यदि हम अपने-आपको उसके हवाले कर दें, तो वह हमसे हमारे अनजानेमें ही बहुत-सी चीजें करवाता है। यदि तुम कभी निराशाके जालमें न पड़ो तो मुझे खुशी होगी, क्योंकि एक क्षणके लिए भी निराशा होनेका अर्थ है जीवन्त ईश्वरमें आस्थाका अभाव।

इसके साथ एक पत्र[1] जैक हैंसेन[2] के लिए संलग्न कर रहा हूँ।

तंगाईका सुन्दर पत्र पाकर महादेवको बहुत खुशी हुई।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (नं० ११९)से; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९९ भी

१. उपलब्ध नहीं है।

२. **माई डियर चाइल्ड** में 'जॉन हॉयलैंड' लिखा है।

४३०. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है कि तुम्हें मेरे सब पत्र मिल रहे हैं।

तुम प्रोफेसरी पाने या इसी प्रकारकी कोई चीज पानेकी आशासे, जिससे तुम अपनी माँकी सहायता कर सको, यहाँ आनेकी मत सोचना। तुम यहाँ तभी आना जब तुम्हारे लिए रास्ता बिल्कुल साफ हो जाये। निस्सन्देह, तुम्हारे लिए यह सम्भव है कि तुम जहाँ हो वहींसे भारतसे प्रेम रखो और बहुतसे सेवा-कार्य करो। तुम्हारे सामने बहुत समय पड़ा है। आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर लो, भारतको अपना लक्ष्य बनाये रखो और एक-न-एक दिन तुम यहाँ खिंची चली आओगी। इसमें कोई शक नहीं कि तुम मेरे लिए लक्ष्मी या मीराके समान हो। लेकिन तुम्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि यह एक भारी जुआ है, जिसे ढोना आसान नहीं है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

४३१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपका तार कल मिला। इसका उत्तर बहुत जल्दीमें भेजा गया, इसलिए बंगाली संस्करणके नामके सम्बन्धमें अपनी राय देना भूल गया। क्यों न यह अंग्रेजी साप्ताहिकके शीर्षक जैसा अर्थात् सिर्फ 'हरिजन' ही हो? आप बंगाली संस्करण मूलकी तरह ही छापें, लेकिन अंग्रेजी साप्ताहिकमें जो-कुछ भी छपता हो उस सबका अनुवाद देनेकी आवश्यकता नही है और यह ठीक भी नहीं है। अंग्रेजी संस्करणमें जो-कुछ छपे आप तो सिर्फ उसका संक्षेपमें अनुवाद दे दें। आप उन कुछ चीजोंको छोड़ भी दें जो बंगाली पाठकके लिए आवश्यक न हों और दूसरी बहुत-सी चीजें दे दें; लेकिन अंग्रेजी संस्करणके भावसे असंगत कोई चीज न हो। इसलिए आप इसमें छपनेवाली हरेक पंक्तिका स्वयं निरीक्षण करें। बंगालमें आन्दोलनकी प्रगतिसे सम्बन्धित आपके पास जो-कुछ भी सूचना हो उसे भी आप अंग्रेजी साप्ताहिकके लिए मुझे भेजा करें।

आपको प्रति सप्ताह कितनी प्रतियाँ चाहिए, इस सम्बन्धमें शायद आपने 'हरिजन' के मैनेजरको उत्तर दिया है।

[गरीबोंकी] बस्तियोंमें आपका कार्य कैसी प्रगति कर रहा है, और आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२७२) से।

४३२. पत्र: सेवा सदन हाईस्कूलके विद्यार्थियोंको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय युवा मित्रो,

आपका पत्र मिला। मुझे आप सबसे अगले सोमवार, २० तारीखको दोपहर २.३० बजे भेंट करनेमें खुशी होगी। आप लोग ३० मिनटसे ज्यादा समय न लें और यदि आप पहलेसे ही प्रश्न तैयार करके लाये तो हम ३० मिनटमें ही बहुत-सा काम निपटा देंगे।

हृदयसे आपका,

सचिव
कक्षा ६
सेवा सदन हाई स्कूल
पूना सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२७१) से।

४३३. पत्र: मणिबहन एन० परीखको

१७ फरवरी, १९३३

चि० मणिबहन,

मेरे लिखे हुएको उलाहना तो मानना ही नहीं चाहिए। यदि इस प्रकार मानने लगो तो फिर मुझसे उपयोगी कुछ भी नही लिखा जा सकेगा। मैंने जो-कुछ लिखा था वह केवल अकेले तुमपर तो नहीं लागू होता था। वह तो सभीपर लागू होता है, और उससे मुझे भी अलग नही किया जा सकेगा। आदर्श माताको तो पहचान ही लिया जाना चाहिए। आदर्श माता बनने जितना ज्ञान तुम्हारे पास है ही कहाँ? यह ठीक है कि मेहनत करनेसे बहुत-सी खामियाँ दूर हो जाती हैं, पर मूलमें ही जो खामी रह गई हो, वह तो तभी दूर की जा सकती है जब उस सम्बन्ध

में पूरा ज्ञान हासिल हो जाये और उसके लिए आवश्यक सभी उपाय किये जायें। बालकोंको रात्रिमे दातौन करवाई जाती है, यह ठीक है। अँगुलीसे मसूड़ोंको दबाकर मार्जन किया जाये; इस क्रियाको दातौन पूरा नहीं कर पाती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७४) से।

४३४. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

बुधवार और गुरुवार तो पूरे 'हरिजन' को ही दिये जाते हैं, इसलिए उनमें तो डाक लिखी ही नहीं जा सकती। अमीनाकी समस्या फिलहाल तो हल हो गई। एक हिन्दू संस्थामें मुसलमानका समावेश न हो सके, यह कितने दुःखकी बात है। इसमें चन्दूलाल[1] या नानाभाईका[2] जरा भी दोष नहीं है। वे दूसरा जवाब तो दे ही नहीं सकते।

सुरेशका पत्र तुमने शायद न देखा हो। उसने बहुत विस्तारसे लिखा है। उसके सम्बन्धमें तुम्हारा जो अनुभव हो सो लिखना। महावीरका पत्र बम्बईसे आया है। सिफारिशके लिए पत्र माँगता है। मैं तो भेजना नहीं चाहता। कृष्णमैया देवी तो काम करना ही नहीं चाहती। उसे लिखना चाहता हूँ।

मारुतिका पत्र इसके साथ है। तो अब विवाह कर देना ही उचित है। यदि दूदाभाई या लक्ष्मी इनकार करें तो हम अपनी जवाबदारी छोड़ देंगे। साथके पत्र देख लेना।

बापूके आशीर्वाद

[साथके पत्र :] नरहरि, सुरेश, मणिबहन, मारुतिका लक्ष्मीदासके नाम लिखा, मेरीबहन[3], लक्ष्मी, दूदाभाई और अमीना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. चन्दूलाल काशीराम दवे; शारदा मन्दिर, अहमदाबादके प्रधानाध्यापक।
२. नरसिंह प्रसाद कालिदास भट्ट।
३. एफ० मेरी बार।

४३५. पत्र : छोटालाल के० मेहताको

१७ फरवरी, १९३३

चि० नेपोलियन,

तेरा पत्र पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। नवसारीवाला पत्र मुझे नहीं मिला। विसापुर हो आये, यह ठीक किया। सोमाभाईको क्या तकलीफ हो गई है?

तेरे अक्षर पहलेकी अपेक्षा तो अच्छे हैं ही, पर अभी और भी सुधरने चाहिए। तेरी कक्षामें कितने बालक हैं? पढ़ाईका हाल लिखना।

सरदार, महादेवभाई तथा छगनलालके आशीर्वाद। कुँवरजी कहाँ हैं? कैसे हैं?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दाहिने हाथको आराम देनेके लिए यह पत्र बायें हाथसे लिखा है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९४) से।

४३६. पत्र : भाईलाल मोतीराम पटेलको

१७ फरवरी, १९३३

भाई भाईलाल,

लॉर्ड विलियम बेंटिकके सती-सम्बन्धी उद्‌गार आपने मुझे भेजे हैं, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९८) से।

४३७. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१७ फरवरी, १९३३

तेरा पत्र मिला। 'हरिजन' से तुम देख सकोगे कि अब पण्डितजी के पास जानेकी मुझे खास जरूरत नही जान पड़ती। जो मतभेद[1] था वह भले ही प्रकट हो गया हो . . .[2]।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२०

४३८. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

१७ फरवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा खत मिला है। निश्चित हो कर खादी काम जो हो सके किया जाय। भले थोड़ा ही चले। हमारी श्रद्धा अंततक रहेगी तो खादीका और दरिद्रनारायणका जय ही होगा।

जब संभव होवे तब यहां आ जाओ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९८) से।

४३९. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१७ फरवरी, १९३३

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा खत मिला। तुम दोनों साथमें हो सो अच्छा लगता है।[3] दोनोंका स्वास्थ्य अच्छा होगा। हां माता और बंधुओंका मोह छोड़ना होगा। मोहसे हम उनको आशाका कारण देते है और पीछे आशा पूर्ण नहि कर सकते हैं तो वे दुःखी होते हैं। जब वे स्पष्ट जान लेते है तब आशा छोडते है और स्वस्थ बनते है।

१. अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंके बारेमें गांधीजी और मालवीयजी के बीच मतभेद।

२. पत्रका बाकी अंश साधन-सूत्र में नहीं दिया गया है।

३. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला दिल्ली जेलमें कैद थे।

हम सब अच्छे है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९८) से।

४४०. पत्र : रमादेवी चौधरीको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला है। तुमने अपना परिचय और ठिकाना नहिं दिया। अपने कार्यका हिसाब प्रति सप्ताह देती रहो। दूसरी सेविका जो काम करती है वह क्या करती है, कौन है? शहरवासी आप लोगोंका कहां तक साथ देते हैं?

मोहनदास गांधीके आशीर्वाद

श्री रमादेवी[1]
हरिजन सेविका
द्वारा हरिजन सेवा संघ
कटक
उड़ीसा[2]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८९) से।

४४१. विधानसभाके सदस्योंसे अपील

मेरे एक मित्र[3] ने, जिनकी मैं बहुत कद्र करता हूँ, मुझे सुझाव दिया है कि मैं विधानसभा के सदस्योंको व्यक्तिगत पत्र लिखूँ और उनसे अनुरोध करूँ कि वे श्रीयुत रंगा अय्यरके अस्पृश्यता-सम्बन्धी जिन दो विधेयकोंपर विचार किया जानेवाला है, उन्हें अपना समर्थन प्रदान करें। मैं आशा करता हूँ, मुझमें झूठा अभिमान नहीं है। यह निश्चय कर लेनेके बाद, अथवा जैसाकि आलोचकगण कहेंगे, अपने-आपको इस भुलावेमें डालनेके बाद, कि मेरे असहयोगके बावजूद सदस्योसे सही काम करनेके लिए कहनेमें कोई बुराई नही है, यदि मै स्वतन्त्र होता तो मैं उनके पास जानेमें और उन्हें यह बतानेमें तनिक भी संकोच नहीं करता कि सभी सदस्यों द्वारा विधेयकोंपर

१. उड़ीसाके प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता गोपबन्धु चौधरीकी पत्नी।

२. मूलमें पता अंग्रेजी लिपिमें है।

३. तेजबहादुर सप्रू; देखिए "पत्र : तेजबहादुर सप्रूको", १६-२-१९३३।

तुरन्त विचार किये जानेकी अनुमति देना और हिन्दू सदस्योंके लिए हिन्दू-धर्मकी शुद्धताको ध्यानमें रखकर इन विधेयकोका समर्थन करना कितना जरूरी है। लेकिन मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, और मैंने पाया है कि श्रीयुत राजगोपालाचारी सदस्योंसे सम्पर्क स्थापित करनेमें मुझसे ज्यादा कारगर हैं, और वह सम्भवतः हठी सदस्योंको मनानेकी कलामें भी मुझसे ज्यादा माहिर हैं। इसलिए मेरे उद्देश्यकी वकालत करनेके लिए वह मेरे अधिकृत प्रतिनिधिके रूपमें दिल्लीमें मौजूद हैं। जनता यह बात अच्छी तरहसे जानती है कि मेरे विचारोंमें यदि कोई दर्शन है, तो उसके व्याख्याता और उसे माननेवालेके रूपमें श्री राजगोपालाचारीमें मेरा कितना विश्वास है। अतएव यदि मैं सदस्योंको सीधे पत्र लिखता हूँ तो वह फिजूल होगा तथा यदि राजगोपालाचारीके स्थानपर अन्य कोई व्यक्ति मेरा प्रतिनिधि होता तो उसके प्रति यह अशिष्टतापूर्ण भी होता। मुझे आशा है कि व्यक्तिगत पत्रोंकी अपेक्षा राजगोपालाचारीकी अपीलको सदस्यगण ज्यादा महत्त्व देंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४२. अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार

ऊपरका अंश[1] श्रीयुत जयकर द्वारा कृपापूर्वक मुझे भेजे गये अस्पृश्यता-सम्बन्धी उस विधेयक का पाठ है जिसे उन्होंने विधानसभा में उस समय पेश करनेकी कोशिश की थी जिस समय वह उसके सदस्य थे। यह तीन कारणोंसे महत्त्वपूर्ण है: पहली बात तो यह कि इससे पता चलता है कि एक विशिष्ट वकील और उतने ही विशिष्ट संस्कृतके विद्वानकी हैसियतसे वह ऐसा समझते हैं कि किसी समाजके लोग यदि किन्हीं प्रथाओंको अपने कल्याण, अपनी नैतिकता और अपने अन्तःकरणके विरुद्ध मानते है तो भी वे उन प्रथाओंको दूर नहीं कर सकते, क्योंकि ब्रिटिश भारतीय अदालतोंके निर्णय उनके मार्गमें बाधक हैं, और उनके विधेयकका उद्देश्य इन कानूनी बाधाओंको दूर करना ही है। दूसरे, तत्त्वतः यह उन दो विधेयकोंका सम्मिलित रूप है जो इस समय विधानसभा और देशके सामने है; और तीसरे, इससे पता चलता है कि यह मामला कई वर्षोंसे देशके सामने है और किसी भी अर्थमें नया नहीं है। श्रीयुत जयकरने ब्रिटिश भारतीय अदालतोंके जिन निर्णयों और फैसलोंका उल्लेख किया है वे हिन्दू-समाजके ऊपर एक बोझकी तरह लदे रहे हैं और उन्होंने उसके स्वस्थ विकासको रोक दिया है। श्रीयुत जयकरके विधेयककी भाँति ही इन दोनों विधेयकोंका उद्देश्य भी केवल इस भारी बोझको हटा देना है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

४४३. कलकत्ताकी बस्तियोंमें कार्य

कलकत्तासे श्रीयुत वसन्तलाल मुरारका लिखते हैं :

हमने हरिजनोंके बीच पहलेसे ही कार्य करना आरम्भ कर दिया है। बस्तियोंमें हमने दिन और रातके २० स्कूलोंका कार्य सँभाल लिया है। लगभग ५०० लड़के और लड़कियाँ इन स्कूलोंमें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। और हम नल लगवाने, सफाई-सम्बन्धी सुविधाएँ मुहैया कराने तथा शराबकी बुराई और दूसरी बुरी आदतोंको दूर करनेके लिए प्रचार करनेकी समस्याको हल कर रहे हैं। उसके अलावा हमने श्रीमती सरूपरानी नेहरूकी अध्यक्षतामें एक सभा तथा खेलकूदका आयोजन किया था। मारवाड़ी, हरिजन तथा दूसरे लड़के खुलकर मिले-जुले। फिर भी मुझे आपके सामने यह तो मानना ही होगा कि बस्तियोंमें कार्य बहुत मुश्किल है।

मुझे मालूम है कि बस्तियोंमें कार्य किस प्रकारका है। खादी-प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त बस्तियोंमें रहनेवाले हरिजनोंकी स्थितिका वर्णन सुस्पष्ट और हृदय-विदारक शब्दोंमे मुझसे पहले ही कर चुके है। इन कठिनाइयोंसे कार्यकर्ता भयभीत नहीं होनेवाले हैं। यदि अस्पृश्यता-निवारण कोई आसान काम होता तो हम इसे बहुत पहले ही पूरा कर चुके होते। इन कठिनाइयोंका कुछ अनुभव हमें सिर्फ अभी हो रहा है। लेकिन इस प्रकारकी बड़ीसे-बड़ी कठिनाईपर भी हम धैर्य और अध्यवसायसे विजय पा लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

४४४. क्या यह भाईचारा है?

चूंकि सनातनी अपने इस कथनपर बराबर दृढ़ हैं कि जिसे हम अस्पृश्यता कहते हैं वह हिन्दू-धर्मपर धब्बा नहीं है और हरिजनोंके साथ अच्छा बर्ताव किया जाता है तथा वे खुश और सन्तुष्ट हैं और चूंकि मुझे मालूम है कि उनमें से बहुत नहीं तो कुछ सनातनी इस कथनपर सच्चे दिलसे विश्वास करते हैं, इसलिए इस विश्वासकी भ्रामकताको सिद्ध करना और यह दिखाना जरूरी हो जाता है कि हरिजनोंके साथ वास्तवमें जैसा व्यवहार किया जाता है उससे ज्यादा बुरा व्यवहार शायद सम्भव ही नहीं है। इस प्रकारके प्रदर्शनसे सुधारकोंको भी उनके सामने जो काम पड़ा है उसका अन्दाजा हो जायेगा। यहाँतक कि जब सनातनी और सुधारक परस्पर

मिल जायेंगे, जैसाकि एक दिन वे निस्सन्देह मिलेंगे, तब भी इतना ज्यादा काम होगा जिसके लिए हजारों स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता होगी। हालाँकि मैं मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशकी आवश्यकताके सम्बन्धमें जोरदार शब्दोंमें लिख चुका हूँ और आगे लिखता रहूँगा, लेकिन मैंने रचनात्मक कार्यक्रमको कम महत्त्वपूर्ण काम न तो कभी माना है और न कभी मानूँगा। लेकिन जिस एक बातका मुझे पूरा निश्चय है वह यह है कि हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशसे रचनात्मक सुधारकी गति अपने-आप चौगुनी हो जायेगी।

यहाँ नीचे मै अहमदाबादके समीप गुजरातके कुछ भागोंमें हरिजनोंके बीच काम करनेवाले एक गुजराती कार्यकर्ताके पत्रका स्वतन्त्र अनुवाद दे रहा हूँ:

> तथाकथित ऊँचे वर्गोंके हाथों हरिजनोंको बहुत तकलीफें उठानी पड़ती है। कुछ गाँवोंमें तो उन्हें अपने घरोंके लिए बरांडातक बनानेकी इजाजत नहीं है। वे ऐसे घर नहीं बना सकते जिनमें ऊपरी मंजिल हो। वे न तो बढ़िया वस्त्र पहन सकते है और न घोड़ोंपर सवारी कर सकते हैं। इसलिए इन गाँवोंमें हरिजन बच्चोंके लिए शिक्षा प्राप्त करनेका या मनोरंजनके लिए किसी बढ़िया मैदानके होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। ऊँचे वर्गके लोग तो सुधारकी चर्चातक करना पसन्द नहीं करते। सरकारी आदेश हैं कि हरिजन लोग सार्वजनिक स्थानोंका किसी भी अन्य हिन्दूकी तरह बराबरीके दर्जेपर उपयोग कर सकते है, लेकिन हरिजन लोग इस आदेशका लाभ नहीं उठा सकते। और अब उनमें झूठे साधु और बाबा पैदा हो गये हैं, जो हर प्रकारके ढोंग रचकर उन्हें ठगते हैं। फिर बाल-विवाह करने तथा इन विवाहोंपर खर्चा करनेकी एक खराब आदत है, जिसकी हरिजनोंने ऊँचे वर्गोंके लोगोंसे नकल की है। वे उन दो-तीन सौ रुपयोंपर, जिन्हें अपने बच्चोंके विवाहपर खर्च करना उनके लिए जरूरी होता है, ३० प्रतिशत ब्याज देनेमें भी नहीं झिझकते। और अक्सर ऐसा होता है कि ये बच्चे बड़े होनेसे पहले ही मर जाते हैं और इस तरह सारा खर्चा बिल्कुल बेकार चला जाता है। इन रीति-रिवाजोंके फलस्वरूप उनपर हमेशा कर्ज बना रहता है जो बराबर बढ़ता जाता है। उसके अदा होनेकी तो आशा ही व्यर्थ है। और फिर उनमें आपसमें ही अस्पृश्यता मौजूद है। परिणाम यह है कि जो सबसे निम्न कोटिके समझे जाते हैं उन्हें जहाँ-तहाँसे लाये गये गन्दे पानीपर ही निर्भर रहना पड़ता है।

यह पत्र हालके मिले पत्रोंमें से एक है। नीचे जो-कुछ दिया जा रहा है, वह पश्चिमी गोदावरी जिलेमें बच्चोंके लिए विशेष सेवा-कार्य करनेवाले एक मिनशरी श्री साइमन एम० ए० द्वारा श्रीयुत अमृतलाल ठक्करको भेजे गये पत्र[1] में से लिया गया है। वह नरसापुरसे लिखते हैं:

१. देखिए "पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको", १५-२-१९३३।

मुख्य अस्पृश्य जातियाँ माला और मडिगा लोग हैं, जो गाँवके बाहर सवर्ण हिन्दुओंकी बस्तीसे दूर रहते हैं और जो इस दृष्टिसे सबसे निकृष्ट कोटिके अस्पृश्य हैं, क्योंकि वे धूल और गंदगीके भयानक वातावरणमें रहते हैं। लड़के और लड़कियाँ बहुत ही अस्वच्छ वातावरण में झोंपड़ियोंमें रहते हैं तथा फटीचर और गन्दे होते हैं, क्योंकि स्वच्छ रहनेके सुखका उन्हें कभी ज्ञान या अनुभव नहीं होता। उनके माता-पिता स्वयं अपने बच्चोंकी स्वच्छता तथा शिक्षाकी तरफसे लापरवाह होते हैं, और उनकी नैतिकताके बारेमें तो कहना ही क्या?

मेरे खयालमें उनकी इस दशाके दो कारण हैं, एक तो उनकी गरीबी और दूसरे गन्दगी, जिसके वे युगोंसे आदी हो चुके हैं। मालापलम और मडिगा गुडम सवर्ण हिन्दुओंके गाँवकी सीमाओंपर स्थित है, जिसे धानके खेतोंके मालिकोंने अनधिकार प्रवेश द्वारा चारों ओरसे घेर रखा है। माला लोग कुली वर्गके हैं, जिन्हें केवल खेतपर काम करनेके लिए नौकर रखा जाता है; तथा मडिगा लोग जूते बनाते हैं। जंगली पशुओंके समान बाड़ोंमें बन्द मडिगा लोग मृत पशुओंका मांस खाते हैं, इसलिए वे भद्र समाजके घेरेसे दूर रहते हैं, और उनके साथ गाँवके आवारा कुत्तोंसे भी बुरा व्यवहार किया जाता है।

मेरे लिए गवाहीके इन दो अंशोंमे से किसीको भी अतिशयोक्तिपूर्ण मानकर रद करना सम्भव नही है, क्योंकि मैंने दूसरी जगहोंपर ऐसी ही चीजें अपनी आँखोंसे देखी है। और न ही मैं श्री साइमनकी गवाहीको उनके विदेशी होनेके नाते कम महत्त्वपूर्ण माननेको तैयार हूँ। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उन्होंने जो पत्र लिखा है वह हरिजन सेवक समाजके माध्यमसे सेवा करनेके लिए लिखा है, और यदि वह रिपोर्ट बढ़ा-चढ़ाकर बनाते हैं तो इस बातका बराबर खतरा है कि वह बदनाम हो जायें। अत्यन्त स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोणसे भी यह दिखाया जा सकता है कि देशकी जन-शक्तिकी यह अक्षम्य उपेक्षा आर्थिक दृष्टिसे ऐसी हानि है जो आँकी नहीं जा सकती। इन्हीं लोगोको यदि हिन्दू-समाजका एक सम्माननीय और समान सदस्य बना लिया जाये तो वे देशके आर्थिक और नैतिक साधनोंमें ऐसी अभिवृद्धि कर देंगे जिसकी कल्पना करना मुश्किल है। इस समय तो वे समाजपर भारस्वरूप हैं। कारण, उनके कारण हिन्दू-धर्म बदनाम होता है, और ४ करोड़ आदमियोंकी यह अवनति जारी रही तो निश्चय ही शेष २६ करोड़ प्राणियोंको भी अपने साथ धरातलमें खींच ले जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

४४५. ऐसा कब सम्भव है?

मैं देखता हूँ कि श्रीयुत राजगोपालाचारी और सेठ घनश्यामदासने अपने एक वक्तव्यमें मेरे एक और उपवास करनेकी सम्भावनाका जिक्र किया है। यदि इन दो मित्रोंने ऐसी सम्भावनाका नाजायज फायदा उठानेमें सकोच नहीं किया तो आश्चर्य नहीं कि अन्य लोग भी मेरी जानकारीके बिना ऐसा कर रहे हों। मैंने पहले ही इन दोनों मित्रोको तार दे दिया है[1] और उसमे मैंने उनसे अनुरोध किया है कि वे ऐसी गलती फिर न दोहरायें। और अब मै अपने सब मित्रोसे आग्रह करता हूँ कि वे उनका अनुकरण न करें।

जब किसी आध्यात्मिक कार्यका इस तरह दुरुपयोग किया जाता है तब उसका सारा महत्त्व ही जाता रहता है। जिस बातकी आशंका है, हो सकता है कि वह बात कभी हो ही नहीं। और जहाँतक मुझे मालूम है, मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि वैसा होनेकी फिलहाल कोई सम्भावना नही है।

पंडित मालवीयजी ने, जिन्हें मै अपने बड़े भाईके समान मानता हूँ, मुझे एक स्नेहपूर्ण सन्देश भेजा है जिसका सार निम्नलिखित है:

> आप बहुत जल्दी मचा रहे हैं। आपको सहज भावसे काम करना चाहिए। ध्यान रहे, आप कहीं तपस्याके अभिमानमें भ्रष्ट न हो जायें। विनयशीलताके बिना तपस्याका कोई मूल्य नहीं, बल्कि वह हानिकर भी हो सकती है। अब कोई उपवास नही करना चाहिए।

मैं इस चेतावनीकी कद्र करता हूँ। मैं जानता हूँ कि अपने गुणोंका अहंकार मनुष्यकी आत्माको किसी भयंकर पापके समान नष्ट कर देता है। मुझे उम्मीद है, मैं जान-बूझकर अहंकार नहीं करता। मैं जैसा-कुछ हूँ और मेरे प्रयत्न करनेके बावजूद अनजाने ही मुझमें जो अहंकारका भाव है उसे तो भगवान ही अच्छी तरह जानता है और कुछ हदतक मेरे इर्द-गिर्द रहनेवाले लोग जानते हैं। मैं किसीके प्रति असहिष्णु नही हूँ। फिर भी, मै अस्पृश्यताके प्रति अवश्य असहिष्णु हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अस्पृश्यताका विनाश किसी अकेले आदमीका काम नहीं है। ईश्वरने इतने दीर्घकालतक इस बुराईको रहने दिया है और वह स्वयं ही समय आनेपर इसे दूर करेगा।

तथापि, वह हिन्दुओंसे यह अपेक्षा रखता है कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। मृत्युकी हदतक कष्ट सहन करना और इसलिए आमरण अनशनतक करना सत्याग्रहीका आखिरी हथियार है। यह उसका अन्तिम कर्त्तव्य है जिसका पालन उसे करना चाहिए। इसलिए उपवास मेरे जीवनका उसी तरह एक अंग है जिस तरह मैं मानता हूँ कि न्यूनाधिक रूपसे सत्यके प्रत्येक उपासकका होता है। मैं एक ऐसे पैमानेपर

१. देखिए "च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा", १३-२-१९३३।

अहिंसाका प्रयोग कर रहा हूँ जो कदाचित इतिहासमें अज्ञात वस्तु है। बहुत सम्भव है कि मैं अपने इस प्रयोगमें पूर्णतया गलत होऊँ, लेकिन यह वर्तमान उद्देश्यके लिए बिल्कुल अप्रासंगिक है। जबतक मुझे अपनी भूलका अहसास नहीं हो जाता, बल्कि इसके विपरीत जबतक अपनी सामर्थ्य-भर मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि मैं सही हूँ, मुझे अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अन्ततक प्रयत्न करते रहना होगा। और इस तरह, किसी अन्य तरीकेसे नहीं, उपवास अथवा उपवासोंके सिलसिलेकी एक सम्भावना मेरे जीवनमें हमेशा बनी रहेगी। इससे पहले, मैंने बचपनसे ही अनेक उपवास किये हैं और यदि वे सार्वजनिक हितोंको ध्यानमें रखकर किये जाते हैं तो इससे चिन्तित हो उठनेकी कोई जरूरत नहीं और न किसीको पूर्वाभासका आधार लेकर इस जानकारीका दुरुपयोग ही करना चाहिए। जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी तब भले ही कोई चाहे या न चाहे, उनका अपना प्रभाव और परिणाम होगा ही। लेकिन ऐसी सम्भावनापर कल्पनाके घोड़े दौड़ाना गलत बात है।

इसलिए मैं जनतासे अनुरोध करता हूँ कि वह अस्पृश्यताके विरुद्ध चल रहे इस आन्दोलनके सिलसिलेमें मेरे द्वारा एक और उपवास किये जानेकी सुदूर सम्भावनाकी बातको अपने मनसे एकदम निकाल दे और मेरा यकीन करे कि यदि मुझे ऐसा कोई उपवास रखना ही पड़ा तो वह सत्यके, जोकि स्वयं ईश्वर है, आह्वानके प्रत्युत्तरमें होगा। समस्त संसारको प्रसन्न करनेके लिए भी मैं ईश्वरके साथ विश्वासघात नहीं करूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४६. सद्भावपूर्ण मतभेद

कुछ ऐसे लोग हैं जिनकी मित्रता और सहयोगकी मैं बहुत ज्यादा कद्र करता हूँ। पंडित मालवीयजी भी ऐसे ही लोगोंमें से हैं, जिन्हें मैं जब पहली बार उनसे मिला था तबसे अपने बड़े भाईके समान मानता आया हूँ। तथापि, यह मेरा दुर्भाग्य रहा है कि अक्सर कुछ बातोंपर मेरा उनसे मतभेद हुआ है। लेकिन इस मतभेदसे हमारे परस्परके स्नेहमें कभी कोई कमी नहीं आई है।

नीचे जो पत्र-व्यवहार[1] दिया गया है उससे पाठक देखेंगे कि किस तरह हमारा परस्पर एक-दूसरेसे असहमत होना जरूरी हो गया है। अन्तःकरण मनुष्यका बहुत ही निष्ठुर स्वामी है।

पत्र-व्यवहारमें जो बातें कही गई हैं, यहाँ मेरा इरादा उन सबपर विचार करनेका नहीं है। मैं इसमें कही गई मुख्य बात अर्थात्, बम्बईमें पास किये गये प्रस्तावोंकी व्याख्यापर ही विचार करूँगा। मालवीयजी के प्रति पूर्ण आदरभाव रखते हुए

१. यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए "पत्र: मदनमोहन मालवीयको", २०-१-१९३३ तथा "तार: मदनमोहन मालवीयको", १४-२-१९३३ और परिशिष्ट ५।

मेरे विचारसे बम्बई-प्रस्तावका, जिसे मैं नीचे दे रहा हूँ[1], केवल एक ही अर्थ है। इसके अन्तर्गत जिम्मेदार हिन्दुओंको कानूनके द्वारा हरिजनोंको वह सब देना पड़ेगा जो केवल कानून ही दे सकता है। यदि तनिक भी सम्भव हो तो ऐसा करनेके लिए वे बाध्य हैं और अगर इस समय हरिजनोंको वैसी कानूनी राहत दे सकना असम्भव हो जाता है तो उन्हें स्वराज-संसदके लिए प्रतीक्षा करनी होगी। जबतक इस दिशामें हर सम्भव प्रयत्न करके नहीं देख लिये जाते तबतक यह बात असम्भव नहीं मानी जा सकती।

मेरा और उन हिन्दुओंका, जो मेरी व्याख्याको स्वीकार करते है, कर्त्तव्य स्पष्ट है। हमे असेम्बली सभी सदस्योंसे और विशेषकर हिन्दू सदस्योंसे उस प्रतिज्ञाके पालनमें मदद देनेका अनुरोध करना होगा, जो हमने न केवल डॉ० अम्बेडकर और उनके समान सुसंस्कृत हरिजनोंको दी है बल्कि उन मूक और पीड़ित चार करोड़ हरिजनोंको भी दी है जिनका कि डॉ० अम्बेडकर तथा उनके समान सुसंस्कृत हरिजन लोग प्रतिनिधित्व करना चाहते है, और जिनका कि प्रतिनिधित्व करना हरिजन नेताओका ही नही, उनके साथ ही प्रत्येक सवर्ण हिन्दूका कर्त्तव्य और सौभाग्य होना चाहिए। मैं यह बात सौवी बार दोहराता हूँ कि मन्दिर-प्रवेशके मार्गमें कानूनी बाधा है, जिसे सब हिन्दुओं द्वारा मिलकर किये गये किसी भी समझौतेसे भी हटाया नहीं जा सकता। कानूनी बाधाको तो केवल कानून द्वारा ही हटाया जा सकता है। हिन्दुओंके आपसी समझौतेका परिणाम यह हो सकता है कि वह सरकारसे इसे कार्यान्वित करनेके लिए कहें, जैसाकि यरवडा-समझौतेके राजनीतिक अंशके सिलसिलेमे किया गया था। जिन सवर्ण हिन्दुओंने यरवडा-समझौतेके राजनीतिक अंशकी मान्यताको सुरक्षित रखनेके लिए अत्यधिक परिश्रम किया है वे लोग यरवडा-समझौतेके सीधे और स्वाभाविक परिणामसे उत्पन्न अन्य प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेके लिए अब नैतिक रूपसे बाध्य हैं; और चूँकि उन प्रस्तावोंके अनुरूप कार्य करते हुए यह बात मालूम हुई कि एक कानूनी कठिनाई है जिसका पहलेसे अनुमान नहीं किया गया था, इसलिए इस कठिनाईको जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी दूर करना होगा। इसीलिए ये दो विधेयक पेश किये गये हैं।

लेकिन मालवीयजी का कहना है कि मन्दिर-प्रवेश, कुओंसे पानी लेनेकी छूट आदि बातें लोगोंको समझा-बुझाकर की जानी चाहिए, उन्हें विवश करके नही। मै इस बातसे पूर्णतया सहमत हूँ, लेकिन कानूनी बाधाको दूर करना तो अपेक्षित वस्तुको जोर-जबरदस्तीसे कराना नहीं है। मदुरै मन्दिरका ही उदाहरण लें। यदि मुझे सही तौर पर मालूम है तो उस मन्दिरके न्यासियोंको हिन्दू मतदाताओंने निर्वाचित किया है। वे हरिजनोंके लिए मन्दिरके द्वार खोलनेको वचनबद्ध हैं। हिन्दू मतदाताओंने बहुमतसे उस मन्दिरको खोल देनेकी इच्छा व्यक्त की है। लेकिन कानूनी बाधाकी वजहसे न्यासी लोग मन्दिरके द्वार हरिजनोंके लिए नहीं खोल सकते। कानून बनाकर उस बाधाको दूर करवाना क्या जोर-जबरदस्ती माना जायेगा? मैं ऐसे ही कुछ और उदाहरण दे सकता हूँ जहाँ सार्वजनिक मन्दिरोंके न्यासी जनताकी माँग और अपनी

१. यहाँ नहीं दिया गया है; प्रस्तावके पाठके लिए देखिए पृष्ठ १३८-९।

इच्छाको कार्यान्वित करनेमें असमर्थ हैं। अतएव मेरा खयाल है कि अनुज्ञापक और संशोधनात्मक कानून निर्माणके अलावा और कोई चारा नहीं है। यदि बिधेयक दोषपूर्ण है तो उन दोषोंको सुधारा जा सकता है। मैंने विधेयकोंको दो प्रमुख वकीलोंके पास उनके विचार जाननेके लिए भेजा है। श्रीयुत जयकरके विचार पाठक 'हरिजन' के इस अंकमें अन्यत्र देखेंगे।[1] इस सिलसिलेमें मैंने डॉ० सप्रूसे भी बात की है[2] और जनताको यह सूचना देते हुए मै उनके प्रति कोई विश्वासघात नहीं कर रहा कि डॉ० सप्रू पहले ही दूसरे विधेयकके अर्थात्, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके पक्षमें बड़े जोरदार शब्दोंमें अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं, जिसका मालवीयजी ने कड़ा विरोध किया है। डा० सप्रू इसमे जोर-जबरदस्तीकी कोई बात नही देखते। मैंने उनसे प्रथम विधेयककी जाँच कर जानेके लिए भी कहा है। यदि कानूनी बाधासे तुरन्त ही छुटकारा पानेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया जाता है तो हर असली दिक्कतको दूर किया जा सकता है। इसलिए मेरे विचारसे सुधारकका रास्ता बिल्कुल साफ है। उसे सरकारको इस बातके लिए आमन्त्रित करना चाहिए कि वह इस सत्रके दौरान इन विधेयकोंपर विचार किये जानेकी सुविधा प्रदान करे और सदस्योंसे भी इसमें मदद देनेकी अपील करे। सफलता अथवा विफलताकी चिन्ता करना उसका काम नही है। लेकिन सच्चे दिलसे और अनवरत प्रयत्न करना उसका काम अवश्य है, और यह उसके वशकी बात है; और वह चाहे अकेला हो या उसके साथ बहुतसे लोग हों, उसे इस प्रयत्नसे मुँह नहीं मोड़ना चाहिए।

मालवीयजी का सुझाव है कि विधेयकोंको घुमाया जाये। उनकी यह दलील मेरी समझमें नही आई है। यदि विधेयक बाध्यकारी होते तो मै न केवल उनके घुमाये जानेकी बातका समर्थन करतां, बल्कि कदाचित् मै उनको सदनमे पेश करनेका ही विरोध करता। लेकिन ये विधेयक विशुद्ध रूपसे वैकल्पिक हैं। ये तो कानूनमे दिये गये नियमोके अनुरूप हिन्दूमत को निश्चित करनेका रास्ता खोलते है। मै किसी भी ऐसे संशोधनको स्वीकार करनेके लिए तैयार रहूँगा जिसके अनुसार किसी भी सार्वजनिक मन्दिरमे आजतक जो लोग पूजा करते आये है, उनकी इच्छाके विरुद्ध बलपूर्वक उस मन्दिर-विशेषके द्वार हरिजनोंके लिए खोला जाना असम्भव हो। आखिरकार हम लोग कानून द्वारा अस्पृश्यताको दूर नही करना चाहते। यदि हिन्दुओंके दिलोमें अस्पृश्यताकी भावना हुई तो कानून उसे मान्यता दे अथवा न दे, वह हमेशा बनी रहेगी। लेकिन धार्मिक विश्वासोंकी व्यवस्था करनेके लिए कानूनी सहायताकी माँग नहीं की जा सकती, जैसीकि सनातनियोने की थी और अपने हक मे अदालतसे फैसले करा लिये थे और जिनका कि उल्लेख श्रीयुत जयकरने किया है। इसलिए कानूनी हस्तक्षेप किये जानेकी माँग उन्हीं लोगोंने की थी जो आज विधेयकोंको सत्रमे रखे जानेकी बातका कड़ा विरोध कर रहे है। इन विधेयकोंका

१. देखिए "अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार", १८-२-१९३३।

२. देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", २६-१-१९३३; डॉ० सप्रूके मतके लिए देखिए "अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार", २५-२-१९३३।

उद्देश्य किसीको किसी चीजके लिए बाध्य करना नहीं है, अपितु उनका उद्देश्य उस वर्तमान बाध्यकारिताको हटाना है जिसके कारण बम्बईवाले प्रस्तावोंमें सन्निहित प्रतिज्ञा का पालन करना असम्भव हो गया है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

४४७. मन्दिर-प्रवेश और वर्णाश्रम

आशा है, पाठकोंने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर तथा उसपर से वर्णाश्रम-धर्मके बारेमें डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्य और मेरे उत्तर[1] को पढ़ा होगा। उन दोनोको 'हरिजन' में प्रकाशित करनेका मेरा इरादा तो था, लेकिन मै देखता हूँ कि यह तबतक सम्भव नहीं जबतक इस पत्रिकाके आकारको बड़ा नहीं किया जाये, जिसे अस्तित्वमें आये अभी केवल दूसरा ही सप्ताह हुआ है। इसलिए मैंने यह विश्वास कर लिया है कि पाठकोंने डॉ० अम्बेडकरका वक्तव्य और मेरा उत्तर, दोनों पढ़ लिये होंगे।

पाठक समझ लें कि डॉ० अम्बेडकर मन्दिर-प्रवेश तो अवश्य चाहते हैं, लेकिन वह कुछ और भी चाहते हैं। लेकिन वे इसके लिए याचना नही करेंगे और यह बिल्कुल ठीक है, पर साथ ही सही काम करनेमें वह सवर्ण हिन्दुओंकी मदद भी नही करेंगे जो बिल्कुल गलत है। वह मन्दिर-प्रवेशके अतिरिक्त और जो चाहते हैं वह है उनकी अपनी कल्पनाके वर्णाश्रम-धर्मका पूर्ण रूपसे नाश। उनके विचारसे वर्णाश्रम ऊँच और नीचका सार है। मानता हूँ कि आजके वर्णाश्रम-धर्मका यही अर्थ है, यद्यपि वर्णाश्रम-धर्मका अर्थ इससे कहीं अधिक भी है, लेकिन अस्पृश्यता ऊँच और नीचकी परिचायक तो है ही। अतएव जब अस्पृश्यताका नाश हो जायेगा तब वर्णाश्रम-धर्म उस दोषसे मुक्त हो जायेगा जिसके लिए डॉ० अम्बेडकर उसे गर्हित समझते हैं।

मेरी कल्पनाका वर्णाश्रम बिल्कुल भिन्न वस्तु है। आज तो वह केवल नाम-मात्रको रह गया है। इसलिए पाठकोंको चाहिए कि वे मुख्य उद्देश्यसे गुमराह न हों। जब ऊँच और नीचका भेद खत्म हो जायेगा तब वर्णाश्रमकी ओर ध्यान देनेके लिए काफी समय होगा।

यह भी जरूरी है कि वर्णाश्रमकी मेरी व्याख्याको लेकर लोग परेशान न हों। मै जानता हूँ कि इससे सनातनियोंको धक्का पहुँचेगा, लेकिन वे लोग मुझे शास्त्रोंको और हिन्दू-धर्मकी समग्र आत्माको मैंने जिस रूपमें पढ़ा व समझा है उसके अनुरूप कार्य करनेकी अनुमति देंगे। सनातनियोंकी ओरसे मुझे जो पत्र मिलते रहते हैं उनसे ऐसा मालूम नही होता कि ऊँच-नीचके सिद्धान्तमें उन्हें विश्वास है। इसके विपरीत वे हमेशा मेरे इस कथनका विरोध करते हैं कि सवर्ण हिन्दुओंने हरिजनोंको अपनेसे नीचा माना है, सदा अपनेसे दूर रखा है। अतएव वर्णाश्रमकी अपनी धारणाको एक

१. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।

ओर रखकर सनातनियोंको चाहिए कि हिन्दू-धर्ममें ऊँच-नीचका जो यह भेद दिखाई देता है उसको दूर करनेमें हमारे साथ मिलकर काम करें। आखिरकार, जनता जिस धारणाको स्वीकार करेगी, वह सर्वमान्य होगी। अस्पृश्यताके विरुद्ध चल रहे वर्तमान आन्दोलनका उद्देश्य बहुत ही सीमित है। 'वर्णाश्रम खतरेमें है' इस बातकी दुहाई देकर जनताके मनको भ्रमित करना बहुत दुःखकी बात होगी। मुझे पूरा यकीन है कि वर्णाश्रमको डॉ० अम्बेडकरकी अपेक्षा उन लोगोंसे ज्यादा खतरा है जो आज हिन्दू-धर्ममे जो-कुछ हो रहा है, उसकी ओरसे अपनी आँखें बन्द किये बैठे हैं। डॉ० अम्बेडकर साहसपूर्वक यह तो कहते हैं कि "मुझे ऐसे वर्णाश्रमसे कोई सरोकार नहीं है जो मुझे और मेरे लोगोंको हमेशा निम्नतम सामाजिक स्तरपर बनाये रखना चाहता हो।" यदि हम उनके-जैसे लोगोंके लिए हिन्दू-धर्ममें स्थान ढूंढ़ सकें तो हमें उन्हें अपने व्यवहार द्वारा यह बता देना चाहिए कि वर्णाश्रम कोई खड़ी रेखा नही है, बल्कि वह तो समतल भूमि है जहाँ ईश्वरके सभी बच्चोंके लिए एक-सी स्थिति है, फिर चाहे वे जीवनके भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगे हों और चाहे उनके गुण और रुचि भिन्न-भिन्न हों।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

४४८. पत्र : मोतीलाल रायको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

आपकी इलाहाबाद यात्राके पश्चात् मुझे आपके पत्रकी आशा थी। कृपया अब इस भूलका परिमार्जन कर लें।

'हरिजन' के सम्बन्धमें आपकी आलोचना चाहता हूँ। आप कुछ उत्तरदायी लोगोंसे ग्राहक बनानेको भी कहे और संघ[2] के सदस्योंने हरिजनोंके बीच जो वास्तविक रचनात्मक कार्य किया है उसकी एक साप्ताहिक रिपोर्ट मेरे पास भेजें। रिपोर्टमें अतिरंजना नही होनी चाहिए।

कृपया पंचानन शास्त्री तर्करत्नसे कह दें कि उन्होंने मुझे बेहद निराश किया है। और किसी चीजसे मुझे इतना दुःख नहीं होता जितना वचन-भंग से। उन्होंने तो सनातनियो और सुधारवादियोंको परस्पर मिलानेके लिए प्रयत्न करनेका वादा किया था।[3] इस सम्बन्धमें मुझे उनका कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने दो बार वादा किया कि अपना मत मेरे सामने प्रकट करनेके लिए तथा मेरे प्रश्नोंका उत्तर देनेके

१. वर्णाश्रम-धर्मपर बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट १५।

२. प्रवर्तक संघ।

३. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१९।

लिए और सामान्यतः सनातनियोंके दृष्टिकोणसे अवगत करानेके लिए या तो वह अपने पुत्रको और या फिर उस-जैसे ही विद्वान किसी अन्य व्यक्तिको मेरे पास भेज देंगे। क्या वह अब भी कोई ऐसा व्यक्ति भेज रहे हैं?

दूसरे, उनका लड़का उन पंडितोंमें से एक था जो मुझसे आकर मिलनेवाले थे। मुझे दुःख हुआ कि उनका लड़का उन लोगोंमें से था जिन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वैसा व्यवहार मेरी रायमें किसी विद्वान व्यक्तिको शोभा नहीं देता था।[1] उस दुखद दिवसकी घटनाओंको समाप्त करनेके लिए मुझे बड़े आत्म-संयमसे काम लेना पड़ा था। दुखद इसलिए कि जिन लोगोंको मूल शास्त्रोंका संरक्षक होना चाहिए था उनमें ही भद्रता और जीवनके सामान्य सद्व्यवहारकी इतनी कमी दिखाई पड़ी। यह पहला मौका है जब मैंने विद्वान पुरुषोंका चरित्र-चित्रण करनेके लिए कलम उठाई हो और मैंने यह सब इसलिए किया क्योंकि मैं पंचानन शास्त्रीका आदर करता हूँ तथा उनका लड़का उन शास्त्रियोंमें से था। यदि मुझे पंचानन शास्त्रीसे किसी चीजकी अपेक्षा है तो वह यह कि उन्हें मेरी वास्तविक स्थिति पहचाननी चाहिए और उन्हें यह भी मालूम रहना चाहिए कि जिन लोगोंको वे अपने नामसे लाभ उठाने देते हैं तथा जिनको अपने लड़केकी सेवाएँ अर्पित करते हैं उनके बारेमें मेरे क्या विचार हैं।

या तो आप इसी अंशको उनके पास भेज दें या इसका अनुवाद, या फिर जो-कुछ मैंने आपको लिखा है वह स्वयं जाकर उनसे कह दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८३) से।

४४९. पत्र : लोकनाथ मिश्रको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका मर्मस्पर्शी पत्र मिला, लेकिन आपको विस्मित या दुखी नहीं होना चाहिए। मेरा उत्तर गुजरातीमें था, लेकिन आपने जो अनुवाद पढ़ा है वह बिल्कुल ठीक ही है। मोरवीके भूतपूर्व दीवान द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरमें मैंने जो-कुछ कहा है[2] वह तो मैं अपने लेखोंमें बार-बार कह चुका हूँ। यदि आपने मेरे लेखोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा होता तो यह आपकी निगाहसे चूक नहीं सकता था। न ही यह आनुवंशिकताके नियमके विरुद्ध है। नियम बदला नहीं जा सकता, लेकिन यदि हम नियम जानते हैं तो हम अपने कर्मोंको इसके अनुसार ढाल लेंगे और यही संक्षेपमें

१. देखिए "पत्र : देवनायक आचार्यको", १२-१-१९३३ तथा "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

२. देखिए "पत्र : रणछोड़दास पटवारीको", ११-१-१९३३।

मेरे उत्तरका सार है। अनिवार्य गुण तो पितासे पुत्रमें प्रवेश कर जाते हैं। यदि एक-जैसे गुणवाले लोग विवाह करते हैं तो वे आनुवंशिकताके नियमका और इसी कारणसे वर्ण-नियमका भी पालन करते हैं। वर्णाश्रमकी स्थापना होनेके बादसे इस प्रकारके विवाह हिन्दू-समाजमें सम्पन्न हुए है। इससे आपको सन्तोष मिलना चाहिए। आपने जो आपत्तियाँ उठाई हैं उन सबका एक विस्तृत उत्तर पानेकी आप मुझसे अपेक्षा न करें। आप मेरी इस बातका विश्वास करें कि इसके लिए मेरे पास समय भी नहीं है। यदि आप 'हरिजन' को सावधानीके साथ पढ़ेंगे तो आपकी शंकाओंका समाधान हो जायेगा। और यदि न हो, तो आप मेरा ख्याल अपने मनसे बिल्कुल निकाल दें। उद्देश्य बड़ा है, मैं नही। आप और मैं उद्देश्यके लिए जीते हैं, और काम करते हैं। समान उद्देश्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें यदि मैं कोई भूल करूँ तो आप मुझे छोड़ दें और लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ जायें। अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी कार्यकी सीमाओंको अच्छी तरह स्पष्ट किया जा चुका है। असंगत विषयों, जैसे जाति और वर्ण, अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तर्भोज आदि, के सम्बन्धमें मेरे विचारोंकी आप परवाह न कीजिए। इन समय मैं इन मामलोंपर अपने विचार सार्वजनिक स्वीकृतिके लिए पेश नहीं कर रहा हूँ। ये विचार मै पूछताछ करनेवालोंके सन्तोषके लिए देता हूँ, क्योंकि मैं चाहूँगा कि मेरे मित्र और जनता मुझे मैं जैसा हूँ उसी रूपमें जाने, न कि उस रूपमें जिसमें कि वे मुझे देखना चाहते हैं, लेकिन जो मुझसे बिल्कुल नही मिलता। यदि इससे भी आपकी सन्तुष्टि न हो तो आप समय निकालकर मेरे पास आ जायें और बातचीत करके पूरी तरह अपना सन्तोष कर लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत लोकनाथ मिश्र, एम० ए०, बी० एल०
सचिव, अस्पृश्यता-विरोधी समिति
पुरी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८४) से।

४५०. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुमने मुझे सोसायटीके संविधान और नियमोंका मसविदा भेजा है। चार आदमी उसमें लगे रहे हैं। हम चारोंको ऐसा लगता है कि इसे बिल्कुल नये सिरेसे तैयार करना पड़ेगा। इस समय शास्त्री उसका अध्ययन कर रहे हैं। यदि मैं अभी कुछ समयतक अपने सुझाव न दे सकूँ तो कृपया मुझे क्षमा करना। इसमें कुछ समय लग जाये तो कोई हर्ज नही, लेकिन हम लोग जो-कुछ भी दें वह बिल्कुल ठोस और पूर्णतः पठनीय होना चाहिए।

हरिजन-दिवसके बारेमें मेरा खयाल है कि इसकी घोषणा तुम्हारी ओरसे अधिकृत रूपसे की जानी चाहिए। उसके बाद मैं उसका समर्थन कर दूँगा। यह शायद और अच्छा होगा कि एक हरिजन-दिवस मनानेकी घोषणा अभी कर दी जाये और उसके बाद प्रत्येक महीने या हर दूसरे महीने एक दिन नियत कर दिया जाये, ताकि लोग अपने-आप उसे जान जायें और हरिजन-दिवस एक प्रकारका हर माह या प्रत्येक डेढ़ महीनेमें या प्रति पक्ष होनेवाला एक धार्मिक अनुष्ठान-जैसा बन जाये। अब तुम्हें जो ठीक लगे सो करना।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८१) से।

४५१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

बाबू भगवानदासने विद्वानोंकी सम्मतियाँ प्रकाशित करनेके लिए 'आज'का जो विशेषांक निकाला था, उसके लिए उन्हें चन्दा देनेकी बात मुमकिन है, आप भूल गये हों, इसलिए यदि आप पहले ही कुछ भेज न चुके हों, तो कृपया अब भेज दें।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२८) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४५२. पत्र : भगवानदासको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबूजी,

आपका इसी १३ तारीखका पत्र मिला। आपको मैं अपने पत्रमें यन्त्रवत लम्बे नामसे सम्बोधित कर गया था और मुझे खयाल ही नहीं रहा कि मैं अब ज्यादा घरेलू सम्बोधन अपना चुका हूँ। पत्र बोलकर लिखवानेकी जल्दीमें यदि मैं दुबारा ऐसी गलती करूँ तो कृपया आप उसकी ओर मेरा ध्यान अवश्य दिला दें।

घनश्यामदासने जो चन्दा देनेका वादा किया था उसके बारेमें मैं उन्हें पहले ही लिख चुका हूँ।[1] मुझे कोई सन्देह नहीं कि अगर चन्दा अबतक न पहुँच चुका होगा

१. देखिए पिछला शीर्षक।

तो आ जायेगा। वह शायद भूल गये होंगे। अखबारोंको स्वावलम्बी होना जरूरी है, इस बातको मैं अब बारम्बार दोहराऊँगा नहीं। मैं देखता हूँ कि आपने 'महात्मावाला सिद्धान्त'[1] प्रस्तुत करके मेरे तर्कको व्यर्थ कर दिया है। अन्तर इतना ही है कि इस आत्माने जब उक्त मतको विकसित और कार्यरूपमें परिणत किया था उस समय उसपर महानता थोपी नहीं गई थी।

शिवप्रसाद[2] के अस्वास्थ्य, और उनके पोते की दुर्घटनामें मृत्युके समाचारसे मुझे बहुत गहरा शोक है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २०२७४) से।

४५३. पत्र : बी० एन० ससमलको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय ससमल,

आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। मेरे खयालमें भारत-भरमें कविराजके बहुतसे संस्करण हैं। उम्मीद है कि आपको अपनी 'हरिजन' की प्रति मिल रही है और यदि आप बिल्कुल ही गरीब न हो गये हों, जैसाकि मुझे मालूम है कि आप नहीं हुए हैं, तो आप अपना चन्दा तथा दूसरोंका चन्दा और उनके नाम सीधे मेरे पास भेज दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २०२७९) से।

१. भगवानदासने लिखा था : "**आज** अखबार अभीतक अपने एकमात्र स्वामी, शिवप्रसादजी की कृपासे चलाया जाता रहा है।...आपने जिस आदर्शकी बात की है उसे **यंग इंडिया** ने प्राप्त कर लिया है, फिर भी ऐसा इसीलिए सम्भव हो सका, क्योंकि एक महात्मा उसके सम्पादक थे और यदि वित्तीय दृष्टिकोणसे इसे देखा जाये तो ऐसा महात्मा पैदा करनेके लिए किसी देशको ईश्वरकी कृपा और करोड़ों रुपयेका सहारा चाहिए।"

२. हिन्दी दैनिक **आज** के संस्थापक, और वाराणसीके प्रमुख कांग्रेसी नेता।

४५४. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मेरे सामने ८ फरवरी और १४ फरवरीके आपके दो पत्र हैं। अब मैं आपसे कहूँगा कि आप बस करें। आप अपने पत्रोंको लिखनेमें जितनी मेहनत करते हैं उसका मैं सम्मान करता हूँ, लेकिन मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि आपके तर्कोंका मेरे ऊपर कोई असर नहीं होता। कुछ तो मेरी बिल्कुल ही समझमें नहीं आते। कुछ ऐसे हैं जिनका समस्यासे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप अक्सर साध्यको सिद्ध मानकर तर्क करते हैं और अक्सर ऐसे दावे करते हैं जैसेकि वे कोई स्वयंसिद्ध सूक्तियाँ हों। मेरी रायमें इस तरीकेसे आप अपनी बातसे किसीको कायल नहीं कर सकेंगे। मैं मानता हूँ कि मैं तर्कोंका सदैव स्वागत करता हूँ और यह भी कि मुझमें अपने आलोचकके दृष्टिकोणको समझनेकी क्षमता है। अपनी शिष्ट भाषासे और लेटर-पेपरकी सजावटके बारेमें दिये गये मेरे सुझावको चुपचाप स्वीकार और कार्यान्वित करके आपने मेरे मनमें अपने लिए अनुकूल स्थान बना लिया है। इसलिए अब मैं आपके पत्रोंको इस इच्छासे पढ़ना चाहता हूँ कि उनसे मुझे कुछ ठोस मदद मिलेगी, लेकिन आप यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि मुझे वह बिल्कुल नहीं मिलती। अतः अब मैं आपसे यह पत्राचार बन्द करनेको कह रहा हूँ। अगर मैं आपको ऐसा समझने दूँगा कि आपके तर्कोंका मुझपर प्रभाव पड़ रहा है और इसलिए आप पत्र-व्यवहार जारी रख सकते हैं तो मैं आपके प्रति अशिष्टता बरतनेका अपराधी होऊँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९५७६) से; सौजन्य : मैसूर सरकार

४५५. पत्र : एफ० मेरी बारको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मेरा पत्र उधर गया और तुम्हारा इधर आया। स्त्रियोंमें जो कमजोरियाँ बताई जाती हैं तुम उनको चरितार्थ कर रही हो। आश्रम बनानेका उद्देश्य पुरुषों और स्त्रियोंको उनकी कमजोरियोंसे मुक्त करना है। क्या तुम अपनी कमजोरियोंको छोड़कर अपने पत्रोंमें वे चीजें लिखना सीखोगी जो उनमें होनी चाहिए। तुमने अपने दमेका जिक्र छोड़ दिया है। मुझे आशा है कि उसने तुम्हारा पिंड बिल्कुल छोड़ दिया है। 'पुनियम' की हिज्जे सामान्यतः 'पुन्यम' किये जाते हैं। तुम्हें देव-नागरी लिपि सीखनी चाहिए। प्रतिदिन एक घंटा देनेपर तुम्हें इसमें एक सप्ताहसे ज्यादा नहीं लगेगा। तब तुम समझ जाओगी कि तुम मूलको 'पुनियम' लिखकर व्यक्त क्यों नहीं कर सकतीं। यहाँतक कि 'एन' शब्द भी मूल ध्वनि नहीं देता। संस्कृतमें पाँच प्रकारकी सानुनासिक ध्वनियाँ हैं।

'नारणदास' ही कहना बहुत काफी है। लेकिन 'भाई' या 'जी' लगानेकी बुरी आदतका चलन रहा है और यह 'मिस्टर' का स्थान लेता है। अपरिचित लोग तो केवल 'जी' ही लगायेंगे, लेकिन यदि तुम नारणदाससे आयुमें बड़ी हो, तो तुम 'भाई' या 'जी' दोनों छोड़ सकती हो। यदि तुम छोटी हो तब परिवारके सदस्यके रूपमें 'भाई' आवश्यक हो जायेगा। मेरी पुत्रीवत होनेके कारण तुम नारणदास तथा आश्रमके अन्य सभी सदस्योंके लिए भगिनीवत हो। [अंग्रेजीमें] भाईका मतलब ब्रदर और बहनका मतलब सिस्टर होता है। यहाँ पहला पाठ समाप्त हुआ।

अगर तुम नई चीजोंको धीरे-धीरे सीख पाती हो तो अपने ऊपर झुँझलाओ मत। दृढ़तापूर्वक अभ्यास करनेसे वे सब सरल और सहज हो जायेंगी।

हम सबोंकी ओरसे प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९३) से। सी० डब्ल्यू० ३३१८ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

४५६. पत्र : नारणदास गांधीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे पास एक मित्रको भेज रहा हूँ। उनका नाम डंकन ग्रीनलेस है। वे ऑक्सफोर्डके बी० ए० हैं। उत्तरप्रदेशमें शिक्षक थे। जेल जा चुके हैं। उनका हरिजन-सेवा करनेका विचार है। मैंने उन्हें सुझाया है कि उन्हें आश्रममें रहकर अनुभव हासिल करना चाहिए। यदि उन्हें हम और हमारे लिए वे — परस्पर अनुकूल पड़ते हों तो उनके लिए कहीं-न-कहीं व्यवस्था करनी चाहिए। अतः उन्हें [आश्रममें] रखना और काम देना। कताई, बुनाई, आदिका तो होगा ही। उनसे यदि शिक्षा-कार्य करवाना हो तो करवाना। वे बड़े सादे हैं, निरामिषाहारी हैं। उनकी जरूरतें जान लेना। वे तुम्हारे लिए बोझ तो कदापि नहीं होंगे। पूनासे अहमाबाद जो यात्रा-खर्च होगा वह उन्हें देना या उनके नाम जमा करवा देना। सम्भवतः यह दससे बारह रुपयेतक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

४५७. पत्र : रमाबहन जोशीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम शुक्रवार अथवा शनिवारको मिलने आओ और पहलेसे बताकर आओ तो मिलना हो सकेगा। मुलाकातके लिए किसीको पहलेसे ही लिखकर बतानेकी जरूरत नहीं है। मुझे पहलेसे ही तारीख बता दोगी तो पर्याप्त होगा। मुझसे मुलाकात बारह बजेसे डेढ़ बजेतक हो सकती है। तुमसे पक्का करनेके बाद मैं जोशीके बारेमें तय कर लूँगा।

विमु यदि पागल कहलाना नहीं चाहती तो अब उसने झगड़ा-टंटा करना छोड़ दिया होगा।

बापू

[पुनश्च :]

मुझे अभी यह पता चला है कि छगनलालकी यह इच्छा है कि तुम अभी न आकर तीन महीने बाद आओ। इस बारेमें मुझे लिखना चाहो तो लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४२) से।

४५८. पत्र : विमला जोशीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० विमु,

तेरा पत्र मिला। तेरी भेजी मोरनी भी मिली। यह कतई बोलती ही नहीं, सो किस कामकी? जैसी मोरनी वैसे ही तेरे अक्षर और सो भी पेंसिलसे लिखे; यह नहीं चल सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३०९) से।

४५९. पत्र : नारणदास गांधीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। . . .[1] के सम्बन्धमें तुम्हें लिख ही चुका हूँ। तुमने हरजीवनको लिखा सो ठीक ही किया। मुझे भय है कि . . .[2] बम्बईमें नहीं रहे। उसके मनका मैल अभी निकल नहीं पाया। . . .[3] तो खिलवाड़ ही करती जान पड़ती है। काम तो वह करना ही नहीं चाहती। ऐसा होते हुए भी हम लोग उसे जहाँतक पाल सकें, पालें। यानी, यदि तुम्हारी सूचना अमलमें लाई जा सके तो भले ही लाई जाये। मेरी बहनके पत्र पढ़ लेना और उन्हें दे देना।

फादर लैश कुछ सुझाव दे गये? क्या तुम उनके सम्पर्कमें आये थे?

उस मुसलमान बहनके बारेमें क्या हुआ? वह कैसी है?

बापू

[पुनश्च :]

साथमें मेरी, रमा, विमु के लिए पत्र हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१, २ और ३. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिये गये है।

४६०. पत्र : गंगाबहन बी० झवेरीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र ठीक समयपर आ गया। मैं तुम्हारे पत्रकी बाट जोह रहा था। आगामी मंगलवारको दो बजे आना। चूंकि हम मिलेंगे ही, इसलिए यहाँ और ज्यादा नही लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९५२) से।

४६१. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१८ फरवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

सरूपबहनके कार्यक्रमकी व्यवस्था गुजरातमें करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्धमें मेरा कोई आग्रह नहीं था। मेरी सूचना तो केवल इतनी-भर थी कि यदि उसकी उपस्थितिका लाभ लिया जाना आवश्यक जान पड़े तो लिया जाये।

गुजराती 'हरिजन' के विषयमें भाई जयसुखलालके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९३) से।

४६२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

१८ फरवरी, १९३३

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। जब तुम्हारे लिए अस्पताल जानेकी आवश्यकता न रहे और ठीक शक्ति आ जाये तब यदि तुम्हें अस्पृश्यताके सम्बन्धमें बात करनी हो तो चले आना। ऑपरेशन करवा लिया, सो ठीक किया। बाकी तुम्हारा ही निदान ठीक था। मूल रोग पेट ही में है। इसलिए एकमात्र उपचार उपवास और अल्पाहार ही है। फिलहाल तो दूध और फलोपर ही रहना चाहिए। अहिंसाके विषयमें लिख रहे हो, यह समुचित है। रोहितके बारेमें जानकर दु:ख है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७६) से; सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

४६३. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला है। कुदसियाको[1] भूल जाओ। आखिर तो उसके वालिद जो करें वही हो सकता है। हमारा काम हमारे हाथोंमें जो आया उसे तन-मनसे करना है। फल खुदाके ही हाथमें है। डाक्टर शर्माकी बेटी[2] अच्छी होगी। इलाज क्या किया गया? तुमको सब तरह अच्छा हो रहा है, जानकर मुझे बड़ी खुशी होती है। क्या क्या इलाज होते हैं, क्या खाती है, यह सब हाल लिखो। मैंने तुमको काफी खत लिखे हैं। मेरे पास हिसाब है। मैं जरूर लिखता रहूँगा।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७७) से।

१. अमतुस्सलामकी भतीजी जो आश्रमसे जाते ही घरके रंगमें रँग गई, जबकि अमतुस्सलामको उससे कुछ और ही आशाएँ थीं।

२. जो चेचकसे पीड़ित थी।

४६४. पत्र : रेहाना तैयबजीको

बिस्मिल्लाह

१८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिला। मै तो हमेशा इन्तजारीमें रहा हूँ। पद्मजाके लानेपर क्यों तुम्हारा आना मुबनी है—तुमको कोई और कार नहि मिल सकती है? इतना याद रखो बुधवार और जुमेरातको नहीं आना हरिजनके लिए दोनों दिन चाहिए। हाथ अच्छा हो गया होगा बुखार बिलकुल बन्द हो जाय तो बोसाकी तैयारियां करना होगा।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६६०) से।

४६५. पत्र : द० बा० कालेलकर और बाल कालेलकरको

१९ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

यदि कोरा दूध नहीं पचता है तो वह हानि नहीं करता, पर जो दूध दूसरे खाद्य पदार्थोंके सहयोगसे पचता जान पड़ता है, वह पचा नहीं होता बल्कि खुराकके साथ मिलकर जहरके रूपमें बनकर शरीरमें रुकता है और मसूड़ों आदिको खराब करता है। डॉक्टरोंकी यह मान्यता दिनोदिन बढ़ती जाती है और ठीक भी लगती है। दूधके साथ संतरा, अंगूर, अनन्नास, अनार और इसी प्रकारके रसदार फल लिये जा सकते हैं। इनके कारण दूध कब्ज नहीं कर पाता। अतः तुम्हें दूधका प्रयोग तत्काल करना चाहिए। और उसे पचानेकी ठीक शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए। दही और दूधमें मैं भेद नहीं करता। दही सुपाच्य होता है, ऐसा कुछ—कदाचित अनेक—डॉक्टर मानते हैं। पर दही एकदम मीठा होना चाहिए। हम जो नींबू डालकर दही तैयार करते थे वह सर्वोत्तम है। दूध पीना नहीं चाहिए, बल्कि 'सिप' करना चाहिए। चम्मच-चम्मच लेना अच्छा है। शुरूमें तो घंटे-घंटे बाद एक पाव लेना ठीक। दस्त आने लगें तो कोई हर्ज नहीं, वह तो कुछ ही दिनोंमें आप ही बन्द हो जायेंगे।

फलोंका रस जब रुचे तब अलहदा ले लिया जाये। फलोंमें ६ मोसम्बीका रस या ४० तोला ताजे अंगूरका रस दो बारमें लिया जाये। दूध या दही चार सेरतक लेना चाहिए। उसमें मक्खन जितना जरूरी हो डाला जाये। पर मुझे यह शंका है कि दूध उचित प्रमाणमें लिया जाये तो मक्खनकी आवश्यकता रह जाती है। फिर भी यदि मक्खन बिना किसी दूसरी खुराकके हजम होता हो तो इस बातकी चिन्ता नहीं। मक्खन भी दूधकी तरह अकेला लेनेमें कोई हर्ज नहीं है, ऐसी डॉक्टरोंकी मान्यता है। यों मैंने यह दूधकी महिमाका [विस्तारपूर्वक] वर्णन किया। क्या करूँ? इसकी श्रेणीमें खड़ी की जा सके, ऐसी कोई वनस्पति उपलब्ध ही नहीं है। दूध तो योगियोंका भी आहार है, यह जो कहा जाता है उसमें अर्ध-सत्य तो है ही। मांसका स्थान तो दूध ही ले सकता है। दूधका काम देनेवाली वनस्पतिकी खोज भारतके वैद्य करते, पर धर्म-भावनाके कारण उन्होंने वह नहीं की। मै हार गया। अब तो जो कोई इसका आविष्कार कर ले वही ठीक। हो सकता है पश्चिममें इसकी शोध हो; हमारी मंडलीमें जो ऐसी शोध कर सके इतना वैद्यकीय ज्ञान किसीको भी नहीं है। और ऐसा ज्ञान सम्पादन करके इस दिशामें प्रयोग किये जायें, इतनी धर्म-भावना हममें नहीं। ऐसा ज्ञान सम्पादन करनेवालेमें सर्वप्रथम तो गोसेवा को अपना धर्म माननेका उत्साह होना चाहिए। यह बात उसके लिए स्वयंसिद्ध-जैसी होनी चाहिए कि माँ के दूधको छोड़कर अन्य कोई दूध मानवकी खुराक ही नहीं है। और तब वह डॉक्टरीका ज्ञान हासिल करे। पर ऐसी लगनवाले लोग आज हमारे बीच नहीं हैं। हाँ, यदि यह आविष्कार हमारे ही द्वारा होना है तो ईश्वर ऐसा कोई व्यक्ति हमारे बीच भेजेगा। इस बीच तो हम केवल नम्रतापूर्वक दूधके गीत गायें और प्रत्यक्ष रूपसे जो अपना धर्म लगता है उसका पालन करें। मुझे लगता है कि तुमने जैसी अपेक्षा की होगी उससे कहीं अधिक विस्तृत उत्तर तुमको मिल गया है। प्रश्नके महत्त्वको भी तुम समझे होगे। इस सबपर विचार करके जैसा-कुछ योग्य लगे, करो। क्योंकि ऐसे मामलोंमें भी अन्तिम निर्णय तो स्वयं मनुष्यको ही करना है। यह सार-विस्तार तो बीमारोंकी दृष्टिसे ही किया गया है। जो शरीरसे स्वस्थ हैं वे तो सामान्य खुराक ही लेंगे और कदाचित पचा भी लें। पर तुम्हें यदि दूधका प्रयोग शास्त्रीय विधिसे करना हो तो आश्रममें किया जा सकता है अथवा किसी डेरीके सान्निध्यमें हो सकता है बशर्ते, वहाँ जानेका हमें अधिकार हो — तभी तो ताजा दूध मिल सकेगा। योगी लोग दूधमें बाटा हुआ नीम डालते हैं, यह बात तुम्हारे ध्यानमें होगी।

'हरिजन' के सम्बन्धमें लिखने-जैसा लगे तब लिखना। मेरा यह खयाल रहा है कि निर्दोष अंडे मुर्गे-मुर्गीके संग बिना ही पैदा होते हैं। सांगलीवाले मित्रसे पुछवाने पर ठीक जानकारी मिल सकेगी। निर्दोष अंडा वह होता है जिससे बच्चा पैदा होने की कोई सम्भावना ही नहीं होती।

'हरिजन' के नामका टाइप मुझे तो बहुत ही जँचा, जो केवल मेरी ही पसन्दगी है। पहले तो ब्लॉक बनवानेका विचार था, पर छप चुकनेपर [टाइप] मुझे बहुत ही जँचा, अतः ब्लॉक बनवानेका विचार ही छोड़ दिया।

शास्त्र यानी, पूर्वकालमें अनुभवी लोग कह गये सो वचन नहीं, बल्कि उस मानवके वचन जिसे आज अनुभव ज्ञान अर्थात्, ब्रह्मज्ञान हुआ है। शास्त्र तो नित्य मूर्तिमन्त होता है। जो बात केवल पुस्तकमें है, जिसका अमल ही नहीं होता वह तो तत्त्वज्ञान है अथवा मूर्खता या पाखण्ड है। शास्त्र तो तत्काल अनुभवगम्य होना चाहिए। कहनेवालेके अनुभवकी बात होनी चाहिए। वेद इसी अर्थमें नित्य हैं। दूसरा जो-कुछ है वह अब 'वेद' नहीं है; वह तो निरा 'वेदवाद' है।

. . .[१]को . . .[२]ही चाहिए तो उसे हमारी अवहेलना करके स्वयं ही विवाह कर लेना चाहिए। यह किया ही जा सकता है। 'निग्रहः किं करिष्यति'[३] यहाँ लागू होता है। परन्तु ऐसा करनेमें पुरुषार्थकी आवश्यकता है। और अन्तमें ऐसे दम्पती संयमी सिद्ध होते हैं तभी दुनिया इन्हें क्षमा करती है। यों ऐसा आचरण ही 'अशास्त्र विहित' है।[४] ऐसे कार्यमें यदि श्रद्धा है और वह सात्विक है तो ऐसे कार्यका करनेवाला निन्दाका पात्र नहीं होता। अभी तो वह निन्दाका पात्र है ही और होना चाहिए भी। मेरा मतलब यह है कि हमारा कर्त्तव्य तो स्पष्ट ही है। हम तो सीधे या आड़े किसी भी तरीकेसे . . . के साथ किये जानेवाले विवाहमें सहमत नहीं हो सकते। इतनेपर भी यदि वह उसके साथ विवाह करता है और अन्तमें यशका भागी बनता है तो हम भी प्रशंसामें शरीक हो जायेंगे। मुझे तो लगता है कि . . . तो . . .को भुलाने लगी है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह पत्र मैंने सवेरे ३ से ५ बजेके बीच लिखा है, प्रार्थनाका समय छोड़कर। इतना समय तुमको देना नहीं था; मेरे पास है भी नहीं, पर . . .

प्रातःकाल ५ बजे

चि० बाल,[५]

बड़ोंकी नकल यदि बालक करते हैं तो बच्चोंके सद्वर्तनकी नकल बड़े भी कर सकते हैं और उन्हें करनी भी चाहिए, इसीलिए मैं तेरी नकल कर रहा हूँ। शंकरके[६] समाचार ठीक ही है पर और जानकारी करूँगा। काकाको मैंने बहुत समय दे दिया, इसलिए तुझे आज इतना ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९४९५) से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१ और २. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिये गये हैं।
३. **गीता**, ३, ३३।
४. **गीता**, १७, ५-६।
५. बालकृष्ण दत्तात्रेय कालेलकर।
६. सतीश कालेलकर।

४६६. पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको

१९ फरवरी, १९३३

सचिव
गृह-विभाग
दिल्ली

प्रिय महोदय,

वाइसरायके निजी सचिवको पहली तारीखको लिखे गये मेरे पत्रके[1] उत्तरके[2] लिए धन्यवाद। दो ऐसी बातें हैं जिनके बारेमें मैं यहाँ संक्षेपमें विचार करना चाहूँगा।

सरकारने बिना किसी उचित कारणके यह अनुमान लगा लिया है कि "शिक्षा और जीवनकी समान्य सुविधाओंकी व्यवस्था" को मैंने पत्रमें उल्लखित प्रस्तावका महत्त्वपूर्ण अंग नहीं माना है। इस सिलसिलेमें मैं क्या कर रहा हूँ अथवा मेरे द्वारा क्या-कुछ किया जा रहा है, यदि वाइसरायके निजी सचिवको लिखे अपने पत्रमें मै यह सब बताता तो वह मेरे पत्रके उद्देश्यकी दृष्टिसे सर्वथा अप्रासंगिक होता। हाँ, इस विवादके दौरान प्रकाशित हुए अपने लेखोंमें बेशक, मैंने यह बताया है कि शिक्षा और इस तरहकी अन्य चीजोंका यथाशक्ति पूरे जोरसे प्रसार किया जा रहा है और यह कि हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खुल जानेपर इनकी रफ्तार चौगुनी हो जायेगी।

जहाँतक इस समय विधान-मण्डलके सम्मुख प्रस्तुत दो प्रस्तावोंका सवाल है, मुझे यह कहनेकी अनुमति दी जाये कि इनका उद्देश्य "हिन्दू-समाजके रस्मो-रिवाज और प्रथाओंपर" कोई प्रभाव डालना नहीं है। वे विशेष रूपसे इस ढंगसे तैयार किये गये हैं कि इस समस्याका समाधान ढूँढ़ना स्वयं हिन्दू-समाज पर ही छोड़ दिया जाये। इस समय जो कानून है उसके कारण हिन्दुओंके लिए कतिपय धार्मिक रीति-रिवाजों और प्रथाओंपर स्वतन्त्र रूपसे विचार करना असम्भव होगा। और ये प्रस्ताव हिन्दुओंको इन बेड़ियोंसे मुक्त करनेके उद्देश्यसे तैयार किये गये हैं। मै सरकारसे, जो धार्मिक मामलोंमें तटस्थ रहनेके लिए वचनबद्ध है, अनुरोध करूँगा कि वह सुधारकोंको धार्मिक रीति-रिवाजोंकी नहीं बल्कि कानूनकी बेड़ियोंसे मुक्त कर दे। क्योंकि यदि ऐसा कानून नहीं होता तो मन्दिरोंके न्यासी मन्दिर जानेवाले लोगोंकी सम्मतिसे हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोलनेके लिए स्वतन्त्र होते।

१. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।
२. देखिए परिशिष्ट ९।

और यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि इस रिवाजको बदलनेके पक्षमें सशक्त और संगठित लोकमतके परिणामस्वरूप ही ये विधेयक विधान-मण्डलके सम्मुख पेश किये गये हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ५०/२/३३, पृष्ठ ४०; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। जी० एन० ७५८७ भी

४६७. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

मेरे तारका आपने जिस तत्परतासे तार द्वारा उत्तर दिया उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। बेशक, इस समय जितना भी उचित समर्थन मुझे मिल सकता हो, मुझे उस सबकी जरूरत है।

अपने पत्रके जवाबमें मिले सरकारके उत्तर तथा उसके प्रत्युत्तरमें मैंने जो पत्र[1] लिखा है, उनकी एक प्रति मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। सरकारके उत्तरमें पहली तारीखको लिखे मेरे जिस पत्रका उल्लेख आपको मिलेगा उसकी भी एक प्रति साथमें नत्थी कर रहा हूँ।

अपने तारमें आपने जिन विषयोंपर लिख भेजनेका वादा किया था यदि आप उन सब विषयोंपर अपने पत्रमें पहले ही नहीं लिख चुके हैं तो क्या आप अपने पत्रमें संलग्न पत्रोंको देखते हुए जो अतिरिक्त टिप्पणियाँ लिखना आवश्यक समझें सो लिखेंगे? कहनेकी जरूरत नहीं कि आप अपने पत्रमें इस पत्र-व्यवहारका उल्लेख नहीं करेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५८६) से। गांधी-सप्रू करेस्पांडेंस से भी; सौजन्य : राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४६८. पत्र : पेरीन कैप्टेनको

१९ फरवरी, १९३३

अगर मुझे बकाया पत्र-व्यवहार निपटाना है तो यह पत्र बोलकर ही लिखाना होगा। मुझे सुपरिचित लिखावट और हस्ताक्षर देखकर हर्ष हुआ। तुम और गोसी बहन और कमलाबहन अगले शुक्रवारको दिनमें २ बजे आना। मथुरादासने मुझे बताया कि बीजापुर मन्दिरमें तुम्हारा जीवन ठीक ही है, इतना ही हुआ कि तुम्हारा वजन कुछ पौंड घट गया।

हम सबकी ओरसे तुम सबको प्यार।

पेरीन कैप्टेन
ओरिएंट क्लब बिल्डिंग
चौपाटी, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८७) से।

४६९. पत्र : मु० रा० जयकरको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि सेठ भागोजी कीरके आग्रहपर आप इस महीने की २२ तारीखको रत्नागिरिमें हरिजनोंके लिए दो मन्दिर खोल रहे हैं। आशा है कि सवर्ण हिन्दू और हरिजन दोनों ही सेठ भागोजी कीरके इस धार्मिक कृत्यकी सराहना करेंगे और इन दो मन्दिरोंमें हरिजनोंको जो पूजा करनेका अवसर मिला है उससे वे लाभ उठायेंगे।

मुझे इसमें सन्देह नहीं कि आप हरिजन भाई-बहनोंको इस बातकी याद दिला देंगे कि पूजाका पूरा लाभ उठानेके लिए यह जरूरी है कि पुजारियोंके लिए स्वच्छताके नियमके सम्बन्धमें जो आदेश दिये गये हैं उनका वे पालन करें अर्थात्, प्रतिदिन स्नान करें, शुद्ध वस्त्र पहनें और घरमें पूजा स्वयं करें तथा मृत पशुओंके मांस और गोमांस एवं मादक द्रव्योंसे परहेज करें।

इस पत्रकी एक प्रति मैं आपको रत्नागिरिके पतेपर भेज रहा हूँ, क्योंकि ऐसा न हो कि यह पत्र आपके रत्नागिरिके लिए रवाना होनेके बाद बम्बई पहुँचे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८८) से।

४७०. पत्र : मु० रा० जयकरको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मुझे सरकारसे जो उत्तर मिला है और मैंने उसका जो उत्तर दिया है, उन दोनोंकी प्रतियाँ मैं साथ संलग्न कर रहा हूँ।[1]

इसको देखते ही यदि दे सकते हों तो आप अपनी यह राय मुझे यथाशीघ्र प्रकाशनार्थ भेज दें कि दोनोंमें से किसी विधेयकमें बाध्यकारिताका कोई तत्त्व नहीं है और न धार्मिक कार्योंमें वे कोई हस्तक्षेप ही करते हैं, और साथ ही सरकारके पत्रके उत्तरमें मैंने जो पत्र भेजा है उसमें दिये गये तर्कोंका सामान्य रूपसे समर्थन भी यदि आप कर सकते हों तो कर दें। बेशक, आप सरकारके पत्रका उसमें कोई उल्लेख नहीं करेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८९) से।

४७१. पत्र : चारुचन्द्र मित्राको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी पुस्तिका[2] मुझे अभीतक नहीं मिली है। मिलने पर मैं निश्चय ही उसे पढ़ जाऊँगा और यदि आवश्यक हुआ तो आपके तर्कोंका उत्तर 'हरिजन' में भी दूंगा। आप इत्मीनान रखें कि जहाँतक व्यक्तिगत रूपसे मेरा सवाल है, सनातनियोंका एक भी तर्क मैंने नजरअन्दाज नहीं किया है और जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है, ऐसा कोई तर्क नहीं है जिसका मैंने उत्तर न दिया हो।

आपने कलकत्तामें हुई जिस सभा[3] का उल्लेख किया है उसके बारेमें मैंने पूछताछ की थी और मुझे जो सूचना दी गई वह यह थी कि जो भी वक्तव्य दिये गये

१. देखिए "पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

२. **अनटचेबिलिटी ऐण्ड टेम्पिल एंट्री**, जिसमें सनातनियोंके दृष्टिकोणको प्रस्तुत किया गया था।

३. कलकत्ता हाईकोर्टके एक भूतपूर्व जज, बिपिन बिहारी घोषकी अध्यक्षतामें होनेवाली एक विरोध सभा जिसको सुधारकों द्वारा भंग कर दिये जानेका आरोप लगाया गया

वे बहुत ही अतिरंजित थे। मैं नही जानता कि जो आरोप लगाये गये हैं उनका कोई प्रमाण आपके पास है अथवा कोई प्रमाण आप दे सकते है या नही। मैं फौरन अपने मित्रोंसे उत्तर देनेको कहूँगा। मेरे लिए यह एक विशुद्ध रूपसे धार्मिक लड़ाई है, जिसमें न तो असत्यका और न हिंसाका ही कोई स्थान हो सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चारुचन्द्र मित्रा
५, हेस्टिंग्स स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९१) से।

४७२. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

हरिजनोंकी ओरसे बंगालमें जो-कुछ भी रचनात्मक कार्य आपके ध्यानमें आयेगा क्या आप उस सबका एक ब्योरा 'हरिजन' में प्रकाशनके लिए मुझे भेज सकेंगे?

आशा है, आपको अपनी प्रति बराबर मिल रही है।

मै जानता हूँ कि आपका समय अन्य कार्योंमें बहुत व्यस्त रहता है, इसलिए मै आपसे ग्राहक बनानेको कहनेका साहस नहीं करूँगा। लेकिन मुझे इस अखबारको आत्म-निर्भर बनाना है, और मै आपसे कह सकता हूँ कि आप प्रान्तीय संघटनकी ओरसे कुछ प्रतियोंका चन्दा भेज दें। ये प्रतियाँ उन लोगोंको मुफ्त बाँटनेके लिए होनी चाहिए जिन्हें अखबारकी प्रति मिलनी तो चाहिए, लेकिन जिनसे आप चन्दा देनेकी अपेक्षा नही करते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९३) से।

४७३. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

उपवासकी चर्चावाली बातपर तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस प्रकारकी भूलें प्रेमकी प्रगाढ़ताके फलस्वरूप पैदा होती हैं — ऐसा प्रेम जो पागलपनकी स्थिति तक पहुँच गया हो। मैंने इस भूलको सौ गुना बढ़ाकर दिखाया और लोगोंको सबक सिखाकर सुधारा है। मैं जानता हूँ कि न तो तुम और न ही घनश्यामदास ऐसी भूल दोबारा करेंगे। इसकी जरूरत ही क्या है? हम तो बस काम करते हैं।

'गीता'का जो अर्थ तुमने किया है वह ठीक है।

२७ सदस्योंके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेसकी खबरसे मुझे तनिक भी परेशानी नहीं हुई है। जो सुने, ऐसे हर व्यक्तिको तुम सन्देश दे ही रहे हो। अब अगर कोई न सुने तो उससे क्या फर्क पड़ता है? जैसी भी है, तुमने अच्छी प्रगति की है।

न ही मुझे मालवीयजीने जो वज्र[1] छोड़ा उससे कोई परेशानी हुई है। यह तो होना ही था। हम जिन्हें उनकी कमजोरियाँ मानते हैं, उन कमजोरियोंके साथ हमें उनको अपनाना है। लेकिन उनकी तथाकथित कमजोरियाँ ही उनका बल भी हैं। बुद्धिमानी शायद इसीमें है कि देवदास और शंकरलालको भेजकर उन्हें परेशान न किया जाये।

इस पत्रके साथ मैं तुम्हें सरकारका जवाब और इसके उत्तरमें लिखे गये अपने पत्रकी[2] नकल भेज रहा हूँ। इन्हें तुम घनश्यामदासको भी दिखा देना।

मैंने देखा कि अपना पता देते समय तुमने 'लक्ष्मी' तथा 'नारायण' और 'नियर क्लॉक टावर' नाम काट दिये हैं। इस प्रकार पता केवल मार्फत सेठ गडोदिया, दिल्ली ही रह गया। इसके छोड़नेका क्या महत्त्व है। क्या तुमको इस प्रकार भेजे गये पत्र ज्यादा जल्दी मिलते हैं?

आशा है कि देवदासके जुकामका कोई भी उल्लेख न होनेका मतलब यही है कि वह बिल्कुल ठीक है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९६) से।

१. देखिए परिशिष्ट १२।

२. देखिए "पत्र: भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

४७४. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

इसी १५ फरवरीका आपका पत्र मिला। बस्तियोंमें चेचक-रोगका आपने जो वर्णन किया है उसे पढ़कर दुख हुआ। मुझे नहीं मालूम कि शीतला देवीमें जो विश्वास है उसकी कहाँतक सराहना की जाये, और यदि उसकी सराहना ही करनी है तो हम उस विश्वासको नष्ट क्यों करें? मुझे तो ऐसा लगता है कि धैर्य और दृढ़तासे हमें इस अन्धविश्वासको खत्म करना है और लोगोंको यह दिखलाना है कि दूसरी बीमारीकी तरह ही चेचकका कारण भी अनियमित जीवन ही है और दूसरी बीमारीकी ही तरह उचित इलाजसे इसका भी निदान हो सकता है।

मैं नहीं जानता कि चेचकका टीका लगवानेसे आपका स्वयं बचना और अपने साथियोंको भी उससे बचनेके लिए प्रोत्साहित करना कहाँ तक ठीक है। इनमे से कुछ मामलोंके सम्बन्धमें तो बेशक मैं स्वयं दुराग्रही हूँ। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि लोग दुराग्रहकी नकल करें। दुराग्रहीका अपना ही तर्क होता है। दुराग्रहीकी नकल नहीं की जा सकती। दुराग्रह स्वाभाविक होना चाहिए। इसकी तुलना हू-ब-हू उन लोगोंके अन्धविश्वाससे की जा सकती है जिनका आपने उल्लेख किया है और जो लापरवाहीसे चेचकके रोगियोंको छूते हैं और उनके साथ घुलते-मिलते है। लेकिन जिस प्रकार आप और मैं उनके अन्धविश्वासका सफलतापूर्वक अनुकरण नहीं कर सकते उसी प्रकार दूसरेके दुराग्रहका भी कोई अनुकरण नही कर सकता; और चूँकि चेचकके टीकेकी सफलताको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं, इसलिए यदि आपका निजी विश्वास और आपकी दृढ़ धारणा ही यह न हो कि टीका लगवाना बुरी चीज है, तो उस हालतमें आपको टीका लगवा लेना चाहिए और अपने साथियोंको ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। खैर, यदि यह प्रयोग ही है तो मैंने आपके इस साहसिक प्रयोगकी किसी भी तरहकी ज़िम्मेदारीसे अपने-आपको साफ अलग कर लिया है, और यदि यह मेरे-जैसे विश्वासका मामला ही है तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है। क्योंकि सिर्फ टीका ही नहीं, बल्कि सारा-का-सारा सीरम-उपचार ही मुझे अन्ध-विश्वासकी एक दूसरी किस्म प्रतीत होता है, जो बस्तीवालोंके अन्धविश्वाससे बहुत भिन्न नहीं है।

यदि कुछ भेजनेके लिए हो तो आप मुझे प्रति सप्ताह अपने इलाकेमें हरिजनोंके सम्बन्धमें किये गये वास्तविक रचनात्मक कार्यकी रिपोर्ट भेज दिया करें, फिर यह कार्य

चाहे आपने किया हो या दूसरोंने। यदि सुरेश या उससे सम्बन्धित कोई व्यक्ति इस कार्यको कर रहा है तो कृपया यह सन्देश उसतक पहुँचा दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३००) से।

४७५. पत्र : सुरेशचन्द्र बनर्जीको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सुरेश,

मैं करीब हर रोज तुम्हारी याद करता रहा हूँ और एक अरसे से तुम्हारा कोई पत्र न आनेके कारण परेशान होकर और स्वार्थवश मैंने सतीशबाबूको लिखे अपने पत्रमें तुमको सन्देश लिखवाया था, और उस पत्रको लिखवा चुकनेके बाद ही महादेवने मुझे तुम्हारा १५ तारीखका लिखा पत्र दिया। तुम खुद ही अन्दाज लगा सकते हो कि उसे पाकर मुझे कितनी खुशी हुई होगी।

मैं देखता हूँ कि तुम फिर मौतके द्वारतक पहुँच गये थे। इस बातका अहसास होना कदाचित एक अच्छी चीज है कि हम हमेशा मृत्युके द्वारके निकट हैं; यह बात स्वस्थ दीखनेवाले लोगोंपर भी उतनी ही लागू होती है जितनी कि अस्वस्थ दीखनेवाले लोगोंपर होती है। मैं ऐसे अनेक लोगोंको जानता हूँ जो चारपाई पकड़े हुए हैं, लेकिन जिनके ऐसे प्रियजन पहले ही मर चुके हैं जो सर्वथा स्वस्थ दिखाई देते थे और जिनके बारेमें उनका विचार था कि उनके मरनेके बाद भी वे काफी समयतक जिन्दा रहेंगे।

कृपया अधीर मत बनो। मैंने जाति और वर्णाश्रममें जो भेद किया है, उसे खूब अच्छी तरह समझ लो। जाति तो छुआछूत-प्रधान संस्था है। यदि अस्पृश्यता दूर हो जाती है तो तुम देखोगे कि यह छुआछूत भी चली जायेगी। वर्णाश्रम-धर्मकी मेरी व्याख्याके अनुसार उसमें छुआछूतका रंचमात्र भी स्थान नहीं है। यह एक आध्यात्मिक नियम है और भले ही हम इसके अस्तित्वको स्वीकार करें अथवा न करें, लेकिन यह उतना ही प्रामाणिक है जितना कि कोई भौतिक नियम हो सकता है। जो व्यक्ति इस नियमके अस्तित्वको स्वीकार करता है उसे इसके ज्ञानका लाभ मिलता है, ठीक उसी तरह जिस तरह एक वैज्ञानिक जलकी एक बूँदमें निहित तत्वों और उनके गुणोंके लिए जिम्मेदार नियमोंको जानकर रेलगाड़ीको इतनी तेज रफ्तारसे चलाता है, जिसकी हमारे पूर्वजोंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। इसी तरह यदि हम वर्णाश्रमके नियमको स्वीकार करते हैं और उसके अनुरूप कार्य करते हैं तो हम अपने जीवनकी अनेक बुराइयोंको दूर कर सकते है। डॉ० अम्बेडकर सवर्ण हिन्दुओंके प्रति अत्यन्त क्रोधके कारण यदि पत्तियाँ गिनते हैं लेकिन पेड़को देखनेसे इनकार करते

हैं अर्थात्, विस्तारमें जानेके कारण सामान्य रूपसे दिखाई देनेवाला तथ्य भी यदि उन्हें दिखाई नहीं दे रहा है, तो यह बात मेरी समझमें आती है; लेकिन मैंने जाति और वर्णाश्रममें जो स्पष्ट भेद बताया है उसे तुम नहीं समझ सकते हो, ऐसी कोई बात नहीं है।[1] बहरहाल मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि जो लोग आज वर्णाश्रम धर्मके विरुद्ध संघर्षमें भाग लेते हैं वे अस्पृश्यता-निवारणके उद्देश्यका बहुत बड़ा अहित कर रहे हैं। मुझे तुम्हें और ज्यादा परेशान नहीं करना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत सुरेशचन्द्र बनर्जी
८८-जी, कॉरपोरेशन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९८) से।

४७६. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१९ फरवरी, १९३३

चि० परसराम,

तुम्हारा पत्र मिला। दोनों शैलियोंपर समान अधिकार पाना चाहिए, जिससे उचित समयपर उस-उस शैलीका उपयोग किया जा सके। जब कभी पुनः 'नवजीवन' प्रकाशनका समय आयेगा तब भी दोनोंका उपयोग करेंगे।

मेरीबहनके लिए जैसा प्रयत्न कर रहे हो, उसी प्रकार भाई डंकन ग्रीनलेसके लिए भी करना। यह वांछनीय है कि वे जल्दीसे हिन्दी सीख लें। पिताजी को ईश्वर शान्ति दे, हम ऐसी प्रार्थना करें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५१४) से।

१. सुरेशचन्द्रने रंगा अय्यरके मन्दिर-प्रवेश विधेयकपर अपना विरोध व्यक्त करनेके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्यका समर्थन किया था, और लिखा था, "जबतक हिन्दू-समाजसे जाति-भेद दूर नहीं हो जाता तबतक अस्पृश्यताकी समस्याका कोई सुनिश्चित परिणाम नहीं निकल सकता।"

४७७. पत्र : रावजीभाई एन० पटेलको

१९ फरवरी, १९३३

चि० रावजीभाई,

मैं तुम्हें ललिताके बारेमें पत्र लिख चुका हूँ, लेकिन लगता है, वह तुम्हें नहीं मिला। लेकिन तुम्हारे पत्रकी तारीख दूसरी है, इसलिए कदाचित् तुम्हें मेरा पत्र उसके बाद मिला हो। अब अभी तो सोचने-जैसी कोई बात नहीं रही। दो वर्षोंमें तो ललिता अपने लिए कदाचित् आप ही निर्णय करेगी। हल ऐसा होना चाहिए जिससे नाथाभाईको आघात न पहुँचे और ललिताका भी हित सध जाये। हमें विश्वास रखना चाहिए कि समय आनेपर ऐसा कोई हल अवश्य निकल आयेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९९) से।

४७८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

आज तो अब लम्बा पत्र नहीं लिखूँगा।

मैत्रीका दिल तू जीत ले और तीनों बहनें अच्छी हो जायें, तो इसे मैं तेरी और आश्रमकी विजय ही मानूँगा। नारणदासने तो प्रेमका प्रयोग किया है। सफल हो सके तो करके देख।

तूने देखा होगा कि लक्ष्मीका तो अब विवाह कर ही देना है; अथवा वह आश्रम से चली जाये। मैं मानता हूँ कि उसका बोझ अब तुममेंसे किसीके सिरपर नहीं रहना चाहिए। मारुति बढ़िया लड़का है। उसके निर्माणमें लक्ष्मीदासका हाथ तो है ही। तूने देख लिया कि उसके बारेमें मोतीने तुझसे जो कहा वह ठीक नहीं था।

मालूम होता है कि लड़कियोंकी व्यवस्था तूने ठीक कर दी है। निर्मलाके बारेमें तेरा सुझाव मुझे तो पसन्द आया। महादेवके साथ उसकी चर्चा नहीं कर सका। पृथुराजकी बात भी समझ ली। मुसलमान बहनके बारेमें मैं अधिक जाननेको उत्सुक हूँ। जिस अंग्रेज भाईको[1] भेजा है उससे अच्छी तरह परिचय करना। मुझे तो वह त्यागी मालूम हुआ है। उसकी जरूरतोंका खयाल रखना।

१. डंकन ग्रीनलेस।

सुशीलाके साथ जब तू मिलने आई थी उस समय मेरे किस व्यवहारके बारेमें तूने सवाल किया था? मैं तो भूल गया हूँ। मुझसे फिर सवाल कर, तो जवाब देनेकी कोशिश करूँगा।

डॉक्टरोकी बात मैं समझा। एक बार उनके हाथमें चले जानेके बाद उनसे जो वस्तु प्राप्त करनी हो वह हमें प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऐसा न करें तो उनके साथ न्याय नहीं होता और हमें हानि होनेकी सम्भावना रहती है। यह बात तो हमें स्वीकार करनी ही होगी कि कुछ काम उनके हाथों अच्छे होते हैं। हाँ, गफलतसे, अज्ञानसे वे अनेक भूलें करते हैं, यह तो जग-जाहिर है। कोई उनकी सहायता कभी न लेनेकी प्रतिज्ञा करे, तो उसका मैं जरूर आदर करूँगा। करोड़ोंको तो उनकी मदद मिलती ही नहीं। परन्तु मैंने माना है कि ऐसा त्याग आश्रमकी शक्तिके बाहर है। इसलिए अच्छे माने जाननेवाले डॉक्टरोंकी मदद हम लेते हैं। किसनके मामाकी सहायता तू जरूर ले।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२७) से।

४७९. पत्र: रामचन्द्र एन० खरेको

१९ फरवरी, १९३३

चि० रामचन्द्र,

तेरा पत्र मिला। जो लिखा जाये, सदा विचारपूर्वक लिखा जाये। सत्यपर आग्रह रखनेवाले व्यक्ति बिना विचारे, बिना तोले एक भी शब्द नहीं बोलते, और न ही लिखते हैं। तूने जो लिखा है उससे मैं पशोपेशमें पड़ गया था। खैर, अब तो सब समझमें आ गया।

सरदारको जै-जै और महादेवभाई तथा छगनलालको प्रणाम — तूने यह जो भेद किया है उसका अर्थ समझाना। "जै-जै" अर्थात् क्या? "जय-जय" और "जै-जै" क्या एक ही शब्द है? मेरे-जैसे लोग यदि हिज्जेकी भूलें करें तो चल सकता है, लेकिन तुम बच्चोंको बराबर शुद्ध गुजराती लिखनी चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३०५) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन एन० खरे

४८०. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

१९ फरवरी, १९३३

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। सुन्दर है। किताब अभी नहीं मिली; मिल जायेगी। तुम्हारा प्रस्ताव है कि मैं उसे दिलचस्पीके साथ पढ़ूँ। हरिजनोंके बारेमें तुम जो खोज करो सो मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७०१) से; सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

४८१. पत्र : विमलचन्द्र वी० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० नातू,

तेरा पत्र मिला, लेकिन तेरी लिखावटमें अभी बहुत सुधारकी गुंजाइश है। अक्षर लिखना अर्थात् चित्र बनाना, यदि तू इतना समझ जाये तो सुन्दर अक्षर लिखने लगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७५७) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८२. पत्र : सुदर्शन वी० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० मावो,

तेरा पत्र मिला। क्या तू रोज सैर करने जाता है? तेरे-जैसे बच्चोंके लिए मैंने रंगीन कतरनें इकट्ठी कर रखी हैं। तुझे कौन-सा रंग अच्छा लगता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६१) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८३. पत्र : वालजी गो० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० वालजी,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला था। मैंने उत्तर देनेमें देरकी, क्योंकि मुझे पुस्तक[1] का इन्तजार था। अब प्रतियाँ मिल गई हैं। अभी मैं उसका वितरण कर रहा हूँ। जिन-जिन मित्रोंको प्रतियाँ भेजी हैं उनसे उनके विचार भी माँगे हैं? कितनी प्रतियाँ बिक गई हैं? उम्मीद है, तुम्हें 'हरिजन' मिलता होगा। उसपर अपनी टीका भेजना। यदि कुछ लिखनेका जोश आये तो लिखना। आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४४७) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८४. पत्र : आश्रमके बाल-बालिकाओंको

१९ फरवरी, १९३३

बालक और बालाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। समय-समयपर स्वयंसेवक अथवा अधिकारियोंको बदलना ठीक नहीं है। और यदि तुम लोग उनमें से बहुतोंको अनुभव प्रदान करनेके लिए एक मुद्दततक रखना चाहो तो रख सकते हो, लेकिन वह छः महीनेसे कम नहीं होनी चाहिए। यदि तुम इस बातका ध्यान रखोगे कि झगड़े अथवा रोषके कारण कोई काम न छोड़ दे, तभी तुम्हारी व्यवस्था कायम रहेगी। क्या तुम लोग अपने कामोंका हिसाब रखते हो? तुम्हें अपनी व्यवस्थाके लिए कुछ नियम भी बना लेने चाहिए। ऐसा करोगे तो तुम बहुत जल्दी प्रगति करोगे।

खेतीकी ओर ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान देना। तुम अपनी बोयी हुई सब्जियाँ खाने लगो, यह बात जितनी जरूरी है उतनी ही सुन्दर भी है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. ईशुचरित।

४८५. पत्र : नारणदास गांधीको

[१९/२० फरवरी, १९३३][1]

चि० नारणदास,

बा और मीराबहनको जो दूध आदि भेजते हो उसका हिसाब वे चुकाती हैं या हमारे सिर पड़ता है?

रामभाऊ, जेकोर वगैरहके वजनके बारेमें तुमने जो लिखा वह समझा और मेरी चिन्ता दूर हुई। आश्रम-जीवनका बोझ बालकोंको प्रतीत न हो, इसका ध्यान तो हमें रखना ही है। छोटूभाईके सम्बन्धमें तुम जो लिखते हो वह ठीक है। लीलाधरके सम्बन्धमें मुझे लिखते रहना। भाई डंकन ग्रीनलेस वहाँ पहुँच गये होंगे और [लोगोंके साथ घुल-मिलकर] पुराने बन चुके होंगे। मैंने उन्हें एक पत्र भेजा था, मिला होगा। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ हूँ। उनके लिए हिन्दी सीखनेका प्रबन्ध कर देना। यों अनपेक्षित रूपसे किसीको भेज दूँ तो तुम्हें बुरा तो नहीं लगता? भाई डं० ग्री० की बाबत मैं ५ दिन पूर्व ही लिख सकता था, पर वह रह गया और वे कल आ धमके। वे किसी भी दिन आ पहुँचेंगे यह मैं जानता था, इसलिए जब उन्हें लिखा उसी दिन तुम्हें भी लिख दिया होता तो तुम्हें पाँच या तीन दिनकी पूर्व-सूचना मिल जाती। इस प्रकार [किसीको] भेजनेमें यदि मैं भूल करता जान पड़ूँ तो मुझे सचेत कर देना जिससे मैं पुनः वैसा न करूँ। उन्हें कपड़ा आदि जो चाहिए वह देना। बर्तनोंका भी देख लेना। वे अपने पास पैसा या कीमती चीज न रखें यह भी बता देना। मैं उन्हें यह कहना भूल गया।

कुआँ खोदनेके लिए [लोग] आये हों तो सोनीरामजी से रुपया मँगवा लेना। रणछोड़भाई[2] आते-जाते हैं क्या? उनका पत्र ही नहीं है, इसलिए आश्चर्य होता है। हरियोमलने जिन-जिन लोगोंको पत्र लिखे हैं वे सब उन्हें जो कटु अनुभव हुए हैं स्पष्ट भाषामें लिखकर बतायें। यह मनुष्य लगता तो प्रामाणिक है। इसलिए जब ऐसे खरे पत्र उसके पास जायेंगे तो यह सम्भव है कि उसपर असर पड़े। ऐसे मनुष्य ठोकरें खाकर ही बनते हैं।

. . .[3] का पत्र पढ़कर मैं खिन्न हो गया। तुमने भी उसे पढ़ा होगा। वह जैसा लिखती है उस तरह . . .[4] ने उसे पीटा जरूर होगा। छानबीन करना। . . .[5] से

१. पत्रमें डंकन ग्रीनलेसके पूना पहुँचनेके सन्दर्भसे; देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १८-२-१९३३ भी।

२. रणछोड़लाल अमृतलाल शोधन, अहमदाबादके एक मिल-मालिक।

३, ४ और ५. नाम यहाँ नहीं दिये गये है।

पूछना। . . .[1] का पत्र कौन लिख देता है? अथवा ये उसीके इतने अच्छे और सुन्दर अक्षर हैं? . . .[2] अभी कहाँ रहता है?

कुसुमको सूर्य-स्नानके लिए लिखा है, सो देख लेना। डॉ० तलवलकरके कानमें भी बात डालना। यदि वे पसन्द करें तो जहाँ कुसुम बैठा करती है उस स्थानके आसपास ऐसी एक फूसकी या बोरीकी अथवा जैसी अनुकूल बैठती हो, मतलब कि जैसी भी हो और रोज ही जिसे सरकाया-हटाया जा सके, वैसी एक दीवार तैयार की जानी चाहिए। या डॉक्टरसे चर्चा करके कोई जगह देखकर वहाँ पर ऐसी एक अलहदा दीवार बनाई जाये, जहाँ रोगीको सूर्य-स्नान दिया जा सके। आवश्यकता जान पड़े तो रोगीको खाटपर वहाँ ले जाया जाये। खेतीकी जमीनपर ऐसी काम-चलाऊ दीवार खड़ी करनेके लिए इजाजत लेनेकी आवश्यकता है या नहीं, इसका पता लगा लेना। कुसुम-जैसे लोग खुले बदन सूर्य-स्नान लेनेसे ठीक हुए हैं।

कोई-कोई बच्चे लिखते हैं कि "बच्चोंको तो आशीर्वाद दो।" इन सबको याद दिलाना कि इतना समय और हाथका परिश्रम बचानेकी दृष्टिसे ही "आशीर्वाद" नहीं लिखता हूँ, परन्तु बिना लिखे ही आशीर्वाद तो है ही और प्रत्येकको अपने लिए उसे पढ़ लेना ही चाहिए।

४ बजे, सोमवार [२० फरवरी, १९३३]

प्रकाश शिकायत करता है कि आश्रमवासीको बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा नहीं रुचती। यदि इस टीकामें सचाई हो तो हमारे लिए शर्मकी बात है। प्रकाशकी शिकायतका उलटा अर्थ न करना। हमें चाहिए कि हम सब अपने मनको टटोलें और सुधार करें।

. . .[3] के विषयमें तुमने जो मुझे लिखा है वही बात उसे भी लिख देना, चाहे उसे थोड़ा कटु लगे। भले ही वह बड़ा हो गया है पर अभी बालक है और मनका मैला नहीं है।

बापू

[पुनश्च :]

पण्डितजी ने जो साबुन भेजा वह मिल गया। उसमें रंग किसलिए डाला गया है?

कुल ३६ पत्र डोरसे बँधे है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१, २ और ३. नाम यहाँ नहीं दिये गये है।

४८६. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

२० फरवरी, १९३३

प्रिय गुरुदेव,

सेठ घनश्यामदासके कहनेपर आपने 'हरिजन' के लिए एक कविता[1] भेजी थी। आशा है, 'हरिजन' की पहली प्रति आपको मिली होगी। हरिजनोंकी आपको सबसे ज्यादा फिक्र है। इसलिए मैं आपके उस एक सन्देशसे ही सन्तोष करनेवाला नहीं हूँ। यदि आप समय-समयपर कुछ भेजते रहें, तो मुझे उससे व्यक्तिशः शक्ति मिलेगी, और 'हरिजन' के पाठकोंके चारों ओर जो इतनी सारी चीजें हो रही हैं, जिससे उनका विश्वास डगमगाने लगता है, तो उससे उनको भी सहारा मिलेगा।

आशा है, आप स्वस्थ हैं।

हम सबोंकी ओरसे प्रेम सहित,

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४६३७) से।

४८७. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२० फरवरी, १९३३

प्रिय जयसुखलाल,

अगर तनिक भी सम्भव हो तो मैं चाहूँगा कि आप निम्नलिखित मुद्दोंपर कुछ वकील मित्रोंकी राय पता कर लें। मैंने श्री जयकरसे पहले ही मेरी मदद करनेको कह रखा है, लेकिन वह अपनी राय एक वकील और राजनीतिज्ञ, शायद दोनों ही की हैसियतसे देंगे। लेकिन अगर हम लोग चार या पाँच सुविख्यात वकीलोंके हस्ताक्षर प्राप्त कर सकें, जिनमें वह [श्री जयकर] भी शामिल हों तो मैं उसकी और ज्यादा कद्र करूँगा। मैं नहीं जानता कि पहले सॉलिसिटर लोग मिसिल तैयार करें और फिर उसे कई वकीलोंके सामने उनकी राय लेनेके लिए रखें, यह औपचारिक तरीका अपनाना जरूरी है। मैं चाहूँगा कि वकील लोग जिम्मेदार लोक-सेवकोंके रूपमें इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर अपने कानूनी ज्ञानका प्रयोग करें और मुझे अपनी सुविचारित राय दें। जिन प्रश्नोंपर मैं चाहूँगा कि वे विचार करें वे ये हैं :

१. देखिए परिशिष्ट १६।

१. क्या दोनोंमें से किसी विधेयकमें किसी प्रकारकी बाध्यकारिताका तत्त्व है?

२. क्या किसी व्यक्तिकी धार्मिक रीतियों या उसके विश्वासोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप है?

३. ब्रिटेनके न्यास-कानूनको और भारतमें उच्च न्यायालयोंके ज्ञात निर्णयोंको ध्यानमें रखते हुए किसी सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिर विशेषके न्यासियों और दर्शनार्थियोंकी रजामन्दीके बावजूद क्या दोनोंमें से एक विधेयक या उस-जैसा ही कोई एक कानून होना जरूरी नहीं है ताकि किसी सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिरको सबके लिए खोला जा सके?

इस सिलसिलेमें आपको श्री बहादुरजी से मिलना चाहिए। लेकिन इसपर मेरा आग्रह नहीं है। क्या करना है और कब करना है, यह आप बेहतर समझते हैं।

इस मामलेमें आप जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी कार्रवाई करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जयसुखलाल मेहता
"द रिक्लूस"
मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३०२) से।

४८८. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

२० फरवरी, १९३३

चि० चिमनलाल,

दूधको पीना नहीं चाहिए बल्कि खाना चाहिए। दूध पपीतेके साथ लेना चाहिए। इतना निश्चित जानो कि यदि दूधसे शक्ति नहीं आती तो अन्य किसी चीजसे प्राप्त होनेवाली शक्ति मिथ्या हो सकती है। तुम कटि-स्नान अवश्य लेना, भले ही इसमें थोड़ा समय लगे। धूपमें लेना, पर वहाँ ठंडी हवा बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

महावीरकी चिन्ता करना व्यर्थ है। उसे भीख माँगनी पड़े अथवा चोरी करनी पड़े, लेकिन उसकी किस्मतमें हुआ तो उससे भी उसका कल्याण ही होगा। आश्रममें उसकी आत्माका हनन होता था, क्योंकि वहाँ उसका जीवन झूठा था। हरिलाल शराब पीता है और विषय-सेवन करता है, लेकिन किसी दिन वह भी अवश्य सुधरेगा। परन्तु अगर मैंने उसे मनमाना धन दिया होता तो वह मानसिक व्यभिचार भी करता और अपनेको तथा दुनियाको धोखा देता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २४३७६) से।

४८९. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२० फरवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम्हारी भावना उत्तम है। तुम्हारा परिश्रम सुन्दर है। तुमने अपनी खोज मेरे सामने और नारणदासके सामने रखी है। अब नारणदास जैसा कहे उसे सुनो और अपने कार्यमें तन्मय हो जाओ। ऐसा करनेसे दूसरे लोग भी अपने-अपने कार्योंमें तन्मय हो जायेंगे, जिससे सारे दोष दूर हो जायेंगे।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५२) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या

४९०. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२० फरवरी, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तम मुझसे मिल गया है। उसने काफी सीख लिया है। अभी मैंने उससे वहाँ रहकर और-कुछ सीखनेके लिए कहा है। उसे ऐसी आशा बँध गई है और मुझे भी कि वह अब अच्छा हो जायेगा। तुम्हारा काम ठीक चल रहा होगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७२) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

४९१. पत्र : भोगीलालको

२० फरवरी, १९३३

भाई भोगीलाल,

"ठीक और समग्र रूपसे प्राप्त ज्ञान" तो यम-नियमके पालनसे ही मिल सकता है।

शिक्षाका उद्देश्य केवल आत्मोन्नति है। इसलिए शिक्षा ऐसी ग्रहण करनी चाहिए जिससे उस उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ जा सके। आवश्यक नहीं कि वह एक ही प्रकारकी हो। इसलिए उसके बारेमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। जीवन संयमपूर्ण होना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७५२) से।

४९२. पत्र : नानालाल कालिदास जसाणीको

२० फरवरी, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा निमन्त्रण मिला था। इन्दिराको तो मैंने सीधे आशीर्वाद भेजा था। उसने मुझसे अपनी पुरानी पहचान निकाली। तथापि, दोनों वरोंको और दोनों वधुओंको मेरा आशीर्वाद देना और उनसे कहना कि मै यह आशा करता हूँ कि वे शुद्ध जीवन व्यतीत करते हुए उत्तरोत्तर सेवा-भावनाका विकास करते रहेंगे।

यज्ञके बारेमे तो तुमने सब-कुछ जान लिया होगा। छगन तो वहीं है। मैंने रतुभाईके साथ बात की है। तुम उससे तो मिलोगे ही। छगन समझ जाये तो हम आगे बढ़ सकते है। लीलावतीने वचन तो दिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६२९) से।

४९३. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२० फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

तूने बहुत दिनोमें पत्र लिखा। अब लिखा करना। प्रेमाबहन तुझपर गुस्सा करती है, यह अच्छी बात नही है। लेकिन जो सीखना चाहता है उसे गुस्सेकी परवाह नही करनी चाहिए और ध्यानपूर्वक सीखना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३७) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

४९४. पत्र : के० नटराजनको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री नटराजन,

आपके पत्र[1] के लिए धन्यवाद। आपके किसी हस्तक्षेपको मैं गलत नहीं समझ सकता। इसके विपरीत, मैंने सदैव उसका स्वागत किया है। आपको शायद यह जानकर दिलचस्पी होगी कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रस्ताव आदिका मूल मसविदा भी मैंने ही तैयार किया था और श्रीयुत पुरुषोत्तमदास तथा श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाके हवाले कर दिया था। मैंने प्रस्तावमें जो-कुछ लिखा था, बम्बईमें पास किया गया प्रस्ताव निस्सन्देह उससे भिन्न था। मेरे प्रस्तावकी मुख्य-मुख्य बातें बम्बईवाले प्रस्तावमें कायम रखी गई हैं। तथापि, सरकारके साधारण कानूनोंकी व्याख्या करनेमें हम जिन सिद्धान्तोको लागू करते हैं वे ही सिद्धान्त मुझे उस प्रस्तावपर भी लागू करने चाहिए। लिखनेवालेका मन्शा कुछ भी हो, लेकिन उसने जो-कुछ लिखा है यदि उसकी भाषामें वह मन्शा प्रकट नहीं हुआ है तो उसका मन्शा उसकी रचनाकी व्याख्याके सन्दर्भमें अप्रासंगिक है। इसलिए मैंने जो इस तथ्यका जिक्र किया

१. इसमें नटराजनने २५ सितम्बर, १९३२ के बम्बईवाले प्रस्तावका जिक्र करते हुए लिखा था कि "अवश्य ही समझौता मुख्यतः आपके ही प्रयत्नोंसे हुआ था और आप ही सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि उसका क्या उद्देश्य था। लेकिन बम्बई-सम्मेलनका, जिसका कि मैं एक सदस्य था, इरादा मालवीयजी जो-कुछ कहते हैं, उससे ज्यादा नहीं था, शायद कम ही था।"

है कि मूल पाठका लेखक मैं था, उसका महत्त्व महज ऐतिहासिक है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। यदि आप पहला प्रस्ताव पढ़ेंगे तो उसमें आपको यह मिलेगा :

> **इस अधिकारको जल्दी-से-जल्दी कानूनी मान्यता प्रदान की जायेगी और यदि स्वराज्य संसदकी स्थापनासे पहले उसे यह मान्यता प्राप्त न हुई तो स्वराज्य संसदके सबसे पहले कार्योंमें से एक होगा यह मान्यता प्रदान करना।**

अत: विधानसभा की मदद लेनेका इरादा प्रस्तावमें स्पष्ट रूपमें किया गया था। लेकिन मैं इससे भी एक कदम आगे जाता हूँ :

> **प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण तरीकेसे सभी सामाजिक निर्योग्यताएँ . . . जिसमें मन्दिर-प्रवेशपर लगा प्रतिबन्ध भी शामिल है, समाप्त करनेका निश्चय किया।**

आन्दोलन चलाते हुए देखा गया कि सुधारकी दिशामें प्रगतिके मार्गमें एक कानूनी बाधा है। निश्चय ही यह सवर्ण हिन्दूओंके हाथमें है कि वे बाधाओंको यथा शीघ्र दूर करें। जिस भी वकीलसे मैंने पूछा है उसने यही कहा है कि किसी मन्दिरके ट्रस्टी लोग और मन्दिर जानेवाले लोग चाहते हों, तब भी उस मन्दिरको कानूनी बाधाके कारण खोला नहीं जा सकता। जहाँतक विधेयकोंमें त्रुटियोंका सवाल है, वे निश्चय ही आसानीसे दूर की जा सकती हैं। मैंने जो स्थिति अपनाई है यदि उसमें आपको कोई सन्देह है तो मैं चाहूँगा कि आप आ सकते हों तो यरवडा आ जायें और असहमत होनेसे पहले मुझसे बात कर लें। किन्तु यदि आपको अपने दृष्टिकोणके बारेमें कोई सन्देह ही न हो, तो मैं चाहूँगा कि आप केवल मेरे सुखके लिए आनेका कष्ट न उठायें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० नटराजन
कामाक्षी हाउस
बांदरा, बम्बई २०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१०) से।

४९५. पत्र : केशवको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय केशव,

मैंने कभी सोचा ही नहीं कि तुम्हारी अपीलके सिलसिलेमें तुम चाहते हो कि मैं कुछ कहूँ, या अगर तुम चाहते थे और मैंने कुछ करनेका वादा किया था तो मैं उसके बारेमें पूरी तरह सब-कुछ भूल गया हूँ, यहाँतक कि मुझे अब यह भी याद नहीं है कि अपीलमें क्या लिखा था। अपीलको तो मेरे पढ़ लेनेके बाद नष्ट कर दिया गया था। इसलिए कृपया तुम उसकी एक प्रति भेज दो। देखूँगा कि उसके सिलसिलेमें मैं क्या कर सकता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत केशव
क्राइस्ट सेवा संघ आश्रम
औंध, किरकीके निकट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१२) से।

४९६. पत्र : एस० गणेशनको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय गणेशन,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। शुक्रवारकी डाकसे पहले प्रूफ तुमको भेज सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि आखिरी लेख बृहस्पतिवारकी शामसे पहले मेरे हाथोंसे नहीं निकल सकेगा और प्रति-दिन कुछ-न-कुछ तुमको भेजना खतरनाक है, क्योंकि इस बातका कोई निश्चय नहीं है कि मैं जो चीज लिखता हूँ वह उसी अंकमें प्रकाशित हो जायेगी जिसके लिए उसे लिखा गया है, और न इसी बातका कोई निश्चय है कि मैंने उसे जिस रूपमें लिखा है उसी रूपमें छपेगी। इसलिए जो चीज वास्तवमें छपने वाली है और जिस रूपमें छपनेवाली है, उसके प्रूफ ही मैं तुमको भेज सकता हूँ। क्या जायेगा और किस रूपमें जायेगा, इसका निश्चय शुक्रवारको ही किया जाता है।

१. गणेशन **हरिजन** में गांधीजी के लिखे लेखोंको लेकर तमिल और तेलुगुमें प्रति सोमवार एक विशेषांक छापना चाहते थे, और इसके लिए उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि उन्हें अग्रिम प्रूफ भेज दिये जायें, जोकि उन्हें शुक्र या शनिवारतक मिल जाया करें।

निश्चय ही बुधवार, बृहस्पतिवार और इतवारको छोड़कर किसी भी समय तुम और तुम्हारी पत्नी मुझसे आकर मिल सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एस० गणेशन
द्वारा 'स्वतंत्र सगु'[1]
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१३) से।

४९७. पत्र: परेशनाथ भट्टाचार्यको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १५ तारीखका पत्र मिला जिसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

मैं जो-कुछ भी लिखता हूँ उसके बारेमे यथासम्भव स्पष्ट रूपसे लिखनेकी कोशिश करता हूँ और इसलिए जब मुझपर मेरे द्वारा कुछ कहे जानेका आरोप लगाया जाता है तब मेरे प्रति पूरा न्याय करते हुए मुझे अक्षरश: वे शब्द बताये जाने चाहिए जो मैंने कहे हों। आपकी रायमें मैंने जो कहा है, और मैंने वास्तवमें जो-कुछ कहा है, इन दोनोंके बीच क्या अन्तर है, यह बतानेपर आप मेरे उक्त कथनका अभिप्राय समझ जायेंगे।

मैं ऐसा नहीं समझता कि "'गीता' ही एक ऐसा धर्म-ग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है और केवल इसे ही हमारा सच्चा मार्गदर्शक होना चाहिए"। मैंने जो सचमुच कहा है और जो मैं अब भी मानता हूँ वह यह है कि शास्त्रोंके नामसे प्रसिद्ध असंख्य पुस्तकों और उनके परस्पर विरोधी पाठोंको देखते हुए केवल 'गीता' ही मेरे लिए सबसे ज्यादा निरापद मार्गदर्शक है। क्योंकि इसमें हिन्दू-धर्मके धर्म-ग्रंथोंकी तमाम शिक्षाओंका निचोड़ मौजूद है, और कोई भी ऐसी बात जो 'गीता' की भावनासे मेल नही खाती, मैं उसे बिना किसी हिचक अस्वीकार कर दूँगा। इस तरह मैं प्रत्येक धार्मिक सिद्धान्त, अथवा आचार-संहिताकी प्रामाणिकताको 'गीता' की कसौटीपर कसूँगा।

अतएव आप देखेंगे कि मैं किसी भी चीजका निषेध नही करता। मैं सारे शास्त्रोंका अध्ययन करता हूँ, लेकिन उनमे निहित अर्थको समझनेकी कुंजीके रूपमें 'गीता' का उपयोग करता हूँ।

संहिताओंके बारेमें आपकी जो धारणा है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ, लेकिन उसे नित्यके व्यवहारमें लागू करनेमें मुझे जो दिक्कत दिखाई देती है वह यह है कि

१. तमिल भाषाकी एक पत्रिका।

एक ही संहितामें परस्पर विरोधी बातें लिखी हुई होती है और भिन्न-भिन्न संहिताओंमें भी परस्पर विरोध दिखाई देता है। यहाँ भी मैं मददके लिए 'गीता' का आह्वान करता हूँ।

मैं यह भी मानता हूँ कि आचरणके नियम जिस आदर्शको सिद्ध करनेके साधन होंगे उस आदर्शसे थोड़े भिन्न होंगे, और ये नियम सभी मनुष्योंतक में एक-जैसे नहीं होंगे। लेकिन इन नियमोंको अपने साध्य आदर्शके प्रति सच्चा होनेके लिए उस आदर्शके अनुरूप तो होना ही चाहिए, और ऐसा होना चाहिए जिनपर चलकर मनुष्य धीरे-धीरे उस आदर्शको प्राप्त कर सके। ये नियम ऐसे नही होने चाहिए जो मनुष्यको आदर्शसे धीरे-धीरे दूर हटाते जायें।

इस तरह जाँच करके देखनेसे मेरी रायमें अस्पृश्यता, आज वह जिस रूपमें प्रचलित है, स्पष्ट ही हिन्दू-शास्त्रोंके विरुद्ध है। मैंने आपके अनेक तर्कोंको पढ़कर देखा कि स्वयं उन्हींसे अस्पृश्यता गलत सिद्ध होती है।

जहाँतक जनमत-संग्रहका सवाल है, उसकी व्याप्तिपर जो कठोर मर्यादाएँ लगी हुई हैं, स्पष्ट है कि आप उन्हे नहीं देख पाये है। यदि मुझे इस बातका विश्वास होता कि आजकी अस्पृश्यताकी जड़ें हिन्दू-धर्ममे ही मौजूद है और अस्पृश्योको साफ तौरपर मन्दिरोंमें प्रवेश करनेकी मनाही है तो जनमत-सग्रह करवानेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन चूँकि हिन्दू-धर्ममें दो विचारधाराएँ है, इसलिए यह बात स्वयं जनता ही क्यों न तय करे कि वह किस विचारधाराको अपनाना चाहती है? यदि लोग स्वयं ही यह तय नहीं करते कि उन्हें शैव-धर्मको अपनाना चाहिए अथवा वैष्णव-धर्मको, तो फिर इसका निर्णय उनके लिए कौन करेगा? अपने गौरवशाली इतिहासके दौरान क्या हिन्दू लोग ऐसा ही नहीं करते आये है? [१]

हृदयसे आपका,

पंडित परेशनाथ भट्टाचार्य, एम० ए०
वेदान्तरत्न
कूच बिहार (बंगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१५) से।

१. देखिए "एक सनातनीके निष्कर्ष", २५-२-१९३३।

४९८. पत्र : गजानन भारद्वाजको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी १९ तारीखके पत्रके लिए आपको धन्यवाद। मैं आपको केवल यही सलाह दे सकता हूँ कि आप 'हरिजन'को धीरजके साथ पढ़ते रहें। हो सकता है, अपने सवालों[१] के आप उसमें कुछ जवाब पा जायें। जैसाकि आप एक तरहसे स्वयं स्वीकार करते है, जनताके मनको जिस समस्याने उद्वेलित कर रखा है उससे वर्णाश्रम का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे अपनी और जनताकी शक्तिको बचाकर रखना चाहिए और वर्णाश्रमके बारेमे जितना जरूरी है उससे ज्यादा-कुछ नहीं कहना चाहिए। इसके मतलब यह नही कि उसमें छिपाने-जैसी कोई बात है; वस्तुतः इस विषयमें मैं जो-कुछ कहूँगा, उसे धैर्यवान पाठक मेरे लेखोंमें देख सकता है। मैंने ही यह बार-बार देखा है कि कोई विशेष प्रश्न जबतक एक जीवन्त समस्या नही बन गया, तबतक उस समस्याके बारेमें उसके जीवन्त समस्या बननेसे पहले मैंने जो-कुछ लिखा है उसपर पाठकोंने ध्यान नही दिया है। आप इस बातपर भरोसा रखें कि आप मुझे भले ही आसानीसे छोड़ दें, लेकिन डॉ० अम्बेडकर आसानीसे छोड़नेवाले नहीं है। शायद आप मेरा पल्ला छोड़ दें, लेकिन डॉ० अम्बेडकर आसानीसे नहीं छोड़ेगे। अतः कृपया धैर्य रखें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गजानन भारद्वाज
लोनावला

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१६) से।

१. भारद्वाजने पूछा था: "आप जब वर्तमान हिन्दू-समाजकी पुनर्रचना शुरू करेंगे, उस समय किसी व्यक्तिके वर्ण या आश्रमका निश्चय किस प्रकार करेंगे, और पुनर्रचनाका यह क्रम कब शुरू होगा। हमारे चारों वर्णोंके बीच अन्तर्विवाह और अन्तर्भोजका क्या रहेगा? किस आयुमें वर्ण निश्चित किया जायेगा? वर्णाश्रम व्यवस्थाकी देखरेखकी जिम्मेदारी किसपर होगी? यदि विवाह और भोजन महत्त्वपूर्ण नहीं हैं तो आपका वर्णाश्रम पाश्चात्य ढंगकी समाज-व्यवस्थासे किस प्रकार भिन्न होगा?"

४९९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२१ फरवरी, १९३३

दूसरे विधेयकमें भी जोर-जबरदस्तीकी ध्वनि है, ऐसा नही कह सकते क्योंकि जहाँ बहुत सारे हिन्दू तैयार हो वहाँ जोर-जबरदस्तीकी बात कैसे मानी जा सकती है? इसके अतिरिक्त, मैंने जो समाधान सुझाया है उसपर भी अमल हो सकता है। तथापि, यदि पहला विधेयक स्वीकृत हो जाता है तो मुझे दूसरेकी कोई जरूरत नहीं है। दूसरा विधेयक तो सनातनियोंकी वजहसे रखा गया है। मुझे लगता है कि मालवीयजी को पहला विधेयक पसन्द नही है, लेकिन यदि प्रथम विधेयकपर उनकी स्वीकृति ली जा सकती है तो तू अवश्य तजवीज कर। . . .[१] विधेयकके बारेमें यदि तुझे अधिक समझना हो तो मेरे पास आना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२१

५००. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

२१ फरवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

आजकलमें मै लक्ष्मणशास्त्रीसे मिलुंगा ऐसी आशामें मैने आपके पो० कार्डका उत्तर नहि भेजा। अब मालुम नहिं मै कब मिलुंगा। मिलने पर ज्यादा लिखुंगा। मैं जानता हूँ कि हिंदी या इंग्रेजी महाराष्ट्र जनताके लिये निरर्थक है।[२]

आपका,

मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ४७७३ से; सौजन्य : श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छूट गया है।

२. यहाँपर अस्पृश्यताके विषयपर मराठीमें एक पत्रिका निकालनेकी सम्भावनाका जिक्र है; देखिए "पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको", ३-२-१९३३।

५०१. पत्र : रेहाना तैयबजीको

बिस्मिल्लाह्

२१ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिला। जब ताकत नहीं आई है मेरे पास आनेकी कोशिश न की जाये। मुझे एक कार्ड भेजती रहेगी तो काफी होगा। बहनसे कहो मेरे पास न आवे उसकी फिक्र न करे लेकिन हरिजन सेवा बढ़ाती जावे। तुमको हरिजन अखबार मिलता है न?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६५९) से।

५०२. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२२ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

तुमने उपवासकी जो चर्चा कर दी थी उसके बारेमें मैंने जो-कुछ कहा है, उससे दुःखी मत हो?[१] तुमने जो चर्चा की उसकी ओर स्पष्ट रूपसे ध्यान दिलाये बिना मैं सबक नहीं सिखा सकता था। मैं निश्चय ही उसके बारेमें सब-कुछ भूल चुका हूँ। क्या तुम भी वैसा ही करोगे? और न तुम्हें डॉ० अम्बेडकरके विस्फोटका[२], सरकारके निर्णयका[३] या मालवीयजीके विरोधका[४] ही बहुत दुःख होना चाहिए। ये तो सामान्य बातें हैं, जो होती ही रहती हैं। पता नहीं क्यों, इन तीनोंमें से किसी भी चीजने मुझे विचलित नहीं किया है; हो सकता है कि इसका कारण यह हो कि मैं तीनों चीजोंके लिए तैयार था। हमें तो इसीमें संतुष्ट रहना चाहिए कि हम जितना कर सकनेके योग्य हैं, वह सब हमने किया है। तुमने तो निश्चय ही किया है। इसलिए तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। मैं जानता हूँ कि विधेयकोंको

१. देखिए "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

२. देखिए परिशिष्ट १३।

३. देखिए परिशिष्ट ९।

४. देखिए परिशिष्ट १२।

इसी सत्रमें पास करवानेके लिए तुमने अपने प्रयत्नोंमें कोई कसर नहीं रखी। इससे ज्यादा कोई दूसरा नहीं कर सकता था।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३२१) से।

५०३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२२ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके दो पत्र मिले। मैं विधानसभा कार्य-विधिकी बारीकियोंको नहीं समझता। मुझे जैसा लगा वैसा मैंने कहा और लिखा है, और इतना कर चुकनेके बाद मुझे चीजोंको उनके हालपर छोड़ देना चाहिए। विधानसभा के सदस्योंसे मुझे पता लगा है कि [विधेयकको] प्रचारित करनेके जो मतलब तुम समझे हो, उससे कहीं ज्यादा हैं[1] लेकिन अगर इसका इतना ही मतलब है कि विधेयकपर अगले सत्रमें विचार किया जायेगा तो शायद ज्यादा नुकसान न हो। लेकिन मैं कह नहीं सकता। आप सब लोग अब जो ठीक समझें, करें।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३२९) से।

५०४. 'हरिजन' क्यों ?[2]

जिनको हम अछूत मानकर पाप करते हैं, उनको मैं 'हरिजन' क्यों कहता हूँ, ऐसा प्रश्न कई सज्जनोंने पूछा है। एक काठियावाड़के अछूत भाईने बरसों पहले

१. अपने १८ फरवरीके पत्रमें बिड़लाने लिखा था: "अगर हमें विधानसभा के सदस्योंसे ज्यादा समर्थन प्राप्त करना है तो हमें विधेयकपर सदनसे विचार करानेके लिए जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए और इसलिए हमें प्रचारित करनेके तरीकेको स्वीकार करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि आप इससे सहमत नहीं हैं, लेकिन व्यक्तिगत रूपसे मुझे लगता है कि व्यावहारिक दृष्टिसे विधेयकको प्रचारित करने और प्रवर समितिके सुपुर्द करनेके बीच कोई अन्तर नहीं है। यदि प्रवर समिति ही नियुक्त की जाये तो भी शिमला-अधिवेशनसे पहले कुछ नहीं किया जा सकता और यदि विधेयकको एक निश्चित समयावधिके लिए ही प्रचारित किया जाये तो भी शिमला-अधिवेशनमें एक प्रवर समिति नियुक्त की जा सकती है, और तब विधेयकको विचारार्थ हाथमें लिया जा सकता है। अतः प्रचारित करनेके तरीकेको स्वीकार करके हमें जितना समय खोना पड़ेगा उतना समय तो किसी भी हालतमें लगेगा ही। . . ."

२. गांधीजी ने अंग्रेजीके **हरिजन** में भी इसी शीर्षकसे लिखा था, देखिए "'हरिजन' क्यों ?" ११-२-१९३३।

मुझे लिखा था कि ‘अन्त्यज’, ‘अछूत’, ‘अस्पृश्य’ नामसे उन भाइयोंको दुःख होता है। उनका दुःख मैं समझ सकता था। मेरे नजदीक वे न अन्त्यज थे, न अस्पृश्य थे, न अछूत थे। उसी भाईने बताया कि अपने एक भजनमें भक्तकवि नरसिंह मेहताने अछूत भाइयोंका उल्लेख ‘हरिजन’ नामसे किया था। यद्यपि जो भजन उस भाईने अपने समर्थनमें मुझे भेजा था उसका अर्थ जो वह बताते थे, वैसा मेरी दृष्टिमें नहीं था, तो भी मुझे ‘हरिजन’ नाम बहुत प्रिय जँचा। ‘हरिजन’का अर्थ है ईश्वरका भक्त, ईश्वरका प्यारा। ईश्वरकी प्रतिज्ञा है कि दुखियोंका वह बेली है, दयाका सागर है, अशक्तोंको शक्ति देनेवाला है, निर्बलका बल है, पंगुका पैर है, अन्धोंकी आँख है, इसलिए दलित लोग उसके प्यारे होने ही चाहिए। इस दृष्टिसे अछूत भाइयोंके लिए ‘हरिजन’ शब्द सर्वथा उपयुक्त है, ऐसा मेरा विश्वास है।

कोई कहते हैं, अछूत अपने पूर्व-कर्मसे अछूत हैं। कोई कहते हैं: “हम भले चार करोड़को अछूत मानें, लेकिन उनको क्या विशेष कष्ट है जो और करोड़ोंको नहीं है? अछूतपनमें ही जो दुःख भरा होगा वह तो मानसिक ही हो सकता है और वह अपरिहार्य है। पूर्वजन्मका फल होनेसे ईश्वरकृत है। उनकी गरीबी इत्यादि कष्ट जैसे उनको है, वैसे ही हिन्दुस्तानके दो-तीन करोड़ लोगोंको छोड़कर और सबके लिए सामान्य हैं। तब ऐसे सब दीन जनोंको हरिजन क्यों न कहा जाये?” यह कथन अयोग्य है। अछूतपन, जैसा आज हम मानते हैं, वह न पूर्व-कर्मका फल है न ईश्वरकृत है। आधुनिक अछूतपन मनुष्यकृत है, सवर्ण हिन्दूकृत है। कर्मका फल सब भोगते हैं, लेकिन ऐसा कहकर हमको और किसीको दूषित बतानेका कोई अधिकार नहीं है। कर्मकी गति गहन है। किस कर्मका क्या फल है, वह कोई नही जानता है। कुछ-न-कुछ दोषसे हम सब भरे हुए हैं। इसलिए किसीके दोषकी तुलना करनेका हमें कोई अधिकार नही है। हमारा अधिकार और धर्म एक-दूसरेको दोषमुक्त होनेमें सहायता देनेका है। दया-धर्ममें जन्म-सिद्ध और अनिवार्य अस्पृश्यताका स्थान ही नहीं हो सकता। और क्योंकि हम चार करोड़ हिन्दुओंको अस्पृश्य मानते हैं, इस कारण उनको अवश्य विशेष और असाधारण कष्ट भोगना पड़ता है। अपने पासमें पैसे होते हुए भी उन लोगोंको न खानेका, न पीनेका, न रहनेका ठिकाना मिल सकता है, जैसा दूसरोंको। उनके लिए न मन्दिर है, न धर्मशाला है, न औषधालय है, न पाठशाला है, जैसे दूसरोंके लिए। उनको हमने ऐसा गिराया है जिससे वह अपने मनुष्यपनको भी प्रायः भूल गये है। अपनी दीन स्थितिमेंसे उठनेकी इच्छा तक भी उन चार करोड़ भाई-बहनोंको नही होती है।

यह चित्र जो मैंने खीचा है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। एक बातमे अतिशयोक्ति हो सकती है। हरिजनोंकी संख्या वस्तुतः कोई नहीं जानता है। श्री अमृतलाल ठक्करने जो संख्या बताई है उसको मैंने स्वीकार कर लिया है। वह भी निश्चयसे नही कह सकते हैं। सब छानबीन करके इतना ही कहते है कि चार करोड़से अधिक संख्या नही हो सकती। किन्तु हरिजनोंकी संख्या चार करोड़ है या

एक करोड़, सख्याकी न्यूनाधिकतासे सवर्ण हिन्दुओंके दोषमें कुछ फर्क नही हो सकता है। हरिजनकी हालतका जो मैंने बयान दिया है उसमें अगर कुछ फर्क है तो अल्पोक्ति है, अतिशयोक्ति कभी नहीं।[1] ऐसे दलित लोग अगर ईश्वरके प्यारे नहीं हैं, तो जगत नास्तिक बन जाये। सीधी बात यह है कि ईश्वर है, वह करुणाका भंडार है, दुःखियोंका दुःख हरता है, भूखोंका उदर भरता है। इसलिए हिन्दुस्तानमें जो सबसे अधिक दुःखमें पड़े हुए हैं उनको हरिजन कहना यथार्थ है और मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम इन हरिजनोंकी अस्पृश्यता दूर नहीं करेंगे, उनको नहीं अपनायेंगे, तो उनकी हायसे हिन्दू-जातिका नाश हो जायेगा।

तुलसी हाय गरीबकी, कभी न खाली जाय,
मुए ढोरकी चामसे, लोह भस्म हो जाय।

हरिजन सेवक, २३-२-१९३३

५०५. पत्र : वेरियर एल्विनको

२३ फरवरी, १९३३

मेरे सबसे प्यारे बेटे,

पुत्र तुम अपनी पसन्दसे बने हो। मैंने उत्तरदायित्वपूर्ण पद स्वीकार कर लिया है। और जीवनके अन्ततक तुम मेरे बेटे ही रहोगे। तुम्हारे और मेरे बीचका जो सम्बन्ध-सूत्र है वह खूनसे भी ज्यादा गाढ़ा और मजबूत है। किसी भी स्थितिमें यह सत्यके प्रति ज्वलन्त प्रेमका सम्बन्ध है। इसलिए तुम कुछ भी करो, मुझे निराशा नहीं होगी। लेकिन मेरा मन उदास हुआ।

मैं विवाहकी अपेक्षा ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका विचार नही कर रहा हूँ। मै सोच रहा हूँ कि तुमने क्या इरादा किया था, क्या बननेकी लगभग शपथ ली थी। लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम्हें अपने प्रति सच्चा रहना था और तुम जैसे हो वैसे ही दिखना चाहते थे।

मैंने तुम्हारा पत्र जमनालालजी को दिखाया और उन्हें भी वैसा ही लगा जैसाकि मुझे।

लेकिन मैं तुम्हें लिखनेकी तैयारी कर ही रहा था कि अला आ गई। उसकी आँखोंसे टप्-टप् आँसू गिर रहे थे। उसने मेरे हाथोंमें तुम्हारा पत्र रख दिया और बोली, "यह मै किस प्रकार सहन कर सकती हूँ? हम दोनोंके बीच यह समझौता हुआ था कि हम दोनों अविवाहित रहेंगे, और हम नही रह सकेंगे तो फिर हम

१. १२-३-१९३३ के **हरिजनबन्धु** में प्रकाशित इस लेखके गुजराती अनुवादमें निम्नलिखित वाक्य और है: "मैंने जो-कुछ भी लिखा है उसे सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार जिन तथ्योंका मैंने बखान किया है वे उससे भी खराब हो सकते है।"

दोनों आपसमें ही विवाह करेंगे।" मैंने उसे धीरज बँधाया और उससे कहा कि वह तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेजे। मैं नहीं जानता कि उसने क्या किया है या लिखा है? तुम मुझे लिखना कि तुम्हारे और उसके बीच क्या समझौता था।

लेकिन मै ऐसा मान रहा कि हूँ अलाकी जैसी कल्पना है वैसा कोई वचन तुम्हारी ओरसे उसे नहीं दिया गया था, और इसलिए मैं तुम्हें और मेरी[1] को अपना आशीर्वाद भेजता हूँ। मैं उससे मिल चुका हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसके चेहरेके भोलेपनकी छाप मेरे दिलमें छप गई थी। मै जानता हूँ कि तुम दोनोंका सम्मिलित जीवन पूर्णरूपसे सेवाके प्रति समर्पित जीवन होगा। लेकिन यदि अलाको दिये गये वचनके नैतिक भंग होनेकी तनिक भी सम्भावना हो तो तुम दोनोंको —— तुम्हें और मैरीको —— सबसे वजनी क्रूसका बोझ ढोना पड़ेगा और सत्य, जोकि ईश्वर है, की वेदीपर अपनी चिर-संचित अभिलाषाका बलिदान करना होगा। यदि वचन-भंगका लेशमात्र भी सन्देह होगा तो तुम्हें तो निश्चय ही, और मेरी तथा अलाको भी – यदि इन दोनोंको सत्यमें वैसा ही जीवन्त विश्वास है जैसाकि मैं मानता हूँ कि तुम्हें है – अपनी इच्छाके बावजूद अविवाहित जीवन व्यतीत करना होगा। सत्यके प्रति तुम्हारा प्रेम किसी एक व्यक्तिसे विवाहकी तुम्हारी इच्छाको सत्यके सर्वव्यापी विवाह-बन्धनमें बाँध देगा। इस अलौकिक विवाहमें हम सभी स्त्री-पुरुष स्त्रियाँ होते हैं और सत्य ही एकमात्र प्रभु, स्वामी और पति होता है।

इससे ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नही है। मेरा पत्र सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि मैं तथ्योंसे अनभिज्ञ हूँ। लेकिन एक बाप और बेटेके बीच लिखे गये पत्रके रूपमें यह असन्तोषजनक नहीं है। जो-कुछ रिक्त स्थान हों उनकी पूर्ति तुम कर सकते हो। मैं तुम्हें यह भरोसा देता हूँ कि तुम कुछ करो, मुझे निश्चय है कि उसे तुम अपनी दृष्टिमें सत्यका पालन करते हुए ही करोगे। इससे ज्यादा कोई मनुष्य कुछ नही कर सकता।

ईश्वर तुम्हारा और मेरीका मार्गदर्शन करे।

तुम्हें और मेरीको खूब गहरे प्यार सहित,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

यह पत्र २३-२-१९३३ को सुबहकी प्रार्थनाके तुरन्त बाद साढ़े चार बजे लिखा गया था।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५१) से।

१. मेरी जिलेट।

५०६. पत्र : एलेन होरपको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय एलेन,

तुम्हारा पत्र पाकर हर्ष हुआ। मैं तुम्हारे स्नेहकी बड़ी कद्र करता हूँ। मै पहाड़ियोंपर चढ़ा हूँ, लेकिन सारा-सारा दिन उनपर नहीं चला हूँ तथापि, समझता हूँ कि क्षितिजको छूते हुए पर्वतोंसे तुम्हारा क्या मतलब है।

यह जानकारी कि कुछ मित्रोंके लिए मै मार्गदर्शक 'वार्ड' हूँ, मुझे विनयभावसे भर देता है और अपने कन्धोंपर मै जो जबरदस्त बोझा ढो रहा हूँ, उसका मैं और ज्यादा अनुभव करने लगता हूँ। मुझे बराबर अपने-आपपर निगाह रखनी पड़ती है और ईश्वरसे बराबर मेरी प्रार्थना रहती है कि मै किसीके लिए झूठा मार्गदर्शक न सिद्ध होऊँ।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी एलेन होरप
जेनेवा

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३५) से।

५०७. पत्र : एच० वी० ग्लासेनापको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

साबरमती-स्थित आश्रमके सचिवके नाम भेजा गया आपका पत्र मुझे अभी-अभी मिला। लूसियानो मैगरीनी द्वारा लिखी पुस्तक 'इंडिया' के बारेमें मुझे कोई जानकारी नहीं है। मैंने यह पुस्तक नहीं पढ़ी है। मैं इतालवी भाषा नही जानता और मैंने इस पुस्तकके बारेमें कभी किसीको कोई राय नहीं दी है, और जहाँतक मेरी जानकारी है, मैंने भारतके अखबारोंमें इस पुस्तकका कोई विज्ञापन नहीं देखा है।

हृदयसे आपका,

श्री एच० वी० ग्लासेनाप
प्रोफसर ऑफ संस्कृत
कीनिग्सबर्ग युनिवर्सिटी (जर्मनी)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३६) से।

५०८. पत्र : के० आर० छापखानेको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

श्रीयुत आठवलेके साथ मेरा जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उसके बारेमें आपको शायद पता हो। चूँकि उन्होंने मुझे आपको लिखनेको कहा है, और शायद ठीक ही कहा है, इसलिए मैं आपको लिख रहा हूँ। मैं अनुरोध करूँगा कि आप मुझे कृपया बतायें कि सांगलीके अपने दौरेमें[1] मैंने जो चन्दा इकट्ठा किया था उसे मैंने किस स्थितिमें और किन शर्तोंपर आपको सौंपा था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत छापखाने
सांगली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३३७) से।

५०९. पत्र : के० सन्तानमको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय सन्तानम,

समय बचानेके लिए यह मुझे बोलकर ही लिखवाना पड़ेगा। मुझे तुम्हारी पुरानी सुपरिचित लिखावट देखकर हर्ष हुआ, लेकिन इसका दुःख है कि तुम अस्वस्थ हो गये थे। तुम्हें मोटा नहीं होना चाहिए। हालाँकि मैं नीम हकीम हूँ, लेकिन ऐसा नीम हकीम हूँ जिसने खुद अपने ऊपर कुछ प्रयोग किये हैं और इसलिए थोड़े अधिकारके साथ बोल सकता हूँ। तुम्हें खूब व्यायाम करना चाहिए। टहलना तो व्यायामों का राजा है, और तुम्हें सब तरहकी तैयार की गई चर्बी, जैसे तेल या घी, बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए और यथासम्भव कम-से-कम दूध लेना चाहिए तथा रसदार फलों और भूरी डबलरोटी पर गुजर करनी चाहिए। एक महीनेमें तुम अपने-आपको बिल्कुल बदला हुआ आदमी पाओगे। आपको बिना स्टार्चवाली हरी सब्जियाँ सिर्फ उबालकर लेनी चाहिए। हम लोग समझते ही नही कि सही आहार और ताजी हवामें व्यायामकी आवश्यकताका घोर अज्ञान होनेके कारण ही हम बीमारीके शिकार होते हैं। इस पत्रके साथ मैं एक पत्र कृष्णाके लिए रखूँगा।

१. नवम्बर, १९२० में।

मैं जानता हूँ कि तुम 'हरिजन' अखबार और सामान्यत: हरिजनोंकी सेवाके लिए जो बन पड़ेगा, करोगे।

हृदयसे तुम्हारा,

पंडित के० सन्तानम
७ रेसकोर्स रोड
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३८) से।

५१०. पत्र : बाजी कृष्ण रावको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपके तारके लिए और आपके अत्यन्त दिलचस्प पत्रके लिए भी आपको धन्यवाद देता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बाजी कृष्ण राव, प्लीडर
फर्स्ट चेटमी बाजार
सिकन्दराबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३४५) से।

५११. पत्र : तंगई मेननको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय तंगई[1],

तुमने मुझे एक पत्र भेजा है जिसे तुमने खुद नही लिखा है। इसलिए अगर मैं तुम्हें ऐसा जवाब भेजूँ जिसे मैंने नहीं लिखा है तो तुम शिकायत नहीं कर सकतीं।

मैं जानता हूँ कि चाचा चार्ली बहुत नमक खाते हैं, लेकिन बड़ोंकी बुरी आदतोंकी नकल नहीं करनी चाहिए, और बहुत नमक खाना बुरी आदत है, और बहुत ज्यादा नमक डालनेसे जिस चीजमें उसे डाला गया हो उसका असली स्वाद खराब हो जाता है।

१. एस्थर मेननकी लड़की।

चाचा चार्लीमें छोटे-छोटे बच्चोंको खूब सारी मिठाइयाँ देकर उन्हें बिगाड़नेकी भी बुरी आदत है। इसलिए अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो मैं मिठाइयोंको ढेर सारे गरीब बच्चोंमें बाँट देता और मित्रोंसे प्राप्त उपहारोंका उनके साथ मिलकर उपभोग करनेके विचारसे खुश होता।

हम दोनोंकी ओरसे प्यार और चुम्बन सहित,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११९

५१२. पत्र : एस्थर मेननको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय बिटिया,

इस पत्रको बोलकर लिखवा चुकनेके बाद[1] इसे तंगईके पास जाना ही होगा, हालाँकि इसमें हरिजन-कार्यको २½ आनेका नुकसान बैठेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि नान और तंगई, दोनों इस हानिकी हजार गुना और उससे भी ज्यादा पूर्ति कर देंगे।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११९

५१३. पत्र : एफ० मेरी बारको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारा हिन्दी पत्र असाधारण रूपसे अच्छा है। तुम्हारी अत्यन्त साफ लिखावट की हम सबने सराहना की।

ईश्वरकी अनेक व्याख्याएँ हैं: इस धरतीपर जितने स्त्री और पुरुष हैं, उतनी। सत्, चित्, आनन्द भी इन्हीं व्याख्याओंमें से हैं जिन्हें अंग्रेजीमें ट्रुथ, नॉलेज और ब्लिस कहा जा सकता है। ये तीनों एक दूसरेसे गुँथे हुए हैं। प्रातःकालीन श्लोकोंका चयन सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है। प्रत्येक श्लोक उस ईश्वरकी किसी शक्ति या शक्तियोंका प्रतीक है जो असीम है और वर्णनातीत है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

हाँ, मुझे वेरियरका एक पत्र मिला था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस पत्रसे मुझे निराशा नहीं हुई। पॉलकी भाँति ही मेरा भी यह विश्वास है कि पुरुषोंको अन्दर-अन्दर जलनेकी अपेक्षा विवाह कर लेना चाहिए। ब्रह्मचर्य उन लोगोंके लिए है जिनका मन शरीरके साथ सहयोग करता हो। बेशक मुझे मेरी जिलेटकी अच्छी तरह याद है। पहली बार देखनेपर ही उसके भोले मुखड़ेकी छाप मेरे मन पर पड़ी थी।

मुझे खुशी है कि तुम वहाँ ठीक चल रही हो। और अब तो वहाँ डंकन ग्रीनलेस भी हैं जिनका तुम्हें खयाल रखना है। तुम कृपया उनकी सुविधाओंका ध्यान रखना और उनको समझनेकी भी कोशिश करना।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हें खुले आकाशके नीचे सोना चाहिए, तब तुम्हें सारी रात शीतलता अनुभव होगी। कश्मीरके बारेमें तुम्हारा पत्र मुझे मिला। बेशक तुम वहाँ जाओ और अगर वहाँका मौसम अनुकूल पड़े तो जूनतक वहाँ रहकर वापस आ आना। लेकिन कितने दिन रुकोगी यह परिस्थितियोंपर निर्भर करेगा।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९४) से। सी० डब्ल्यू० ३३१९ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

५१४. पत्र : नारणदास गांधीको

२३ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी मोटी डाक मिल गई है। इसके साथ मेरी[1] और ग्रीनलेसके पत्र हैं। लक्ष्मीदास और आनन्दी यहाँ आये हैं। आनन्दीको ९९ डिग्रीतक बुखार रहता है। दिन-भरमें एक-दो प्वाइंट बढ भी जाता है, पर ९९ डिग्रीसे नीचे नहीं उतरता। लेकिन मुझे पूरी आशा है कि यहाँ इस बुखारसे छुटकारा पाया जा सकेगा। हवा तो अच्छी है ही।

दूदाभाई आयें तव उनसे दृढ़तापूर्वक बात कर लेना और यदि रजामंद हों तो तुरन्त ही विवाह कर देना। यदि वे राजी न हों तो लक्ष्मीको हम नहीं रख सकेंगे, यह उन्हें बता देना। पर मेरे अनुमानकी अपेक्षा यदि तुम्हारा अनुभव विपरीत हो और लक्ष्मीको निभानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मेरी रायको तुम रद कर सकते हो।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

अमीनाको जितना-कुछ सिखाया जा सके सिखाना। उर्दू अक्षरोंका उसे रोज अभ्यास हो तो अच्छा। पार्वतीका क्या हुआ। रणछोड़भाई किसी दुविधामें है क्या? उनका पत्र ही नहीं है इसलिए अवश्य ही चिन्ता रहती है। पारनेरकरकी जो योजना तुम सबने पसन्द की है, वह पुरानी है, अच्छी तो है ही। उससे कहना कि पत्र लिखें। दूधकी बिक्रीकी क्या व्यवस्था होगी? बिड़जकी जमीनकी बाबत तुमने जो लिखा सो समझा। डंकनके बारेमे तुम्हारी जो राय बने, लिखना। मुझपर उनकी जो छाप पड़ी है यदि वह खरी निकले तो वे एक सुन्दर सेवक तैयार हो सकते है।

कनूको किस चीजका लेप बाँधा है? उसे किसको दिखाया था? इस प्रकारकी चोटोमे उस स्थानको पूरा आराम देना सबसे बड़ी बात है और कभी-कभी तो चोट ऐसे स्थानपर लगी होती है कि उसे आराम देनेके लिए सारे शरीरको आराम देना होता है। पर दर्दसे जल्द-से-जल्द छुटकारा पानेका एकमात्र यही उपाय है। प्रभुदासके साथ बात करके उसकी बेचैनीको दूर करनेका प्रयत्न करना।

भगवानजी यदि अपने नये कार्यमें तन्मय हो सकें तो अच्छा काम दे सकते हैं। क्या धीरूका शरीर ठीक हो गया है? उसने तो लिखना ही बन्द कर दिया है, यह बात ठीक नही है। मोतीबहन से बात की होगी। वहाँ 'हरिजन' के कुछ ग्राहक बने हैं क्या? या कुछ चिल्लर प्रतियाँ बिकती हैं? बाहरसे मिलने-मिलानेवाले कुछ होते हैं क्या?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५१५. पत्र : देवीदत्त शुक्लको

२३ फरवरी, १९३३

भाई देवीदत्तजी[1],

आपका पत्र मिला है। पंडित महावीरप्रसादजी[2] ने हिन्दी भाषाकी जो सेवा की है उससे मैं परिचित हूं। 'सरस्वती' का परिचय मुझको दक्षिण आफ्रिकामें ही था। ७०वीं वर्षगाठके समय पर मेरे भी धन्यवादका स्वीकार किया जाय और मैं आशा करता हू कि महावीर प्रसादजीकी भाषासेवाका लाभ और भी कई वर्षो तक हमको मिलता रहेगा और 'सरस्वती' की उन्नति होती रहेगी।

आपका,

मोहनदास गांधी

सी० डब्ल्यू० ९६६६ से; सौजन्य : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१. मासिक पत्रिका **सरस्वती**के सम्पादक।

२. महावीरप्रसाद द्विवेदी, **सरस्वती** के संस्थापक-सम्पादक।

५१६. तार : राघवेन्द्र रावको

२४ फरवरी, १९३३

आनरेबिल राघवेन्द्र राव
होम मेम्बर
नागपुर

अभी सुना कि सिवनी जेलमें सेठ पूनमचन्द राँका अनशन कर रहे हैं। मुझे कारण पता नहीं। क्या आप कृपया पता चला कर मुझे सूचित करेंगे कि खबर सही है या नहीं, और यदि है तो अनशनका कारण क्या है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ३१/१०८, १९३२, पृष्ठ ५९; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए०, पृष्ठ ३ से भी।

५१७. तार : छगनलाल पी० मेहताको

२४ फरवरी, १९३३

छगनलाल मेहता
नासिक विला
पारसीवाड़ा
राजकोट

आशा है विवाह सादे-से-सादे ढँगसे होगा। कान्तिलाल और पद्माको मेरा आशीर्वाद। आशा है, तुम और बच्चे मजेमें हो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७३ से; सी० डब्ल्यू० ४६६७ से भी; सौजन्य: छगनलाल पी० मेहता

५१८. पत्र : मीराबहनको

२४ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

इस समय शुक्रवारके प्रातः साढ़े ३ बजे हैं। इस सप्ताहके लिए अभीतक तुम्हारा कोई पत्र नही आया। मैंने तुम्हें पिछले हफ्ते नियमपूर्वक लिखा था। यह शुक्रवारकी बात है, क्योंकि तुम्हारा पत्र गुरुवारको तीसरे पहर मिला था। मैं मान लेता हूँ कि व्यवस्थामें यह थोड़े दिनकी गड़बड़ तुम्हारे नये निवास-स्थान और नये सरक्षकोंके कारण हुई है। मै प्रतीक्षा और प्रार्थना करूँगा और 'गीतामाता'का सन्देश हृदयंगम करूँगा। वह विलक्षण माता है। मेरे खयालसे तुम्हें मालूम है कि वह माता कहलाती है। 'गीता' का अर्थ 'गीत' है। वह उपनिषद्के विशेषणके तौरपर इस्तेमाल किया जाता है और उपनिषद् स्त्रीलिग है। उसकी उपमा पवित्र कामधेनुसे दी जाती है, जो तमाम मनोरथ पूरे करनेवाली है। इसलिए वह माता हुई। खैर, यह अमर माता हमें आध्यात्मिक पोषणके लिए जितना दूध चाहिए वह सब दे देती है। शर्त इतनी ही है कि हम दूध पीनेवाले बच्चोंकी तरह दूध पीनेके लिए उसकी शरणमें जायें। उसके स्तनके अक्षय भण्डारमें अपने करोड़ों शिशुओंको दूध पिलानेकी सामर्थ्य है।

निन्दा, गलतबयानी और प्रत्यक्ष निराशाओंके बीचमें हरिजन-कार्य करते हुए मुझे उसकी गोदमें आराम मिलता है; और निराशाके कूपमें गिरनेसे मेरी रक्षा होती है।

इस तरह तुम मुझे हँसता हुआ और बेफिक्र पाती हो। मेरा वजन १०३ पर आकर ठहर गया है और खुराककी मात्रा और प्रकार भी ज्यों-के-त्यों हैं। फिलहाल बिना उबाला हुआ ताजा दूध चल रहा है। इससे कोई खराबी नहीं हुई। मेरा और महादेवका अधिकांश समय 'हरिजन' के लिए लिखनेमें लग जाता है। छगनलालको भी खूब काममे मशगूल रखा जाता है।

इस बार इससे अधिक नहीं। अब मुझे औरोंको प्रार्थनाके लिए जगाना पड़ेगा।

हम सबकी तरफसे तुम्हें और दूसरोंको प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

मैं तुम्हें रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट द्वारा वे धार्मिक पोस्टकार्ड भेज रहा हूँ जो राजकुमारी एरिस्टार्शी लगभग हर सप्ताह मुझे भेजती हैं और जिनके पीछे सावधानी-पूर्वक चुने हुए छंद लिखे रहते हैं। क्या तुम जानती हो कि वेरियर अप्रैलमें मेरी जिलेटसे विवाह करनेका विचार कर रहा है?

महादेव मुझे याद दिलाता है कि मैंने पिछले हफ्ते तुम्हें वेरियरके बारेमें लिखा था।[1]

मुझे अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला है। लेकिन आज इसका उत्तर देनेका समय नहीं है।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६४) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७३० से भी।

५१९. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

[२४ फरवरी, १९३३][2]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जानते हो कि विधेयकोंके बारेमे क्या-कुछ हो रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है और बहुत बुरी बात है। सरकारने जो रवैया अपनाया है वह मेरे विचारसे तटस्थताका नही, बल्कि पक्षपातका है। पता नही तुम मेरे तर्कके असली मुद्देको पकड़ पाये हो अथवा नहीं। यदि सरकार हरिजनोंको जबरन मन्दिर-प्रवेशका अधिकार प्रदान करनेके प्रस्तावपर सदनमे विचार किये जानेकी सुविधा प्रदान करती तो यह सुधारकोंके साथ पक्षपात और साथ ही धर्ममें हस्तक्षेप करना होता। यदि सरकार न्यायालयोंके निर्णयोंपर आधारित मन्दिर-प्रवेशके ऊपर लगाये गये कानूनी प्रतिबन्धोंको दूर नहीं करती तो इससे वह रूढ़िपन्थी हिन्दुओंके साथ पक्षपात करती है; ये निर्णय विधान-सभा द्वारा स्वीकृत कानूनोंपर आधारित नहीं हैं बल्कि धार्मिक प्रथाओंपर आधारित हैं, और वे अस्पृश्यताको इस प्रकार दण्डनीय बना देते हैं जैसेकि अस्पृश्यता दण्ड-विधानका ही एक अंग हो। सरकारको इस मामलेमें तटस्थ रुख अख्तियार करनेके लिए इस प्रतिबन्धको हटा देना चाहिए और दोनो पक्षोसे यह कहना चाहिए: "हम धार्मिक मामलोंमें किसीका पक्ष नहीं ले सकते। सम्भव है अस्पृश्यता आपमें से कुछ लोगोंके लिए आपके धर्मका भंग करना सरीखा हो, लेकिन इसमें सामान्य कानूनको भंग करने जैसी कोई बात नहीं है, और इसलिए सामान्य कानूनके अन्तर्गत इसके लिए कोई सजा नहीं हो सकती।" हिन्दू-धर्ममें अनेक ऐसी रीतियाँ और प्रथाएँ हैं जो दुनियाकी नैतिकता की भावनाको तनिक भी ठेस नही पहुँचातीं, जबकि अस्पृश्यता निस्सन्देह पहुँचाती है, और फिर भी उनका उल्लंघन करना सामान्य कानूनके अन्तर्गत दण्डनीय नहीं माना जाता। सुधारक तो केवल इतना ही चाहते हैं कि उन्हें प्रगति करनेका अवसर मिले, लोकमतको अपने पक्षमें

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १७-२-१९३३।
२. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे।

करनेका अवसर मिले और जब तथा जहाँ वे लोकमतको बदलनेमें सफल हों तब उन्हें उस परिवर्तनको कार्यरूप देनेका अवसर मिले। आज यदि किसी मन्दिर-विशेषमें पूजा करनेवाले शत-प्रतिशत हिन्दू उस मन्दिरमें हरिजनोंको प्रवेश करने देनेकी इच्छा रखते हों तब भी मैंने जिन अदालती निर्णयोंका जिक्र किया है उनके अन्तर्गत वे ऐसा नहीं कर सकते। ये दोनों विधेयक इस असंगतिको दूर करनेके विचारसे तैयार किये गये हैं। मैं इसका ध्यान रखूँगा, प्रतीक्षा करूँगा और भगवानसे प्रार्थना करूँगा।

सप्रेम,

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९७९) से; बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(३) भाग ४, पृष्ठ ११३ से भी।

५२०. पत्र : एस० गणेशनको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय गणेशन,

मुझे तुम्हारा इसी २० तारीखका पत्र मिला, लेकिन तुमने जो पूछा है चूँकि उसके बारेमें मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि अग्रिम प्रतियाँ[1] तुम्हें शुक्रवारको ही भेजी जा सकती हैं, उससे पहले नहीं[2], इसलिए मुझे कुछ और कहनेकी जरूरत नहीं है।

महादेवने मुझे अभी-अभी याद दिलाई है कि शुक्रवारको तुम्हें प्रतियाँ भेजनेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं मिलता, क्योंकि मद्रासको भेजी जानेवाली सभी प्रतियाँ शुक्रवारको भेजी जाती हैं। मैंने अपने पहले पत्रमें तुम्हें बताया है कि उससे पहले कोई प्रति भेज सकना कितना असम्भव है।

डॉ० राजनका पत्र मैं वापस कर रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३४७) से।

१. **हरिजन** की।

२. देखिए "पत्र : एस० गणेशनको", २१-२-१९३३।

५२१. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

२४ फरवरी, १९३३

मुझे आपका तार[1] मिला जिसमे आपने मुझसे पूछा है कि क्या आप पत्र-व्यवहारको प्रकाशनके लिए दे सकते हैं। और चूँकि मैंने आपका तार प्राप्त होनेके ४८ घंटे पहले ही प्रकाशनकी सहमति दे दी थी इसलिए मैंने यह सोचकर आपके तारका उत्तर नही दिया कि आपने प्रकाशन-सम्बन्धी सूचनाको देख ही लिया होगा।[2]

उसके बादसे मुझे आपको उत्तर लिखानेका समय ही नहीं मिला, क्योंकि बृहस्पतिवारकी शामतक का मेरा लगभग सारा समय 'हरिजन' में लग जाता है।

उम्मीद है, आपको 'हरिजन' की प्रति नियमपूर्वक मिल रही है। मैं नहीं जानता कि इसे पढ़नेका आपको तनिक भी समय मिल पाता है या नहीं। अब चूँकि विधेयकोंको लेकर आपके और मेरे मतभेदकी बात सब लोगोंको मालूम है इसलिए मैं चाहूँगा कि आपने स्वयं जो सुझाव रखा है उसको ध्यानमें रखकर सारी स्थिति पर फिरसे विचार करें।

आपका कहना है कि सनातनी और सुधारक लोग कानूनकी सहायता लिये बिना आपसी बातचीतके जरिये कोई समझौता कर सकते हैं। यदि यह मान भी लें कि सनातनियों और सुधारकोंके बीच यह समझौता हो जाता है कि सार्वजनिक मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये जाने चाहिए तो भी यह बात कर सकना किस प्रकार सम्भव है, इसे समझनेके लिए मैंने अपने दिमागपर बहुत जोर डाला। क्योंकि समझौता भी उस कानूनको बरतरफ नहीं कर सकता जिसमे कहा गया है कि हरिजन लोग सार्वजनिक मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं कर सकते।

इसलिए मैं इस अत्यन्त वास्तविक नैतिक समस्याको नजरअन्दाज नहीं कर सकता कि जबतक यह कानून बदला नहीं जाता तबतक हम बम्बई-प्रस्तावमें दिये गये वचनका पालन करनेकी स्थितिमें नहीं है। इस कानूनकी आड़में हम अपने-आपको असहाय नही बता सकते, और सच तो यह है कि मन्दिरोंके सम्बन्धमें प्रस्ताव तैयार करते समय मुझे इसके बारेमें कोई जानकारी नहीं थी। मेरा खयाल है, आपको यह बात मालूम ही है कि मूल मसविदा मैंने तैयार किया था। यह सच है कि बादमें इसमें कुछ परिवर्तन किये गये थे, लेकिन ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया गया था जिससे मेरे मसविदेका भावार्थ ही बदल जाये।

१. देखिए परिशिष्ट १२।

२. १८-२-१९३३ को **हरिजन** में प्रकाशित।

अतएव मेरी कामना है कि जिस धर्मको आप और मैं जीवनसे भी ज्यादा प्रिय मानते हैं, उस धर्मकी खातिर मैंने आपके सामने जो नैतिक कठिनाइयाँ रखी है उनपर आप गौर करेंगे। और यदि यह जरूरी हो तो मैंने 'हरिजन' में अपने लेखमें जो बात कही है, उसे मै एक बार फिर दोहराऊँगा कि विधेयकोंको लेकर आपके और मेरे बीच आज जो यह मतभेद उठ खड़ा हुआ है उससे आपके प्रति मेरे आदर और स्नेह-भावमें कतई कोई कमी नहीं आई है।

पण्डित मालवीयजी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३४८) से।

५२२. पत्र : एडा वेस्टको[1]

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय देवी,

तुम्हारा पत्र पढ़कर बड़ी खुशी हुई। मै देखता हूँ कि तुम अब अपेक्षाकृत हलका काम कर रही हो। बेशक यह परिवर्तन तुम्हारे लिए बहुत जरूरी था और मुझे उम्मीद है कि इससे तुम्हें लाभ हुआ होगा। हाँ, यहाँ सर्दी है, लेकिन भारतके इस हिस्सेमें सर्दीका मौसम बहुत अच्छा और सुहावना होता है, और कड़ी सर्दी तो बिल्कुल नहीं पड़ती। लेकिन पंजाबमें बहुत कड़ी सर्दी पड़ती है, हालाँकि यह बहुत स्फूर्तिदायक है।

मेरा खयाल है मैं जब वहाँ था तब मैं डा० और श्रीमती ग्रे से अवश्य मिला था। जब तुम्हें अल्बर्टका कोई समाचार मिले तब मुझे बताना, क्योंकि मुझे उसके कोई पत्र नही आते। मैंने उसे पत्र लिखा है।

देवदास दिल्लीमें हरिजन-कार्य कर रहा है। रामदास उसी जेलमें है जिस जेलमें मैं हूँ, लेकिन उसका यार्ड भिन्न है। मुझे उससे अक्सर मिलते रहनेकी अनुमति है। महादेव बेशक मेरे साथ है और उसका काम अच्छा चल रहा है। बा और मीरा दोनों ही साबरमती जेलमें हैं और जहाँतक मुझे मालूम है, दोनों ही भली-चंगी हैं। प्यारेलाल नासिक नामक एक स्थानमें जेलमें हैं। मुझे मणिलाल और उसकी पत्नीके पत्र लगभग हर महीने प्राप्त होते हैं। मेढ और प्रागजी भी मुझे अक्सर पत्र लिखते हैं।

क्या तुम्हें 'हरिजन' हर हफ्ते मिल रहा है? फिलहाल मेरा सारा समय इसी काममें चला जाता है।

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी अल्बर्ट वेस्टकी बहन।

मै इस हफ्ते म्यूरियल[1] को नहीं लिख रहा हूँ। कृपया उसे और किंग्सले हॉल तथा स्कूल हाउसके सभी मित्रोंको मेरा प्यार कहना।

श्री देवी
किंग्सले हॉल
पॉविस रोड
बॉ, ई-३

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३४९) से।

५२३. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२४ फरवरी, १९३३

तुम्हारा खूबसूरत पत्र मिला। मैं तुम्हारे स्नेहकी कद्र करता हूँ। बेशक मैं तुमसे नाराज नहीं था और इसलिए इसमें माफ कर देने-जैसी कोई बात नहीं है। इसके विपरीत मेरे लिए यह खुशीकी बात है कि मेरे ऐसे मित्र हैं जिन्हें मैं नि:सकोच भावसे और मुझे गलत समझा जायेगा, इस भयसे मुक्त होकर लिख सकता हूँ।

तथापि, मुझे खुशी है कि तुमने तार द्वारा प्रेम-सन्देश भेजनेके लिए पैसा खर्च न करनेका निश्चय किया है। प्रेमको शब्दाभिव्यक्तिकी आवश्यकता नहीं; लेकिन यदि ऐसा करना जरूरी हो तो उसके लिए प्रेम-पत्र ही पर्याप्त होने चाहिए। हमें तुरन्त ही इसका भान हो जाता है कि हमारा अपना कुछ नहीं है। और हमारे पास जो है वह उन लोगोंकी धरोहर है जो हमसे ज्यादा जरूरतमन्द हैं और उसे खर्च करनेमें हमें कंजूसीसे काम लेना होगा।

उम्मीद है तुम्हें 'हरिजन' की प्रति हर सप्ताह मिल रही होगी?

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३५०) से।

१. म्यूरियल लेस्टर।

५२४. पत्र : मिर्जा इस्माइलको[1]

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

नी० का परिचय मुझे मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनके सिलसिलेमें हुआ। और वह अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें जो कार्य कर रही थी उसमें मैं दिलचस्पी ले रहा था। इस बीच एक मित्र उसके चरित्रके सम्बन्धमें फैली अफवाहें लेकर मेरे पास आये। मैंने तुरन्त ही उन अफवाहोंके सारको नी० को बताया और उसे इस बातके लिए आमन्त्रित किया कि वह मेरे पास आये और मुझे बताये कि क्या मुझे उससे हरिजन-कार्य लेना चाहिए अथवा नहीं। वह निःसंकोच भावसे मेरे पास आई। वह चन्द दिन और मेरे पास रहेगी। वह मुझे बताती है कि आप उसे जानते हैं। क्या आप कृपा करके मुझे यह बतायेंगे कि उसके और उसके कार्यके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है।

सर मिर्जा इस्माइल
बंगलोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५३) से।

५२५. पत्र : रामचन्द्रको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

शायद आप जानते हैं कि नी० आजकल पूनामें है। वह मुझे बताती है कि आप कुछ दिन साबरमती आश्रममें रहे थे। वह कौन-सा वर्ष रहा होगा?

वह यह भी बताती है कि अभी कुछ दिनोंसे आप उससे सन्तुष्ट नहीं हैं। उसके बारेमें आप जो-कुछ भी जानते हों अथवा उसके विरुद्ध आपको जो-कुछ भी कहना हो सो आप कृपा करके निर्द्वन्द्व भावसे मुझसे कहें।

किंघेड़ी आश्रम
बंगलोर सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५४) से।

१. मैसूरके दीवान।

५२६. पत्र : नर्गिस कैप्टेनको

२४ फरवरी, १९३३

आखिरकार मुझे तुम्हारा पत्र मिला। तुम मुझे कुम्भकोणम् और गुरुवायूरके अपने अनुभवोंके बारेमें सब-कुछ बताओगी। तुम निश्चय ही खादी-कार्य कर सकती हो और पुराने विचारोंके लोगोंसे मिलकर उनके साथ हरिजनोंकी सेवा करनेके प्रश्न पर बातचीत भी कर सकती हो। हालाँकि कोचीनमें कट्टरपन्थियोंकी जड़ें बहुत गहरी हैं फिर भी तुम्हें उनतक पहुँचनेमें कोई दिक्कत नहीं होगी। और फिर कोचीनमें गुजरातियोंकी एक बहुत बडी बस्ती भी है। तुम्हें उनसे मिलना चाहिए।

और अन्तमें, तुम्हें कोचीनमें एक बहुत बड़ी संख्यामें रहनेवाले अंग्रेजी-भाषी लोगोंको 'हरिजन' का ग्रहक बनानेका काम करना चाहिए।

नर्गिसबहन

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५९) से।

५२७. पत्र : एन० डी० वरदाचारीको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे तुम्हारा २० तारीखका पत्र और 'मद्रास लॉ रिव्यू' की एक प्रति भी मिली; दोनोंके लिए धन्यवाद।

अब मैंने रायबहादुर राजाके विधेयकका मजमून मँगवाया है। इसके मिलनेके तुरन्त बाद ही मैं इसे निश्चय ही सावधानीपूर्वक पढ़ जाऊँगा और इसके बारेमें 'हरिजन' में लिखनेकी कोशिश करूँगा।

तुम्हारी टिप्पणीपर से इस विधेयकको मैं जितना समझा हूँ उससे मन्दिर-प्रवेशकी समस्याका कोई हल मुझे इसमें मालूम नहीं पड़ता। इस बीच, यदि उक्त विधेयककी प्रति तुम्हारे पास हो तो तुम कृपा करके उसे मुझे भेजना ताकि यदि दिल्लीके मित्रोंसे भी पहले मुझे तुमसे यह प्रति प्राप्त हो जाये तो मैं इसपर काम शुरू कर दूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एन० डी० वरदाचारी
मार्फत 'मद्रास लॉ रिव्यू'
११८, अर्मीनियन स्ट्रीट
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६२) से।

५२८. पत्र : नारणदास गांधीको

२४ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

नरहरि आदिके पत्रोंवाली तुम्हारी डाक मिल गई है।

प्रभुदासका पत्र पढ़ लेना। उसके साथ विस्तारसे बात करके उसे शान्त करना। वह नरहरि या पंडितजीके साथ भी बात करे। जबतक उसका मन शान्त न हो तबतक उसे जाने मत देना।

हाँ, पुरुषोत्तमके साथ मैंने खूब बातें की हैं। फुरसत मिलनेपर उसे और भी लिखनेवाला हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५२९. पत्र : मुनि शान्तिविजयजीको

२४ फरवरी, १९३३

मुनिश्री शान्तिविजयजी,

नी० देवीने जब मेरे प्रति अपना विरोध प्रगट करनेके लिए उपवास रखनेकी इच्छा जाहिर की तब पत्र-व्यवहार द्वारा मेरा उससे परिचय हुआ। उसके पत्रसे ही मैंने जाना कि वह आपको अपना सर्वस्व मानती है। जब मेरा उससे पत्र-व्यवहार चल रहा था उस समय मैंने उसके बारेमें अफवाहें सुनीं; मैंने तुरन्त उसे उनके बारेमें बताया और मुझसे मिलनेका सुझाव दिया। वह तुरन्त आ गई। उससे बातें करनेपर लगता है कि उसपर लगाये गये आरोपोंमें कोई सार नही है। कुछ हदतक मैं उसका मार्गदर्शन कर रहा हूँ। लेकिन इससे पहले कि मैं उसे निश्चित रूपसे कोई सलाह दूँ, उसके बारेमें आपकी इच्छा जान लेना मैं अपना धर्म समझता हूँ। इसीसे यह पत्र लिख रहा हूँ। मैंने यह पत्र उसे बताकर लिखा है और जब तक आपका उत्तर नहीं आ जाता तबतक वह यहीं रहेगी। आप जो सुझाव देना चाहें उसे व्यक्त करनेमें आप संकोच नहीं करें, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५२) से।

५३०. हरिजनोंके लिए उच्चतर शिक्षा

आशा है, वे सब लोग जिन्हें अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें रुचि है, सवर्ण हिन्दुओं द्वारा चुने हुए हरिजनोंको उच्चतर शिक्षा प्रदान करनेकी श्री डेविडकी योजनासे परिचित होंगे। यह योजना अत्यन्त उत्साहपूर्वक हरिजन सेवक समाज द्वारा स्वीकार कर लिये जानेके बाद कुछ समय पहले बम्बईके अखबारोंमे प्रकाशित हुई थी। श्री डेविडके शब्दोमें "इस योजनाका उद्देश्य हरिजनोकी एक बड़ी संख्याको देशमे उपलब्ध अच्छीसे-अच्छी उच्चतर शिक्षा (इसमें तकनीकी शिक्षा भी शामिल है)का लाभ दिलाना है।" इसके अन्तर्गत "सारे देशके सम्पन्न सवर्ण हिन्दुओंसे यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति पाँच सालकी अवधिके लिए कमसे-कम एक हरिजन विद्यार्थीकी शिक्षाका खर्च उठायेगा। ये छात्रवृत्तियाँ चुने हुए विद्यार्थियोंको दी जानी चाहिए और इसमें शिक्षणकी फीस, किताबें और सामान्य स्तरके रहन-सहनका खर्च शामिल है।" श्री डेविडका विचार है कि कॉलेजकी शिक्षाके लिए हरिजन विद्यार्थी पर प्रतिवर्ष ५०० रुपया और हाईस्कूलकी शिक्षाके लिए २५० रुपया खर्च होगा। दाताओंको उनकी सलाह है कि जिनके लिए सम्भव हो वे लोग पाँच सालकी सारी रकम एकमुश्त ही दे दें।

श्री डेविडका कहना है, "हरिजन विद्यार्थियोंमें आत्म-सम्मानकी भावनाका विकास करनेके उद्देश्यसे यह नियम बना दिया जाना चाहिए कि प्रत्येक हरिजन विद्यार्थीसे अपेक्षित होगा कि उसकी शिक्षाके लिए जो अग्रिम धन दिया गया था, जब भी वह उसे लौटानेकी स्थितिमें होगा, तब वह उक्त धन लौटा देगा। इस तरह यह रकम प्रत्येक विद्यार्थीको कर्जके रूपमे दी जायेगी, दानके रूपमें नहीं।" और यदि बहुत सारे विद्यार्थी इस रकमको, जिसकी देनदारी उनकी ईमानदारी पर निर्भर करती है, चुकाते हैं तो श्री डेविडका खयाल है कि इससे एक स्थायी कोष तैयार हो जायेगा।

श्री डेविडकी सलाह है कि प्रान्तोंमें एक समिति अथवा समितियोंकी स्थापना की जाये, जो विद्यार्थियोंका चुनाव करनेके लिए नियम बनायेगी और रकमका वितरण भी ऐसी समिति अथवा समितियोकी सिफारिशपर किया जायेगा। श्री डेविडका यह दृढ़ मत है कि यदि इस योजनाको क्रियान्वित किया जायेगा तो इसके "महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन परिणाम" निकलेंगे और इससे अपेक्षाकृत कम अवधिमे हरिजनोंके बीच बहुत सारे लोग वकील, अध्यापक, डॉक्टर और इंजीनियर बन जायेंगे। और यदि हरिजनोंमें ऐसे लोगोंकी अच्छी तादाद हुई तो इससे दलित वर्गोके सामाजिक स्तरको ऊँचा उठानेमे बड़ी मदद मिलेगी। श्री डेविड आगे कहते हैं कि "इसकी रूपरेखा इस ढंगसे तैयार की गई है कि जिससे इसमें कोई भी विवादास्पद बात

नहीं आ पाती। इस प्रकार इसके प्रति ज्यादासे-ज्यादा लोगों द्वारा उत्साह दिखानेकी सम्भावना बहुत विस्तृत हो जाती है। इसे कट्टरसे-कट्टर सनातनियोंका समर्थन प्राप्त होना चाहिए। . . . सवर्ण हिन्दुओंके लिए यह एक ऐसा अवसर है जिसके द्वारा वे हरिजनोंके प्रति अपनी भावनाओंको ठोस अभिव्यक्ति दे सकते हैं।"

श्री डेविडके साथ मैं भी यह आशा करता हूँ कि "कट्टरसे-कट्टर सनातनियों" को भी यह योजना पसन्द आयेगी। बहरहाल लोग इसका मुक्त हृदयसे समर्थन करेंगे। मुझे पता नहीं कि सेन्ट्रल बोर्ड अथवा बम्बई बोर्डको कोई दान मिला है अथवा नहीं। मैं बम्बई बोर्डको यह सुझाव देनेकी धृष्टता करूँगा कि यदि उसने पहले ही ऐसा न किया हो तो वह एक छोटी समितिकी स्थापना करे, जो यदि सम्भव हो तो इसका कार्यभार एक सनातनीके हाथों सौंप दे, जो नियमोंकी रचना करे और छात्र-वृत्तियोंके लिए धन प्राप्त करे।

यदि हमें १००० ऐसे दाता मिल जाते हैं जो पूरे पाँच सालके खर्चके लिए २,५०० अथवा १,२५० रुपये देनेको तैयार हों तो यह बहुत ही अच्छी बात होगी; लेकिन यदि ऐसा न हो तब भी हमारे लिए यह जरूरी नहीं है कि हम श्री डेविडकी योजनाका अक्षरशः पालन करनेकी हद तक ही अपना कार्य सीमित रखें; शर्त यही है कि योजनाकी भावनाका पालन होना चाहिए। योजनाका असल मुद्दा तो यह है कि कुछ चुने हुए हरिजन लड़के और लड़कियोंकी उच्चतर शिक्षाके लिए सवर्ण हिन्दुओंसे तुरन्त एक अच्छी खासी रकम इकट्ठा की जाये। अतएव मैं लोगोंको इस बातके लिए आमन्त्रित करता हूँ कि वे इस योजनाके लिए चन्दा दें। इन स्तम्भोंमें उक्त रकमकी यथावत प्राप्ति-स्वीकार की सूचना दी जायेगी। दाताओंको अपना चन्दा व्यवस्थापक, श्रीयुत ए० वी० पटवर्धनको भेजना चाहिए और लिफाफेपर 'डेविड योजना' लिखा रहना चाहिए। प्राप्ति-सूचना हर सप्ताह प्रकाशित की जायेगी। यह रकम सेन्ट्रल बोर्डको दे दी जायेगी और बोर्ड उस रकमका उपयोग दाताके निर्देशोंके अनुसार ही करेगा। जब पहले-पहल हमें पूरी रकम प्राप्त होगी तब मैं सेन्ट्रल बोर्डको विद्यार्थियोंका चुनाव करनेके लिए कहूँगा। दाता यदि चाहें तो हरिजन लड़के अथवा लड़कीके चुनावके लिए अपनी पसन्दके प्रान्तका नाम भी बता सकते हैं, अथवा वे स्वय ऐसे लड़के अथवा लड़कीका चुनाव करके सेन्ट्रल बोर्ड अथवा प्रान्तीय बोर्डको रकम दे सकते हैं जिससे कि वे लोग उस विद्यार्थीको उक्त रकम दे सकें और उसकी देखभालका प्रबन्ध कर सके।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३१. अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार

जैसाकि लोग जानते ही है, मेरा डॉ० सप्रू और श्रीयुत जयकरके साथ उन दो विधेयकोंके सम्बन्धमे पत्र-व्यवहार चल रहा है जिन्होंने हिन्दुओंके विचारोंमें खलबली पैदा कर दी है। श्रीयुत जयकरकी राय तो मैं पहले ही प्रकाशित कर चुका हूँ। अब दोनों विधेयकोके सम्बन्धमे डॉ० सप्रूकी राय मुझे मिली है। अपने ११ तारीखके पत्रमें पहले विधेयकके सम्बन्धमें वह लिखते है:[1]

> . . . मेरे व्यक्तिगत विचार चाहे जो-कुछ भी हों, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मद्रास, बम्बई तथा दूसरी जगहोंके कुछ प्रतिष्ठित न्याया-धीशोंने (इनमें हिन्दू शामिल है) कानूनकी व्याख्या कुछ इस ढंगसे की है कि विधान-सभा द्वारा अधिनियम बनाये बिना आप सब जगह दलित वर्गके हिन्दुओं के लिए मन्दिरोंको नहीं खोल सकते। . . .

अब विधेयकको लें:

> . . . मेरे खयालमें असेम्बलीमें रूढ़िवादी शक्तियोंका पक्ष ज्यादा मजबूत है और इसमें मुझे बहुत सन्देह है कि सुधारक कामयाब होंगे। . . . फिर भी, यदि विलम्बकारी युक्तियोंसे काम लिया गया और विधेयकको घुमानेका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। . . . विधेयकका जो स्वरूप है, उसे देखते हुए मै तो विधेयकको घुमानेके प्रस्तावका जोरदार विरोध करूँगा तथा विधेयकके ऊपर विचार करनेके लिए विधान-सभाके सदस्योंकी सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करूँगा। यह अत्यन्त नरम विधेयक है, इस बातकी मैं कद्र करता हूँ, हालाँकि अपनी बात कहूँ तो विधेयक जितना आगे जाता है, मै उससे भी आगे जानेमें नहीं झिझकूँगा। . . .
>
> . . . जहाँतक विधान-सभाका सम्बन्ध है, अपनी व्यक्तिगत हैसियतमें तो मैं बहुत कम फायदा पहुँचा सकता हूँ लेकिन आपको अपने समर्थनका मै पूरा आश्वासन दे सकता हूँ, हालाँकि मैं विधेयकको बहुत ही नरम ढंगका मानता हूँ।[2]

इसपर मैंने दोनोंमें से अपेक्षतया छोटे विधेयकके सम्बन्धमें भी उनकी राय जाननेके लिए उन्हें तार दिया। उनका १८ तारीखका उत्तर (यहाँपर उसकी गैर-महत्त्वपूर्ण और व्यक्तिगत बातोंका उल्लेख नहीं किया जा रहा है) इस प्रकार है:

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।
२. गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", १६-२-१९३३।
३. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

. . . इस धाराको पढ़नेपर मैंने देखा कि इसका उद्देश्य वर्तमान कानूनके अन्तर्गत अछूत लोग जिन निर्योग्यताओंसे पीड़ित हैं उनको दूर करना है। लेकिन इसमें सवर्ण हिन्दुओंपर कोई निर्योग्यता लादनेका इरादा नहीं है। जहाँतक सवर्ण हिन्दुओंका सवाल है, मेरी दृष्टिमें उसमें विधेयक द्वारा किसी प्रकारकी बाध्यता थोपने-जैसी कोई बात नहीं है। यदि वे मन्दिरोंमें अस्पृश्योंसे मिलना न चाहते हों तो ऐसा करनेके लिए वे इस विधेयक द्वारा बाध्य नहीं हैं। उनसे तो बस इतना ही अपेक्षित है कि वे अस्पृश्योंके मार्गमें खड़े न हों। इसमें न्यायालयोंके लिए एक कानूनी आदेश भी दिया गया है जिसमें उन्हें न्यायिक मामलोंके लिए अस्पृश्यताकी किसी भी प्रथाको मान्यता न देनेकी बात है। इसलिए मुझे विधेयकमें कोई जोर-जबरदस्तीवाली बात दिखाई नहीं देती।

आज सुबहके समाचारपत्रोंमें मैं मालवीयजीका आपके नाम तार और आपका उनको दिया गया उत्तर पढ़ चुका हूँ। व्यक्तिगत रूपसे तो मैं एक वकील और सार्वजनिक कार्यकर्ता, दोनोंकी ही हैसियतसे, आपसे पूरी तरह सहमत हूँ।

मेरे खयालमें मुझे अभी आपको स्पष्ट रूपसे यह बता देना चाहिए कि मैं इन दोनों विधेयकोंको अनिवार्यतः बहुत उदार मानता हूँ। यदि मुझपर छोड़ दिया जाये तो मैं और भी आगे बढ़नेको तैयार हूँ और इस तरहके मामलेमें मुझे जोर-जबर-दस्तीका उतना डर भी नहीं है जितना दूसरोंको रहता है। फिर भी आप कमसे-कम विरोधका रास्ता अख्तियार कर रहे हैं और मैं आपका साथ देनेको तैयार हूँ। . . .[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३२. एक सनातनीके निष्कर्ष

१५ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमें कूच-बिहारके पंडित परेशनाथ भट्टाचार्य एम० ए०, वेदान्तरत्न, लिखते हैं:[2]

. . . जिन मुख्य बातों और सिद्धान्तोंको लेकर मैं आपसे असहमत हूँ उनको मैं यहाँ संक्षेपमें बताना चाहूँगा।

(१) आपने ऐसा कहा बताया जाता है कि 'गीता' ही एक ऐसा धर्मग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है तथा सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मामलोंमें केवल 'गीता' ही हमारी सच्ची पथ-प्रदर्शक होनी चाहिए।

१. गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", १९-२-१९३३।

२. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं। गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: परेशनाथ भट्टाचार्यको", २१-२-१९३३।

(२) हिन्दू-धर्मके प्रमाणोंका संक्षिप्त उल्लेख 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्यायमें मिलता है। केवल इस सन्देहपर कि 'मनुस्मृति' में कुछ अंश प्रक्षिप्त हैं, उसकी प्रामाणिकताको अस्वीकार कर देनेका कोई वैध कारण नहीं है।

(३) शास्त्रोंको साफ तौरपर दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है:

(अ) एक शास्त्र वे है जिनमें दर्शनके ऊँचे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है तथा मनुष्यके आध्यात्मिक विकासके निर्देश दिये गये हैं।

(ब) और दूसरे शास्त्र वे है जिनमें सामाजिक अनुशासनके नियम बताये गये है और उनकी अवहेलना करने अथवा अपराध करनेपर क्या दण्ड दिये जायें इसका विधान किया गया है।

(४) समाज और सामाजिक-धार्मिक संस्थाओंके साथ व्यवहार करते समय हमें संहिताओंको प्रमाण मानना चाहिए और उनमें दिये गये निर्देशोंका पालन करना चाहिए।...

(५) वेदान्तके एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवादकी उदात्त कल्पनाओंका सामाजिक संगठन अथवा सुधारकी समस्याओंके साथ कोई ताल्लुक नहीं है, क्योंकि साराका-सारा मानव-समाज कभी उस ऊँचाईको प्राप्त नहीं हो सकता।

(६) मानवतावाद निश्चय ही धार्मिक आदर्शवादका उच्चतम स्वरूप हैं, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेपर इसे केवल सन्तों और सिद्धपुरुषोंकी ही निजी सम्पत्ति रहना चाहिए। समाजमें प्रत्येक मनुष्यमें प्राकृतिक गुणों और वैयक्तिक आदतों, दोनों ही बातोंमें असमानता पाई जाती है। और इसे दूर करनेके लिए भले ही कितने ही प्रेमसे क्यों न काम लिया जाये और कितने ही कानून क्यों न बनाये जाये, लेकिन हर मनुष्यमें पाई जानेवाली यह असमानता कभी दूर नहीं हो सकती।

(७) न्यायके सूक्ष्म सिद्धान्तके अनुसार हम अलग-अलग कुल-गोत्रमें जन्म लेनेके कारण अथवा गलत धन्धा अपनानेकी वजहसे मनुष्य-मनुष्यके बीचके क्षोभजनक भेदभावको बरदाश्त नहीं कर सकते। लेकिन लोगोंके साथ व्यवहार करते समय हमें इस कटु सत्यका सामना करना होगा और स्वीकार करना होगा कि भिन्न जातियों और वर्गोंके लोगोंके साथ व्यवहार करते हुए भेदभावसे काम लेना जरूरी है।

(८) हिन्दू-धर्मकी विधियोंका विधान करनेवाले लोग मनुष्योंके सैद्धान्तिक अधिकारोंके प्रति असंवेदनशील नहीं थे और न ही वे जातिगत अभिमान अथवा विद्वेषसे प्रेरित थे।

(९) शास्त्रोंके अनुसार संन्यासीकी कोई जाति नहीं होती। इसी तरह व्यवहारमें सच्चे अर्थोंमें धर्मात्मा मनुष्य सदैव पूज्य होता है, चाहे उसकी कोई भी जाति हो। यह हिन्दू-धर्मकी सच्ची भावनाका सूचक है।...

(१०) किसी धार्मिक सुधारको जनमत संग्रहके परिणामके आधारपर लागू नहीं किया जा सकता। राजनीतिसे भिन्न केवल चन्द लोग ही धर्मका पोषण करते हैं, उसे अपने प्राणोंसे बढ़कर प्यार करते हैं तथा वे लोग ही धर्मके मामलेमें जनताका पथ-प्रदर्शन करते हैं। जनताका काम तो केवल उनका अनुकरण करना है। धर्मको मनमाने ढंगसे लोकेच्छाके अनुसार नहीं ढाला जा सकता।

इन कथनोंके साथ मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्न पर आपने जो स्थिति अपनाई है उसपर एक बार फिर से विचार करें और यदि यह सम्भव न हो तो कट्टरपन्थियोंको, जो हमेशा सुनने और समझनेको तैयार हैं, युक्ति द्वारा समझाकर कायल करें।

यदि पंडितजीने, 'गीता' के सम्बन्धमें मैंने जो कहा है, उसे ही अक्षरशः उद्धृत किया होता तो यह ज्यादा बेहतर होता क्योंकि तब यह बात उन्हें तुरन्त मालूम हो गई होती कि मैंने जो कहा बताते हैं और मैंने जो सचमुच लिखा है, इन दोनोंमें कितना भेद है। पिछले ४ नवम्बरके अपने वक्तव्यमें मैंने जो लिखा था वह निम्नलिखित है:[1]

"यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका अध्ययन चाहे तो हरएक हिन्दू आसानीसे कर सकता है। यदि अन्य सभी धर्मग्रन्थ जलकर भस्म हो जायें, तो भी इस अमर गुटकेके सात सौ श्लोक यह बतानेके लिए काफी हैं कि हिन्दू-धर्म क्या है और उसे जीवनमें कैसे उतारा जा सकता है। मैं अपनेको सनातनी इसलिए मानता हूँ कि पिछले चालीस वर्षोंसे मैं शब्दशः इस ग्रन्थकी शिक्षाओंके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। जो-कुछ भी इसके मुख्य विषयके विरुद्ध है, उसे मैं हिन्दू-धर्मके विरुद्ध समझकर अस्वीकार कर देता हूँ। किसी भी धर्म या धर्मगुरुका इसमें बहिष्कार नहीं है।"

उक्त पडितजी और पाठक देखेंगे कि मैंने जो सचमुच कहा है तथा जो मैंने कहा बताते है, उन दोनोमें बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसी हालतमें मैंने जो रुख कभी अख्तियार किया ही नही, उसकी असंगतता सिद्ध करनेका कोई आधार ही नही रह जाता।

इसी तरह 'मनुस्मृति' के सन्दर्भमें मैंने सारीकी-सारी 'मनुस्मृति' को प्रक्षिप्त होनेके सन्देहमें कभी भी अस्वीकार नहीं किया है और जिन अंशोंके प्रक्षिप्त होनेका सवाल है उनके बारेमें शंकाकी कोई गुंजाइश नहीं, क्योंकि जिन्हें मैं क्षेपक मानता हूँ वे स्पष्टतः 'गीता' के और स्वयं 'मनुस्मृति' के मूल-सिद्धान्तोंके विरोधमें कहे गये हैं।

मनुके अनुसार धर्मकी कसौटी यह है:

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥[2]

१. पूरे वक्तव्यके लिए देखिए खण्ड ५१।
२. **मनुस्मृति,** अध्याय २-१।

जिस वस्तुका अनुकरण हमेशा विद्वान लोग, सज्जन लोग और ऐसे लोग करते हैं जो क्रोध और मोहसे सर्वथा मुक्त है और जिस चीजकी अनुभूति हृदयसे की जाती है, उसे धर्म जानिए।

'मनुस्मृति' का एक अन्य श्लोक निम्नलिखित है:[1]

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति, क्षमा, संयम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, ये दस धर्मके लक्षण हैं।

इसलिए जो कोई भी बात स्पष्ट रूपसे इस कसौटीके विपरीत हो उसको क्षेपक समझकर अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

इन पंडितजीने हिन्दू-धर्मके समानता और न्यायके सिद्धान्तोंको सन्तोंकी निजी सम्पत्ति कहकर एक ओर उठाकर रख दिया है। ऐसा करते हुए वे यह भूल जाते हैं कि यदि समाजके सामान्य जनका आचरण और व्यवहार उन आदर्शों अथवा सन्तोंके स्तरतक पहुँच ही नहीं सकता तो वे आदर्श और सन्त लोग बिल्कुल बेकार हो जाते हैं। वह कैसा न्याय है जो "मनुष्य-मनुष्यके बीच घृणाजनक भेद-भावको तो बरदाश्त नहीं कर सकता, लेकिन हमें इस कटु सत्यका सामना करने और यह स्वीकार करनेको विवश करता है कि भिन्न जातियों और वर्गोंके लोगोंके साथ व्यवहार करते हुए भेदभावसे काम लेना जरूरी है?" भिन्न-भिन्न जातियाँ कौन-सी हैं और उनमें भेदभावपूर्ण व्यवहार करनेसे क्या तात्पर्य है? उदाहरणके तौर पर बनियोंमें, जिन्हें मुझसे ज्यादा अच्छी तरह और कौन जानता है, लगभग ५० जातियाँ हैं। उनमें भेदभावपूर्ण व्यवहार होने-जैसी कोई बात मैं नहीं जानता। और न ही मुझे स्मृतियोंमें इन जातियोंकी रचना किये जानेका कोई प्रमाण ही मिलता है। ब्राह्मणोंमें इतनी सारी जातियाँ हैं जितनी इस छोटेसे पेड़में, जिसके नीचे मैं बैठा हुआ हूँ, पत्तियाँ हैं, लेकिन मुझे ऐसी कोई स्मृति दिखाई नहीं देती जिसमें इन जातियोंका अथवा भेदपरक व्यवहारका निर्देश दिया गया हो। मुझे इस बातकी गहरी आशंका है कि यदि इन लोगोंके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाये तो वे इसके विरुद्ध अन्ततक लड़ेंगे और इनमें से कुछ लोग तो, मेरे गैर-ब्राह्मण मित्रोंकी तरह, दिव्य स्मृतियोंके नामसे जो श्लोक संगृहीत हैं, उन्हें आगमें झोंक देंगे।

पंडितजीका कहना है:

> **इसलिए हरिजनोंके लिए सामाजिक हीनताके कलंकसे उबरनेके लिए सबसे अच्छा तरीका उनको मताधिकार देना नहीं है बल्कि दुर्भाग्यने उन्हें जिस जालमें फँसा रखा है उससे छुटकारा पाना है।**

वे कौन-से लोग हैं जिन्हें दुर्भाग्यके शिकंजेसे छुटकारा पाना है? जाहिर है, पंडितजीका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मणको उच्च भावनाके शिकंजेसे अपने-आपको

१. **मनुस्मृति**, अध्याय ६, ९२।

मुक्त नहीं करना है बल्कि बेचारे हरिजनको अपने-आपको हीनताके बन्धनसे छुड़ाना है। दुर्भाग्यसे यही वह बात है जिसका आजके सनातनी ब्राह्मण लोग विरोध कर रहे हैं और यही वह चीज है जिसकी माँग डॉ० अम्बेडकर लगभग संगीनकी नोक पर कर रहे है। क्योकि वे कहते हैं: “अब दुर्भाग्य मुझे और ज्यादा देरतक अपने शिकंजेमें नही कस सकता। मै भी उसी ऊँचाईको प्राप्त करूँगा जिस ऊँचाई पर ब्राह्मण बैठे हुए हैं, भले ही ऐसा करनेकी कोशिशमें मुझे उसको और अपने-आपको नष्ट ही क्यों न करना पड़े।” तथापि पंडितजीने जो रास्ता सुझाया है कुल मिलाकर उसका यही परिणाम होना है।

पडितजीके सुझावके विरुद्ध मेरा अपना विनम्र सुझाव यह है कि ब्राह्मणका यह विशेषाधिकार और कर्तव्य है कि वह अपने-आपको उच्चताकी भावनाके पाशसे मुक्त करे और स्वयं ‘हरिजन, अर्थात् हरिका जन’ बने। तभी वह वर्णाश्रम धर्मकी कीर्तिकी रक्षा कर सकेगा और हिन्दू-धर्मके सच्चे सन्देशका प्रसार कर सकेगा — जिसके लिए कि वह चलता-फिरता है, उठता-बैठता है तथा जिसके लिए वह जीवित है। मैं पंडितजीसे अनुरोध करता हूँ कि वह मेरे इस सीधे-सादे सुझावका समर्थन करें।

और अन्तमे मैंने जनमत-संग्रहका जो सुझाव दिया है उसकी व्यापकता और उसमें निहित उद्देश्यको पंडितजी गलत समझे है और ऐसा करके उन्होंने मेरे तथा अपने प्रति अन्याय किया है। बेशक, भक्तजनोंको किसी समय भी इस बातका पूरा-पूरा अधिकार है कि वे अन्य लोगोंको अपने साथ, उन्हीं शर्तों पर जिन शर्तो पर वे पूजा करते है, पूजा करनेके लिए बुला सकते हैं बशर्ते कि वे पूजाकी विधिमें कोई हस्तक्षेप न करें, जिसे केवल अनुभवके द्वारा ही नियमित किया जा सकता है।

हमें चाहिए कि हम इस प्राचीन प्रथाको इसके पुराने नामसे जानें और तब सम्भव है कि पंडितजी और अन्य कट्टर हिन्दू इससे भयभीत नही होंगे। क्या हमेशासे महाजन लोग मन्दिर-प्रवेशकी समस्याका समाधान नहीं करते आये हैं? वे लोग इकट्ठे होकर परस्पर विचार-विमर्श करते थे और फिर सभाके मतके आधार पर कोई निर्णय देते थे। मेरा खयाल है, अंग्रेजी भाषामें इसे जनमत-संग्रह ही कहा जायेगा। मैंने इससे कम अथवा इससे ज्यादा और कुछ नही कहा है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३३. मास्टर साहबकी चिट्ठी

मैंने राइट ऑनरेबिल श्रीनिवास शास्त्रीको 'हरिजन' के लिए एक संदेश भेजनेको लिखा था और मुझे उनका विशिष्ट ढंगका उत्तर मिला जिसपर 'प्राइवेट' लिखा हुआ था। मुझे लगा कि यह पत्र बहुत अच्छा है और इसे दबाना नहीं चाहिए। इसलिए मैंने तार भेज कर उसे प्रकाशित करनेकी अनुमति माँगी। उनका जवाबी तार भी उनके पत्रकी भाँति ही विशिष्टता लिए हुए था।

> पहले तो वह 'हरिजन' के लिए अनुपयुक्त है, दूसरे वह हिमायतियोंके लिए अरुचिकर है, तीसरे आपके अटल प्रेमका यह बुरा प्रतिदान है। तथापि यदि किसी प्रकार उपयोगी हो तो कृपया प्रकाशित कर लें।

और वह पत्र यह रहा:

प्राइवेट

स्वागतम्, मैलापुर
१३ फरवरी, १९३३

प्रिय भाई,

आपके उस प्रेमपूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद जिसमें आपने अपने नये बच्चेके लिए एक सन्देश माँगा है।

मैं आपके पक्षमें होने जा रहा हूँ। आपके हितमें यह जरूरी है, भले ही मुझे इसके लिए फिर कितना ही प्रयत्न क्यों न करना पड़े।

आप एक अत्यन्त कठिन संसारमें रहते हैं। जागते-सोते आप पाप और पश्चात्ताप, पाप-स्वीकार और सत्यान्वेषण, सत्याग्रह और स्वपीड़नके विचारोंसे यन्त्रणा पाते रहते है। जो लोग आपसे बातें करते हैं या आपसे पत्र-व्यवहार करते हैं वे बराबर आपके सामने सन्देह या गम्भीर समस्याएँ ही रखते रहते हैं जिससे आपके चारों ओर मनहूसियत और घुटनका वातावरण और गहरा ही होता है। ऐसे कम ही लोग हैं जो हल्की-फुल्की बातें, हास-परिहास और विनोद करते हों। आपको अपने यहाँ एक मुँहलगे विदूषककी जरूरत है। क्या आपने उड्डा लिखित आरदथ नामक कहानी पढ़ी है? इस कहानीके नायकके यहाँ एक आलोचक है जिसका काम ही यह है कि वह नायककी गलतियाँ बताये और उसके चरित्रके दोषोंको प्रकट करे। पेशेवर छिद्रान्वेषी होनेके नाते अन्तमें वह सीमासे आगे बढ़ जाता है और अपने पहले उद्देश्यको ही विफल कर देता है। मैं अपने काममें समय-समयपर फेरबदल करता रहूँगा और बीच-बीचमें

गायब हो जाऊँगा। लेकिन मैं आपके दिमागके कुछ उन भागोंको जगानेकी कोशिश करूँगा जो एक अरसेसे सुप्तावस्थामें हैं और आपके मस्तिष्कको वे पोषक तत्व पहुँचाऊँगा जो उसे अरसेसे नहीं मिले हैं। बेशक, आपको अनुकूल न पड़े और आप उसे बर्दाश्त न कर सकें तो यह दवा आप बन्द कर सकते हैं। मेरे लिए यह इस बातका संकेत होगा कि आपकी बीमारी हदसे गुजर चुकी है।

आप असाधारण रूपसे सही अंग्रेजी लिखते हैं। साधारण पाठकको उनमें कोई भूल नहीं नजर आयेगी। वे न केवल बहुत कम होती है, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। केवल एक स्कूल-मास्टर ही उन्हें पकड़ सकता है, जिसकी आँखें व्याकरणकी बारीकियोंपर ध्यान देते-देते बहुत तीक्ष्ण हो गई हैं। कुछ गलतियाँ मैं आगे बता रहा हूँ जो सबकी सब 'हरिजन' के पहले अंकमें प्रकाशित उन लेखोंसे ली गई हैं जो आपके नामसे छपे हैं।[1]

अब एक ठोस आलोचना प्रस्तुत करता हूँ। आपने पृष्ठ ७ पर "माँगना या देना?" शीर्षकके अन्तर्गत एक प्रश्नका उत्तर दिया है। यह अनुच्छेद इतना छोटा है कि स्पष्टता खत्म हो गई है। सहयोग देना और उसे माँगना, इन दोनोंके बीचके अन्तरको और स्पष्ट करनेकी जरूरत है। यही हाल प्रेमवश किसीको भोजन खिलाने और किसीको भूखा रखनेके उदाहरणका है। लेकिन आपका यह कथन अस्पष्ट और विस्मयकारी है कि सरकारके प्रति आपकी असहयोगकी नीति ऐसी है कि जब कभी आपका उद्देश्य, आपकी रायमें 'अत्यन्त पवित्र और बिलकुल भला है' तब आप सरकारका सहयोग माँग सकते हैं। ज्यादातर समझदार लोग साधारणतः जीवनमें इस नियमका पालन करते हैं; जब उन्हें परवाह नहीं होती तब सहयोग नहीं माँगते, और जब परवाह होती है तब माँगते हैं। वे इसे अपनी नीति नहीं बताते और न उसे कोई बड़ा-सा नाम ही देते हैं।

सदैव आपका सस्नेह,
वी० एस० श्रीनिवासन

मैं चाहता था कि आम जनता इस पत्रको पढ़े क्योंकि ऐसा पत्र किसी भी पत्रकार और उसके उद्देश्यके लिए सहायक होगा और वह भी अप्रत्याशित रूपसे, विशेषकर जब यह पत्र लिखते समय इसके प्रकाशनका कोई विचार न रहा हो।

१. इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रके इस अंशके लिए, जिसमें गांधीजीकी अंग्रेजीकी गलतियाँ बताई गई थीं, देखिए अंग्रेजी खण्ड ५३, पृष्ठ ४००।

इस पत्रको छापनेमें मेरा उद्देश्य यह भी है कि इससे सनातनियों और सुधारकोंके बीचका तनाव कम होगा। उन्हें यह बात जाननी चाहिए कि दो परस्पर विरोधी स्वभावके लोगोंके बीच भी प्रगाढ़ मैत्री कायम रह सकती है। जैसाकि लोगोंको मालूम है, कई महत्त्वपूर्ण मामलोंमें शास्त्रीके और मेरे विचार भिन्न हैं। लेकिन इसके कारण हमारे पारस्परिक आदर और प्रेमकी भावनापर कोई असर नहीं हुआ है। कोई कारण नही है कि विभिन्न विचारधाराओंवाले दलों और व्यक्तियोंके ऊपर यही नियम क्यों नहीं लागू हो सकता। सनातनी लोग अपनी कल्पनाके धर्मकी रक्षा करने पर आमादा हैं। मैं उनके दावेको बिना सन्देहकी दृष्टिसे देखे स्वीकार करता हूँ और उससे उसी प्रकार निपटता हूँ। तब, जब मैं गम्भीरतापूर्वक यह कहता हूँ कि मेरे लिए भी अस्पृश्यताका सवाल विशुद्ध रूपसे एक धर्मका सवाल है, वे इसमें राजनीतिक मंशा होनेका आरोप क्यों लगाते हैं? मेरी आशा है कि शास्त्री और मेरे बीच जो प्रेम-सम्बन्ध है वह इतना गहरा और व्यापक सिद्ध होगा कि वह सारे समाजको प्रभावित करेगा।

लेकिन इसके बारेमें बस इससे ज्यादा नहीं। मै शास्त्रीकी आत्माको अपने कानमें लगभग यह कहते हुए सुन सकता हूँ: "मैंने तुम्हें मनहूसियत आदि तुम्हारे रोगोंसे मुक्त होनेकी जो दवा बताई थी उसका तुम दुरुपयोग कर रहे हो।" इसलिए मैं उन्हें और जनताको यह फौरन बता देना चाहता हूँ कि हमारे छोटेसे शिविरमें सरदार वल्लभभाई पटेलके रूपमें मेरे पास एक विशेष रूपसे मुँहलगे विदूषक हैं। वे अपने अप्रत्याशित चुटकुलोंसे रोजाना मुझे कमसे-कम दो बार हँसीसे दोहरा कर देते हैं। उनकी उपस्थितिमें मनहूसियत अपना वीभत्स चेहरा छिपाये भागती है। कितनी भी बड़ी निराशा हो, लेकिन वह ज्यादा देरतक उदास नहीं रह सकते। वह मेरी 'साधुता'को भी नहीं बख्शते। मेरा सन्तपन सीधे-सादे लोगोंको भुलावेमें भले ही डाल दे, लेकिन सरदार या सनातनियोंको कभी नहीं डाल सकता। दोनों ही मेरे मुखौटेको नोंच फेंकते हैं। और मुझे जिस रूपमें देखकर उन्हें आनन्द आता है, उसी रूपमें मुझे भी अपने-आपको देखनेपर विवश कर देते है। सनातनियोंके प्रति न्यायकी दृष्टिसे मैं यह स्वीकार करूँगा कि वल्लभभाई मुझे ठीक उस रूपमें नहीं देखते जिस रूपमें सनातनी लोग देखते हैं। लेकिन यह तो विषयसे अलग बात है। जो चीज शास्त्री हमारे परिवारमें चाहते है वह उसमें शत-प्रतिशत है। अगली बार वह असेम्बली या ऐसी ही किसी चीजके सदस्य बनें तो उन्हें सरकारके सामने धन्यवादका प्रस्ताव रखना चाहिए कि उसने वल्लभभाईको मेरे साथ या मुझे उनके साथ रखा।

लेकिन यह सान्त्वनादायक सूचना शास्त्रीको अपने स्वयंधारित उत्तरदायित्वसे किसी प्रकार मुक्त नहीं करती। क्योंकि सरदार वह चीज नहीं करेंगे जिसकी कि शास्त्रीसे लगभग हमेशा आशा की जा सकती है। उनके विपरीत सरदारमें यह गन्दी आदत है कि वह अन्तमें मेरी हर बातको ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेते हैं। और यह चीज किसीके लिए भी खराब होती है।

इसी सिलसिलेमें मैं विद्यार्थियोंका ध्यान शास्त्रीके उस भाषाके प्रति प्रेमकी ओर भी दिला दूँ जिसपर उन्होंने जैसा अधिकार प्राप्त किया है वैसा कम लोगोंने किया है। हमें अपने देशमें शुद्धिवादियोंकी सख्त जरूरत है। अस्पृश्यता-उन्मूलनके इस शानदार आन्दोलनमें मैं केवल शुद्धिवादियोंको ही अपने साथियोंके रूपमें चाहता हूँ।

जहाँ तक 'हरिजन' की भाषाका सम्बन्ध है, शास्त्रीकी चेतावनीके बावजूद जो भी गलतियाँ पकडी जायेंगी उनकी जिम्मेदारी मेरे साथ शास्त्री, सम्पादक और महादेव देसाईपर होगी। महादेव देसाईमें भी स्कूल मास्टर (श्री शास्त्री) की तरह ही जिस भाषामें लिखें, उसे सही लिखनेकी एक कमजोरी है।

मैं यह पाठकोंपर ही छोड़ता हूँ कि शास्त्रीके पत्रमें जो अन्य सुन्दरताएँ हैं उनको वह स्वयं ढूँढ़ें और उनका आनन्द ले। इसके लिए उन्हे इस पत्रको तीन या चार बार पढ़ जाना चाहिए और सभी संदर्भोंको 'हरिजन' के प्रथम अंकमें देखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३४. गाली-गलौज आन्दोलन

पत्र-लेखक मुझे सनातनी अखबारोंकी कतरनें भेजते रहते हैं। इन कतरनोंमें मेरे साथ हुए वार्तालापको तोड़-मरोड़कर बताया गया होता है और मेरे मुँहसे ऐसी बातें कही गई बताई जाती हैं जो मैंने कभी कही ही नहीं।

तमिलमें एक अखबार है जिसका अनुवाद उसके सम्पादक कृपापूर्वक मेरे लिए करते आये हैं। इसमें सुधारकोंके विरुद्ध अपमानजनक बातोंके अलावा और कुछ नहीं होता। इसमें मदुराके एक पंडित[1], जो-कुछ दिन पूर्व मुझसे मिलने आये थे, और मेरे बीच हुए कथित वार्तालापका विवरण दिया गया है। एक पत्र-लेखकको इस बातपर आश्चर्य है कि क्या, जैसाकि रिपोर्टमें कहा गया है, मैंने सचमुच यह कहा है कि आज भारतमें एक भी सच्चरित्र महिला नहीं है। सारी रिपोर्ट एक विकृतिमात्र है, जिसमें तथ्योंको तोड़ा-मरोड़ा गया है और सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंशोंको छोड़ दिया गया है। मैं इस विकृत विवरणको और फिर उसके सही-सही विवरणको, जिसकी टिप्पणियाँ महादेवने उस समय ली थी, देकर 'हरिजन' के स्तम्भोंका दुरुपयोग नहीं करना चाहता। लेकिन मैं यहाँ स्त्रियोंसे सम्बन्धित अंश अवश्य दे रहा हूँ। सबसे पहले यह रहा तमिल रिपोर्टका स्वतन्त्र अनुवाद :

> **गांधी : पतिके पापमें लिप्त रहनेपर भी क्या एक पवित्र पत्नीको उसका साथ देना चाहिए?**

१. सम्भवतः सुब्रह्मण्य शास्त्रीगल; देखिए "पत्र : के० एस० सुब्रमनिया अय्यरको," २५-२-१९३३ तथा "पत्र : के० के० वेंकटराम अय्यरको," २५-२-१९३३।

पंडित : हाँ, पत्नीके सतीत्वका उसपर प्रभाव होगा और उसका कायापलट हो जायेगा और वह एक नेक आदमी बन जायेगा।

गांधी : क्या आजकल सती स्त्रियाँ होती हैं?

पंडित : हम कैसे कह सकते है कि कोई सती स्त्री नहीं है। हमें जितना मालूम है उसके बावजूद सम्भव है सती स्त्रियाँ हों। लेकिन हमारी बातचीतका जो विषय है हम उससे दूर क्यों जायें? हमें अपनी बातचीत जारी रखनी चाहिए।

ध्यान रहे कि मदुरैके इस पंडित अथवा उसके मित्रने इस वार्ताको लिपिबद्ध नही किया था। यह रहा इस बातचीतका महादेव देसाई द्वारा लिपिबद्ध विवरण :

पंडित : मन्दिर स्त्रियों और शूद्रोंके लिए हैं। शास्त्रोंके अनुसार आज केवल शूद्र ही मन्दिरोंमें प्रवेश कर सकते है, क्योंकि वे लोग ही स्वधर्मका अर्थात् सेवाका पालन कर रहे हैं और सती स्त्रियोंको भी यह अधिकार है। अन्य लोग कर्मोंके और अपने-अपने कर्तव्योंके भारसे दबे हुए हैं, जिनको अब वे पूरा नहीं करते और इस कारण वे मन्दिरमें प्रवेश करनेके अधिकारी नहीं हैं।

गांधी : इसका अर्थ यह हुआ कि अगर कोई ब्राह्मण कर्मसे चाण्डाल है तो भी उसकी पतिव्रता स्त्रीको मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त है?

पंडित : पत्नी अपने सतीत्वके द्वारा अपने पतिको शुद्ध कर देती है।

गांधी : तब, कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी तरहका जीवन क्यों न व्यतीत कर रहा हो उस क्षण पवित्र हो जाता है जिस क्षण उसे ऐसी पत्नी मिल जाये जो पवित्र हो?

पंडित : हाँ, उसकी पत्नी उसको बचा लेती है।

गांधी : कोई मनुष्य भले अधोगतिको प्राप्त हो गया हो, तथापि यदि उसकी पत्नी पवित्र है तो वह भी पवित्र हो जाता है?

पंडित : हाँ, उसकी पत्नी उसे बचा लेती है; हालाँकि वह जो-कुछ करता है गलत है, तथापि उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।

गांधी : इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति अपने कार्योंके परिणामोंसे मुक्त रहना चाहता है उसे केवल ऐसी स्त्रीसे विवाह करने भरकी जरूरत है जो सच्चरित्र हो?

पंडित : बिल्कुल ठीक।

गांधी : और चूँकि हम भारतकी किसी भी स्त्री पर दुश्चरित्र होनेका लांछन नहीं लगाना चाहते, क्योंकि हमें यह मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री पवित्र है — बशर्ते कि वह स्वयं ही यह स्वीकार न करे कि वह अपवित्र है अथवा वह अपवित्र पाई गई हो — अतः प्रत्येक विवाहित पुरुष पवित्र है और इसलिए अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए?

पंडित : लेकिन वह सच्ची पतिव्रता स्त्री होनी चाहिए जैसीकि हमारे धर्म-ग्रन्थों, यथा 'रामायण' आदिमें बताई गई हैं।

गांधी: अमुक स्त्री पतिव्रता शब्दकी कसौटीपर खरी उतरती है अथवा नहीं, इसका निर्णय आप कैसे करेंगे?

पंडित: अग्नि-परीक्षा द्वारा। उसे अग्निमें प्रवेश करके अपनी पवित्रताको सिद्ध करना होगा, ठीक वैसे ही जैसे सीताने किया था।

गांधी: और जो स्त्री उस अग्नि-परीक्षासे सकुशल बाहर नहीं आती उसे अपवित्र मानना होगा?

पंडित: बेशक।

गांधी: अब मुझे और कुछ नहीं पूछना है।

तमिल अखबारके बारेमें इतना लिखना ही काफी है। अपने-आपको सनातनी शास्त्री कहनेवाले एक सज्जन गुजरातीमें एक पत्र प्रकाशित करते हैं और अब इस पत्रकी सामग्री उत्तर भारतके हिन्दीके सनातनी अखबारोंमें भी प्रकाशित की जाने लगी है। इस पत्रका दावा है कि उसके पास मेरे ६० लेखोंके ऐसे उद्धरण हैं जिन्हें प्रकाशित करनेपर यह साबित हो जाता है कि मैं प्रत्येक ऐसी चीजकी साक्षात मूर्ति हूँ जो हिन्दू-विरोधी है। इन उद्धरणोंको सन्दर्भोसे जुदा कर दिया गया है और इस तरह पढ़नेसे उनका जो अर्थ निकलता है वह सन्दर्भके साथ पढ़नेसे निकलनेवाले अर्थसे बिल्कुल भिन्न है। मुझपर जो बातें कहनेका आरोप लगाया गया है उनका एक नमूना मैं यहाँ देता हूँ:

मेरे माता-पिता और सीता भंगी थे।

शास्त्रोंकी रचना पाखण्डियोंने की है और जितने ऋषि हैं वे सबके-सब शैतान हैं।

मैं भंगीको ब्राह्मणसे श्रेष्ठ मानता हूँ।

मैं मूर्तिपूजाका विरोधी हूँ।

और अब मेरे पत्र-लेखक, जिनमें से कुछ तो इन बातोंसे निःसन्देह ही उलझनमे पड़ गये हैं, चाहते हैं कि मै इन आरोपोंका उत्तर दूँ। मुझे आदरके साथ लेकिन दृढ़तापूर्वक उनके इस निमन्त्रणको अस्वीकार करना होगा। मुझे भेजे जानेवाले लेखोंमें मुझपर जिन बातोंको कहनेका आरोप लगाया गया होता है, उन बातोंपर यदि लोग विश्वास करते हैं तो मैं चाहे कितना ही खण्डन क्यों न करूँ लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं होगा। मै जैसा हूँ जनताको मुझे उसी रूपमें स्वीकार करना होगा। सच बात तो यह है कि उद्देश्य ही सब कुछ है, मै कुछ भी नहीं हूँ। यदि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन हिन्दू-धर्मके अस्तित्वके लिए अनिवार्य और उचित है तो हजारों गांधियोंकी प्रतिष्ठाको धक्का लगनेके बावजूद वह चलता रहेगा।

इन अपमानजनक वक्तव्योंके बारेमें सबसे ज्यादा दुखकी बात तो यह है कि ये वक्तव्य ऐसे जिम्मेदार सनातनी लोगोंकी ओरसे दिये गये हैं जो विद्वान हैं और धर्मात्मा कहे जाते हैं तथा जो सीधी-सादी ग्रामीण जनताके धर्मोपदेशक होनेके काबिल हैं। वे लोग शास्त्रोंकी आश्चर्यजनक व्याख्या करते हैं; समयकी माँगको

पहचाननेसे इनकार करते हैं, और हमें साफ तौरपर जो चीजें अन्धविश्वासके रूपमें दिखाई देती हैं तथा जो अमानवीय विश्वास और रीति-रिवाज हैं उनका वे समर्थन करते हैं। हम इतना तो अवश्य समझ सकते हैं कि ऐसा वे पूरी ईमानदारीके साथ करते हैं। सुधारकोंको जो चीजें अन्धविश्वासपूर्ण और अमानवीयतापूर्ण जान पड़ती हैं, हो सकता है वे लोग उन्हें वैसा न समझते हों। लेकिन जिम्मेदार पंडित असत्यका सहारा लेते हैं, तथ्योंको तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं और सत्यको दबाते हैं — इन सब बातोंसे निश्चय ही हिन्दुओं और हिन्दू-धर्मको बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचेगा। सनातनी लोग जिसे एक अच्छा उद्देश्य समझते हैं उस उद्देश्यके लिए वे चाहें तो डटकर संघर्ष कर सकते है, लेकिन मेरी उनसे प्रार्थना है कि वे अपनी लड़ाईके तरीकेमें से असत्यको निकाल बाहर करें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३५. 'हम घृणा नहीं करते'

एक सज्जन जो वेदान्तशास्त्री हैं और ब्राह्मण-सभाकी एक शाखाके मंत्री हैं, लिखते हैं :

> **सनातनी लोग अस्पृश्योंसे घृणा नहीं करते बल्कि उनके रिवाजों और दैनिक कार्योंसे घृणा करते हैं। वे हमेशा सारे हिन्दुओंकी, चाहे वे स्पृश्य हैं अथवा अस्पृश्य, जो मदद कर सकते हैं सो करनेको तत्पर रहते हैं। वे अस्पृश्योंको पुरोहित प्रदान करते हैं, शिक्षक देते हैं और रामनाम सहित शास्त्र देते हैं। लेकिन कुछेक तथाकथित शिक्षित लोग हैं जो हमेशासे इन अस्पृश्योंसे घृणा करते आये हैं। वे हमेशा अपनेको उनसे अलग रखते हैं और गैर-हिन्दुओंसे वे जो अपवित्रता ग्रहण करते हैं उससे सनातनियोंको भी अपवित्र करना चाहते हैं।**

उपर्युक्त अंश मैंने एक खासे लम्बे पत्र परसे लिया है और यह मैंने, मुझे प्राप्त होनेवाले बहुतसे इसी प्रकारके पत्रोंके एक नमूनेके रूपमें लिया है। 'घृणा' शब्दका प्रयोग करना कदाचित गलत है। मैं 'तिरस्कार' शब्दका प्रयोग करना चाहूँगा। लोगोंके एक बहुत बड़े समूहको दूरस्थ बस्तियोंमें ढकेल देना, उनसे छू जाने पर अथवा उनके सामने पड़ जाने पर अपने-आपको अपवित्र मानना, अपनी जूठन उनके आगे फेंकना, उन्हें सार्वजनिक सड़कों, संस्थाओं और यहाँ तक कि सार्वजनिक मन्दिरोंका उपयोग करनेसे रोकना यदि उनका तिरस्कार करना नहीं है तो मैं नहीं जानता कि 'तिरस्कार' शब्दका क्या अर्थ है।

लेखकका कहना है अस्पृश्योंके लिए पुरोहित और धर्मोपदेशकोंकी व्यवस्था है। मेरा अपना अनुभव और असंख्य सुधारकोंका अनुभव इससे विपरीत है। असली पुरोहित न मिलने पर हताश होकर उन्होंने नामाचारके लिए अपने बीचमें से ही कुछ

लोगोंको पुरोहित बना लिया है। पत्र-लेखक जब यह कहता है कि अस्पृश्यके पास 'रामनाम सहित शास्त्र' हैं तब वह एक भेदकी बात बताता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि अन्य किसी शास्त्रतक उनकी पहुँच नहीं है। उनके ऐसे कौन-से दैनिक रिवाज और कार्य हैं जिनसे घृणाकी भावना उत्पन्न होती हो? 'हरिजन' के प्रथम अंकके लिए कवि [रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ने अपने सन्देश[1] मे हरिजनोंके दैनिक कार्यका सजीव वर्णन किया है। मुर्दा पशुओंका मांस खानेकी बातको छोड़कर बाकी उनके रीति-रिवाज ठीक वैसे ही हैं जैसेकि असंख्य सवर्ण हिन्दुओंके हैं। और मुर्दा पशुओंका मांस खाना भी इन तथाकथित अस्पृश्योमें आम बात नहीं है। यदि इसको लेकर उनमें जनगणना की जाये तो हमें आश्चर्य होगा कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जो मुर्दा पशु खाते हैं। इस सिलसिलेमें मैं 'हरिजन' के पाठकोंके समक्ष सुनिश्चित आँकड़े पेश करनेकी आशा करता हूँ। और मुझे इस बारेमें तनिक भी शंका नहीं है कि उनकी इस आदत के लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेदार हैं और यह कि जब सवर्ण हिन्दू इन अस्पृश्योंका भाई-बहनोंके रूपमें स्वागत करेंगे तथा अपने समान ही उन्हें जीवनकी सामान्य सुविधाएँ मुहैया करेंगे तब मुर्दा पशु-मास खानेकी उनकी आदत स्वतः मिट जायेगी।

अन्ततः लोगोंका सामान्य अनुभव यह है कि सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनोंके लिए आजतक जो भी किया गया है वह उन लोगोंने किया है जिन्होंने उच्च शिक्षा पाई है और जिन्हें अन्य शब्दोंमे सुधारक कहा जाता है। सनातनियोंने हरिजनोंके लिए भी ऐसा कुछ किया हो अथवा कुछ भी किया हो तो उसके बारेमें जानकर मुझे खुशी होगी। हरिजनोंको उन्होंने जो दान दिया हो अथवा उन्होंने हरिजनोंकी अन्य कोई सेवा की हो उसकी एक सूची प्रकाशित करनेमें मुझे निःसन्देह बड़ी प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३६. देशी भाषाओंमें 'हरिजन'

कुछ पाठक यह जाननेके लिए उत्सुक है कि यदि कभी हमने 'हरिजन' को हिन्दी तथा अन्य देशी भाषामे प्रकाशित करनेका इरादा किया तो ऐसा कबसे होगा।

हमारा विचार 'हरिजन' को सबसे पहले हिन्दीमें और बादमें अंग्रेजी तथा अन्य देशी भाषाओंमें प्रकाशित करनेका था। लेकिन चूँकि हिन्दी संस्करणको प्रकाशित करनेमें अभी देर थी, इसलिए हरिजन सेवक समाजके केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्षने इसकी प्रतीक्षा न कर अंग्रेजी संस्करणके निकाले जानेकी अनुमति दे दी।

१. देखिए परिशिष्ट १६।

मुझे पाठकोंको यह सूचना देते हुए खुशी हो रही है कि जब 'हरिजन' का यह अंग्रेजी संस्करण उनके हाथमें पहुँचेगा उससे पहले ही इसका हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो चुका होगा। और इसके प्रान्तीय संस्करणोंको प्रान्तीय भाषाओंमें, यथा बंगाली, मराठी, तमिल, गुजराती आदिमें प्रकाशित करनेकी दिशामे भी, जितनी तेजीसे सम्भव है उतनी तेजीसे तैयारियाँ की जा रही है। इस बारेमें मेरा सिद्धान्त तो यह रहा है, और है, कि इन सबको आत्म-निर्भर होना चाहिए। केन्द्रीय और स्थानीय बोर्डो द्वारा जो रकम एकत्रित की जा रही है वह रकम मुख्यतः हरिजनोंके बीच, उनके शैक्षणिक और आर्थिक विकासके कार्योमे खर्च की जानी चाहिए। साप्ताहिक पत्र और पुस्तिकाएँ तो मुख्य रूपसे सवर्ण हिन्दुओमें किये जानेवाले आवश्यक प्रचारका एक भाग है। इसलिए उनका खर्च उन्हें ही देना चाहिए। एक निश्चित सीमाको छोड़कर मै किसी भी विषयके साहित्यको जनताको मुफ्त देनेमें विश्वास नहीं रखता। वह बहुत सस्ता भले हो सकता है, लेकिन मुफ्त कभी नहीं। मैं संस्कृतकी इस पुरानी कहावतमें विश्वास रखता हूँ, "ज्ञान उन लोगोंके लिए है जो उसे प्राप्त करना चाहते है।" लेकिन यह मेरे निजी विचार हैं। मैं तो संस्थाओं और व्यवस्थापकोंको केवल सलाह ही दे सकता हूँ। 'हरिजन' के स्वत्वाधिकार सुरक्षित नहीं हैं। देशी भाषाओंके उद्यमशील अखबार 'हरिजन' के अपने संस्करण प्रकाशित करेंगे। कुछ तो अपना ऐसा इरादा बताते हुए मुझे पहले ही लिख चुके हैं। मै किसीको भी नहीं रोक सकता। मै तो सिर्फ हर किसीसे यह अपील कर सकता हूँ कि वह मेरी सलाहको माने जो मैंने काफी अनुभवके आधारपर दी है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३७. तार : च० राजगोपालाचारीको

२५ फरवरी, १९३३

च० राजगोपालाचारी
मार्फत गडोदिया, दिल्ली

धारा १४४ में संशोधन करनेवाला राववहादुर राजाका विधेयक[1] अपनी रायके साथ भेजिए।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-एक्स, १९३३।

१. इस विधेयकपर गांधीजी की टिप्पणीके लिए देखिए "राववहादुर एम० सी० राजाका विधेयक", ४-३-१९३३।

५३८. तार : सिवनी जेलके अधीक्षकको

जवाबी तार

२५ फरवरी, १९३३

अधीक्षक
जिला जेल, सिवनी (मध्य प्रान्त)

मेरी सेठ पूनमचन्द रॉकामें दिलचस्पी है जो आपकी जेलमें कैदी हैं। कृपया उनके स्वास्थ्यकी दशा तारसे सूचित करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-एक्स, १९३३।

५३९. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२५ फरवरी, १९३३[1]

प्रिय मेजर भण्डारी,

जैसाकि आप जानते हैं, मैं अपनी मौजूदा नजरबन्दीके दौरान तारोंका अध्ययन करनेकी कोशिश करता रहा हूँ। आपने कृपापूर्वक नक्षत्र-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य मुझे प्राप्त करनेकी अनुमति दी है। मुझे आकाशके अध्ययनके लिए एक काफी बड़ी दूरबीनकी जरूरत है। लेडी विट्ठलदासके पास एक दूरबीन है, और उन्होंने कृपापूर्वक उसको मुझे कुछ समयके लिए देना स्वीकार कर लिया है। राजकीय ऑब्जर्वेटरी (पूना) के डॉ० रामनाथन और डॉ० देसाई, जिन्होंने उस दूरबीनको ठीक-ठाक कर दिया है, का कहना है कि जबतक वे मुझे स्वयं उसके प्रयोगका तरीका नहीं समझायेंगे तबतक मैं उसका उपयोग नहीं कर सकूँगा। इसके लिए यह जरूरी होगा कि जब तारे देखने लायक हो जायें उसके बाद वे मेरे साथ लगभग आधा घंटातक रहें। जिस अहातेमें मुझे रातके समय रखा जाता है यदि वहाँ मुझे इसकी शिक्षा दिये जानेमें कोई आपत्ति हो तो इसे उस अहातेमें दिया जा सकता है जो अस्पृश्यता-सम्बन्धी मुलाकातोंके लिए सुरक्षित है।

१. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्सके अनुसार इस पत्रकी तिथि "४-३-१९३३" है।

इस मामलेमें आप सरकारकी इच्छाका पता कर लेंगे तो मैं आभारी होऊँगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१३०)से; बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(४), पृष्ठ १५१ से भी।

५४०. पत्र : डॉ० मुहम्मद आलमको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

आपका पत्र पाकर तथा यह जानकर कि आप निरन्तर प्रगति कर रहे हैं मुझे खुशी हुई।

यदि बेगम आलम अपनी उर्दूकी लिखावटके बारेमें उतनी ही लापरवाह रहीं जितनी कि हालके पत्रमें रही हैं तो कृपया उन्हें बता दें कि मुझे अपनी बधाइयाँ देनी कम करनी पड़ेंगी। एक दफे तो मेरा खयाल ऐसा था कि सुन्दर लिखावटमें वह जोहरा[2] से टक्कर ले रही हैं, लेकिन हालके पत्रके बाद तो मैं समझता हूँ कि जोहराके आधा दर्जन पत्रोंके बाद मैं उन्हें आसानीसे हरा सकता हूँ। इससे काम नहीं चलेगा। मैं अपने आदर्शोंको खंडित नही करना चाहता। मैं तो यह सोचने लगा था कि आदर्श लिखाईके मामलेमें मुसलमान स्त्रियाँ अपनी हिन्दू बहनोंको मजेमें हरा देती हैं, क्योंकि मुझे पत्र लिखनेवाली हरएक मुसलमान स्त्रीकी लिखावट सुन्दर थी। बेगम आलमको यह नेकनामी कायम रखनी चाहिए। इस पत्रके साथ मैं एक पत्र बेगम आलमके लिए भी भेजनेकी आशा रखता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न :

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८) से

१. अन्तिम पंक्ति बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे ली गई है। उत्तरमें गांधीजीको सूचित किया गया था कि सरकार नियमोंमें ढिलाई नहीं कर सकती क्योंकि इससे जेलके कार्यक्रममें बाधा पड़ेगी और जेल-कर्मचारी ड्यूटीसे छुट्टी नहीं पा सकेंगे।

२. जोहरा अंसारी

५४१. पत्र : सैमुअल फ्रांसिसको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय सैमुअल,

तुम्हारा १२ जनवरीका पत्र मिला था। मद्रास पहुँचनेपर तुम्हारी और तुम्हारे बच्चोंकी देखभालके लिए मैं आदरणीय श्री नटेसनको लिख रहा हूँ।[1] इसलिए कृपया तुम उन्हें अपने पहुँचनेकी सही तारीख और जहाजका नाम लिखकर भेज दो। तुम श्री नटेसनसे थोड़े समयके लिए रहनेकी जगह ढूँढ़कर देनेसे ज्यादा कुछ करनेकी अपेक्षा न रखना। यदि तुम्हारे बच्चे सीधे-सादे और भारतीय तरीकेसे रह सकते हों तो श्री नटेसनको कोई कठिनाई नही होगी। और यदि तुम्हारे पास प्रचुर धन है और तुम बहुत ऊँचे ढंगका जीवन बिताना चाहो तो उसमें भी उन्हें कोई दिक्कत पेश नही आयेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री सैमुअल फ्रांसिस
८, मार्क लेन
ईस्ट लन्दन, सी० पी० (साउथ आफ्रिका)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८७) से।

५४२. पत्र : जी० ए० नटेसनको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय नटेसन,

इसके साथ मैं ईस्ट लन्दनके सैमुअल फ्रांसिसका एक पत्र तथा उनको भेजे गये अपने उत्तरकी एक प्रति भेज रहा हूँ। इससे आपकी उन पुराने दिनोंकी याद ताजा हो जायेगी जब मैंने आपके विशाल कन्धों पर दक्षिण आफ्रिकाके बहुतसे भारतीय निर्वासितोंकी देखभाल करनेका भार डाल दिया था।[2] मेरे खयालमें मैंने आपसे सैमुअल फ्रांसिस और उनके बच्चों द्वारा पहलेसे सूचित कर देनेकी दशामें उनके मद्रास पहुँचनेपर उनके रहनेके लिए जगह ढूँढ़ देनेकी जो आशा की है वह कोई बुरा काम नही किया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६८) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ९४-५।

५४३. पत्र : शेषगिरि बालकृष्णराव सोंडेको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका ११ तारीखका पत्र मिला। ऐसा ही पत्र एक अन्य मित्र से मिला था जिनका मैं नाम भूल गया हूँ और जिन्हें मैंने अपने विचार बताये थे।

मै पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि देवताको प्रसन्न करनेके लिए मूक पशुओंकी बलि चढ़ानेका कोई धार्मिक या दूसरा महत्त्व नहीं है। यह एक पापपूर्ण कृत्य है। इस प्रकारकी बलियाँ जंगलीपनकी निशानी हैं और यदि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके दौरमें, जिसका कि मन्दिर-प्रवेश एक अंग है, पशुबलिको बिल्कुल बन्द नहीं किया गया तो यह एक बहुत बड़ा पाप होगा।

आप इस पत्रका जो भी उपयोग करना चाहें, कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शेषगिरि बालकृष्णराव सोंडे
स्वामी और व्यापारी
सिरसी (उ० कनारा)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६९) से।

५४४. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

तुम्हारा २१ तारीखका पत्र मिला। सी० पी० आर० को तुमने जो उत्तर दिया है वह वल्लभभाईने मुझे पढ़कर सुनाया है।

लोगोंकी रुचियाँ भिन्न होती हैं। भर्त्सनावाली बातको छोड़कर तुम 'हरिजन' के द्वितीय अंकको बहुत बढ़िया मानते हो। मै यदि किसी और कारणसे नहीं तो केवल उसीके कारण उसे उत्तम समझता हूँ। लेकिन मै तुमसे इस बातपर सहमत हूँ कि कुछ शीर्षकोंके लिए मोटा टाइप सचमुच भद्दा लगता है, लेकिन ये चीजें धीरे-धीरे सुधर जायेंगी।

तुम विधेयकोंको पास करवानेके लिए जो महान प्रयत्न कर रहे हो, उसे मैं बराबर देख रहा हूँ। लेकिन यदि तुम अपने इस प्रयत्नमें सफल नही हुए तो मैं उस पर आँसू बहानेवाला नही हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
मार्फत सेठ एल० एन० गडोदिया
घंटाघरके निकट, दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३७०) से।

५४५. पत्र : के० एस० सुब्रमनिया अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस बातचीत[1] का जिक्र किया है उसके बारेमे 'हरिजन' के चालू अंकमें एक लेख छपा है। खिन्न होनेकी कोई बात नही है। किसी भी बड़े आन्दोलनमें दम्भ और छल-कपट भी पैदा हो जाते हैं। हमें इस बातमें विश्वास रखते हुए कि अन्तमें सत्यकी ही विजय होगी, इन बुराइयोके विरुद्ध शुद्धतम सम्भव तरीकेसे लड़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० सुब्रमनिया अय्यर
श्रीराघवपुरम स्ट्रीट
कुल्लडईकुरिची
(तिन्नेवेली जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७१) से।

१. यह बातचीत गांधीजी और सुब्रह्मण्य शास्त्रीगलके बीच ९ जनवरी, १९३३ को हुई थी; देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

५४६. पत्र : एम० वी० परमेश्वरन् चेट्टियारको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका यह सोचना बिल्कुल ठीक है कि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका उद्देश्य ऊँच-नीचके भेदको दूर करना है। अलग-अलग धन्धे और पेशे तथा मनुष्योंमे अलग-अलग गुण तो सदा रहेंगे, लेकिन इसके कारण ऊँच-नीचका भेद-भाव होना जरूरी नहीं है।

इस दृष्टिकोणसे विचार करनेपर मन्दिर-प्रवेशके पीछे जो उद्देश्य है वह आसानीसे समझमें आ जाता है। इसका उद्देश्य हिन्दू जनमानसको और संसारको यह बताना है कि भगवानके घरमें न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा है। यह सुधार सवर्ण हिन्दुओंमें से वे लोग करना चाहते हैं जिनका यह दृढ़ मत है कि अस्पृश्योंके प्रति अब तकका हमारा व्यवहार पापपूर्ण और हिन्दू-धर्मकी भावनाके प्रतिकूल है।

जो लोग यह समझते हैं कि मन्दिर-प्रवेशका कांग्रेसकी राजनीतिसे किसी किस्मका ताल्लुक है, वे भूल करते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० वी० परमेश्वरन् चेट्टियार
वलात अंगादी
पोस्ट अंगादीपुरम् (दक्षिण मलाबार)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७३) से।

५४७. पत्र : एम० सी० राजाको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय राव बहादुर,

मुझे आपका इसी २२ तारीखका पत्र और उसके साथ संलग्न आपके उस विधेयककी प्रति मिली जिसका उद्देश्य दण्ड विधान संहितामे संशोधन करना है। मैं निश्चय ही इसका अध्ययन करूँगा और 'हरिजन' के अगले अंकमें उसे प्रकाशित करूँगा तथा उसपर अपनी टीका दूँगा। यदि विधेयकके बारेमें कोई विशेष चीज हुई जिसे मैं 'हरिजन' में अपनी टिप्पणीमें नहीं दे सकता तो मैं उसके बारेमें आपको पृथक रूपसे अवश्य लिखूँगा। आशा है, आपको 'हरिजन' की अपनी प्रति मिल रही है। आपको उसके बारेमें कोई राय देनी हो तो कृपया मुझे लिखें।

अस्पृश्यता-सम्बन्धी दोनों विधेयकोंको पास करानेके लिए आप भरसक प्रयत्न कर रहे हैं इसकी मुझे खुशी है।

जो सभीका सामान्य काम है उसमें मैं यदि अपना कोई तुच्छ योगदान करूँ तो उसके लिए आप मुझे धन्यवाद क्यों देते हैं? क्या मैं स्वयं भी उसी समाजका एक सदस्य नहीं हूँ? हो सकता है कि मैं अभी भी उसका योग्य सदस्य नहीं हूँ, लेकिन वैसा बननेके लिए मैं कोई कसर नहीं रख छोड़ूँगा।

हृदयसे आपका,

राव बहादुर एम० सी० राजा, एम० एल० ए०
रॉयल होटल, दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७४) से।

५४८. पत्र: मु० रा० जयकरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मैं देखता हूँ कि आपको पुराना दुश्मन फिर लग गया है।[1] तथापि मैं आशा करता हूँ कि अच्छी डाक्टरी सलाहकी मददसे आपने उसे परास्त कर दिया है।

पता नहीं कि उद्घाटन समारोहके[2] बारेमें लिखा मेरा पत्र[3] आप विनायकराव[4] तक पहुँचा सके थे या नहीं। उसने निश्चय ही रत्नागिरिमें बहुत अच्छा सामाजिक कार्य किया है और आप उद्घाटन समारोह करनेमें असमर्थ रहे, इससे उसको और श्रीयुत किर को अवश्य ही बहुत गहरी निराशा हुई होगी।

मुझे आशा है कि आपको मेरा दूसरा पत्र[5] और उसके साथ ही रत्नागिरि मन्दिरके बारेमें लिखा पत्र मिल गये होंगे। मन्दिर-सम्बन्धी पत्रके साथ मैंने अपने पत्रपर सरकार द्वारा दिये गये जवाब और मेरे प्रत्युत्तरकी नकलें भी भेजी हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३७५) से।

१. जयकर ज्वरसे पीड़ित थे।

२. रत्नागिरिमें हरिजनोंके लिए दो मन्दिर खोलनेका समारोह।

३. देखिए शीर्षक ४६९।

४. वी० डी० सावरकर (१८८३-१९६६), एक पुराने क्रान्तिकारी और प्रसिद्ध देशभक्त तथा हिन्दू-महासभाके नेता।

५. देखिए शीर्षक ४७०।

५४९. पत्र : एच० खादर खाँको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा 'लाइट' की प्रतियोंके लिए धन्यवाद।

पत्रिकामें जो बातें कही गई हैं उन सबका जवाब देनेका समय निकालना तो मेरे लिए असम्भव है, लेकिन किसी अध्यवसायी व्यक्तिके लिए इनमें से प्रत्येक बातका जवाब मेरे लेखोंमें से ढूँढ़ सकना कठिन नहीं होगा।

मैं अपनेको इतना योग्य नहीं मानता कि 'गीता', 'बाइबिल' और 'कुरान'का एक विद्वत्तापूर्ण तुलनात्मक अध्ययन लिख सकूँ। मैंने इनका अपने संतोषके लिए पर्याप्त अध्ययन किया है। इससे आगे जाना मैंने अपने लिए अनावश्यक माना है।

हृदयसे आपका,

एच० खादर खाँ (सेलमवाले)
अरकलगाड (पो० ओ०)
जिला हसन (मैसूर राज्य)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७६) से।

५५०. पत्र : एस० नीलकान्त अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके दोनों पत्रोंके लिए धन्यवाद। इनमें से १४ तारीखवाले पत्रपर हस्ताक्षर नहीं हैं।

मैं इस बातपर आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जहाँतक नागरिक अधिकारोंका सवाल है, हम ईसाई अस्पृश्यों और हिन्दू अस्पृश्योंके बीच कोई भेद नही कर सकते, सिवाय इसके कि जहाँ ईसाइयोंको शिक्षाकी विशेष सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ उनके बारेमें आपको चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है।

दूसरे पत्रके बारेमें, मैं पूरी जानकारीके बिना कुछ निश्चित रूपसे कहनेमें असमर्थ हूँ, लेकिन इतना तो मैं कह सकता हूँ कि यदि अनुष्ठान उनके (हरिजनोंके)

वर्णाश्रम-धर्ममें प्रवेशकी पूर्व शर्तके तौरपर किये जाते हैं तो मैं इन अनुष्ठानोंको करनेके बिल्कुल विरुद्ध हूँ; इसके विपरीत यदि वे उनकी भलाई और आध्यात्मिक दीक्षाके एक अंगके रूपमें किये जाते हैं, तो ये अनुष्ठान बिल्कुल अहानिकर, बल्कि लाभकारी भी साबित हो सकते हैं बशर्ते कि चुनाव ठीक प्रकारसे किया जाये और अनुष्ठान ऐसे पुरुषों द्वारा किया जाये जो चरित्र और विद्वत्ता, दोनों दृष्टियोंसे ही योग्य हों।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नीलकान्त अय्यर
सचिव
हरिजन सेवक संघ
त्रावणकोर बोर्ड
त्रिचूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७७) से।

५५१. पत्र : हरिभाऊ फाटकको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय हरिभाऊ,

मेरी उपासकसे बड़ी लम्बी बातचीत हुई। उनकी पत्नी बड़ी अस्थिर-चित्तवाली स्त्री है। वह उन्हें किसी दिन छोड़ भी सकती है और आत्म-संयमका पालन करनेमें बिल्कुल असमर्थ है। ऐसे दम्पति सम्भवतः आश्रममें नहीं जा सकते जहाँकि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। मैं यह भी नहीं समझता कि उपासक बोर्डकी सब शर्तोंका पालन कर सकेंगे, लेकिन उनका कहना है कि यदि अप्रैलतकका अनुदान अर्थात् २२ रु० इस समय अदा कर दिया जाये तो स्कूलको चालू रखनेके लिए वह जो-कुछ भी कर सकते हैं, करेंगे, और यदि नहीं कर सके तो मान लेंगे कि नहीं कर सकते। मेरे खयालमें यह प्रस्ताव विचार करने योग्य है। इसलिए यदि यह सम्भव हो तो म उन्हें २२ रु० देनेकी सिफारिश करता हूँ, लेकिन इस दृढ़ चेतावनीके साथ इसके बाद उन्हें और कुछ नहीं दिया जायेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७८) से।

५५२. पत्र : डी० एम० डेविडसनको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

अपनी राहुरी-यात्राके अनुभवोंका वर्णन करनेवाले आपके २३ तारीखके पत्रके[1] लिए आपको धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एम० डेविडसन
बी० आई० टी० ब्लॉक नं० ५/२५
सेंट मेरी रोड, मजगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८१ ए०) से।

५५३. पत्र : के० के० वेंकटराम अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपके पत्रमें जिस बातका जिक्र किया गया है उसका थोड़ा-सा उल्लेख आपको 'हरिजन' के वर्तमान अंकमें देखनेको मिलेगा।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० के० वेंकटराम अय्यर
मार्फत उडिपि हिन्दू रेस्टॉरेंट
ईस्ट वेली वीडी
मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८३) से।

१. इस पत्रमें डेविडसन द्वारा बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हरिजनोंके बीच किये गये कार्यका विवरण दिया गया था।

२. वेंकटराम अय्यरने १७ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमें (एस० एन० २०२७३) ९ जनवरी, १९३३ को गांधीजी और सुब्रह्मण्य शास्त्रीगलके बीच हुई भेंटका उल्लेख किया था; देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

५५४. पत्र : प्रोफेसर हक्कीको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय प्रोफेसर,

जैसाकि मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ, मैंने बनारसके बाबू भगवानदासको पत्र लिखा था।[१] उम्मीद है कि उन्होंने आपको लिखा होगा। और अगर नहीं, तो आपको उनसे सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। उनका पता निम्नलिखित है :
"सेवा आश्रम, सिगरा, बनारस कैंट"।

मुझे जल्दसे-जल्द एक अन्य मित्रको मिलनेकी आशा है। उनसे मिलते ही मैं उनसे आपको लिखनेके लिए कह दूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८४) से।

५५५. पत्र : गोकुल मोहनराय चूड़ामणिको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें अपने विचार आपके सामने मैं बिल्कुल सीधे-सादे ढंगसे यों रखूँगा कि उन बच्चोंको ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें रखा जाये जिनका चरित्र निन्दासे परे है। अगर हम किसी आदर्श युगमें रह रहे होते तो ऐसे लोग माता-पिता ही होने चाहिए थे। दुर्भाग्यवश माता-पिता हमेशा इस जिम्मेदारीको सँभालनेकी स्थितिमें नहीं होते। और ऐसी हालतमें हमें समाजमें से उपयुक्त लोग ढूँढ़ने पड़ते हैं। हालाँकि इस प्रकारके लोगोंका मिलना आसान नहीं है, फिर भी यह खोज करने योग्य है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोकुल मोहनराय चूड़ामणि
मार्फत श्रीयुत शिरीषचन्द्र घोष
रामचंडी साहे
पुरी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८८) से।

१. देखिए "पत्र : भगवानदासको", ७-२-१९३३।

५५६. पत्र : डी० राघवचन्द्रैयाको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बहुतसे लोग बिना अनुमतिकी प्रतीक्षा किये ही अपनी पुस्तकें दूसरोंको समर्पित कर देते हैं। आप भी वैसा ही कर सकते हैं। मैं आपका कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिए आपको अनुमति देनेका अर्थ होगा कि मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी है और सामान्य रूपसे उसको ठीक मानता हूँ। आप मानेंगे कि मैं ईमानदारीसे ऐसा नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० राघवचन्द्रैया
सत्-शास्त्री
सत्-ब्राह्मण आश्रमम्, बैजवाड़ा

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २१५४५ ए०) से।

५५७. पत्र : रामदास गांधीको

२५ फरवरी, १९३३

चि० रामदास,

खुशालदास चले गये। इसके साथके दोनों पत्र कल शामको मिले। मैंने शान्तिलालको पत्र लिख दिया है। खुशालदास तो सुखी हो गये। और सच तो यह है कि जो इस राजमार्गसे होकर जाता है वह निश्चय ही सुख पाता है। क्योंकि यह जीवन कर्ज चुकानेके लिए ही है और कर्ज चुकाये बिना कोई नहीं जा सकता। यदि यह कल्पना सत्य है तो मृत्यु कुछ अंशों तक इस ऋणसे मुक्ति प्राप्त करना है।

और यह जीवन ऋणसे मुक्ति पानेके लिए है, जिस व्यक्तिको यह शुद्ध ज्ञान है वह सबके ऋणसे मुक्त हो सकता है तथा पूर्वजोंने इसीको मोक्षका नाम दिया है। मोक्ष अर्थात् ऋणसे पूर्ण मुक्ति और इसलिए पुनर्जन्मका अभाव।

तेरी कलकी स्थितिको देखकर मन दुखी हुआ — तेरी अस्वस्थता और मनोव्यथाको देखकर। दोनोंमें से एकका भी इलाज मेरे पास नहीं है। तूने पिताको बहुत ज्यादा शक्तिवान समझ लिया था, इसलिए मुझे दुख हुआ। मेरी स्थिति हरिश्चन्द्र-जैसी थी। वह धर्मके लिए अपने एकमात्र पुत्रको बेचनेके लिए निकल पड़ा था। मेरा धन्धा भी लगभग ऐसा ही हो गया है। तेरे शरीरका उपचार जाननेके बावजद भी मैं

धर्मवश ऐसे नहीं कर सकता और धर्मकी खातिर ही तेरी मनोव्यथाको दूर नहीं कर सकता।

तेरे ही जैसे अन्य रोगी (कैदियों)को जो सुविधा नहीं मिल सकती वह सुविधा तू भी नहीं लेगा, यदि तू इस न्यायको मानकर चलेगा तो तनिक भी आगे नहीं बढ़ सकता। तू विशेष सुविधाका उपभोग करनेके लिए प्रयत्न न करे, यह बात तो समझमें आती है लेकिन तेरी तबियतकी जाँच की जानेपर जो सुविधा तुझे दी जाये तू उसका भी उपभोग न करे, यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। [जेलसे] बाहर होनेपर तो तू बिना विचारे ही असंख्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक सुविधाका उपभोग करता है। मैं तो जेलके बाहर भी और अन्दर भी विचारपूर्वक असंख्य मनुष्योंको जो सुविधाएँ अलभ्य हैं उन्हें प्राप्त करता हूँ और उनका उपभोग करता हूँ, फिर भी यह नहीं लगता कि ऐसा करते हुए मैं अधर्म कर रहा हूँ। हाथी यदि चींटीकी चालसे चलनेकी कोशिश करे तो वह चीटी नहीं बन सकता और अपना हाथीपन भी खो बैठेगा अर्थात् उसका तो नाश ही हो गया। लेकिन मेरे-जैसा हाथी दीनतापूर्वक अपने मुटापे और बड़े आकारको स्वीकार करके, हजारों चींटियोंके वजनकी अपेक्षा कहीं अधिक चारा खा जाता है और फिर हजारों चींटियाँ भी न उठा सके उतना बोझ खेल-खेलमें खींच ले जाता है। हाथीको अपनी जरूरतका चारा लेनेका अधिकार है। लेकिन उतना चारा खाकर उसे व्यर्थ नहीं कर देना चाहिए। उसे हाथीकी शक्ति जितना बोझ भी उठाना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो यह समझना चाहिए कि उसने चींटीके बराबर ही खाया और काम किया। यही साम्यवाद है। इसलिए यदि तुझे तेरी जरूरतकी खुराक न्यायपूर्वक मिलती है तो बिना लाचारी अनुभव किये तू उसे लेना और अपना स्वास्थ्य सुधारना तथा तुझसे दूसरोंकी जो सेवा बन सके सो करना।

दूसरोंकी सेवा करते हुए और तुझे न्यायपूर्वक जो सुविधा मिले उसका उपभोग करते हुए भी तुझे कैदीका धर्म सोच-समझ लेना चाहिए। कैदीको स्वाभिमान बनाये रखनेके अलावा और कोई अधिकार नहीं, क्योंकि कैदी बननेके बाद मनुष्यका अपने शरीरपर स्वामित्व खत्म हो जाता है और उसके स्थानपर दारोगा स्वामी बन बैठता है। इसलिए यदि कैदीको खाने, पीने और पहननेके लिए नहीं दिया जाता तो भी उसे शान्त और प्रसन्न रहना चाहिए। जो ऐसे नहीं रह सकता वह सच्चा कैदी नहीं है। इस जमानेमें हमें इतना तो स्वीकार करना चाहिए कि कैदियोंके प्रति अंग्रेजोंकी राजनीति अन्य राज्योंकी नीतिकी अपेक्षा अधिक उदार है। उसमें दिन प्रतिदिन सुधार होता दिखाई देता है। यह और बात है कि अभी और बहुत सारे सुधारोंकी गुंजाइश तो है ही। इन सुधारोंके लिए कैदी प्रयत्न भी कर सकता है। लेकिन जो कैदी उपर्युक्त सूत्रको याद रखता है अगर वह सुधार करवानेके अपने प्रयत्नोंमें असफल भी हो जाता है तो वह निराश नहीं होता — क्योंकि एक भी सुविधापर उसका अधिकार नही था। यदि तू इस दृष्टिकोणको अच्छी तरह समझ गया हो तो मैं निश्चिन्त हो सकता हूँ और तू अपनी मनोव्यथाको दूर कर सकता है।

तूने मुझसे जो-जो कहा है उसके लिए मैं प्रयत्न तो अवश्य करूँगा। लेकिन मैं अपने ढंगसे करूँगा — उसमें समय लग सकता है। इससे मैं अधीर होनेवाला नहीं हूँ। तू भी न हो, ऐसी मेरी इच्छा है। मेरे अथवा तेरे हाथमें क्या है? परिणाम तो निश्चय ही हमारे हाथमें नहीं है। हाँ, पूरी तरहसे प्रयत्न करना हमारे हाथमें है और अपनी शक्तिके अनुसार तू कर ही रहा है तथा अपनी सामर्थ्य भर मैं भी करूँगा। तिसपर भी अगर कुछ न हो तो [निराश हुए बिना] तू नाच उठना और मैं भी आनन्दसे नाच उठूँगा। क्योंकि —

सुखदु:ख मनमां न आणीये
घट साथे रे घडीयां
टाणयां ते कोई नव टणे
रघुनाथना घडीयां

(सुखदु:खका विचार मनमें नहीं आने देना चाहिए, वे तो इस शरीरके साथ ही रचे गये थे; किसीके टाले नहीं टल सकते क्योंकि रघुनाथने उनको गढ़ा है)

यह सब समझ गया न? इस पत्रको तीन-चार बार पढ़ जाना — न समझा हो तो मुझसे पूछना।

अपनी सेहतका समाचार देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३६६) से।

५५८. पत्र : वियोगी हरिको

२५ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

तुमारा तार मिला है। हिंदी हरिजन[1] निकला या नहि पता नहि चलता है। मैं क्या लिख भेजुं? जितने हरिजनके अंक निकल चुके हैं उससे जो चाहिये सो ले लो। उसमेंसे चुनाव करनेमें और जो लिया जायगा उसमेंसे योग्य हिस्साका ही अनुवाद करनेमें तुमारी कलाकी परीक्षा होगी। हिंदी अंक मेरे हाथमें आनेके बाद मैं देख लुंगा कि कुछ और लिखनेकी आवश्यकता है या नहि। हां, एक बात है यदि मुझे कुछ प्रश्न भेजोगे तो उसमेंसे कोई आवश्यक वस्तु पर लिख भेजुंगा। मेरी आशा है कि पहलेसे ही पत्र स्वावलंबी हो जायगा।

बापु

बड़ोंके प्रेरणादायक कुछ पत्र, मुखचित्र

१. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित **हरिजन सेवक**। इसका पहला अंक २३ फरवरी, १९३३ को निकला था, लेकिन गांधीजी को इसकी प्रति २६ फरवरीको मिली थी। देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २६-२-१९३३।

५५९. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

२५ फरवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा पत्र मिला। अरुणके[1] पिताजी[2] कौन? कहां थे? हां हिन्दी अनुवाद छप जानेपर मुझे भेजो। हिंदी विशाल भारत प्रेसमें क्यों न छपवाया जाय। बनारसी दासजी प्रेमसे छपवा देंगे। उनको पहचानती है? नहिं तो इस पत्र उनको बताओ। सूर्यस्नानसे कुछ लाभ देखनेमें आया? अरुण अब अच्छा हो गया होगा।

बापुके आशीर्वाद

इसके साथ महावीर और अरुणके [लिए] खत है।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९७) से।

५६०. पत्र : अब्बास तैयबजीको

२६ फरवरी, १९३३

प्रिय भर्रर्रर,

तो तुमने अस्सीवें वर्षमें प्रवेश कर दिया है, और तुम इसपर विश्वास नहीं करना चाहते! तो हम यह कहें कि यह तुम्हारा अट्ठारहवाँ वर्ष शुरू हुआ है? तुमसे करीब १५ वर्ष छोटा होनेके कारण तब तो मुझे चार वर्षका बच्चा होना चाहिए, जिसके नये दाँत निकलनेवाले हैं। कितना बढ़िया है! तब तो मेरे सनातनी मित्र मुझे अनेक वर्षोंतक जी भर कर कोसते रह सकते हैं।

लेकिन उनकी इतनी अच्छी किस्मत नहीं है। क्योंकि तुम्हारी चाँदी जैसी सफेद दाढ़ीको देखकर छोटे बच्चे भी तुम्हें केवल अट्ठारह वर्षका नहीं मानेंगे। वे हमें बूढ़े पाखण्डी मानेंगे जो उनको कोई अवसर नहीं देना चाहते, और हमको वे बहुमतसे हरा देंगे।

यदि तुम्हें महाराजासे २००० रुपये मिल जाते हैं तो यह एक अच्छी शुरुआत होगी।[3]

१. हेमप्रभा दासगुप्तका पुत्र।

२. वास्तवमें अरुणके दादा; देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", ५-४-१९३३।

३. तैयबजी हरिजन सेवा कार्यके लिए काठियावाड़में चन्दा इकट्ठा कर रहे थे।

वहाँ जितने भी व्याख्यानदाता आयें तुम्हें उनकी ताकमें रहना चाहिए। उन्हें भी इस महान उद्देश्यके लिए तुम्हें कुछ देना चाहिए।

बेचारी रेहाना! मुझे उसकी एक चिट्ठी मिली थी। यदि वह नानावटीके यहाँ आरामसे है तो तुम उसे पूनासे खदेड़ना मत।

क्या तुम जानते हो कि इस समय कितना बजा है? अभी सबेरेके ४ भी नहीं वजे हैं। शुभ प्रभात।

हम सबकी ओरसे प्रेम सहित,

तुम्हारा,
भर्रर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५८३) से।

५६१. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

चम्पा बंगलेकी मरम्मत और रँगाईके बारेमें लिखती है। गर्मियोंमें पहाड़पर जानेकी भी इच्छा कर रही है। रंग और मरम्मतकी आवश्यकता जान पड़े तो करवा लेना। यात्राके विषयमें मैंने उससे जो प्रश्न पूछे हैं उन्हें देख लेना। तुमसे उसके अच्छे सम्बन्ध है क्या? वह विनयपूर्वक रहती है क्या? रतिलालका कैसा है? वह भी पहाड़पर जानेकी इच्छा करता है क्या?

परसरामको लिखा पत्र पढ़ जाना। उसकी इच्छा है कि वह थोड़ा समय राजाजीके साथ बिताये। इसके लिए राजाजी रजामन्द होंगे या नहीं, मैं नहीं जानता। तुम उसे दो माहके लिए मुक्त कर सकते हो? यदि वह जाता है तो हिन्दी कौन पढ़ायेगा?

कुसुमसे कहना कि चूंकि उसे बीचमें लिख चुका था इसलिए आज नहीं लिख रहा हूँ; और फिर बीचमें कभी लिखनेका मौका आ जायेगा।

बापू

[पुनश्च :]

कुल चौदह पत्र नत्थी किये हुए हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५६२. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। इसके साथ भगवानजी और पंडितजीके पत्र भी हैं। मेरा ऐसा खयाल है कि एक हदतक (१२ औंस) दूध जेलके खर्चसे मिलता है।

हरियोमलको तुमने आनेकी इजाजत देकर ठीक ही किया, ऐसा मुझे लगता है। उसके जैसे लोगोंका निर्माण धीरे-धीरे ही होता है। पार्वतीके सम्बन्धमें तुम्हारा सुझाव सुन्दर है। यदि ऐसा हो सके तो दोनों ही मुक्त हो जायें।

प्रभुदासका आने-जानेका खर्च हमें उठाना ही चाहिए। वह तो भोला है। उसे तो अपनी जोड़ी खोजनेमें भी समय लगेगा और परिश्रम भी होगा। अब वह जबतक विवाह नही कर लेता तबतक शान्त होनेवाला ही नहीं है। और उसकी अशान्तिके मूलमें भी यही बात थी कि विवाहका उत्साह होते हुए वह जबरन उसे रोक रहा था।

लक्ष्मीके विषयमें तुम्हारा दृढ़ रहना आवश्यक है। दूदाभाईका विरोध समझमें नहीं आ रहा है। पुरुषोत्तमका मुझे कोई पत्र नहीं मिला। मैंने उसे लिखनेके लिए तो कहा ही था। उपवाससे उसे कोई हानि नहीं होगी। यदि उसे उपवास तोड़ना आता हो तो उससे लाभ ही होना है। हड्डी जोड़नेवाला वैद्य यदि ठीक जानकार हो तो हानि नहीं है। कनुको हरिभाईको[1] दिखा दिया जाये तो अधिक सुरक्षित होगा। मथुरादास यदि निश्चित रहे तो मोतीबहन आप ही शान्त हो जायेंगी। मेरा यह पक्का अनुभव है कि दोनोंमें से यदि एक भी अडिग रहे और दूसरे पक्षको इस बातका विश्वास हो जाये तो ऐसी स्थितिमें दूसरा पक्ष शान्त हो ही जाता है। जैसे कि प्रियसे प्रिय व्यक्ति मर जाते हैं और एक समय आता है कि हम उन्हें भी भूल जाते हैं; यही बात इस मोहपर भी लागू होती है। मूल बात यह है कि थोड़ी बहुत निर्बलता दोनोंमें होती है और इसीलिए एक-दूसरेके आधारकी जरूरत पड़ती है। सच कहा जाये तो इसे आधार भी नहीं कहा जा सकता। यदि इससे कोई स्त्री-पुरुष पार लग जाते हैं तो इसे अनहोनी ही मानिए। एक अंधा दूसरेका कैसे मार्गदर्शन कर सकता है? जो स्वयं डूब रहा है वह किसी और डूबनेवालेको कैसे बचा सकता है? एक विषयासक्त दूसरेको कैसे विकार-रहित बना सकता है? यह तर्क तो साफ समझमें आ सकता है।

'हरिजन'के ग्राहक बनानेकी झंझटमें तुम्हें तो पड़ना ही नहीं है। आश्रममें ५ प्रतियाँ तो अब सीधी ही भेज देंगे। उनका जैसा उपयोग हो सके वह कर लेना।

१. डॉ० हरिलाल देसाई।

यदि इतना हो सके तो भी पर्याप्त है, पाँच प्रतियोंमें से चारकी या जो नहीं बिक सके उनकी फाइल रखी जाये। किसी-न-किसी दिन तो वे काम आ सकेंगी।

'सत्यार्थ प्रकाश', पूनियाँ और चमड़ेका तला, ये तीनों चीजें मिल गई हैं। केलॉगकी पुस्तक माधवजीके लिए धूलिया भेजी गई होगी या फिर पुस्तक बीजापुरमें हो। इस सम्बन्धमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; **बापुना पत्रो ९ : श्री नारणदास गांधीने,** भाग-२, पृष्ठ ३५-६ से भी।

५६३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२६ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

आज लम्बे पत्रकी आशा न रखना। दाहिना हाथ लिख-लिखकर काफी थक गया है। समय भी नहीं है।

तेरी पूनियाँ पहुँच गई हैं। कल शामको आई। मैंने उनसे आज काता। तेरा (दिया हुआ इन पूनियोंका) वजन ठीक है, यह मानूँ तो देव-कपासकी पूनियोंसे ६० अंकका सूत निकला, ऐसा कहा जा सकता है। इनमें से आधी पूनियाँ महादेवसे कतवाऊँगा। पूनियोंपर उसका काबू मुझसे बहुत अधिक है। सम्भव है महादेव पहले ही प्रयत्नमें १०० अंकका सूत निकाल ले।

तूने अपने स्वास्थ्यके समाचार नहीं दिये हैं। तेरा गला ठीक है? कमर कैसी है?

भाई डंकनके सम्बन्धमें अपना अनुभव बताना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२५) से।

५६४. पत्र : भाऊ पानसेको

२६ फरवरी, १९३३

चि० भाऊ,

यदि राजकोटका पानी माफिक आ जाता है तो तुम्हें वहाँ और रहना चाहिए। जमनादासकी तुमसे जो बने मदद करना। यदि तुम्हारी तबियत वहाँ बिल्कुल ठीक हो जाये तो अन्यत्र जाने पर भी कदाचित वैसी ही रहे। मुझे अपना कार्यक्रम बताना। क्या खुराक है, यह भी लिखना।

जिनके पास धन है उन्हें दूसरोंको देना चाहिए। और जिनकी आवश्यकता पूरी न होती हो ऐसे लोग दानके पात्र हैं, जैसे बिल्कुल अपंग, (सच्चे) संन्यासी आदि।

वह फकीर भी योग्य पात्र हो सकता है बशर्ते वह चौबीसों घंटे समाज-सेवा करता हो और बदलेमें कुछ न लेता हो।

वह स्त्री तो निस्सन्देह योग्य पात्र है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५०) से।

५६५. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२६ फरवरी, १९३३

तेरा पत्र आज ही मिला। मेरी तो यह सलाह है कि तुझे बनारस जाना चाहिए। हमारा यह कर्तव्य है कि हम विनयपूर्वक मालवीयजीको समझायें। वे समझें या न समझें, यह हमारे हाथकी बात नहीं है। उनके तारका[1] तू जो अर्थ करता है वह सही है। इस तारके मुताबिक विचार-विमर्श और दलीलके लिए अभी गुंजाइश है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२१

१. सम्भवतः मालवीयजी का १५ फरवरीका तार; देखिए परिशिष्ट १२।

५६६. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२६ फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

तेरा पत्र मिला। प्रेमाबहन जो कहे उसपर श्रद्धा रखकर तदनुसार करनेमें तेरा कल्याण है। दूसरे शिक्षकोंके सम्बन्धमें भी यही बात लागू होती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३३) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

५६७. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२६ फरवरी, १९३३

बालको और बालाओ,

हरिजन बच्चे मद्य-त्यागकी बातको तुरन्त नहीं सुनेंगे। लेकिन तुम्हारे सहवासका उनपर धीरे-धीरे असर होगा। रविवारको उनके पास जानेका विचार अच्छा है। हो सके तो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। यदि शुक्रवारका यह कार्यक्रम रविवारको परिवर्तित हो जाये तो पर्याप्त होगा। नारणदासके साथ सलाह-मशविरा करना। यदि तुम्हारे आचार-विचार शुद्ध होंगे तो हरिजनोंपर उनका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। हरिजनोंमें बड़ी उम्रके लोगोंमें भी तुम्हें घुलना-मिलना होगा। वे भी प्रेमके, सेवाके वश हो जायेंगे। कभी-कभी हरिजन बालकोंको आश्रममें निमन्त्रित किया जा सकता है। ऐसा करनेसे पहले नारणदासकी अनुमति अवश्य प्राप्त कर लेना।

तुममें से अधिकांश बच्चोंका वजन बढ़ा है और सूतके अंकमें भी वृद्धि हुई, यह तो खुशखबरी ही मानी जायेगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५६८. पत्र : कालीचरणको

२६ फरवरी, १९३३

भाई कालीचरण जी,

तुमारा खत मिला है। मेरे बारेमें जो लिखा जाता है वह मैं जानता हूं। मैं नहिं समझता उसका शांतिके सिवाय और कोई इलाज हो सकता है। मेरी उम्मेद है कि कोई उसे मानता ही नहिं होगा। और माननेवालों पर मेरे इनकारका असर भी कैसे हो सकता है। तो भी चालु हरिजनमें इस बारेमें मैंने कुछ लिखा है।[1]

मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०३९) से।

५६९. असत्यका निवारण सत्य

२६ फरवरी, १९३३

दुःखकी बात है कि सनातन धर्मके नामसे आजकल असत्यका प्रचार हो रहा है। मेरे पास कई नये सनातनी अखबार आ रहे हैं जिसमें असत्य और असभ्यता भरी हुई है। उनमें मेरे पर बहुत हमले किये हुए है। कई लेखक मुझे कहते हैं उसके उत्तरमें मैं कुछ लिखुं। मैं क्या लिख सकता हू। कोई कहे मैं धर्मको नहि मानता हूं तो उसका उत्तर सिवाय उसके के धर्म मेरा प्राण है और क्या दे सकता हूं? ठीक ऐसी बातें एक संस्कृतज्ञ 'धर्म प्रचारक' ने लिखी है। उसका उत्तर मैं इतना ही दे सकता हूं कि वह सबकी सब बातें प्रायः सर्वथा झूठी है। मेरे ऐसे कहनेसे वह 'धर्म-प्रचारक' की बात झूठी सिद्ध नहि होती है जैसे उनके कहने मात्रसे उनकी बात सत्य नहिं मानी जाती है।

तो भी असत्यका निवारण सत्यसे ही है। इस महावाक्यका अर्थ समझना आवश्यक है। कर्म मात्रका मूल विचार मैं है। असत्य विचारमें से असत्य उच्चारण होता है, और उसके पश्चात् अथवा उसके साथ अथवा उच्चारणके सिवा कर्म होता है, इसी तरह सत्य कर्मकी जड़ भी सत्य विचारमें रहती है। यदि विचार सत्य न हो तो सत्य सा लगता कर्म अथवा उच्चारण झूठ ही है, मिथ्या है। अर्थात् यदि मेरे विचारमें भी सत्य ही रहता होगा तो असत्यका निवारण हो ही जायगा। लोग

१. देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

उस कहानीयों पर विश्वास नहिं करेंगे। इस दृढ़ विश्वासके कारण मैं निश्चित हूं और मित्र वर्ग भी निश्चित रहे। यह असत्य प्रचार आगे नहिं बढ़ सकेगा। अवश्य थोडी क्षणके लिये वायुमंडल गंदा करेगा। प्रत्येक आदोलनमें ऐसा होता ही है।

एक बात सुधारक याद रखें। वह कभी असत्यका विचार तक न करे। हमारे सामने महान धर्मकार्य है। मेरे नजदीक अस्पृश्यता निवारण महा धर्म कार्य हे, बड़ा कर्त्तव्य है। अस्पृश्यताकी जड़ काटना प्रत्येक हिंदुका परम कर्त्तव्य है। इस धर्म कार्य हम झूठसे कभी सिद्ध नहिं कर सकते हैं। रोष करना, हिंसा करना भी अन्तमें असत्य ही है। इस कारण हरिजन सेवकको चाहीये कि वह कभी विरोधी पर रोष नहिं करेगा, झूठ भाषण कभी नहि करेगा परंतु क्रोधको अक्रोधसे, अविनयको विनयसे, असत्यको सत्यसे, हिंसाको अहिंसासे जीत लेगा। और क्योंकि परिणाम हमारे हाथोंमें नहिं है और सत्यादिका पालन हमारे हाथोंमें है इसीलिये भगवान्‌ने कहा है कि 'कर्म-का ही तुम्हें अधिकार है, परिणामका कभी नहि'[1] यदि सब हरिजन सेवक सत्य पर दृढ़ रहेगा तो परिणाम शुभ ही होगा इसमें कोई संदेह नहि है।

लेखकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६८) से; **हरिजन सेवक**, १०-३-१९३३ से भी।

५७०. प्रतिज्ञा-पालन

२६ फरवरी, १९३३

एक सज्जन लिखते हैं :

> **तुम बहुत जल्दबाजी करते हो। असहयोगी होते हुए असेंबलीकी सहाय तक मागते हो। इतना दौर्बल्य क्यों। सनातनीओंसे समझौता करके मंदिर खुला लो।**

इस सज्जनको मैंने प्रायः यह उत्तर दिया है :

मैं जल्दबाजी नहिं करता हूं। प्रतिज्ञाका पालन करनेका प्रयत्न करता हूं। सप्तंबरके अंतमें मुंबईमें हिदु प्रजाके नामसे हिंदुसभाने प्रण किया कि हरिजनोंके लिए मंदिर खुलवानेका यथासंभव शांत प्रयत्न करेंगे। अब हमारे मार्गमें यह बात आ गई है कि ब्रिटीश कोरटोंने फैसला किया है कि हरिजनका प्रवेश बहुतेरे मंदिरोंमें नहिं हो सकता। इस कानूनको हिदु प्रजा सर्वानुमतिसे भी रद्द नहिं कर सकती है। कानून-से ही कानून रद्द हो सकता है। इसलिये कानून आवश्यक हो गया है और इसी कारण श्री रंगाआयरने बिल पेश किये हैं। इसमें बलात्कार अथवा धर्ममें हस्तक्षेप करनेकी गंध तक नहिं है। बिलसे यदि हिंदु जनता चाहे तो मदिर हरिजनोंके लिये खुल सकते हैं। मंदिर जब खुलेंगे तब हिंदु जनतादिके निश्चयसे खुलेंगे उन बिलोंसे

१. **भगवद्गीता**, २, ४७।

कभी नहिं। इसमें सहयोग, असहयोगकी कोई बात नहिं है। लेकिन यह बात आज मेरे क्षेत्रके बाहर है। लोगोंको इतना विश्वास करना चाहिये कि असहयोगके सिद्धांतका प्रणेता मैं हूं और यदि मैं इन बिलोंके आज पसार करनेका पक्षपाती हूं तो उसमें सिद्धांतको भंग होनेका संभव कम है। बड़ी बात यह है कि जिन्होने मुंबईमें प्रतिज्ञा ली उनका कर्त्तव्य है कि वे कानूनी रुकावट दूर करनेकी पूर्ण चेष्टा करे। तब हि कह सकेंगे।

'प्राण जाय अरु वचन न जाई'[१]

लेखकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७०) से; **हरिजन सेवक,** १०-३-१९३३ से भी।

५७१. पत्र : वियोगी हरिको

२६ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

डाकका समय हो गया। तुमारा तार मिला। मैंने उत्तर दिया था। आज हि हरिजन[२] भी मिला। इसके साथ दो लेख[३] भेजता हूँ। मेरी उम्मीद है अवसर पर मिल जायेगे। हरिजन सेवक अब तक पढ़ नहि सका हूं। इसके बारेमें इंग्रेजी ['हरिजन']में लिखुंगा।

बापू

[पुनश्च :]

भाषा सुधारीयो

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८६) से।

१. **रामचरितमानस,** अयोध्याकाण्ड।
२. देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २५-२-१९३३।
३. देखिए "असत्यका निवारण सत्य" तथा "प्रतिज्ञा-पालन", २६-२-१९३३।

५७२. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको

२६ फरवरी, १९३३

प्यारी बहन,

तुम्हारे खत मेरे लिए उर्दूका सबक होना चाहिए। भले बहुत छोटा सा खत क्यों न हो लेकिन हर्फ अच्छे होने दो। तुम्हारे अगले खत तो खूबसूरत रहते थे। अब दोनोंकी सेहत अच्छी रहती है सुनकर मैं बहुत खुश हुआ।

बापूकी दुआ

बेगम आलम

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २९) से।

५७३. पत्र : बनारसीलाल और रुक्मिणीदेवी बजाजको

२७ फरवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरे दो पत्र मेरे सामने पड़े हैं। अभी सबेरेकी प्रार्थना शुरू नहीं हुई इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। काम होनेपर भी तू पत्र लिखनेसे छुटकारा नहीं पाना चाहती, यह बात मुझे अच्छी लगती है। नियमपूर्वक काम करनेसे कामका बोझ महसूस ही नहीं होता। वह तो स्वभाव-सा बन जाता है। देवलाली और आश्रमसे तुझे समाचार मिलते रहते हैं, इसलिए मेरे लिखनेकी आवश्यकता नहीं। अब तो हिन्दी 'हरिजन' प्रकाशित होने लगा है।

बापू

चि० बनारसी,

उन साठ आरोपोंकी मालाकी तुमने जो उपमा दी है, वह ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६४६) से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

५७४. पत्र : वियोगी हरिको

२७ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

मैं ह० से०[1] पढ़ गया। मुझे अच्छा नहीं लगा। उसके पीछे अधिक परिश्रमकी आवश्यकता है, अधिक अभ्यास चाहिये। नडियादमें सतरामके मंदिर खुलनेकी खबर है। सतरामका मंदिर नही खुला है तो भी उसके खुलनेका उल्लेख है। अखबारोंमें से कोई बात बगैर निश्चय नही लेनी चाहिये। ऐसी खबर छापनेसे हमेशा प्रतिष्ठा कम हो जाती है और धर्मका हानि पहुंचती है। उसमें लिखा ही है 'सुना है' 'सुनने' पर कोई धन्यवाद दे सकता है? सुनते तो बहुत लेकिन निरीक्षण करने पर सत्य कम दृष्टिगोचर होता है। अब इस बातको सुधारना चाहिये। संतरामके महंतको पूछो? कार्य विवरणने बहुत जगह रोक ली है। इसका अर्थ यह है कि तुमारे पास और कुछ छापनेका नहीं रहा। इस कारण इतनी जगह ले ली तो भी नीचेका हिस्सा कोरा रहा। बहुत खराब लगता है। तुमारे पास हरिजनके दो अंक थे उसमें से काफी चीज मिल सकती थी। समयका अभाव तो था ही नहीं। मेरे लेखका जो अनुवाद है वहां नीचे लिखना चाहिये था वह अनुवाद है। अनुवाद भी अच्छा नहि लगता। हरिजन सेवक निबंधोसे नहि भरना चाहिये। लेकिन सेवकोंके लिये मार्गदर्शक और खबरोंसे भरपूर होना चाहिये। सनातनीयोंकी मुसिबतोंका निर्देश और उसका निवारण चाहिये। सनातनीयोंके झूटको उचित समय पर खुल्ला करना चाहिये। इस कारण हरेक प्रांतसे खूब खबर आनी चाहिये। जो कोई पत्र आजमें छप चुके हैं उसे दुबारा छापनेकी कोई आवश्यकता नहि है।

इस बारेमें एक तार आज दे रहा हूं।[2] मेरे स्पष्ट लिखनेका दुःख नहि मानोगे। मेरा लिखना निराश बनानेके लिये नहि है। प्रोत्साहनके लिये है।

मैंने कल दो लेख भेजे सो मिले होंगे।

बापु

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३९३) से।

१. हरिजन सेवक।

२. तार उपलब्ध नहीं है।

५७५. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मैं जानता हूँ कि तुम अपने शरीरको आराम देनेमें विश्वास नहीं करते। तुम्हें आराम न मिले, इसकी अब मैं भी कोशिश करूँगा। मेरे कहनेपर कल महादेवने तुम्हें एक पत्र लिखा है जिसमें 'हरिजन सेवक' की, विषयवस्तु और स्वरूप दोनों तरहसे, बहुत खराब साज-सज्जाके बारेमें बताया गया है। मैंने वियोगी हरिको तार भी दिया है।

मैं तुम्हें आज जो चीज भेज रहा हूँ वह मुझे पंजाबकी हरिजन संस्थाओंके बारेमें असाधारण चतुराईसे तैयार की गई रिपोर्ट जान पड़ती है। मैं आगामी 'हरिजन' में इसके बारेमें लिखनेवाला हूँ, लेकिन तुम इस रिपोर्टकी प्रतियाँ पंजाबके संगठनोंके बीच प्रचारित करो और उनसे उत्तर लिखनेको कहो। यदि तुम यह समझो कि रिपोर्टके बारेमें कुछ कहना बिल्कुल बेकार है और इसमें अतिशयोक्तियों और निराधार वक्तव्योंके अलावा कुछ नहीं है तो तुम निश्चय ही रिपोर्टकी नकल उतारनेकी तवालत मत उठाना तथा अपने और अपने सहयोगियोंके कामको मत बढ़ाना। उस हालतमें तुम मुझे उक्त रिपोर्ट इस संक्षिप्त टिप्पणीके साथ वापस कर देना कि इसपर गौर करनेकी कोई जरूरत नहीं है। कदाचित तुम इसके लेखकसे परिचित हो। यदि ऐसा है तो तुम मुझे उसके बारेमें सब-कुछ लिखना। मैं उसके साथ अभी भी पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मुझे मालूम नहीं कि तुम अंग्रेजीका 'हरिजन' पढ़ते हो अथवा नहीं। प्रत्येक हरिजन सेवककी तरह ही यह व्यक्तिगत रूपसे तुम्हें सम्बोधित करके लिखा जाता है क्योंकि इसमें कार्यकर्त्ताओंको सुझाव दिये जाते हैं, उनसे अपील की जाती है और उसमें अपने संवर्धनें उन्हें किस तरहके तर्कोंसे काम लेना चाहिए यह भी बताया जाता है। तुम्हें तर्कों और अपीलकी भले ही जरूरत न हो लेकिन तुम्हें सुझावोंका स्वागत करना होगा, चाहे वे किसी भी व्यक्ति द्वारा दिये गये हों। पंजाबवाली रिपोर्टपर लिखे अपने लेखमें मैंने एक सुझाव दिया है जिसको मैं यहाँ दोहराना नहीं चाहता, क्योंकि वह तुम्हें 'हरिजन' में पढ़नेको मिलेगा। इसमें यदि तुम्हें कोई दोष दिखाई दे, अथवा इसे यदि कार्यान्वित करना तुम्हें असम्भव दिखाई दे तो तुम मुझे बताना और यदि तुम्हारा तर्क मुझे उपयुक्त लगा तो मैं उसे सुधार लूँगा। लेकिन यह ज्यादा बेहतर है कि मैं बड़े सुझाव निजी रूपसे न देकर सार्वजनिक रूपसे दूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री अ० वि० ठक्कर
बिड़ला मिल्स
सब्जी मण्डी
दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११११२) से; एस० एन० २०४१० से भी।

५७६. पत्र : आर० कैमलको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है कि आपका इससे पहलेका भी एक पत्र है जिसका मैंने उत्तर नहीं दिया है। लेकिन उसका तो मैं नियमित क्रममें नम्बर आनेपर जवाब दूँगा।

आपके इसी २३ तारीखके पत्रमें पूछे गये आपके प्रश्नका मेरा जोरदार जवाब यह है कि अन्य चीजोंके समान ही मौजूदा पुरोहित वर्ग भी ह्रासोन्मुख है। यदि ऐसा न होता तो हम हिन्दू-धर्मको एक सर्वथा भिन्न स्थितिमें पाते।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० कैमल
त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४००) से।

५७७. पत्र : कैलाशनाथ काटजूको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० काटजू,

आपके मूल्यवान पत्रके लिए धन्यवाद।[१] मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपकी पुत्री अपने पतिके साथ सुखी है। मैं जानता हूँ कि आप 'हरिजन' के लिए जितना कर सकते हैं, करेंगे।

१. इस पत्रमें डॉ० काटजूने लिखा था: "... इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि कई सौ सालोंसे, सही या गलत, हरिजनोंको सार्वजनिक मन्दिरोंमें प्रवेशकी अनुमति नहीं रही है। ... मुझे लगता है कि यह मामला हिन्दूशास्त्रों या उनकी ठीक और सही व्याख्याका नहीं है बल्कि वास्तवमें इस बातका है कि संस्थापककी मंशा क्या थी। ... अन्यथा मैं नहीं देख पाता कि बहुमतको संस्थापककी मंशाका उल्लंघन करनेका क्या अधिकार है, और किसी भी हिन्दूको इस बातका अधिकार है कि वह संस्थापककी मंशाको कार्यान्वित करानेके लिए दीवानी अदालतकी शरण ले सके। मैं इस मुद्देको केवल आपके विचारार्थ यहाँ दे रहा हूँ। ..."

मन्दिर-प्रवेशके बारेमें आपने जो दलील दी है उसे मैं समझता हूँ। मेरे विचार से, आज जो नये मन्दिर खोले जा रहे हैं उनके अनुभवके आधारपर भी, ऐसा कहा जा सकता है कि दाताओंके मनमें कोई पूर्वग्रह नहीं होता। वे तो सहज भावसे हिन्दुओंके लिए मन्दिरोंका निर्माण करवाते हैं और किस वर्गके हिन्दुओंको मन्दिरोंमें प्रवेश मिलना चाहिए, इसकी कोई कड़ी व्याख्या वे नहीं करते। हिन्दू-धर्ममें हमेशासे लचीलापन रहा है और इसने समयकी आवश्यकताको समझते हुए अपनेमें परिवर्तन किये हैं। आज जो अस्पृश्य हैं वे लगभग सौ वर्ष पूर्व अस्पृश्य नहीं थे और जो लोग आजसे एक हजार वर्ष पहले अस्पृश्य माने जाते थे आज वे अस्पृश्य नहीं रहे हैं।

क्या आप यह कहेंगे कि ब्रिटेनका न्यास-कानून हिन्दुओंके रीति-रिवाजोंपर लागू होता है? कुछ अत्यन्त विद्वान शास्त्री, जिन्हें पश्चिमी ढंगके सुधारक नहीं कहा जा सकता, अपना यह मत व्यक्त करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते कि हिन्दुओंके सार्वजनिक मन्दिरोंके द्वार कभी भी अस्पृश्योंके लिए बन्द नहीं किये जाने चाहिए थे। आपकी दलीलके मुताबिक हमारे पूर्वज उस समयके रीति-रिवाजोंके अनुरूप मन्दिरोंको खोलकर हिन्दू-धर्मकी प्रगतिको रोक सकते थे। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप अपनी स्थितिपर फिरसे विचार करें। और आपकी दलीलपर से मैंने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनमें यदि आपको कोई दोष दिखाई दे तो आप मुझे उसके बारेमें बतायें। कारण, मैं यह नहीं चाहता कि किसी भी दल अथवा व्यक्तिके साथ किसी प्रकारका अन्याय हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एन० काटजू
१९ एडमंस्टन रोड, इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०१) से।

५७८. पत्र : विट्ठलराव के० जोशीको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। श्री आठवलेका पत्र मिलते ही मैंने श्रीयुत छापखानेको चिट्ठी[2] लिख दी थी। मुझे उनका पूरा नाम और पता नहीं मालूम था, लेकिन मुझे विश्वास है कि उन्हें मेरा पत्र मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठलराव के० जोशी
न्यू पेठ, सांगली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०२) से।

५७९. पत्र : पी० एच० गद्रेको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। अगर आपको कोई एतराज न हो तो मैं जबतक आपका लेख समाचारपत्रोंमें न देख लूँ तबतक इन्तजार करूँगा। लेकिन अगर आप मुझसे मिलना चाहें तो पहलेसे मुलाकात तय करके बुधवार, बृहस्पतिवार तथा रविवारको छोड़कर किसी भी दिन दोपहर १ और २ बजेके बीच बेशक आकर मिल सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एच० गद्रे
नासिक सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०३) से।

१. इसमें श्री जोशीने लिखा था: "यह बिलकुल झूठ है कि आपने ऐसा निर्देश दिया था कि रकमको सांगलीके श्री के० आर० छापखाने अपने पास रखें और अपनी इच्छासे उस धनको राजनीतिक उद्देश्यके लिए, विशेषरूपसे सांगली-राज्यमें, खर्च करें। . . ."

२. देखिए "पत्र : के० आर० छापखानेको", २३-२-१९३३।

५८०. पत्र : गया प्रसाद सिंहको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय गया बाबू,

आपके पत्रके लिए, तथा अस्पृश्यता-निवारक विधेयकोंके बारेमें आप जो-कुछ प्रयत्न कर रहे हैं, उनके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गया प्रसाद सिंह
१३ सी०, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०४०४) से।

५८१. पत्र : त्रिकमदास द्वारकादासको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय त्रिकमदास,

आपका पत्र और संलग्न वकीलकी राय मिली। मैं देखता हूँ कि मैंने अपने सवाल[१] भूखोंकी भाँति लिखे थे और उसका मुझे वैसा ही फल मिला है।[२] लेकिन बिल्कुल मिलती-जुलती भाषामें मेरे इन्हीं सवालोंको चूँकि डॉ० सप्रूने समझ लिया था इसलिए मुझे लगा कि मैं बिल्कुल सुरक्षित हूँ। मुझे एक क्षणका भी अवकाश मिलेगा तो मैं अपने प्रश्नोंको नये ढंगसे लिखकर भेजूँगा और देखूँगा कि क्या उत्तर मिलता है। मौजूदा जवाबोंको भी आप और मैं तो समझ सकते हैं, लेकिन साधारण जनता तो निश्चित ही कह उठेगी कि 'खुद उनके (गांधीजीके) वकील कहते हैं कि इसमें बाध्यता और हस्तक्षेप है।' इसलिए मैं इस रायका कोई सार्वजनिक

१. देखिए "पत्र: जयसुखलाल के० मेहताको", २०-२-१९३३।

२. त्रिकमदासने गांधीजी को सर्वश्री डी० एन० बहादुरजी, बी० एफ० तारापोरवाला और एम० सी० सीतलवाडकी रायें भेजी थीं।

उपयोग नहीं कर रहा हूँ। तथापि तत्काल उत्तर देनेकी तकलीफ उठानेके लिए मैं मित्रोंका आभारी हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत त्रिकमदास द्वारकादास
द्वारा मेसर्स कांगा ऐंड कम्पनी
यूसुफ बिल्डिंग
चर्चगेट स्ट्रीट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०९) से।

५८२. पत्र : पी० आर० लेलेको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला जिसके लिए धन्यवाद। मुझे जयसुखलालकी बीमारीका पता था और मैंने उन्हें रविवारको लिखा है। तब क्या कामकी पूरी देख-रेख आप करेंगे? आज मुझे श्रीयुत त्रिकमदासका पत्र और उनकी राय मिली है। मैंने उन्हें स्वीकृतिका एक पत्र लिखा है।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
'द रेक्लूज'
३१ मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०५) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५८३. पत्र : सी० नारायण रावको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पोस्टकार्डके[१] लिए धन्यवाद। आपने उसमें जो भाव व्यक्त किये हैं उनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण राव
पेड्डा वाल्टेयर
अपलैंड्स, वाल्टेयर पी० ओ०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०७) से।

५८४. पत्र : अमतुस्सलामको

२८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला। देवदास आ गया सो बहुत अच्छा हुआ। तुम्हारे दूसरोंकी सेवाके लिए जल्दबाजी नहीं करना चाहिए। पहले तो तुम्हारी सेहत अच्छी कर लो। पीछे सब कुछ अच्छा हो जायेगा। डाक्टर शर्माका भरोसा खुदा पर होगा और दिल सचमुच आश्रम जानेका होगा, तो रास्ता खुदा ही साफ कर देगा। डाक्टरको अपनी डाक्टरीमें पूरा यकीन है, तो आश्रममें सुभीता तो है ही और बहुत लोगोंको इत-मीनान पैदा हो जायेगा। किताबोंको बेचनेकी आज बहुत उम्मीद न रखे।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८) से।

१. इसमें नारायण रावने इस बातपर खेद प्रकट किया था कि सनातनी लोग दोनों प्रस्तावित विधेयकोंका विरोध कर रहे थे, और इस बातपर जोर दिया था कि अस्पृश्यताके निवारणके लिए कानून बनना चाहिए।

५८५. तार: च० राजगोपालाचारीको

[२८ फरवरी, १९३३ या उसके पश्चात][1]

आपका तार मिला। दुख हुआ लेकिन मैं अनुद्विग्न हूँ। हमें काम करते जाना चाहिए।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४०८) से।

५८६. पत्र: डंकन ग्रीनलेसको

१ मार्च, १९३३

आश्रममें आनेवाले नये लोगोंको हमारी दिनचर्या बहुत कठिन मालूम होती है। लेकिन हम वैसा जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं जैसा जीवन संसारके करोड़ों-अरबों लोग व्यतीत करते हैं। वे सारा दिन कठोर परिश्रम करते हैं। शरीरसे काम करते समय ही उन्हें सोच-विचार करना होता है। जब शरीरकी दैनिक कार्यचर्या सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया जैसी बन जाती है तब उससे गहन विचार-प्रक्रियामें भी कोई विघ्न नहीं पड़ता। लेकिन सभी तरहके विचार उपयोगी नहीं होते। आवश्यकता सुस्पष्ट चिन्तनकी है। स्पष्ट चिन्तन निरन्तर त्याग, अर्थात् दूसरोंके लिए परिश्रम करनेके अभ्याससे ही सम्भव होता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे; सौजन्य: नारायण देसाई

१. यह तार राजगोपालाचारीके २८ फरवरीके तारके उत्तरमें था जिसमें कहा गया था: "विधान-सभाके बहुसंख्यक सदस्योंके उदार और अनुशासित सहयोग और सरकारकी निर्मम तटस्थताके बावजूद केवल एकको छोड़कर सारी कठिनाइयाँ हल हो गई। लेकिन अड़चन पड़ गई। पाँच बजेके बाद सदन स्थगित हो गया। विधेयकतक पहुँचे ही नहीं। अब केवल एक गैर-सरकारी दिन बचा जो चौबीस तारीखको है।"

५८७. पत्र : नारणदास गांधीको

१ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र (बड़ी डाक) मिल गई। मैत्री आदि जिस किसीको भातकी जरूरत हो, उन्हें देना ही ठीक है। हमें तो भिन्न-भिन्न अनाजोंके गुण-दोष दिखाकर अपना आग्रह छोड़ देना चाहिए। ये अनाज ही प्रत्यक्ष प्रमाणकी चीजें हैं। मैं तो देख ही रहा हूँ कि स्टार्च कमसे-कम मात्रामें लिया जाये। भात भी स्टार्च ही है इसीलिए जिन्हें कुछ भी नहीं पचता हो उन्हींको यह दिया जाना है। 'भात खाऊ' की उपाधि निन्दासूचक ही है। यह बात ठीक है, पर वह तो समझदारके लिए है। कितने ही लोग ऐसे हैं कि उनका पेट तो दूसरी वस्तु स्वीकार ही नहीं कर सकता; ऐसोंके लिए तो कहा ही क्या जाये? इस विषयमें खूब विस्तारसे लिख सकता हूँ, पर समय ही नहीं है।

रमाबहनसे कल मिला। तुमने उसका विश्वास प्राप्त नहीं किया। अधिक प्रयत्न करना। उसकी इच्छा अंग्रेजी सीखनेकी है। आश्रमको अपनी सेवा देनेके बाद सीखना चाहती है। उसके पास जाना। उसकी बात सुनना। और मैथ्यु, मैरी या डंकनसे एक घंटा समय दिलाना। उसके अंग्रेजी सीखनेके उत्साहको जहाँतक बन पड़े, पूरा करना। जो पुरानी बहनें हैं, उनकी अंग्रेजी सीखनेकी इच्छा स्वाभाविक है। अंग्रेजीकी जरूरत क्षण-क्षण पड़ती है और हम देखते हैं कि अंग्रेजी सीख लेनेपर मूल्य बढ़ता ही है। हम इस प्रवाहको नहीं रोक सकते। और अंग्रेजी भाषाके ज्ञानमें तो दोष है ही नहीं। दोष तो उसके दुरुपयोग करने या उसकी पूजामें है। स्त्रियाँ पूजाकी स्थितितक पहुँचें, इस बातमें फिलहाल समय लगेगा। यदि मेरी इस विचार-श्रेणीमें कोई भूल हो तो मुझे बताना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५८८. पत्र : नारणदास गांधीको

प्रातः, २ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

कल एक पत्र लिखा था, मिला होगा। लक्ष्मीका विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो। कन्यादान तुम और जमना करना। वेलांबहन वर-दान करेंगी। हो सका तो लक्ष्मीदासको भेजूंगा। जैसीकि प्रणाली रही है, वरके लिए धोती, अंगवस्त्र, टोपी, तकली, 'गीता' और 'भजनावली' तैयार रखना। लग्न ग्रंथीके लिए दुपट्टा रखना। सप्तपदीके[1] व्रतका भाषानुवाद दोनोंको देना। उस दिन विवाह सम्पन्न होनेतक दोनों उपवास रखें और तुम, जमना और वेलांबहन भी। गोपूजा, वृक्षपूजा, 'गीता' के १२वें अध्यायका पाठ करें। अनसूयाबहन आदि मित्रोंके सिवाय और किसीको बुलानेकी आवश्यकता नहीं है। न तो विज्ञापन ही करना है और न छिपाना ही है। रातकी गाड़ीसे वर-वधु घर जायें और अपने कामपर लग जायें। मारुतिकी ओरसे साड़ी आदिकी रस्म वेलांबहन करेगी। इसके अलावा कुछ पूछना हो तो पूछना। उस दिन सारे हरिजन भाइयोंको निमंत्रित करना। भोजन कराना हो तो कराना। भोजन कराना हो तो फलाहारका आयोजन कदाचित ठीक रहेगा। इसमें तुम अपनी सुविधाका खयाल कर लेना। कुछ परिवर्तन करना पड़े तो कर लेना। सब बैठकर विचार करना। बैठकमें बड़ी बहनोंको भी शामिल करना। हम सबके लिए यह दिन तपश्चर्याका, आत्मशुद्धिका, मर्यादा-धर्मका धन्य दिन हो। वर-वधु पर सारे लोग आशीर्वादकी वृष्टि करें। मारुति तो अपने पत्रोंसे मुझे मुग्ध किये दे रहा है। जैसा वह लिखता है यदि वैसा ही निकले तो मानना होगा कि वह अपने पूर्व पुण्योंके बलपर ही लक्ष्मीदासके पास पहुँचा है। और लक्ष्मीदासका प्रेम भी अवर्णनीय है। उसने शिक्षा भी कैसी दी है?

आश्रममें सबको [यह बात] समझाना कि जो लोग सेवा करनेमें तन या मन चुराते हैं वे और किसी कामके नहीं होते, यह एक सार्वजनिक अनुभव है। आश्रम तो सेवाके निमित्त ही है। अतः आश्रममें सेवा-चोर तो कोई होना ही नहीं चाहिए।

बापू

[पुनश्च :]

वेलांबहन बीमार रहती हैं? दूदाभाईको लिखा पत्र देख लेना। विवाहके दिन उपस्थित होनेके लिए मैंने उनसे आग्रह नहीं किया है। [साथमें] दूदाभाई, लक्ष्मी और वेलांबहनके पत्र हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. देखिए खण्ड ३०, पृ० ९२-३।

५८९. पत्र : अगाथा हैरिसनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय अगाथा,

मैं तुम्हारे १० फरवरीके पत्रका उत्तर इससे पहले नहीं दे सका। माफ करना। मैं देखता हूँ कि इसका उत्तर तुरन्त दिया जाना चाहिए था। तथापि मैं आशा करता हूँ कि यह पत्र तुम्हें मिलनेसे पहले ही यदि तुम स्वयं किसी निश्चयपर न पहुँच चुकी होगी तो इससे तुम्हें उसमें मदद मिलेगी।

मुझे यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि वे लोग यात्राका खर्च उठानेके लिए तैयार हों तो तुम्हें वाई० डब्ल्यू० सी० ए० के निमन्त्रणको[1] स्वीकार कर लेना चाहिए। गरीब कार्यकर्ताओंसे यात्रा-व्ययकी व्यवस्था स्वयं करनेकी अपेक्षा नही की जानी चाहिए।

आशा है, 'हरिजन' तुम्हें अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके बारेमें हर आवश्यक जानकारी देता है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कुमारी अगाथा हैरिसन
२ क्रेनबोर्न कोर्ट
एल्बर्ट ब्रिज रोड
एस० डब्ल्यू० ११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६२) से; एस० एन० २०४३६ से भी।

१. वाई० डब्ल्यू० सी० ए० के सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए, जो कि उटकमंडमें २९ अप्रैलसे ८ मई तक होनेवाला था।

५९०. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम मुझे नियमपूर्वक पत्र भेजती रहती हो। लेकिन उनमें तुम मुझे केवल मेरे ही विषयमें लिखती हो। और अब तुम्हें मुझे अपने बच्चोंके बारेमें बताना चाहिए, और उन्हें तुम जो अनेक बातें सिखाती हो और कैसे सिखाती हो, इस सबके बारेमें लिखना चाहिए। तुम कहीं ऐसा तो नहीं समझती कि मुझे इन बातोंमें कोई दिलचस्पी नहीं होगी। अवश्य होगी, क्योंकि वे आश्रमके बच्चोंके लिए उपयोगी हो सकती हैं। और तुम एक अध्यापिकाके रूपमें मुझे यह भी बताना कि यदि आश्रमके बच्चे तुम्हें सौंप दिये जायें तो तुम उनका और उनके लिए क्या करोगी?

हम दोनोंकी ओरसे सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०४२९ से भी।

५९१. पत्र : एस्थर मेननको

२ मार्च, १९३३

मेरी प्यारी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। इसे मैं मारियाको भेज रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि इसे पाकर वह बहुत खुश होगी। सम्भवतः तुमने उसे भी उसी समय पत्र लिखा जिस समय कि मुझे लिखा। तथापि यह समाचार कि तुम शीघ्र ही उससे जाकर मिलोगी उसको बासी नहीं प्रतीत होगा।

मैंने पिछले हफ्ते तंगईको एक पत्र[1] लिखा था और तुम्हें केवल एक पंक्ति लिखी थी। मुझे उम्मीद है कि अपने नाम एक पत्र पाकर जिसके लिफाफेपर उसका पता लिखा हुआ था, उसने बहुत गर्वका अनुभव किया होगा और मुझे यह भी उम्मीद है कि उसे जब वह पत्र मिला होगा तब उसने मुझे हजारों चुम्बन भेजे होंगे।

चूँकि मैं 'हरिजन'में अपने हृदयको उंड़ेल ही रहा हूँ इसलिए मुझे लगता है कि मुझे अपने बढ़ते हुए परिवारके सदस्योंसे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

१. देखिए "पत्र: तंगई मेननको", २३-२-१९३३।

एक बड़े हस्पतालमें इतना सब अनुभव प्राप्त करनेके बाद मेननको सर्जरीका एक विशिष्ट विशेषज्ञ बनकर लौटना चाहिए।

हम सबकी ओरसे प्यार और बच्चोंको चुम्बन,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (नं० १२०) से; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९९-१०० भी

५९२. पत्र : डब्ल्यू० टयूडर ओवेनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

यह आपकी बड़ी कृपा है कि आपने मुझे याद किया और अपना प्रबन्ध[1] भेजा। मैं आपसे सहमत हो सकूँ या न हो सकूँ, लेकिन मै जानता हूँ कि आप हमेशा जो-कुछ भी कहते हैं वह उपयोगी और मौलिक होता है।

जेलमें जो स्वाभाविक प्रतिबन्ध होते हैं, उनको देखते हुए आप मुझसे अपने प्रबन्धके राजनीतिक पहलूपर चर्चा करनेकी अपेक्षा नहीं करेंगे। इसलिए मुझे आपसे केवल यही कहना है कि मैं आपके प्रबन्धको ध्यानके साथ और सहानुभूतिपूर्वक पढ़ूँगा तथा उसके प्रति कोई पूर्वग्रह नहीं रखूँगा। मेरा अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं है। मेरा खयाल है कि मेरा दिमाग एक वैज्ञानिकका दिमाग है। मैं हमेशा किसी भी प्रश्नको प्रत्येक पहलूसे देख जानेका प्रयत्न करता हूँ और मुझमें इतना विवेक और साहस है कि अपनी भूलोंका पता लगते ही मैं उन्हें स्वीकार कर लेता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४२३) से।

१. "इंडिया ऐट द क्रॉस रोड्स"।

५९३. पत्र : जॉन रोमेलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र[1] और 'रीजेनेरेशन' नामक आपकी पुस्तकके लिए धन्यवाद। मैं इसको सरसरी तौरपर देख गया हूँ, लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि इसमें मुझे कोई ऐसी चीज नहीं मिली जो मुझे जँचे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जॉन रोमेल
निआगरा फॉल्स
न्यूयार्क
४१११, सॉण्डर्स रोड
लेविस्टन

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४२५) से।

५९४. पत्र : नेली बॉलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय नेली[2],

अगली बार जब तुम्हारा मन मुझे पत्र लिखनेका हो तब अपना नाम साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना। तुम्हारे हस्ताक्षर पढ़नेपर मुझे तुम्हारा नाम 'मेल बुल' प्रतीत होता है। मैं 'बुल'को बड़ी आसानीसे 'बॉल' पढ़ सकता हूँ, लेकिन एस्थर मुझे उलझनमें डाल देती है। उसने तुम्हारे नामके हिज्जे साफ-साफ 'नेली बॉल' किये हैं। इसलिए मैंने तुम्हारे सन्दिग्ध 'मेल'की बनिस्बत उसके स्पष्ट हिज्जेवाले शब्दको अपनाया है। इसलिए यदि मैंने कोई भूल की हो तो इसके लिए तुम एस्थरको ही दोषी ठहराना। लेकिन मैं देखता हूँ कि तुम विशाल हृदयवाली एक नन्हीं दार्शनिक हो। अतएव तुम कहोगी, 'नाममें क्या रखा है? महत्त्व तो आत्माका है।" और चाहे मैं तुम्हें मेल कहूँ अथवा नेली कहूँ, लेकिन मेरी आत्मा अपनी नन्हीं

१. जिसमें रोमेलने गांधीजीसे कहा था कि वे "कोई नया उपवास" शुरू न करें तथा "उनका पहनावा और उनके काम करनेका ढंग" उनके विचारोंसे मेल नहीं खाता है।

२. बरमिंघमकी।

बीमार बिटिया, यानी तुम्हारे ही पास है। लेकिन तुमने जिस ढंगसे अपने बारेमें लिखा है, उसमें मैं एक अत्यावश्यक परिवर्तन करने जा रहा हूँ। तुम्हारा शरीर तो निस्सन्देह रोगसे जर्जर हो गया है, लेकिन लगता है तुम्हारी आत्मा शरीरपर विजय पाकर उससे ऊपर उठ गई है। इसलिए मैं तुम्हें मेरी 'नन्ही-सी बीमार बिटिया' के रूपमें नहीं, बल्कि 'ईश्वरमें दृढ़ विश्वास रखनेवाली मेरी नन्ही-सी बिटिया' के रूपमें याद करना चाहता हूँ। अब चूँकि सी० एफ० एन्ड्रचूज वहाँ है, इसलिए कभी-कभी नही बल्कि अक्सर ही वह तुम्हारे पास आया करेंगे और तुम्हें उनसे मिलनेका सुख प्राप्त होता रहेगा। उनके अन्दर तुम्हारे-जैसे लोगोंको ढूँढ़ निकालनेकी और जब भी हो सके उनसे मिलते रहनेकी अद्भुत क्षमता है। सत्ताधारी लोगोंसे मिलने जाना उनके हृदयपर भार-स्वरूप होता है। तुम्हारे और मेरे-जैसे लोगोंसे मिलनेसे उन्हें हमेशा खुशी होती है। उन्हें ऐसे लोगोके संसर्गसे बल प्राप्त होता है जिन्हें संसार दीन और असहाय कहता है तथा जो स्वयं भी अक्सर अपनेको ऐसा ही मानते हैं, हालाँकि उनका ऐसा सोचना गलत है। लेकिन अब मुझे पत्र समाप्त कर देना चाहिए।

तुम अपने डॉक्टरको मेरा प्यार देना और उनसे कहना कि वह मुझे तुम्हारे बारेमें पत्र लिखें।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४२७) से।

५९५. पत्र : ऐन मारी पीटरसनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मारिया,

इस पत्रके साथ मै एस्थरका पत्र भेज रहा हूँ जिसे तुम निस्सन्देह पसन्द करोगी और उसकी कद्र करोगी। हम सब शरद ऋतुमें उन लोगोंके आनेकी प्रतीक्षा करेंगे और उनके आनेसे मुझे बहुत राहत मिलेगी।

मेरी बारने मुझे लिखा था कि तुम्हारी कश्मीर-यात्रामें वह शायद तुम्हारे साथ जाये। मुझे उम्मीद है, तुम कश्मीर जा रही हो और उससे तुम्हे लाभ होगा तथा वहाँ तुम्हें स्वास्थ्यप्रद हवा मिलेगी और तुम्हारे थके हुए मन और शरीरको आराम मिलेगा।

आशा है, तुम्हें 'हरिजन' की प्रति नियमपूर्वक मिल रही होगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३१) से।

५९६. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

२ मार्च, १९३३

प्रिय म्यूरियल,

मैं जानता हूँ तुम हमेशा भ्रमण करती रहोगी। यह तुम्हारे कार्यका एक अंग है, इसलिए मुझे यह सब इतना भयंकर नहीं लगता जितना कि तुम समझती हो। आशा है, तुम्हारी नई पुस्तक उतनी असफल नहीं होगी जितनी कि पिछली पुस्तक। बेशक, जिन्होंने तुम्हारी पुस्तकको[1] पढ़ा है वे ऐसा नहीं समझते कि उन्होंने उसे बेकार ही पढ़ा; लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं। तुमने कभी एक छोटे-से और विचित्र आदमीका आतिथ्य-सत्कार किया था, जो लोग इसके बारेमें कुछ नहीं जानना चाहते उन्हें तुम पुस्तक पढ़नेके लिए दोषी नहीं ठहरा सकतीं। लेकिन ऐसे हजारों लोग होंगे जो किंग्सले हॉल और उपेक्षित गरीबोंकी सेवाके लिए समर्पित चिल्ड्रेन्स हाउस (बाल भवन)की कहानीको जानना चाहेंगे। तुम्हें इस बातका दुःख क्यों है कि जॉन मॉरिसको एक पुराने कारखानेमें भेजा जा रहा है? क्या वहाँ उसके साथ हस्पतालके समान दयापूर्ण व्यवहार नहीं किया जायेगा? वहाँ स्थान कहाँ है? मेरा खयाल है तुम उससे अक्सर ही मिलने जाओगी अथवा वह कारखाना तुम्हारे घरसे बहुत दूर है? जब तुम उससे मिलो तब तुम उसे मेरा प्यार देना। मैं देखता हूँ कि तुमने अट्ठारहवें वर्षमें प्रवेश किया है और साबरमती आश्रम भी अट्ठारहवें वर्षमें चल रहा है। हमें आशा है कि दोनों ही संस्थाओंके नाम भगवानकी पुस्तकमें सुन्दर शब्दोंमें लिखे जायेंगे अर्थात् दोनों ही अपने कार्योंसे भगवानके मनको भायेंगे। मुझे खुशी है कि देवीके[2] पास अब हल्का काम है।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३२) से।

१. सम्भवतः १९३२ में प्रकाशित **इन्टरटेनिंग गांधी** नामक पुस्तक।

२. एडा वेस्ट।

५९७. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिगको

२ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

मुझे आपके पत्र काफी नियमपूर्वक मिलते रहते हैं। आप मुझे निस्संकोच होकर जब चाहें तब पत्र लिख सकती हैं, बशर्ते कि आप हमेशा मुझसे जल्द उत्तर पानेकी अपेक्षा न रखें।

मुझे उम्मीद है कि यह पत्र जब आपको मिलेगा, उससे पहले ही आप अपनी चोटके प्रभावसे मुक्त हो चुकेंगी।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि आपके पास सारे उपनिषद् हैं। उनमें से कुछ उपनिषद् आपको नीरस जान पड़ेंगे, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि आप उस मुख्य सिद्धान्तको समझनेमें भूल नहीं करेंगी जो समस्त मुख्य उपनिषदोंमें मिलता है। लेकिन कोई भी सिद्धान्त, भले ही वह कितना भी उदात्त क्यों न हो, हमें अपनी मानसिक शक्ति और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करनेमें मदद नहीं देता। यह तो केवल हृदयसे निकलती हुई अनवरत प्रार्थना और अत्यन्त निष्काम भावसे की गई सेवासे ही सम्भव है।

हृदयसे आपका,

गर्ट्रूड एस० केलर-चिग
विला लाविजए
सिगनल्सला लुजेन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३३) से।

५९८. पत्र : मु० रा० जयकरको[1]

२ मार्च, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[2] यदि आप अपने ऊपर ज्यादती किये बिना अपनी राय दे सकें तो मैं उसकी कद्र करूँगा। प्रतिदिन पैदा होनेवाली नई-नई दिक्कतोंके वीच मुझे जो भी मदद मिलती है, वह मूल्यवान है।

१. गांधीजी ने इस पत्रके अनुच्छेद ३ और उसके बादके पाठसे बिल्कुल मिलता हुआ एक अन्य पत्र ३ मार्चको राजगोपालाचारीको भी लिखा था।

२. जयकरने लिखा था: "मुझे इस बातपर सन्देह है कि आप मेरी राय अब भी जानना चाहते हैं अथवा नहीं।"

मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी खोई हुई शक्ति तेजीसे प्राप्त करते जा रहे है।

पता नहीं आपने रावबहादुर राजाके[1] विधेयकपर 'मद्रास लॉ रिव्यू' के मतको पढ़ा है अथवा नहीं। मैं आपके अवलोकनार्थ उसे संलग्न कर रहा हूँ। आप मुझे बताइयेगा कि क्या आप अब भी अपने मतपर कायम हैं। मेरा अपना विचार है कि श्री राजाके विधेयकका समर्थन किया जाना चाहिए।

अपने तारके उत्तरमें आपको मेरा तार मिला होगा।[2] फिलहाल हमें सफलता मिले अथवा न मिले, लेकिन हमें विधेयकोंके पक्षमें लोकमत तैयार करते रहना चाहिए और इन विधेयकोंको पास करानेके लिए जो प्रयत्न हो सके, करते रहना चाहिए। हम २७ तारीखको असफल रहे, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं।

आशा है, मैं 'हरिजन' के लिए जो लिख रहा हूँ उसे आप ध्यानके साथ पढ़ रहे हैं। यह किसी अन्य कार्यकर्ताके साथ-ही-साथ आपको भी लिखी हुई मेरी साप्ताहिक चिट्ठी है। मैंने मन्दिरोंके बारेमें जो कहा है उसे आप पढ़ लीजिएगा।

मालवीयजी से मिलनेके लिए मथुरादास निश्चय ही बनारस गया होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मु० रा० जयकर
बार-एट-लॉ
'द आश्रम'
विन्टर रोड
मलाबार हिल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३४) से।

१. एम० सी० राजा; देखिए "पत्र: एम० सी० राजाको", २५-२-१९३३ तथा "रावबहादुर एम० सी० राजाका विधेयक", ४-३-१९३३ भी।

२. अनुमानतः यह तार वैसा ही रहा होगा जैसाकि गांधीजी ने २८-२-१९३३ को चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको भेजा था।

५९९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२ मार्च, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे श्री एम० आई० डेविडकी ओरसे २,५०० रुपये प्राप्त हुए हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, उनकी योजनाके लिए मैंने जो अपील की थी, उसके उत्तरमें प्राप्त होनेवाली यह पहली रकम है। श्री डेविड अपना नाम गुप्त रखना चाहते हैं। मैं यह रकम तुम्हें बीमाशुदा रजिस्टर्ड डाकसे भेज रहा हूँ। फिलहाल तुम इस रकमको डेविड-योजनाके खातेमें रख लेना। इसे जमा करवा देना बेहतर होगा ताकि इसपर तुरन्त ब्याज मिल सके। हमें एकदम इस रकमको खर्च करनेकी जरूरत नही है, और मैं उनके उस पत्रकी प्रतीक्षामें हूँ जिसको लिखनेका उन्होंने वादा किया है।

मैं समझता हूँ कि अब हम कुछ छात्रवृत्तियोंकी घोषणा कर सकते हैं। तुमने इस योजनाको आशीर्वाद दिया था, बम्बई बोर्डने इसे पसन्द किया था और यदि यह योजना केवल एक दाताके ही, और वह भी उसके प्रणेता द्वारा धन दिये गये चन्देके साथ ही, रुक जाती है तो यह एक छोटी-मोटी दुर्घटना होगी। इसलिए तुम लाला श्रीराम और अन्य लोगोंसे कमसे-कम इतनी-इतनी तुच्छ राशियाँ ही दान देनेके लिए कहो और मुझे कुछ नाम भेजो, जिनकी मैं घोषणा कर सकूँ।

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्धमें मैंने जो-कुछ विचार प्रकट किये हैं, मेरा खयाल है कि वियोगी हरि और अमृतलाल ठक्कर उससे तुम्हें अवगत करवा चुके हैं। उसमें काफी सुधार किये जानेकी जरूरत है। तुम तो स्वयं उसपर ध्यान देनेवाले थे। कृपया उसपर ध्यान देना।

उम्मीद है, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा चल रहा है। क्या नाककी तकलीफ तुम्हें परेशान कर रही है? कर रही हो या न कर रही हो, लेकिन इसका इलाज तुरन्त किया जाना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

मैंने जिस चुनाव बोर्ड अथवा कमेटीका सुझाव दिया था उसका गठन जितनी जल्दी किया जाये उतना अच्छा है।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४३५) से। सी० डब्ल्यू० ७९२९ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

६००. पत्र : पी० जे० एण्डर्सनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'द सीक्रेट ऑफ द युनिवर्स' की एक प्रतिके लिए धन्यवाद। हालाँकि आपने कहा है कि मैं आपकी पुस्तकको पढ़ चुकनेके बाद ही आपके पत्रका उत्तर दूँ, लेकिन मैं आपको दुविधामें नहीं रखना चाहता क्योंकि इस समय मेरे पास जो काम है उसमें मैं इतना ज्यादा व्यस्त हूँ कि कह नहीं सकता कि मैं आपकी पुस्तक कब पढ़ पाऊँगा।

हृदयसे आपका,

श्री पी० जे० एण्डर्सन
३० इवान्स वे, बोस्टन, मैसाचुसेट्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३७) से।

६०१. एक पत्र

२ मार्च, १९३३

तुमने आशातीत सेवा-भावना पैदा कर ली मालूम होती है, इसलिए मुझे बिल्कुल संकोच नहीं रहा। तुम्हारी वृत्ति सदा ऐसी ही बनी रहे। तुम कोई मामूली जिम्मेदारी सिरपर नहीं ले रहे हो। तुम्हारे हाथमें दादाकी लाज है। हिन्दू-धर्मकी कहो तो वह भी बहुत अंशोंमें है। यदि तुम्हारा यह जीवन शोभास्पद बना, तो निन्दा करनेवाले भी स्तुति करने लगेंगे।

मैं मौजूद न रहूँ तो इसका दुःख न मानना। मेरा शरीर यहाँ होगा, पर आत्मा तो तुम्हारे पास होगी। वह तुम दोनोंको देखा ही करेगी और तुम्हारी रखवाली करती रहेगी।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १६८

६०२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२ मार्च, १९३३

गांधीजी ने एक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि यदि मुझे आवश्यक अनुमति प्रदान कर दी गई तो उस अनुमतिकी शर्तोंको यथावत देख जानेके बाद मैं प्रसन्नतापूर्वक राजनीतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिकी घोषणा करूँगा। लेकिन फिलहाल मैं इस बारेमें तनिक भी विचार नहीं कर रहा हूँ। राजनीति मेरे ख्यालोंसे बाहर है। मै जान-बूझकर जो ऐसा कर रहा हूँ उसके दो कारण हैं: पहला तो यह कि इस समय मेरे हाथमें जो काम है, और जिसको करनेकी मुझे अनुमति दी गई है, उसके होते हुए मैं इसका भार अपने कन्धोंपर नहीं लेना चाहता; दूसरा कारण यह है कि मै भूलसे भी ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहता जो सरकारके साथ विश्वासघात करनेके समान हो। इस समय मेरी मानसिक स्थिति ऐसी है कि मैं राजनीतिपर कोई चर्चा कर ही नहीं सकता। गांधीजी ने आगे कहा:

ईश्वरने मुझे यह अद्‌भुत वरदान दिया है।

क्या इसका अर्थ यह हुआ कि आप समकालीन राजनीतिक घटनाओंमें कोई रुचि नहीं ले रहे हैं? गांधीजीने उत्तर दिया:

मैं रुचि तो अवश्य ले रहा हूँ, लेकिन उतनी ही जितनी कि एक विदेशी लेगा। मैं उन्हें सरसरी निगाहसे देख तो जाता हूँ, लेकिन उनपर गम्भीरतासे विचार नहीं करता। बेशक, अगर प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है, और यदि मुझे बोलनेकी अनुमति दी जाती है, तो मैं बिना किसी दिक्कतके नीति और मूलभूत सिद्धान्तोंके प्रश्नोंपर बोल सकता हूँ।

उन्होंने आगे कहा कि मेरे दिमागके जो तत्त्व आजकल छुट्टीपर हैं, वे फिर सक्रिय हो उठेंगे।

यह पूछे जानेपर, कि क्या उनकी रायमें हरिजन-आन्दोलनने सविनय अवज्ञा परसे लोगोंका ध्यान हटा नहीं लिया है, गांधीजी ने उत्तर दिया:

यकीनन यह एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय हर कोई व्यक्ति स्वयं कर सकता है, क्योंकि उसके सामने सारे तथ्य मौजूद हैं। यह तो ठीक वैसी ही बात हुई कि कोई व्यक्ति मुझसे पूछे कि हिमालय कितना ऊँचा है, जबकि उसकी ऊँचाई हम दोनों ही देख रहे हैं। एक कहेगा २३,००० फुट है और दूसरा कहेगा २५,००० फुट है।

जब गांधीजी से यह पूछा गया कि उनके विचारमें हिमालयकी ऊँचाई कितनी है, गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया :

पूरे २९,००० फुट।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-३-१९३३

६०३. पत्र : के० रामचन्द्रको

३ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र[1],

तुम्हारे तारके लिए धन्यवाद। लेकिन मैंने उसका उत्तर नहीं दिया, क्योंकि इस समय मैं तुमसे यहाँ आनेके लिए नहीं कहूँगा। तथापि, मैं चाहूँगा कि तुम्हें नी० के बारेमें जो-कुछ भी मालूम हो सो तुम मुझे लिख भेजो। तुम्हारे लिए ऐसा करना मुश्किल नहीं होना चाहिए, हालाँकि तुम इसे पेचीदा मामला समझते हो। तब, यदि जरूरी हुआ, तो मैं तुमसे आनेके लिए कहूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४४०) से।

६०४. पत्र : मु० रा० जयकरको

३ मार्च, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

आपने अपनी राय[2] देते हुए जो दो पत्र भेजे हैं उनके लिए आपका धन्यवाद। इससे मुझे बहुत ज्यादा मदद मिलेगी। मैं चाहूँगा कि आप विधेयकोंको ध्यानमें रखें और आपसे जो बन सके, सो करें।

उम्मीद है, आपने पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लिया होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४४५) से।

१. दीन सेवा संघ, बंगलोरवाले।
२. जो ११-३-१९३३ के **हरिजन** में प्रकाशित की गई थी।

६०५. पत्र : दिवाकर सिंहको

३ मार्च, १९३३

प्रिय दिवाकर सिंह,

मुझे खुशी है कि तुमने मुझे पत्र लिखा। मैं पहले ही अखबारोंमें तुम्हारे कामके बारेमें पढ़ चुका हूँ। यदि तुम इसमें लगे रहोगे तो मुझे पूरा यकीन है कि कार्य सफल होगा। यह जितना चुपचाप ढगसे किया जायेगा उतना ही अच्छा होगा। तुम कृपया अपने कार्यकी प्रगतिकी सूचना देते रहना। अभी इस समय नी० देवी भी यहाँ है और मैंने तुम्हारा पत्र उसको भी दिखाया है। तुमने जो शुरुआत की है उसपर वह खुश है, और तड़क-भड़कपूर्ण प्रदर्शनसे दूर रहनेकी आवश्यकताके मेरे विचारसे वह पूर्णतया सहमत है। उसका यह भी कहना है कि यह बात वह अपने कटु अनुभवके आधारपर कह सकती है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

कुँवर दिवाकर सिह
३ कैनिंग रोड
इलाहाबाद

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६५५) से; सौजन्य : नगरपालिका संग्रहालय। इलाहाबाद एस० एन० २०४४७ से भी

६०६. पत्र : आनन्द टी० हिंगोरानीको

३ मार्च, १९३३

प्रिय आनन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। उनका कहना है कि स्वप्नोंका परिणाम विपरीत होता है। इसलिए स्वाभाविक ही वहाँ कोई नहीं था और न कैदी था और न ही कोई मुकदमा।

हमारे सामने जो कर्तव्य है, उसके बारेमें हम जितना अधिक सोचेंगे हमें उससे उतना ही अधिक सन्तोष भी होगा। तत्कालीन कर्त्तव्यमें निमग्न हो जाना ब्रह्मचर्यकी तरह शान्तिदायक और तेजवर्धक होता है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

६०७. पत्र : प्रभुलालको

३ मार्च, १९३३

भाई प्रभुलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। धैर्य और दृढ़तापूर्वक काम करोगे तो अन्ततः सफलता मिलेगी ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१३३) से।

६०८. पत्र : लीलावतीको

३ मार्च, १९३३

चि० लीलावती,

तेरा पत्र मिला। तू सोमवारको दो बजे आना। तू मिलेगी ही, इसलिए ज्यादा नहीं लिखता। नारणदासका पत्र इसके साथ है। सारे प्रश्न लिखकर लाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३२४) से।

६०९. 'कोई उल्लंघन नहीं'

मद्रास सरकारके भूतपूर्व कानून सदस्य, श्रीयुत टी० आर० वेंकटराम शास्त्रीने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर जो महत्त्वपूर्ण मत व्यक्त किया है, उसे हमने दैनिक अखबारोंसे लिया है। उनका मत निम्नलिखित है[1]:

श्रीयुत केलकरका समझौता-प्रस्ताव

श्रीयुत केलकर मेरे अनुरोधपर कृपा करके मुझसे मिलने आये और उन्होंने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर मुझसे बातचीत की। मैं यह जाननेके लिए उत्सुक था कि प्रस्तावित विधेयकके बारेमें उनकी क्या राय है। उन्होंने कहा कि अनेक वर्षोंसे उनकी यह मान्यता रही है कि ऐसे मामलोंमें जहाँ कानून द्वारा ही चीजें ठीक की जा सकती हैं, फिर भले वह मन्दिर-प्रवेशका सवाल क्यों न हो, कानून बनाये बिना कोई

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकसे किसीके सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारोंका उल्लंघन नहीं होता।

चारा नहीं। न्यायाधीशों द्वारा बनाये गये कानूनके अनुसार सार्वजनिक हिन्दू मन्दिरोंके न्यासी हरिजनोंको मन्दिरमें प्रवेश न करने देनेके लिए बाध्य हैं। इस कानूनके विरुद्ध लोकमत चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो, लेकिन वह इस कानूनको मिटा नहीं सकता। लोकमत कानूनको बदलनेकी माँग तो कर सकता है, लेकिन हरिजनोंको मन्दिरमें प्रवेश करने देनेके सम्बन्धमें कोई कानून नहीं बना सकता।

अतएव, श्री केलकरने जहाँतक यह बात स्वीकार की कि श्रीयुत रंगा अय्यरके प्रस्तावित विधेयक-जैसे कानून बनाना जरूरी है, वहीं उन्होंने कहा कि वास्तविक रूपमें मन्दिर-प्रवेश तो परस्पर मैत्रीपूर्ण ढंगसे किसी समझौते द्वारा ही सम्भव हो सकता है। उन्हें इस बारेमे तनिक भी शंका नही है कि हरिजनोको मन्दिरोंमें ठीक उन्ही शर्तोपर प्रवेश करने दिया जाना चाहिए जिन शर्तोपर सवर्ण हिन्दुओको करने दिया जाता है। लेकिन हो सकता है कि हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेश करने देनेके पक्षमें लोकमत अभी पूरी तरह तैयार न हो। यदि ऐसा है तो सवर्ण हिन्दुओंको भी उन अधिकारोंका त्याग कर देना चाहिए जो हरिजनोंको नहीं मिल सकते। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि सब सार्वजनिक मन्दिरोंमें एक जँगला बनवा दिया जाना चाहिए जिसके आगे उस पंडितके अलावा, जो पूजाकी विधि सम्पन्न करता है, कोई अन्य व्यक्ति न जा सके। इसका अर्थ यह होगा कि कुछ मन्दिरोमें, जहाँ इस समय सवर्ण हिन्दू गर्भगृहमें जाकर मूर्तिका स्पर्श कर सकते हैं, यदि वे लोग हरिजनोंको भी वैसा ही करने देनेको तैयार न हों तो स्वयं उन्हें भी अपने इस अधिकारको छोड़ना होगा। उत्तरमे मैंने उनसे कहा कि मुझे ऐसे समझौतेपर किसी किस्मका एतराज नही होगा, बशर्ते कि इसको ईमानदारीके साथ व्यवहारमें लाया जाये। हमारे इस अशोभनीय घरेलू झगड़ेका निपटारा जल्दसे-जल्द हो जाये तो मुझे इससे ज्यादा खुशी और किसी चीजसे नही होगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१०. कुमायूँके हरिजनोंकी माँग

हल्द्वानीसे एक हरिजन भाईने अपने पत्रमें शिकायत की है कि उसके जिलेमें सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनोंके लिए कुछ नहीं किया जा रहा है। यह शिकायत इस बातकी सूचक है कि सितम्बरके प्रस्तावोंका सन्देश हरिजन जनतातक पहुँच गया है और इसलिए वे हमसे बड़ी-बड़ी चीजोंकी अपेक्षा कर रहे हैं। हरिजन सेवक संघके प्रान्तीय बोर्डोको अपने कार्यका इस तरह गठन करना होगा जिससे कि वे सुदूर गाँवोंमें पहुँच सकें और हरिजनोको बता सकें कि अस्पृश्यताके दानवसे निपटनेके लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६११. संयुक्त अथवा पृथक्-पृथक्?

पत्र-लेखकोंका सुझाव है कि फिलहाल हरिजनोंके लिए अलग मन्दिर, स्कूल, कुएँ, आदि होने चाहिए। यदि इस सुझावको समान रूपसे स्वीकार कर लिया जाता है तो अस्पृश्यताको चिरस्थायी बनानेका यह शायद सबसे आसान तरीका साबित होगा, और तब तो हमे उनके लिए पृथक् निर्वाचन-प्रणाली और चुनावोंकी भी व्यवस्था करनी होगी। और इसी पृथक् निर्वाचन-प्रणालीको टालनेके विचारसे मैंने निश्चय ही अपनी जानकी बाजी न लगाई होती। मैंने जो जान की बाजी लगाई, और जो अब भी लगी हुई है, वह अपने धर्ममें वर्तमान अप्राकृतिक अस्पृश्यताको दूर करनेके उद्देश्यसे लगाई थी। मैंने पृथक् निर्वाचन-प्रणालीका विरोध इसलिए किया था क्योंकि इस प्रणालीके लागू होते ही अस्पृश्यताके नासूरको खत्म करनेके सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते। पृथक् निर्वाचन और पृथक् चुनावोंका अर्थ होता कि सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अपने अपराधका कारगर ढगसे प्रायश्चित्त करनेका अवसर ही खत्म हो जाता। यरवडा-समझौतेके द्वारा ऐसा करना सम्भव है, फिर चाहे पश्चात्ताप करनेवाले लोग अल्तमतमें हों अथवा बहुमतमे। हिन्दू-धर्ममे आज जरबदस्त उथल-पुथल मची हुई है, और हमारे यहाँ स्पष्ट रूपसे दो विभिन्न पक्ष अपने-अपने उद्देश्योंको लेकर सक्रिय हो उठे है; और ये दो तथ्य निश्चित रूपसे यरवडा-समझौतेके औचित्यको सिद्ध करते हैं। इसके फलस्वरूप या तो अब अस्पृश्यताका ही नाश होगा और या फिर सुधारक ही समाप्त हो जायेगा। यदि सुधारक अपनी प्रतिज्ञाके प्रति सच्चा है तो उसके सामने और कोई रास्ता नहीं है।

इसलिए पृथक् मन्दिरों और अन्य पृथक् सेवाओंकी बातको सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाना चाहिए। हमें चाहिए कि हम इस सुझावकी खामियोंपर विचार करें।

जबतक मन्दिरोंमे हरिजनोंको प्रवेश करने देनेसे सम्वन्धित कानूनी प्रतिबन्ध दूर नहीं हो जाता तबतक मौजूदा मन्दिरोंको किसी बड़े पैमानेपर खोलनेका काम ठप रहेगा। लेकिन सुधारकी प्रगतिको तो रोका नही जा सकता। इस कामको करनेके तीन तरीके हैं।

(क) जहाँ लोकमत और न्यासी लोग स्पष्ट रूपसे मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोलनेके पक्षमें हो, वहाँ न्यासी अपने अधीनस्थ मन्दिरोको खोल सकते है, और अपने विरुद्ध अदालत द्वारा निषेधाज्ञा जारी किये जानेका खतरा उठा सकते है।

(ख) जिन निजी मन्दिरोंके मालिक हरिजनोंके लिए अपने मन्दिरोंके द्वार खोलनेको तैयार हों, वे निजी मन्दिर खोल दिये जाने चाहिए।

(ग) धनवान और आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले लोग नये मन्दिर बनवा सकते हैं जहाँ पूरी पवित्रताके साथ पूजा की जाती हो। (मैंने यह बात जान-बूझकर इसलिए कही है क्योंकि मै समझता हूँ कि मौजूदा मन्दिरोंकी हालत अच्छी नहीं है) इन

मन्दिरोंका निर्माण विशेष रूपसे हरिजनों और साथ ही अन्य हिन्दुओंके लिए किया जाना चाहिए। इसलिए ये मन्दिर ऐसे स्थानोंपर होने चाहिए जहाँ हरिजनोंको जानेमें सुभीता हो।

सामान्य स्कूल और कुएँ भी ऐसे स्थानोंपर खोले जाने चाहिए जिन स्थानों पर मौजूदा स्कूल और कुएँ आदिका उपयोग हरिजन लोग पड़ोसियोंके हिंसापूर्ण और सफल विरोधके कारण इस समय नहीं कर सकते। लोकमत परिपक्व हो जानेतक आवश्यक सेवाओंके मामलेमें हरिजनोंके प्रति उपेक्षा नही बरती जा सकती। यदि हिन्दुओमें एक ऐसा सुजाग्रत समूह हो जो हरिजनोंको अपने बन्धु-बान्धवोकी तरह मानता हो तो वे लोग हरिजनोंकी हालत सुधारनेके लिए लोकमतके तैयार होनेतक रुके नही रहेंगे, बल्कि काम करना शुरू कर देंगे। वे अपने इन नये भाई-बान्धवोंको शुद्ध जल और अच्छी शिक्षा दिलानेके लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

हरिजन बच्चोंके लिए ऐसे स्कूल, जिन्हें प्रारम्भिक स्कूल कह सकते हैं, खोले जानेके पक्षमें एक विशेष भावना काम कर रही है। हमारे एक सहयोगी कार्यकर्ता हरिजनोंके बीच जाकर रहने लगे हैं, और उन्होंने जो कारण बताया है वह उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत करना ज्यादा अच्छा होगा[1]:

> **मैं एक हरिजनके घरके बरांडेमें अपना स्कूल चलाता हूँ। मेरे कुछ विद्यार्थी धूलसे सने होते हैं। . . . इसलिए मेरा सबक इस बातसे शुरू होता है कि वे अपने-आपको किस तरह साफ रख सकते हैं, उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए। . . . वे लोग झूठ भी सफाईसे बोलना नहीं जानते। उनमें से कुछ विद्यार्थी मेहनती और समझदार हैं। मै उनके साथ खेलता हूँ और कदाचित् मैं उन्हें जितना-कुछ सिखाता हूँ उससे अधिक उनसे सीखता हूँ। . . . मैं अपनी कक्षा प्रातःकाल शुरू कर देता हूँ। मै स्कूलसे करीब एक फर्लांगपर स्थित हरिजन धर्मशालामें सोता हूँ। . . . जब वे बुरा नहीं मानते तब कभी-कभी मैं स्वभावतः उनके घरोंके अन्दर भी जाता हूँ। उनमें से कई घर तो अँधेरी काल-कोठरियों सरीखे हैं जिनमें लोग इस तरह ठँसे हुए रहते हैं जैसे दियासलाईकी डिब्बियोंमें तीलियाँ। . . . लेकिन मै तो नौसिखिया हूँ। मै अपनी सीमाओंको जानता हूँ। . . . मैं तो सच्चा वैष्णव बननेके लिए ईश्वरकी शर्तोंका पालन करनेकी तीव्र इच्छा रखता हूँ।**

यह तो असंस्कृत हरिजन बच्चोंकी क्या हालत है, उसका एक उदाहरण-मात्र है। हम इन सब बच्चोंमें से हरएकको स्वच्छता और सुन्दर ढंगसे जीनेकी शिक्षा देना चाहते हैं। हमारी इच्छा है कि ये सब बच्चे सामान्य सार्वजनिक स्कूलोंमें जाये। अतएव यदि हम उनके लिए ईमानदारीसे कुछ करना चाहते हैं तो उनके लिए प्रारम्भिक स्कूलोंका होना बहुत लाजिमी है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये है।

६१२. प्रश्नोंकी उलझाना

जात-पाँत-तोड़क-मण्डलके मन्त्रीने गत मासकी १८ तारीखको मुझे लिखा अपना पत्र दैनिक अखबारोंमें प्रकाशित किया है।

एक ओर तो उसने मुझे 'गम्भीर विचारक' कहकर मेरा सम्मान किया है, लेकिन उसी साँसमें उसने यह कहते हुए उस सम्मानको वापस ले लिया है कि:

> **आप यह बात देखनेमें असफल रहे हैं कि जाति-प्रथा अस्पृश्यताका मूल है और दोनों एक-दूसरेके बिना नहीं चल सकतीं।**

मैं जात-पाँत-तोड़क-मण्डलके मन्त्रीसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि उसने जो मेरी प्रशंसा की है, यदि वह सचमुच ईमानदारीसे की है तो उसे जाति-प्रथाके सम्बन्धमें कोई निश्चित धारणा नहीं बना लेनी चाहिए और अपनी कल्पनाके 'गम्भीर विचारक' के तर्कोंको सुनना व समझना चाहिए, लेकिन यदि उसने मुझे 'गम्भीर विचारक' इसलिए कहा है ताकि वह बता सके कि मैंने कितनी गम्भीर गलती की है, तो मुझे भय है कि मेरे तर्कोंका उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

तथापि, जैसीकि मेरी आदत है, मैं यह माने लेता हूँ कि मन्त्री महोदयने जो-कुछ कहा है वह पूरी ईमानदारीके साथ कहा है, और इसलिए मैं उसे तर्कोंसे समझानेकी कोशिश करूँगा। मैं उन लोगोंमें से हूँ जो यह समझते हैं कि जाति-प्रथा, जिस हदतक कि वह वर्णाश्रमके अंग्रेजी पर्यायके अर्थमें समझी जाती हो, श्रम अथवा कर्त्तव्य विभाजनके अलावा और कुछ नहीं है। कोई भी धार्मिक पुस्तक पढनेका कष्ट उठानेवाले किसी भी व्यक्तिको स्वयमेव इस बातका पता चल जायेगा। उस अर्थमें ये विभाजन अथवा वर्ण चार हैं, इससे अधिक नहीं हैं, और ये वर्ण सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं। एकका आधार विद्या है, दूसरेका शक्ति, तीसरेका धन और चौथेका सेवा। इन चारों श्रमोंको कर्त्तव्यके रूपमें जाना जाता है तथा धर्मकी रक्षा और प्रगतिके लिए प्रत्येक वर्णसे अपने-अपने कर्त्तव्यका पालन करनेकी अपेक्षा की जाती है। और जो कोई भी अपनी योग्यता और ज्ञानके आधारपर अपना कर्त्तव्य-पालन करनेका भरसक प्रयत्न करता है, वह बाकी लोगोंके समान ही, यदि वे लोग भी अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करते हों तो, श्रेयका भागी होता है। इसलिए श्रेय इस या उस वर्णका होनेमें नहीं है, बल्कि अपने निर्धारित कर्त्तव्यको करनेमें है। यहाँ अस्पृश्यताकी कोई बात नहीं है, और न किसीके श्रेष्ठ होनेका ही कोई प्रश्न उठता है। और यही वर्णाश्रम-धर्मका सार है। हो सकता है कि आज इसका अस्तित्व न हो, और है भी नहीं। तथापि, इससे मेरे इस तर्कका वजन कम नहीं होता कि वर्णाश्रम-धर्मकी मूल धारणामें ऊँच-नीचका भाव नहीं है और कार्योंके इस शुद्ध विभाजनका परिणाम कभी भी अस्पृश्यता नहीं हो सकता। यदि इस वर्णाश्रम-धर्मको इसके शुद्ध और सरल

स्वरूपमें पुनः प्रवर्तित नहीं किया जा सकता तो मेरे-जैसे लोग इसे एक बहुत दुखद बात समझेंगे। हो सकता है अन्य लोग इसका स्वागत करें, लेकिन वर्णाश्रम-धर्म और अस्पृश्यताको अपने-अपने गुण-दोषोंके आधारपर टिके रहने अथवा खत्म हो जानेका मौका दिया जाना चाहिए। दोनोंको मिला देनेसे गड़बड़ होगी, और इससे अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें, जिसे सब सुधारक और सनातनी लोग भी चाहते हैं, और भी कठिनाई होगी। इसलिए जाति-प्रथाका निवारण करनेवाले लोगोंको धीरजसे काम लेना चाहिए और अस्पृश्यता रूपी सामान्य तथा सर्वस्वीकृत बुराईको दूर करनेके लिए जो संघर्ष चल रहा है, उसमें जुट जाना चाहिए।

वर्णाश्रम, जैसाकि मैं उसे समझता हूँ, समाजकी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है। यह धार्मिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है, क्योंकि इस नियमको स्वीकार करनेवाले सम्पूर्ण समाजको आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करनेका पर्याप्त अवकाश रहता है। इस नियमका पालन करनेसे सामाजिक बुराइयाँ दूर हो जाती हैं और इससे गला काटनेकी आर्थिक प्रतिस्पर्धाकी सम्भावना भी पूरी तरह खत्म हो जाती है। और यदि ऐसा माना जाये कि यह नियम समाजके व्यक्तियोंके अधिकारों और विशेषाधिकारोंका नहीं, बल्कि उनके कर्त्तव्योंका निर्धारण करता है, तो फिर इस नियमके अधीन धनका यथासम्भव न्यायपूर्ण वितरण होता है, भले ही धन-वितरणकी यह व्यवस्था आदर्श न हो अर्थात् बिल्कुल समान वितरण न हो। इसलिए जब लोग इस नियमकी अवहेलना करके कर्त्तव्योंको विशेषाधिकार समझने लगते हैं और आत्मोन्नतिके लिए अपना मनपसन्द धन्धा चुननेकी कोशिश करते हैं तो उससे वर्णोंमें गड़बड़ी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप समाज विच्छिन्न हो जाता है। इस नियममें किसी स्त्री अथवा पुरुषको उसकी रुचिके विरुद्ध पैतृक धन्धा अपनानेके लिए विवश किये जानेका प्रश्न ही नहीं उठता; कहनेका तात्पर्य यह है कि उनपर इसके लिए बाहरसे कोई दबाव नहीं डाला जा सकता, जैसाकि शायद उन कई हजार वर्षोंके दौरान भी कोई दबाव नहीं था, जबकि बिना किसी अवरोधके वर्णाश्रमका पालन किया जाता रहा था। अभ्यास और शिक्षा द्वारा लोगोंने अपने कर्त्तव्योंको और इस नियमके न्यायको पहचान लिया था और वे स्वेच्छासे इसके अधीन रहते थे। आज सभी राष्ट्र इस नियमके प्रति अनभिज्ञ हैं और इस नियमका भंग कर रहे है और इसीसे वे कष्ट उठा रहे हैं। तथाकथित सभ्य राष्ट्र अभी उस स्थितिको प्राप्त नहीं हुए हैं जिसे वे सन्तोष और समभावके साथ देख सकते हों।

यह बात बड़ी आसानीसे देखी जा सकती है कि वर्णाश्रम-धर्मकी धारणा और अन्तर्जातीय भोज तथा अन्तर्जातीय विवाहमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। 'वेद' और 'महाभारत' अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाहके आख्यानोंसे भरे पड़े हैं। लेकिन यह तो पसन्दकी बात हुई, किसी धार्मिक नियमकी नहीं। किसी भी व्यक्तिको किसीके साथ खानेके लिए अथवा विवाह-सम्बन्ध करनेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, और न उससे ऐसी अपेक्षा ही की जा सकती है। इसमें सन्देह

नहीं कि सामाजिक रीतियाँ और रिवाज पनपेंगे, और अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तर्जातीय भोज आदिपर, कभी कठोरतासे तो कभी नरमीके साथ, नियन्त्रण करेंगे। लेकिन उन्हें धार्मिक आचरणोंकी संज्ञासे विभूषित करना गलत होगा। इसलिए रोटी-बेटीका व्यवहार अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका अंग नहीं बन सकता। जहाँतक ये चीजें सुधारके विषय हैं, मेरे विचारसे उन्हें अस्पृश्यता, बल्कि वर्णाश्रम-सम्बन्धी सुधारसे भी बिल्कुल अलग करके एक पृथक् ढंगका ही सुधारका विषय मानना चाहिए। जहाँतक वर्णधर्मसे भिन्न अनेकानेक जातियोंका सम्बन्ध है, वे वास्तवमें धन्धोंके अनुसार गठित संघ या समाज हैं, लेकिन उनपर रोटी-बेटीके व्यवहार-सम्बन्धी न्यूनाधिक कठोर ढंगके प्रतिबन्ध ऊपरसे लाद दिये गये हैं। जातियाँ इतनी अधिक हैं जितने कि वट-वृक्षमें पत्ते — वट-वृक्ष जिसकी एक-एक शाखा तना बनकर नई-नई शाखाएँ फेंकने लगती है। उनमें सतत परिवर्तन हो रहा है। बहुत-सी जातियाँ मिट गई हैं, और बहुत-सी नई जातियाँ पैदा हो रही हैं। कहनेकी जरूरत नही कि उनका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है और न धर्मसे ही कोई वास्ता है। आज सनातनी लोग जो इन्हें हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग मान रहे हैं, उसका कारण मेरे विचारसे इन संघोंकी कार्य-प्रणालीके सम्बन्धमें उनका घोर अज्ञान है। निस्सन्देह इन संघोंमें बहुत-से अवांछनीय रीति-रिवाज प्रविष्ट हो गये हैं, लेकिन इसका कारण सिर्फ यही है कि हिन्दू-धर्म जीवन्त और जीवनदायी धर्म नहीं रह गया है। हम लोग तो सिर्फ संचित पूंजीपर जी रहे हैं जो बड़ी तेजीसे घटती जा रही है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ४-३-१९३३

६१३. डेविड-योजना

मुझे यह घोषणा करते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि हरिजनोंकी उच्चतर शिक्षा-सम्बन्धी डेविड-योजनाके लिए हमें २५०० रुपयेकी रकम प्राप्त हुई है, और जहाँतक मेरी जानकारी है, यह इस योजनाकी तरफ प्राप्त होनेवाला पहला चन्दा है।

जैसाकि पाठकोंको याद होगा, यह राशि एक हरिजन विद्यार्थीपर पाँच साल तक होनेवाले खर्चके बराबर है। मुझे दुःख है कि मैं दानकर्ताका नाम[1] प्रकाशित नहीं कर सकता क्योंकि वे सज्जन अपना नाम गुप्त रखना चाहते हैं। मैं आशा करता हूँ कि इस घोषणासे अन्य लोगोंको भी प्रोत्साहन मिलेगा और वे अपने हिस्सेकी दानराशि भेजेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

१. एम० आई० डेविड; देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", २-३-१९३३।

६१४. रावबहादुर एम० सी० राजाका विधेयक

विधानसभा के सदस्य, रावबहादुर एम० सी० राजा ने मुझे अपने विधेयककी एक प्रति भेजी है। विधेयकका नाम है "१८९८ की दण्ड-विधान संहितामें आगे संशोधनके लिए।[1]"

आज हरिजन लोग जिन निर्योग्यताओंसे पीड़ित हैं, इस कानूनके द्वारा उन्हें उनसे कोई बहुत ज्यादा राहत मिलनेकी सम्भावना नहीं है। लेकिन यदि यह विधेयक पास हो जाता है तो मुझे इसका स्वागत करना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसे रिवाजके नाशका कारण बनेगा जिसे मैं बहुत बुरा समझता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१५. हिन्दी 'हरिजन'

अन्ततः 'हरिजन' का हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हो गया है। इसका पहला अंक गत मासकी २३ तारीख[2] को प्रकाशित हुआ था। इसका आकार उतना ही है जितना कि अंग्रेजी-संस्करणका है और इसमें पैसे लेकर विज्ञापन नहीं दिये जाते हैं। इसका वार्षिक चन्दा तीन रुपये आठ आने है, और एक प्रतिकी कीमत एक आना है। इसमें अन्य चीजोंके अलावा स्वामी सत्यदेव, सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मेरे लेख हैं, तथा हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्तकी एक छोटी-सी कविता है। और जैसाकि स्वाभाविक ही है, उसमें सम्पादककी कलमसे भी कुछ लिखा हुआ है, जोकि श्री वियोगी हरि हैं, और जिनसे हिन्दी साहित्य-संसार सुपरिचित है। श्री वियोगी हरिको अनेक वर्षोंसे हरिजनोंकी सेवा करनेकी धुन रही है। और कुछ समयके लिए उन्होंने एक पत्रिकाका सम्पादन और प्रकाशन भी किया था जिसका उद्देश्य अस्पृश्यता-निवारण था। इसमें सामान्य समाचार-सम्बन्धी स्तम्भ भी हैं। लेकिन समाचारके साधनोंमें बहुत सुधारकी जरूरत है। परन्तु इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस दृष्टिसे तथा अन्य दृष्टियोंसे भी जबतक पत्र अपेक्षित स्तरतक न पहुँच जाये तबतक प्रत्येक अगला अंक पिछले अंकसे बेहतर होगा। यह पत्र बिड़ला मिल्स,

१. विधेयक यहाँ नहीं दिया गया है। इस विधेयकमें इस बातकी व्यवस्था की गई थी कि दण्ड-विधान संहिताकी धारा १४४के अन्तर्गत 'अस्पृश्यों' को किसी न्यायसम्मत अधिकारका प्रयोग करनेसे इस आधारपर न रोका जाये कि 'उच्चतर जातियों' के लोग इस कारणवश उपद्रव कर सकते हैं।

२. देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २५-२-१९३३।

दिल्लीसे प्रकाशित किया जाता है जोकि हरिजन सेवक समाजका भी पता है, जिसके तत्त्वावधानमें इसका प्रकाशन हो रहा है। मैं पाठकोंको यह भी बता दूँ कि 'हरिजन' का बंगाली-संस्करण गत मासकी २८ तारीखको खादी प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्तके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाला था। सतीशबाबूने मेरे नाम अपने पत्रमे लिखा है कि 'हरिजन' के अंग्रेजी संस्करणके बराबर पहुँचनेके लिए बंगाली संस्करणके प्रथम दो अंक आकारमे दुगुने होंगे। गुजराती 'हरिजन' के प्रकाशनके प्रबन्ध किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

६१६. एक मराठी सन्तका प्रमाण

'मोरोपन्तकी रचनाएँ' ग्रन्थके सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत आर० डी० पराड़कर लिखते हैं:[1]

> अस्पृश्योंकी ओरसे आरम्भ किये गये अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनमें अस्पृश्य वर्गोंके लिए 'हरिजन' शब्दके प्रयोगके बारेमें आपने लिखा है[2] कि यह शब्द कोई नया शब्द नहीं है और इसका प्रयोग इसी अर्थमें किसी गुजराती कविने पहले किया है। मैंने आपको यह पत्र सिर्फ यह सूचना देनेके लिए लिखा है कि आपको यह जानकर विशेष प्रसन्नता होगी कि इस शब्दका प्रयोग और इसी अर्थमें महाराष्ट्रके प्रसिद्ध कवि मोरोपन्तने भी किया है। जिस पदमें उन्होंने उसका उल्लेख किया है वह निम्नलिखित है:[3]

इस तरहके प्रमाण न केवल अन्य मराठी सन्तोंकी रचनाओंमें देखनेको मिलेंगे बल्कि सारे भारतके सन्तोंकी रचनाओंमें भी देखनेको मिलेंगे। यदि अध्यवसायी विद्वान लोग देशके विभिन्न भागोंके सन्तोंकी इस आशयकी सूक्तियोंका संग्रह करेंगे तो मैं उन्हें सहर्ष प्रकाशनार्थ 'हरिजन' के सम्पादकको भेज दूँगा और इससे अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें लगे कार्यकर्ताओंको बड़ी प्रेरणा और मदद मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

१. यहाँ पत्रका केवल एक अंश ही दिया गया है।

२. देखिए "हरिजन क्यों?", २३-२-१९३३।

३. यहां नहीं दिया गया है। उसका अनुवाद इस प्रकार है: "तुम अपनेको अधिक सुजान मानकर हरिजनोंको महार, यवन, कुनबी आदिकी संज्ञा देते हो। वास्तवमें बीजके गुणका पता वृक्षके फलसे होता है (अर्थात्, मनुष्यके कार्योंसे होता है)।"

६१७. वे जैसा हमें देखते हैं

हरिजन सेवक संघकी महान केन्द्रीय संस्थाने अभी मुश्किलसे अपना काम करना शुरू ही किया है कि इसके और प्रान्तीय संस्थाओंके विरुद्ध शिकायतें भी आने लग गई हैं। ये शिकायतें मुख्यत: और स्वभावत: हरिजनोंकी ओरसे आती हैं। इनमें से एक पत्र-लेखकने मुझे कुछ समय पहले एक सुविचारित पत्र लिखा था जिसमें उसने लिखा था कि यदि मैं चाहूँ तो वह मुझे पूरा ब्योरा भेज सकता है। मैंने उसपर विश्वास किया और उससे ब्योरा भेजनेके लिए कहा, और उसने उत्तरमें मुझे जो पत्र भेजा है वह पहले पत्रसे भी अच्छा है। इसकी तुलना किसी भी जाँच-अधिकारी द्वारा लिखी गई रिपोर्टोंसे की जा सकती है। इसमें पत्र-लेखकके प्रदेशमें काम करनेवाली प्रत्येक ऐसी संस्थाकी रिपोर्टका सारांश दिया हुआ है जो हरिजनोंके उत्थानके लिए काम करनेका दावा करती है, तथा मुझे पर्याप्त ब्योरा देनेके बाद लगभग बिना किसी अपवादके सभी संस्थाओंके बारेमें उनका एक निर्णय यह है :

> **ये संस्थाएँ मुख्य रूपसे सवर्णों द्वारा चलाई जाती हैं जो अपना निजी स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं अथवा जो किसी ऐसे धन्धेकी तलाशमें हैं जिससे उनका गुजारा अच्छी तरहसे हो सके। इनमें से कुछ लोगोंने ज्यादासे-ज्यादा यह किया है कि उन्होंने कुछ हरिजन लड़कोंको छात्र-वृत्तियाँ दे दी हैं। इनमें से कुछ अन्य लोग भाषण झाड़नेमें ही कमाल दिखाते रहे हैं। हमारे पास जितने भी लोग आये वे संरक्षक बनकर ही आये। हमारे मित्र और हमारा समकक्ष बनकर हमारे पास शायद ही कोई आया हो, सेवक बनकर आनेकी तो बात ही क्या करनी। आपकी प्रादेशिक संस्था भी इसका कोई अपवाद नहीं है। किसी हरिजनके लिए निर्भय होकर और बिना काँपे इस प्रान्तीय संस्थाके प्रधान अधिकारीके सामने जाना मुश्किल है। उसे हमेशा इस बातका भय रहता है कि कहीं उसे देखकर प्रधान अधिकारीकी त्योरी न चढ़ जाये।**

मेरे इस पत्र-लेखकने कुछ सुझाव भी दिये हैं जो संक्षेपमें इस प्रकार हैं :

> हरिजनोंमें जो महान् जागृति आई है यदि आप उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते हैं तो आपको बड़े पैमानेपर प्रारम्भिक शिक्षा देनेपर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। आप शिक्षाका प्रचार किये बिना युगों पुराने अज्ञान को दूर नहीं कर सकेंगे। हम निश्चय ही आपकी मदद करेंगे, लेकिन यह देखते हुए कि सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यताको दूर करना चाहते हैं और हमें अपनेमें मिलाना चाहते हैं, मेरी रायमें उनके धन और श्रमका सबसे अच्छा उपयोग प्राथमिक शिक्षाका प्रसार करनेमें ही हो सकता है।

किसी भी कामको हाथमें लेनेसे पहले हरिजनोंके दिलोंको टटोलना जरूरी है। सवर्ण हिन्दुओंको, जिनके लिए अस्पृश्यता-निवारण करना पश्चात्ताप और शुद्धिकी क्रियाके समान है, हर जगह स्कूल खोलनेके अलावा निस्सन्देह और भी बहुत कुछ करना है। मैंने अन्यत्र इस बातपर विचार व्यक्त किया है कि ऐसे स्कूल कहाँ खोले जाने चाहिए।[1] हरिजनोंके जनमानसपर इसकी जो प्रतिक्रिया होगी उसपर से सवर्ण हिन्दुओंके आचरणकी कसौटी होगी। यदि हमारा मन उनके प्रति सचमुच बदल गया है तो वे अनेक प्रकारसे इस परिवर्तनको महसूस करेंगे। हमारे कार्य, यानी सवर्ण हिन्दुओंके कार्यंका हरिजनोंके जीवनके प्रत्येक अंगपर प्रभाव पड़ेगा। सुदूर गाँवोंतक में हम अन्योन्याश्रित हैं, यहाँतक कि इस अन्योन्याश्रयिताको यदि हम चाहें भी तो एकदम दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे राष्ट्रको बहुत ज्यादा नुकसान होनेका भय है; और परस्पर एक-दूसरेपर निर्भर रहनेकी प्रवृत्तिमें, जोकि आज स्वामी और सेवककी है, तबतक सुधार नहीं किया जा सकता जबतक कि पूर्ण धार्मिक समानता न हो। यह बहुत कठिन और दुरूह काम है, लेकिन हम जैसे-जैसे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते जायेंगे, वैसे-वैसे प्रत्येक सवर्ण हिन्दूको इस बातकी प्रतीति होती जायेगी कि घृणित गुलामी और पूर्ण धार्मिक समानताके अलावा बीचकी अन्य कोई स्थिति सम्भव नहीं है। यही कारण है कि अन्य जो चीजें हमें करनी हैं, उनकी उपेक्षा न करते हुए भी मैं मन्दिर-प्रवेशपर इतना आग्रह रखता हूँ।

जो विभिन्न संस्थाएँ मेरे पत्र-लेखकके क्रोधका शिकार बनी हैं उनकी प्रबन्ध-व्यवस्थामें फिजूलखर्चीको लेकर उनके मनमें बहुत रोष है। मैं एक अनुभवी संगठन-कर्ता होनेका दावा करता हूँ, और मैंने सामान्यतः इस नियमका अनुसरण किया है कि कार्यालयके रख-रखावका खर्च दस प्रतिशत — पाँच प्रतिशत आदर्श है — से अधिक कभी नहीं होना चाहिए, और शेष धन उस उद्देश्यमें खर्च किया जाये जिसको ध्यानमें रखकर संस्था बनाई गई हो। मैं केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्डों और सवर्ण हिन्दुओं द्वारा चलाई जानेवाली अन्य सब स्वतन्त्र हरिजन संस्थाओंको सलाह देता हूँ कि वे इस कसौटीपर अपने खर्चको परखें। हमारे बारेमें यह नहीं कहा जाना चाहिए कि हम हरिजनोंपर खर्च करनेकी बनिस्बत संस्थाओंको चलानेमें ज्यादा खर्च करते हैं। हम इस बातका ध्यान रखें कि हरिजनोंके लिए दानमें प्राप्त होनेवाले प्रत्येक सौ रुपयेमें से ९० रुपये सीधे हरिजनोंकी जेबमें जायें। इसलिए हमारे अधिकारी ज्यादातर स्वयंसेवक होने चाहिए, और यदि उनकी सेवाके लिए वेतन देना जरूरी हो तो यह वेतन कभी बहुत ज्यादा नहीं होना चाहिए। जहाँ सम्भव हो वहाँ इस कामके लिए हमें हरिजनोंको रखना चाहिए। हमें उम्मीदवारोंका चुनाव करके उन्हें इस कार्यके लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। पत्र-लेखकका कहना है कि उसने जिन संस्थाओंकी जाँच की है उनमें चपरासीके पदोंपर भी हरिजनोंको नहीं लिया गया है।

हरिजन-सेवाके लिए बनाई गई प्रत्येक संस्थाको चाहिए कि मैंने ऊपर संक्षेपमें जो आलोचना दी है और अपनी ओरसे जो सुझाव रखे हैं, वे उनको ध्यानमें रखकर

१. देखिए "संयुक्त अथवा पृथक्-पृथक्?", ४-३-१९३३।

आत्म-निरीक्षण करें। मैं जानता हूँ कि पत्र-लेखकने बहुत निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया है। उसने इसके उज्ज्वल पक्षको देखनेसे इनकार कर दिया है। विभिन्न प्रान्तोंमें सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किये जानेवाले हरिजन सेवाकार्यके बारेमें मुझे कुछ मालूम है। मैं यह भी जानता हूँ, कि पत्र-लेखकने जिन संस्थाओंका वर्णन किया है उनमें अच्छाइयाँ भी हैं लेकिन उनकी चर्चा करना मैंने अनावश्यक समझा है। यदि संस्थाएँ अपने दोषोंको सुधारनेकी कोशिश करेंगी तो अच्छाइयाँ स्वतः स्पष्ट हो जायेंगी। अधिकांश संस्थाएँ आत्मवचनाकी वृत्तिसे ग्रस्त हैं। उनमें आत्मप्रशंसा की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसलिए 'हरिजन' का अस्तित्व इसी बातको लेकर है कि हरिजन आलोचक हमारे कार्यकी जो भी आलोचना करें, उसे उचित प्रमुखता देकर प्रकाशित किया जाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१८. क्या यह विश्वासका डिगना है?

एक साथी कार्यकर्ता लिखते हैं:

> **हममें से कुछ लोग ऐसा समझते है कि आपके द्वारा 'आमरण अनशन' करनेका यह अर्थ है कि जाने-अनजाने आपका विश्वास अहिंसाकी प्रभावकारितापर से डिग गया है। क्या आप हम लोगोंको, जिन्होंने आपसे अहिंसामें विश्वास करना सीखा है, इस बारेमें कुछ जानकारी दे सकते हैं?**

यह मनको बड़ा अच्छा लगनेवाला खयाल है कि कुछ लोगोने मुझसे अहिंसामें विश्वास करना सीखा है। लेकिन मैं उन्हें चेतावनी देना चाहूँगा कि यदि उन्होंने अहिंसाकी भावनाको आत्मसात नहीं किया है और यदि अहिसा उनके जीवनका अभिन्न अंग नहीं बन गई है, तो संकटके समय मैं अविश्वसनीय व्यक्ति सिद्ध हो सकता हूँ। मनुष्यमें विश्वास तो एक नश्वर चीज है, क्योंकि लोग जिस व्यक्तिको अपना आदर्श मानते हों, यदि वह उनकी अपेक्षाओंसे घटकर साबित होता है तो उनका विश्वास भापकी तरह उड़ जाता है; लेकिन ऐन मौकेपर यदि कोई चीज हमारे काम आती है तो वह किसी उद्देश्य अथवा सिद्धान्तमें हमारा अमिट विश्वास काम आता है; जिस व्यक्तिसे इन्हें ग्रहण किया गया हो, वह व्यक्ति कोई महत्त्व नहीं रखता।

यह चेतावनी देनेके बाद मैं इतना कहूँगा कि 'आमरण अनशन' अहिंसामें विश्वासकी कमीके कारण नहीं था; बल्कि वह तो, जैसाकि अनेक अवसरोंपर मैं पहले भी कह चुका हूँ, उस विश्वासपर आखिरी मुहर-जैसा था। मृत्युकी हद तक आत्म-त्याग करना अहिंसक व्यक्तिका अन्तिम अस्त्र है। इससे ज्यादा मनुष्य और कुछ नहीं कर सकता। इसलिए मेरा इस सहयोगीको, और अन्य लोगोंको, यह सुझाव है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध यह जो धार्मिक लड़ाई चल रही है उसमें यदि उनका आह्वान किया जाये तो उन्हें भी प्रसन्नतापूर्वक 'आमरण अनशन' करनेके

लिए तैयार रहना चाहिए। यदि वे सितम्बरमें हरिजनोंके माँगे बिना ही उनको दिये गये वचनमें[1] अपने-आपको शामिल मानते हैं, और यदि वे साधारण प्रयत्न करनेके बावजूद उस प्रतिज्ञाको पूरा नही कर सकते, तो अहिंसक होनेके नाते वे अपने प्राणोंकी बाजी लगाये बिना भला और किस तरह उसे पूरा कर सकते हैं?

शास्त्र हमें बताते हैं कि मुसीबत पड़नेपर जब लोग भगवानसे सहायताके लिए प्रार्थना करते थे और ऐसा लगता था कि ईश्वरने अपना हृदय कठोर बना लिया है, तब वे घोषित कर देते थे कि जबतक भगवान उनकी प्रार्थना नहीं सुनेगा तबतक वे आमरण अनशन करेंगे। धार्मिक इतिहाससे हमें उन लोगोंके बारेमें तो पता चलता है जो आमरण अनशन ठाननेके बाद भी जीवित रहे, क्योंकि भगवानने उन लोगोंकी सुन ली; लेकिन उसमें उन लोगों के बारेमें कुछ नहीं बताया गया है जिन्होंने बहरे भगवानसे उत्तर पानेके प्रयत्नमें चुपचाप और वीरतापूर्वक अपने प्राण त्याग दिये। मुझे यकीन है कि अनेक लोगोंने इस प्रकारकी वीरताके साथ अपने प्राण त्याग दिये, लेकिन इससे ईश्वरमें और अहिंसामें उनका विश्वास रंचमात्र भी कम नहीं हुआ। भगवान हमेशा हम जिस रूपमें चाहते हैं, उस रूपमें हमारी प्रार्थनाओंको नहीं सुनता क्योंकि उसके लिए जीवन और मृत्यु दोनों एक ही वस्तु हैं, और इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि आज संसारमें जो भी शुद्धता और सचाई दिखाई देती है वह हजारों वीर स्त्री-पुरुषों द्वारा चुपचाप रहकर शान्तभावसे मृत्युका आलिंगन कर लेनेके परिणामस्वरूप दिखाई देती है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१९. बहिष्कारका हौआ

एक पत्र-लेखकने[2] अपने लम्बे पत्रमें जो-कुछ लिखा है उसका सार यह है:

> हम कुछ सवर्णोंने कोशिश करके बिहारके कुछ गाँवोंमें अमुक कुओंको हरिजनोंके उपयोगके लिए खुलवानेमें सफलता प्राप्त कर ली। लेकिन निकटवर्ती क्षेत्रोंके ब्राह्मण पुजारियोंने इसके जवाबमें गाँवके मन्दिरमें पूजा बन्द कर दी और स्थानीय ब्राह्मणने धमकी दी कि वह श्राद्ध, विवाह, आदि धार्मिक क्रियाएँ नहीं करायेंगे। गाँववाले इससे डर गये। मेरा मन सत्याग्रह करनेका होता है, लेकिन कहीं मैं क्रोधमें ऐसा न कर बैठूँ, इसलिए अपने-आपको रोके हुए हूँ। ऐसे मामलोंमें आपकी क्या सलाह है?

बहुत दिन नहीं हुए जब त्रिचनापल्लीमें भी ऐसा ही एक मामला हुआ था। डॉ० राजनने निश्चयपूर्वक काम किया। जातिसे ब्राह्मण और सेवाधर्मके बलसे शूद्र

१. देखिए पृष्ठ १३७-९।
२. जनकधारी प्रसाद; देखिए "पत्र: जनकधारी प्रसादको", ४-३-१९३३।

होनेके नाते उन्होंने उन रूढ़िवादी ब्राह्मणोंकी अवहेलना कर दी जिन्होंने किसी सुधारकके घरमें किसीकी मृत्यु होनेपर अन्त्येष्टि संस्कार करानेतक से इनकार कर दिया था।

इसलिए मेरी सलाह है कि ऐसे मामलोंमें सत्याग्रह करनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो लोग अस्पृश्यताको पाप मानते हैं उन्हें बहिष्कार आदिकी कठिनाइयोंको शुद्धीकरण और प्रायश्चित्तका अंग मानना चाहिए। पूरी विनम्रतापूर्वक उन्हें बाहरी दिखावोंका त्याग कर देना चाहिए। ईश्वरके नामपर और ईश्वरके हित किये जानेवाले किसी काममें किसी पुरोहितकी कोई आवश्यकता नहीं है, चाहे वह अन्त्येष्टि हो, विवाह हो या श्राद्ध हो। पवित्र मन्त्रोंका उच्चारण करके, चाहे वह रामनाम हो या जिन परम्पराओंमें किसीका लालन-पालन हुआ है उन परम्पराओंके अनुसार ऐसे अवसरोंपर बोले जानेवाले ज्ञात मन्त्र हों, कोई भी व्यक्ति दो प्राणियोंको विवाह-सूत्रमें बाँध सकता है। ईश्वर केवल अपने सहस्र नामोंसे ही नहीं, बल्कि कोटि-कोटि नामोंसे जाना जाता है। कोई भी नाम जो हृदयसे निकलता है और जिससे हम ईश्वरको पहचान सकते हैं, वह उतना ही अच्छा है जितनाकि कोई भी अन्य नाम, बल्कि वही हमारे लिए सबसे अच्छा नाम है। लेकिन ये चीजें वे ही लोग कर सकते हैं जिनके मनमें विश्वासका बल है, अपने उद्देश्यमें विश्वास है और ईश्वरमें जीवन्त विश्वास है। यह ऐसा आन्दोलन नहीं है जिसमें हृदय-दौर्बल्यका कोई उपयोग हो। केवल वे ही कार्यकर्त्ता गाँववालोंको अपने प्रबल विश्वासोंसे प्रभावित कर सकेंगे और बहिष्कार तथा उससे भी खराब ढंगके प्रतिपीड़नके बावजूद सही काम करनेमें समर्थ बन सकेंगे जिनके दिल मजबूत हैं और जिनके चरित्र पूर्णतः निर्दोष हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६२०. पत्र : मीराबहनको

४ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

यह शनिवारकी प्रातःकालकी प्रार्थनासे पहले ३½ बजेका समय है। शुक्रवारकी शामतक तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। मैंने कल भी इस आशामें लिखना स्थगित रखा कि तीसरे पहर तुम्हारा पत्र मिल जायेगा और मैं तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ लिखकर डाकमें डलवा सकूँगा। मगर ऐसा होना नहीं था। इस प्रकार तुम्हारा पत्र हर हफ्ते अधिक देरसे आ रहा है। परन्तु उसकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते हुए भी मैं चिन्ता नहीं करता।

यह पत्र-लेखन कैदियोंका अधिकार नहीं है। इसलिए इसमें हमारा अधिकार छिन जानेका प्रश्न भी नहीं है। जिसे धर्म साधारण जीवनमें कर्त्तव्य कहता है, वह

जेल-जीवनमें जबरन करना पड़ता है, या ऐसा दिखाई देता है। परन्तु हमारे मामलेमें यह बात नहीं है। हम एक प्रकारसे स्वेच्छापूर्वक कैदी बने हैं। इसलिए जब कोई इजाजत वापस ले ली जाये या अधिकारी उसको अपने लिए अनुकूल ढंगसे नियमित कर दें, तब हमें स्थितिकी बाध्यकारिताका दुःख नहीं होना चाहिए। जरूरत हो तो मैं तुम्हारे पत्रोंके बिना काम चला सकता हूँ और तुम्हें भी ऐसा कर सकनेका अभ्यास डालना चाहिए और सुखी रहना चाहिए। एक प्रकारसे तो जब कोई चीज नहीं मिल सकती हो, तब सभी उसके बिना काम चला लेनेकी तालीम पा लेते हैं। गीताधर्मका अनुयायी अपनेको चीजोंके बिना खुशीसे काम चला लेनेकी तालीम देता है। इस खुशीको 'गीता'की भाषामें समबुद्धि कहा गया है, क्योंकि 'गीता' का सुख दुःखकी उल्टी स्थिति नहीं है। वह उस स्थितिसे श्रेष्ठ है। 'गीता' के भक्तको न सुख होता है, न दुःख। और जब हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं, तब दुःख-सुख, हार-जीत, प्राप्ति-अप्राप्ति कुछ नहीं रह जाते। अगर हम 'गीता' के उपदेशका पालन करना सीख लें, तो जेल-जीवन सौभाग्यका जीवन बन जाता है। यह काम बाहरकी अपेक्षा जेलमें ज्यादा आसानीसे हो सकता है। कारण, बाहर तो हमें पसन्द-नापसन्द करनेका अवसर मिलता है। इसलिए हम सदा अपनी परीक्षा नहीं कर सकते। जेलमें तरह-तरहके खटकनेवाले मौके आते रहते हैं। क्या हम उन्हें धैर्यपूर्वक सहन कर सकते हैं? कर सकें तो अच्छा है।

मैंने तुम्हारा १९ फरवरीका पत्र रख छोड़ा है जो मुझे तब मिला जब मैं अपना साप्ताहिक पत्र लिख चुका था। तुम्हारे दलमें मृदुला थी। आशा है, वह बिल्कुल ठीक है। वह काफी मजबूत और स्वस्थ नहीं थी। बा को अपने जबड़ेका ध्यान रखना चाहिए। क्या वह अपने दाँत लगाती है? क्या वह काफी व्यायाम करती है? क्या वह अपने-आप कुछ पढ़ती है? उसे पत्र सप्ताहमें मिलते हैं या पखवाड़ेमें? मुझे मालूम है कि पिछली बार उसे मेरे कई पत्र नहीं मिले थे। पता नहीं उनका क्या हुआ। इस बार मैं अवश्य चाहता हूँ कि मेरे पत्र उसे मिलने चाहिए। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, जेल-अधिकारियोंने उसके पत्र नहीं रोके थे।

तुम्हारे (रोगके) इतिहासके बारेमें मैं डॉ० सॉण्डर्स[1]को जरूर लिखना चाहता हूँ। लेकिन इतिहास कुछ भी हो, इलाज वही है जो मैं तुम्हें बता चुका हूँ। इस-लिए उनकी रिपोर्टके लिए ठहरनेकी कोई जरूरत नहीं। हाँ, उनका कहना क्या है, यह जान लेना अच्छा ही है। सूर्यके प्रकाशसे, ऐसी सादी खुराकसे जिसके जीवन-तत्त्व नष्ट न हो गये हों, और खुली हवामें व्यायाम करनेसे सारी गाँठें और दूसरी खराबियाँ मिट जायेंगी।

वेरियर और मेरी जिलेटके बीच होनेवाले प्रस्तावित विवाहसे अब वेरियर मुकर गया है। लेकिन अपने पत्रोंमें वह जो-कुछ लिखता है वह बहुत अच्छा नहीं

१. मीराबहनके रिश्तेमें भाई आर्थर सॉण्डर्स, जो इंग्लैंडमें मीराबहनका बचपनसे ही इलाज करते रहे थे। देखिए "पत्र: डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको", ५-३-१९३३ भी।

है। इससे उसके चरित्रकी एक बहुत बड़ी कमजोरी दिखाई पड़ती है। लेकिन हमारे मित्र जैसे हैं वैसा ही उन्हें जानना और फिर भी उनसे प्रेम करना अच्छा है।

लो, वे प्रार्थनाके लिए आ गये। ४ बजकर १० मिनट हुए हैं। मैं बन्द करता हूँ।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६५) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७३१ से भी

६२१. पत्र : जनकधारी प्रसादको

४ मार्च, १९३३

प्रिय जनकधारी बाबू,

आपने अपना लम्बा पत्र मुझे भेजकर बिल्कुल ठीक किया। आप देखेंगे कि आपके पत्रके एक अंशके बारेमें मैंने 'हरिजन' में लिखा है।[1] मैंने जान-बूझकर आपका नाम छोड़ दिया है। आपको स्वयं पुरोहितवर्गकी अवहेलना करके रास्ता दिखाना पड़ेगा और आप देखेंगे, जैसाकि मैंने अन्य जगहोंपर देखा है, कि बहिष्कार करनेवाले पुरोहित तुरन्त शान्त हो जायेंगे और धार्मिक अनुष्ठान कराना चाहेंगे, क्योंकि वे इन पूजा-अनुष्ठानोंसे होनेवाली आयको खोना नहीं चाहेंगे। वे आज बहिष्कारकी घोषणा कर रहे हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि भयभीत लोगोंसे वे और ज्यादा पैसा ऐंठ सकेंगे, और आप यह भी देखेंगे कि आपको शीघ्र ही ऐसे सुधारक मिलने लगेंगे जो इन धार्मिक अवसरोंपर खुशीसे पुरोहितका काम कर देंगे। डॉ० राजन यही चीज कर सके थे।

जब कभी आपको लगे कि आपको मुझसे कुछ कहना है, आप कृपया मुझे लिखते रहें।

जहाँतक आपके व्यक्तिगत संघर्षका प्रश्न है, सिवा इसके कि आप संकल्प-पूर्वक अपनी पत्नीसे अलग रहें, अन्य किसी प्रकारके प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है, और आप जल्दी ही देखेंगे कि आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। इस संकल्पको लागू करनेके लिए आपको इच्छाशक्तिका विकास करना चाहिए।

आप जो दूसरी चीज पूछते हैं वह कहीं ज्यादा कठिन है। आप 'परम' अर्थात् सत्यकी प्राप्ति बराबर उसका आचरण करके ही कर सकते हैं। यह कथन एक वैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। यहाँ

१. देखिए "बहिष्कारका हौआ", ४-३-१९३३।

विचारसे मतलब मानसिक तरंग नहीं है। इसके मतलब हैं विचार, वाणी और कर्ममें पूर्ण सामंजस्य, और जब यह सामंजस्य पूरी तरह स्थापित हो जाये तो आप सत्यको देख सकते हैं। पता नहीं यह बात आपको स्पष्ट हो पाई या नहीं।

मुझे खुशी है कि आपको कुमारी लेस्टरकी किताब पसन्द आई। वह बेशक एक नेक महिला हैं। उनका पता है: म्यूरियल लेस्टर, किंग्सले हॉल, बो, लन्दन ई० ३।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जनकधारी प्रसाद
इस्लामपुर
डाकखाना मुजफ्फरपुर (बिहार)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३) से।

६२२. पत्र : रामा राजूको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। यदि पण्डित कृष्णमाचार्य यरवडा आ सकें, तो बेशक मैं उनके साथ अस्पृश्यताकी समस्यापर खुशीसे चर्चा करूँगा।

आपने ठीक ही कहा है कि मालवीयजी और मेरे बीच जो मतभेद है, वह दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन चूँकि मतभेद था, इसलिए वह सामने आ गया यह अच्छा ही हुआ। इससे स्वस्थ लोकमत बननेमें मदद मिलती है।

हृदयसे आपका,

रामा राजू
मसूलीपट्टम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५३) से।

६२३. पत्र : बॉयड टकरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय बॉयड[1],

तुम्हारा लम्बा और अच्छा-सा पत्र मिला, लेकिन वह इतना लम्बा भी नहीं है कि मेरे आनन्दमें भंग कर दे। तुमने यह पत्र लिखकर बिल्कुल ठीक किया। मैं उसके प्रति अपनी कद्रदानी इसी प्रकार दिखा सकता था कि उसके प्रासंगिक अंशोंको प्रकाशित करके उसपर अपनी टीका दूँ। मैंने 'हरिजन' के इस सप्ताहवाले अंकके लिए लेख[2] तैयार कर लिया था लेकिन ज्यादा जरूरी सामग्री देनी पड़ी इसलिए उसे रोक लिया। आशा है कि वह अब अगले सप्ताहके अंकमें जायेगा। तब मैं तुम्हें उसकी एक प्रूफ प्रति भेजूँगा, और चूँकि तुम्हारे पत्रके सन्दर्भमें मुझे जो-कुछ कहना था वह सब मैंने उस लेखमें कह दिया है इसलिए उन बातोंको मैं यहाँ नहीं दोहराऊँगा। गुरुदेवके बारेमें तुमने जो लिखा है उसे मैंने 'हरिजन' में नहीं दिया है। मै जानता हूँ कि पिछले कुछ समयसे उनका रवैया मेरे प्रति विशेष कोमल रहा है। जैसाकि तुम्हारे पत्रमें कहा गया है, यदि उस प्रश्नपर उनके बिल्कुल दृढ़ और निश्चित विचार हैं तो शायद उनके मौनके कारण सत्यका अहित हो रहा है। यदि मित्रोंकी दयालुताके कारण मेरे जीवनमें असत्य घुस आया हो या आम लोगोंमें फैल गया हो तो मैं इसे बहुत दुर्भाग्यकी बात मानूँगा। मैं जो मान्यता रखता हूँ, यदि वह सत्य है तो उसे उन मित्रोंकी कटुतम आलोचनाके प्रखर प्रकाशका सामना कर सकना चाहिए जो अभीतक मेरे साथ काम करते रहे थे। सत्यकी सेवा करनेके सिवा मेरा और कोई ध्येय नही है। यदि मेरी पराजय का अर्थ सत्यकी विजय हो तो मै उस पराजयको भी विजय मानूँगा। मैं ऐसा नहीं मानता कि मेरे निर्णय या मेरा मत कभी गलत नहीं होते, और भले ही मैं १०० में से ९९ मामलोंमें सही ही होऊँ, लेकिन मै इसका फायदा नहीं उठाना चाहता और न स्वयं यह मान कर चलना चाहता हूँ कि सौवाँ निर्णय भी सही है और न औरोंसे वैसा माननेकी अपेक्षा करता हूँ। इसी कारणवश मैंने गुरुदेवको महान् प्रहरी कहा है, और उनकी चेतावनियोंकी मैंने हमेशा बहुत कद्र की है, भले ही उन चेतावनियोंके कारण मैंने अपने पथको हमेशा छोड़ा न हो। इन चेतावनियोंने हमेशा मेरे मनमें नया उत्साह भरा है और लोगोंको सोचने और तब चुनाव करनेको बाध्य किया है। व्यक्तियों या राष्ट्रोंके लिए किसी एक व्यक्तिके मोहक प्रभावके अधीन हो जाना कल्याणकर नहीं

१. एक अमेरिकी संवाददाता जो उस समय शान्तिनिकेतनमें थे।

२. देखिए खण्ड ५४, "क्या मन्दिर जरूरी है?" ११-३-१९३३।

है। वह एक सुनहरा आवरण है जो सत्यका मुखड़ा ढँक देता है। यदि तुम चाहो तो इस पत्रको गुरुदेवको पढ़कर सुना दे सकते हो, और कुछ ही दिनोंमें जो लेख तुम देखोगे उसको पढ़नेके बाद यदि उनको स्पष्ट रूपसे ऐसा लगे कि उनको इस बारेमें कोई सन्देह नहीं है कि मै गलती कर रहा हूँ तो उन्हें एक सार्वजनिक वक्तव्य जारी करके या मेरे नाम प्रकाशनार्थ एक पत्र लिखकर अपनी चेतावनी दे देनी चाहिए। लेकिन यदि उन्हें कुछ सन्देह हो, तो मैं इस सन्देहका लाभ पाना चाहता हूँ क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि लोगोंके मनमें भ्रम पैदा हो। फिलहाल स्थिति यह है कि मन्दिर-प्रवेशके सवालपर लोगोंको मेरी बात निर्विवाद रूपसे मान्य नहीं है। लोगोंके सामने विचारार्थ तरह-तरहके तर्क रखे जा रहे हैं। मैं यह नहीं चाहता कि इस सीधे-सादे सवालके विरुद्ध गुरुदेव भी इन तर्ककारी लोगोंकी भीड़में शामिल हो जायें। उनका निर्णय तो अभिभूत कर देनेवाला ऐसा सशक्त तर्क होना चाहिए जो मौलिकताकी दृष्टिसे सबसे अलग अपने ही बलपर आधारित हो।

व्यक्तिशः मुझे नहीं लगता कि गुरुदेव तुम्हारे रवैयेसे सहमत हैं क्योंकि शान्तिनिकेतनका अपना एक अलग मन्दिर या गिरजा, उसे जो भी कहो, है। जहाँ दो या तीन व्यक्ति किसी एक स्थान विशेषमें ईश्वरकी प्रार्थना करनेके लिए इकट्ठे हो जायें वह स्थान मन्दिर हो जाता है। शान्तिनिकेतनमें एक साधारण किन्तु सुन्दर-सा भवन है जहाँ प्रार्थना की जाती है, धूप और अगरु जलाई जाती है और उपदेश दिये जाते हैं। साबरमतीमें हमारे यहाँ कोई भवन नही है, कोई दीवार नहीं है, लेकिन दिशाबिन्दु उसकी दीवारें हैं, आकाश छत है, धरती माता फर्श है; तथापि, प्रातः और सायंकालीन प्रार्थनाओंके लिए जो स्थान चुना गया है उसमें एक मन्दिरके सारे आवश्यक तत्त्व मौजूद हैं। परन्तु तुम्हारे पत्रके अनुसार वह सादा चौगान भी धर्मका दुरुपयोग है। लेकिन अगर मैंने तुम्हारे रुखको ठीक समझा है तो निश्चय ही गुरुदेव तुमसे इस मामलेमें सहमत नहीं होंगे।

हम सबोंकी ओरसे प्यार सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४५४) से।

६२४. पत्र : एन० बी० थडानीको

४ मार्च, १९३३

प्रिय थडानी,

हालाँकि मैं तुम्हें राज-विदूषकके पदपर तुरन्त नियुक्त तो नहीं कर सकता, लेकिन अपने इस पत्रके बलपर तुम इस अतिवांछित सेवाके लिए एक उम्मीदवार तो बन गये हो। इसलिए अब इस बातका प्रत्येक कारण है कि तुम प्रयास करते रहो। तुम्हें प्रचारसे भय करनेका कोई कारण नहीं है। जब तुम उस उच्च सेवामें वास्तवमें शामिल कर लिये जाओगे तब तुम प्रचार चाहो या प्रचारसे डरो, वह तो रहेगा।

तुम्हें एक ही अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय ऐसा मिला जिसने तुम्हें बताया कि अस्पृश्यता तो हमेशासे ही मौजूद रही है। मुझे लगभग रोज ही ऐसे यशस्वी व्यक्तियों का पता चलता है। और यदि मैं 'गीता'-माता का पुत्र न होता तो राजविदूषककी उपस्थितिके बावजूद शास्त्री लोगोंकी जो आशंकाएँ रही है वे बहुत पहले ही सच सिद्ध हो गई होती। लेकिन ईश्वरका धन्यवाद है कि 'गीता'-माता कभी धोखा नहीं देती और इससे भी ज्यादा यह कि वह अमर है।

हृदयसे तुम्हारा,

प्रिंसिपल थडानी
रामजस कॉलेज
दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५५) से।

६२५. पत्र : मिलिसेंट शेफर्डको

४ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

मुझे खुशी है कि तुम अपने कामपर वापस लौट आई हो। मुझे नहीं मालूम था कि तुम आ गई हो।

हाँ, हमारे यहाँ जो नेक लोग हैं, बनारसीदास उनमें से एक है। मैं बेशक उन्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।

तुम्हारी अपीलकी मैं कद्र करता हूँ, हालांकि वह अनावश्यक है। कारण, मैंने यह काम अपने ढंगसे तव शुरू किया था जब मैं १५ वर्षका था, और वेश्याके घरमें पहुँचकर मैंने पाया[1] कि ईश्वरने मेरी काम-लालसा हर ली है। उस समय

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २३।

मुझे इसपर बहुत लज्जा लगी थी, लेकिन बादमें मैंने इस बातपर बहुत हर्ष माना और इसे ईश्वरकी महानता समझा। तब मैंने जाना कि पुरुष लोग स्त्रियोंके प्रति कैसा व्यवहार करते हैं, और उस समयसे मैंने इस बुराईको समाप्त करनेका एक भी अवसर बिना प्रयत्न किये नहीं निकलने दिया है। मैंने इसके विरुद्ध बहुत कड़ाईसे लिखा है, और उससे भी ज्यादा कड़ाईसे बोला हूँ। मेरा निजी पत्र-व्यवहार इस चीजसे भरा हुआ है। इस समय इस दिशामें मुझे अपनी गतिविधि आवश्यकतावश सीमित ही रखनी होगी। लेकिन इस सीमाके भीतर मैं इस बुराईसे निपटनेके लिए जो-कुछ कर सकता हूँ, भरोसा रखो कि मैं वह करूँगा। 'हरिजन' में मैं इस समस्या पर सीधे कुछ नहीं लिख सकता। कारण स्पष्ट है।

एक विदेशी होकर भी तुम यह सेवा कर रही हो, इसके लिए तुम्हें संकोच महसूस करनेकी जरूरत बिल्कुल नहीं है। जब लोगोंको यह अनुभव होगा कि तुम्हारा मंशा सीधा-सादा केवल यही है कि भारतकी इन पतिता बहनोंकी सेवा करो, और उनकी सेवाके जरिये भारतके पतित पुरुषोंकी सेवा करो, तब वे यह भूल जायेंगे कि तुम विदेशी हो। जिन लोगोंका ध्येय मानवतावादी सेवाकी आड़में कोई और उद्देश्य सिद्ध करना होता है वे हमेशा विदेशी माने जायेंगे, चाहे उनकी चमड़ी गोरी हो या साँवली।

हृदयसे तुम्हारा,

मिलिसेंट शेफर्ड
६ राजपुर रोड, दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४५६) से।

६२६. पत्र: पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। मुझे आपका पत्र और उसके साथ तस्वीरें और आपकी रिपोर्ट भी प्राप्त हुए थे। ये मेरी फाइलमें पड़े हैं और इन्हें निपटाना है। जब मैं उनतक पहुँचूंगा और मुझे कुछ कहना होगा तब मैं आपको निश्चय ही लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एन० शंकरनारायण अय्यर
नं० १, थर्ड स्ट्रीट
गोपालपुरम
कैथीड्रल डाकखाना, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५७) से।

६२७. पत्र : एल० एम० सत्तूरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र और जनगणनाके आँकड़े प्राप्त हुए। धन्यवाद।

पूनामें आप जो जनगणना कर रहे हैं उसमें आपको एक खाना ऐसा रखना चाहिए जिसमें हरिजनकी उप-जाति दी जानी चाहिए, और बच्चोंके लिए एक अलग खानेमें यह दिखाया जाना चाहिए कि कौन-कौन स्कूल जाता है, यदि कोई धन्धा करता है तो धन्धा क्या है और लड़की या लड़का क्या कमाते हैं। और अगर वे अलग-अलग क्षेत्रोंमें रहते हैं तो उसमें उनके घर कैसे हैं, जल-सम्भरणकी क्या व्यवस्था है, रोशनीका क्या प्रबन्ध है, सड़कें आदि कैसी हैं, इसका विवरण भी दिया जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एम० सत्तूर
९९ मेन स्ट्रीट, **कैम्प,** पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०४५८) से।

६२८. पत्र : अन्नपूर्णानन्दको[1]

४ मार्च, १९३३

शिवप्रसादसे कहो कि अखबार पढ़ना छोड़ दे, गीता पढ़े या योगवासिष्ठ या रामायण – बालकांड या उत्तरकांड पढ़े, अथवा सुक्रातका मृत्युपर सवाद।[2] जगतका चक्र भगवानके हाथमें छोड़ देवे।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १७२

१. अन्नपूर्णानन्द शिवप्रसाद गुप्तके सचिव थे, जोकि बहुत सख्त बीमार थे।
२. प्लेटोकी फैदो।

६२९. हरिजन क्या करें ?

प्र० (१) हरिजन-समाजमें जो जातियाँ और उप-जातियाँ हैं, उनको एकमें मिलानेके लिए क्या किया जाना चाहिए ?

(२) बड़े नगरोंमें, जहाँ सीवर-व्यवस्था है, हरिजन भाई अपनी आजीविकासे वंचित होते जा रहे हैं। इन परिस्थितियोंमें उन्हें क्या करना चाहिए ?

(३) कुछ शहरोंमें विवाह आदिके अवसरपर हरिजन घोड़ेपर नहीं चढ़ सकते। आपने सवर्ण हिन्दुओंके कर्त्तव्यके बारेमें लिखा है। किन्तु कृपया लिखकर बतायें कि इन परिस्थितियोंमें हरिजनोंको क्या करना चाहिए।

उ० ऊपरके तीनों प्रश्न एक हरिजन भाईने भेजे हैं। ये तीनो ही कठिन प्रश्न हैं। जबतक सवर्ण हिन्दुओंमे कई-कई उप-जातियाँ हैं तबतक हरिजनोंके अन्दरकी विभिन्न उप-जातियोको समाप्त करना बहुत कठिन है। लेकिन यह बात सच है कि यदि हरिजनोंमें जबरदस्त जागृति आ जाये तो वे तेज गतिसे प्रगति कर सकते हैं। मैं तो वह समय देखना चाहता हूँ जब हरिजन लोग सवर्ण हिन्दुओंसे सचमुच कही आगे बढ़ चुके होंगे। लेकिन यहाँ तो सवाल वर्तमान स्थितिका है।

वर्तमान स्थितिमें तो यही कहा जा सकता है कि हरिजनोंमें ऊँची समझी जानेवाली जातियोंको नीची समझी जानेवाली जातियोंके साथ मिलने-जुलनेकी कोशिश करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, महार[1] जातिवालोंको माँग[2] जातिके लोगोंके साथ मिलना-जुलना चाहिए; उन्हें आपसमे रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। माँग जातिवालोंके साथ इस प्रकार सम्बन्ध करनेवाले महारोको निर्भीक होना चाहिए और जो भी कठिनाइयाँ आयें उनका सामना करना चाहिए।

दूसरा सवाल सभीके लिए समान रूपसे लागू होता है। इस सक्रमणकालमें कई धन्धे बिल्कुल खत्म हो जायेगे और नये धन्धे पैदा होगे। ऐसा हमेशासे होता रहा है। गाँवोमे सीवरका सवाल कभी पैदा नहीं हो सकता। केवल नगरोंमें ही सीवर-व्यवस्था हो सकती है। भगी नगरोंमे ही होते है। मैं समझता हूँ कि जहाँ सीवर है, वहाँ कुछ भंगियोंको कामसे हाथ धोना पड़ेगा। ऐसे बेरोजगार हुए भंगियोके लिए कामकी व्यवस्था करना नगरपालिकाका कर्त्तव्य है। मेरी सलाह है कि भंगियोंको बुनकरी या ऐसा ही कोई धन्धा सीखना चाहिए। गुजरातमें मैंने देखा कि जिन भंगियोंकी नौकरी चली गई उन्होंने बुनकरीका काम शुरू कर दिया। इस मामलेमें सभी लोगोंके लिए कोई समान उपाय नहीं है। व्यक्ति-व्यक्तिके साथ उपाय भी भिन्न हैं।

१ और २. महाराष्ट्रमें हरिजनोंकी उप-जातियाँ।

तीसरा सवाल बहुत कठिन है। प्रश्नमें ही यह बात निहित है कि हरिजन लोग बेबस और डरे हुए हैं। ऐसी परिस्थितियोंमें यही कहा जा सकता है कि उन्हें पुलिसकी मदद लेनी चाहिए। डॉ० अम्बेडकरने मुझे बताया था कि चूँकि पुलिसवाले ऊँची जातियोंके हैं इसलिए वे मदद नहीं करते, और यह बात शायद सच है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि जहाँ पुलिस उदासीन है अथवा विरोध करती है और जहाँ सवर्ण हिन्दू कोई सहायता नहीं करते, और जहाँ हरिजन लोग पर्याप्त शक्तिशाली नहीं हैं, वहाँ धीरजसे काम लेना सबसे अच्छा है। सन्तोषकी बात यही है कि प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जातिके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं जब उसके सामने धीरज धरनेके अलावा और कोई चारा नहीं होता। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य नास्तिक बन जाता और ईश्वरको भूल जाता। अतः यदि हरिजन लोग इस कठिनाईमें कोई अहिंसक रास्ता न देख सकें तो यही अच्छा है कि वे परमात्मासे सहायताकी प्रार्थना करें।

हरिजन सेवक, ५-३-१९३३

६३०. पत्र : भगवानदासको

५ मार्च, १९३३

प्रिय बाबूजी,

मुझे आपका पिछले माहकी २८ तारीखका पत्र मिला। यदि आपको 'आज'[1] के विशेषांकके लिए और ज्यादा चाहिए तो आप कृपया घनश्यामदासको बता दें। उन्होंने मुझे लिखा है कि वह इसी आशयकी बात आपको भी लिख रहे हैं। मुझे कोकजे शास्त्रीके मतकी २० प्रतियाँ मिली हैं जिनके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अब मुझे शिवप्रसादके स्वास्थ्यके बारेमें साप्ताहिक सूचना मिल रही है। हमें आशा करनी चाहिए कि उनके स्वास्थ्य-लाभके लिए अनेक लोगों द्वारा की जानेवाली प्रार्थना ईश्वर सुनेगा।

मालवीयजी के साथ कभी-कभी मतभेद होना अवश्यम्भावी होता है। लेकिन मैंने हमेशा उसे एक प्रकारका वरदान ही माना है। उनके साथ तनिक भी कटुताके बिना मतभेद रखा जा सकता है, और चूँकि ये मतभेद हमेशा सच्चे होते हैं इसलिए उनसे लोकमत सुशिक्षित ही होता है।

हृदयसे आपका,

डॉ० भगवानदास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६०) से।

१. साधन-सूत्रमें 'आर्ट' शब्द है।

६३१. सन्देश : 'सोशल सर्विस क्वार्टरली' को[1]

५ मार्च, १९३३

समाज-सेवाका क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना स्वयं भारतवर्ष है, लेकिन यह कहना शायद अतिशयोक्ति नही होगी कि इस सेवाका केन्द्र हरिजन-सेवा है; कारण, हरिजनोंकी सेवा करते हुए कार्यकर्ताओंको हर प्रकारकी सामाजिक समस्याओका उनके घनीभूत रूपमे सामना करना पड़ेगा, और उनके अन्दर सर्वोत्तम गुण होने आवश्यक होंगे।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४६८) से।

६३२. पत्र : एफ० मेरी बारको

५ मार्च, १९३३

चि० मैरी,

तुम्हारा पत्र मिला।[2]

तुम्हारे पत्रोंमें कभी छिद्रान्वेषण नही होता। इसलिए तुम्हें बिना किसी बनावटके जैसा महसूस हो, वैसा लिखनेमें डरनेकी जरूरत नहीं है। अक्सर विचारोंको छिपाने के लिए परिमार्जित भाषाका प्रयोग किया जाता है। विचार यदि प्रासंगिक हो तो उसे छिपाना असत्यके समान है। साधारण जीवनमें हम शायद ही कभी १०० प्रतिशत सच बोलते है। हम लोग सुबहकी प्रार्थनाके लिए जो भजन गाते हैं, यदि तुम उनके अनुवादोंको पढ जाओ तो तुम्हें शायद वह चीज मिल जायेगी जिसकी तुम्हें लालसा है। इतना ही याद रखना कि जिस प्रकार 'फादर गॉड' एक अभिव्यक्ति है उसी प्रकार मदर अर्थ, मदर सरस्वती, आदि सभी ईश्वरकी अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं। पूर्ण ईश्वरका वर्णन किसीने नही किया है।

तुम्हारे सूतकी कसौटी तो बिल्कुल बुरी नहीं है।

कमरेके अन्दरकी शीतलता कभी वैसी नहीं हो सकती जैसीकि खुले आकाशके नीचेकी शीतलता। लन्दनमें मैं दरवाजा और खिड़की खोलकर सोता था, लेकिन

१. यह वैकुंठलाल मेहताको भेजा गया था जिन्होंने उक्त पत्रिकाके अप्रैलमें प्रकाशित होनेवाले विशेषांकके लिए गांधीजी से एक सन्देश माँगा था।

२. साधन-सूत्रमें 'चि० मैरी' और पत्रका प्रथम वाक्य हिन्दीमें है।

किसी भी समय वर्षा हो जायेगी, इस भयसे छतके नीचे सोता था। लेकिन जबतक तुम्हें किसी प्रकारका भय है तबतक [खुलेमें सोनेकी] कोशिश मत करो।

पता नहीं मैंने तुम्हारे इस सवालका जवाब दिया या नहीं कि मैंने सूत कातना कब शुरू किया था। मैंने इसे १९१९ में शुरू किया था, यानी जब मैं ५० वर्षका था। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जिन्होंने ६० वर्षके बाद शुरू किया। इसलिए तुम्हें निराश होनेकी जरूरत नहीं है। और अगर तुम्हे इससे कुछ तसल्ली मिले तो यह भी जान लो कि मै बिल्कुल मूर्ख था।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

मौन रखते समय उपवास रखना जरूरी नही है। आरम्भमें कुछ घंटोंका रखो।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९५५) से। सी० डब्ल्यू० ३३२० से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

६३३. पत्र : चारुचन्द्र मित्राको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं अब आपका पत्र डॉ० विधान रायको भेज रहा हूँ ताकि वे जो-कुछ जाँच कर सकें, कर लें।

रही आपकी पुस्तिकाकी बात, तो मैंने उसे पढ़ लिया है। आपकी इजाजतसे मैं कहना चाहूँगा कि वह असंतुलित है। उसमें दिये गये वे तर्क जो प्रासंगिक हैं, उनका उत्तर 'हरिजन' के पृष्ठोंमें पहले ही दिया जा चुका है। इस पत्रिकाको आप आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि उसकी स्थानीय बिक्रीकी व्यवस्था है। श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त, १५, कॉलेज स्क्वेयर, इसके एजेंट हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चारुचन्द्र मित्रा, एटर्नी-ऐट-लॉ
४ हेस्टिंग्स स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७५) से।

६३४. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

५ मार्च, १९३३

प्रिय डा० विधान,

मै इसके साथ श्रीयुत चारुचन्द्र मित्राका एक पत्र संलग्न कर रहा हूँ। कृपया जो जाँच-पड़ताल सम्भव हो कर लें और चाहें तो श्रीयुत चारुचन्द्र मित्राको सीधे ही पत्र लिख दे और अपने उत्तरकी एक प्रति मुझे भेज दें, या आप ज्यादा ठीक समझें तो आप अपना उत्तर सीधे मुझे ही भेज दें। यदि सुधारकोंकी गलती थी तो हमें सार्वजनिक रूपसे क्षमा माँग लेनी चाहिए।

आशा करता हूँ कि बोर्ड रचनात्मक-कार्य कर रहा है।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १ पत्र

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६१) से।

६३५. पत्र : डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

शायद आप जानते हों कि मीराबाई (मैडेलीन स्लेड) भारत सरकारकी सविनय अवज्ञा-सम्बन्धी नीतिके अन्तर्गत कैद भोग रही है। उसका स्वास्थ्य पिछले कुछ समयसे चिन्ताका कारण बना हुआ है। उसने मुझे बताया है कि पारिवारिक चिकित्सकके नाते आप उसके बचपनकी सभी बीमारियोंका इलाज किया करते थे और गाँठोंके लिए जब उसका ऑपरेशन हुआ था[1] उस समय आप भी उपस्थित थे। यदि आपके पास उसकी बीमारीका कोई रिकार्ड हो तो जरूरत पड़नेपर यदि आप उसकी एक प्रति उसे भेज देंगे तो कृपा होगी। मैं यह भी कह दूँ कि इस समय उसके स्वास्थ्यमें कोई चिन्ताकी बात नहीं है। उसको बदलकर एक ज्यादा अच्छे जेलमें भेज दिया गया है, और बदलीके बादसे वह बेहतर अनुभव कर रही है। लेकिन चूँकि एक समय इसकी आशंका थी कि शायद उसके तपेदिककी गांठें हों, इसलिए सावधानीके खयालसे

१. देखिए "पत्र: मीराबहनको", ४-३-१९३३।

मैंने आपको लिखा है कि उसकी पहलेकी शारीरिक स्थितिके बारेमें जो सूचना दे सकें, मुझे दे दें।

हृदयसे आपका,

डॉ० आर्थर सॉण्डर्स
३७ हार्ले स्ट्रीट
लन्दन, डब्ल्यू०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४६६) से।

६३६. पत्र : पी० एन० वेंकटरमणको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप देखेंगे कि मै 'हरिजन' के पृष्ठोंमें वर्णाश्रमके बारेमे बराबर लिखता रहूँगा क्योंकि आपकी ही तरह बहुतसे लोग मुझे इस विषयमें पत्र लिखते रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एन० वेंकटरमण
५८० पाइक्रॉफ्ट्स रोड
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६९) से।

६३७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

५ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला, और मुझे बँगला 'हरिजन' की दो प्रतियाँ भी मिली हैं। कितना अच्छा होता कि बँगला भाषाकी मुझे इतनी जानकारी होती कि पढ़कर देख सकता कि आप क्या लिखते रहे हैं। श्रीयुत घनश्यामदासने मुझे कहते सुना है कि मैं बँगलाका अध्ययन कर रहा हूँ। दुर्भाग्यवश यह गलत है। मैंने उन्हें जो बताया था वह यह था कि मैं उर्दू सीख रहा हूँ और यदि मेरे पास समय होता तो मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं बँगला सीखूँ और तमिलके अपने ज्ञानको ताजा करूँ। बँगला सीखनेका मेरा स्वप्न, जैसाकि आप जानते हैं, बहुत पुराना है। यह १९१४ में साकार होनेवाला था, लेकिन मुझे अचानक भारतके लिए चल देना पड़ा और मृणालिनी देवी मुझे जो शिक्षा दे रही थीं उसे स्थगित करना पड़ा। इसलिए जब महादेव पत्रिकाको पढ़ लेगा तब उसे जो-कुछ कहना है वह मैं आपको भेज दूँगा। आवरण निश्चय ही

आकर्षक है। आप मुझे सूचित कीजिएगा कि जनताने इसका कैसा स्वागत किया है। लेखोंको अगाऊ भेजनेका जहाँतक सवाल है, इसमें जबरदस्त कठिनाइयाँ हैं, लेकिन मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है।

चेचकका टीका लगवानेके बारेमें आपके मतको मैं समझता हूँ। आपका विश्वास आपको शक्ति प्रदान करेगा।

आप देखेंगे कि बंगालमें हो रहे कार्यके बारेमें आपने जो रिपोर्ट भेजी थी उसे शास्त्रीने किस प्रकार "वीक टु वीक" शीर्षक स्तम्भोंमें[1] गूँथ दिया है।

हेमप्रभाने अरुणके पिताकी मृत्युके बारेमें मुझे जो सूचना दी थी उसको लेकर जो 'मनोरंजक' भूलें हुई, क्या उन्हें आपने देखा? जब मैंने उनका पत्र पढ़ा तो मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। आपको कोई तकलीफ नहीं थी। आप अरुणके पिता थे, और फिर भी पत्रमें 'अरुणके पिता' स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ था। मैंने पत्रको पढ़ा या उसे सरदार, महादेव और छगनलालको दिखाया, और हम सब इस नतीजेपर पहुँचे कि यह कोई और अरुण होगा जिसके पिता मर गये हैं, क्योंकि बादमें हेमप्रभाकी भाषासे यह स्पष्ट हो जाता था कि अरुणके पिताको उनकी मृत्युसे पहले आपको देखने जाना था, लेकिन आपको और उन्हें (हेमप्रभाको) बहुत देर हो गई। मेरे मनमें एक धुँधली-सी छाप थी कि हेमप्रभाने एक लड़के या लडकीको गोद लिया है, इसलिए मैंने अरुणका सम्बन्ध इस गोद लेनेसे जोड़ दिया, और फिर भी मेरी जानकारीमें दो अरुण नहीं थे। इसलिए मेरे पत्रमें[2] एक अजीब अरुणके पिताका बहुत खराब-सा उल्लेख था। आपके पत्रसे रहस्य स्पष्ट हुआ। और अब मुझे अरुणका पोस्टकार्ड मिला है। लेकिन बेशक, आपके पत्रमें ही काफी स्पष्ट था कि यह आपके पिता थे जिनकी मृत्यु हुई थी। यदि मुझे याद होता, जैसाकि मुझे याद रखना चाहिए था, कि आपके पिता अभी भी जीवित हैं तो मैं फौरन जान जाता कि हेमप्रभाका अभिप्राय पिताके बजाय पितामहसे था। लेकिन हेमप्रभाका पत्र पढ़ते समय मैं बिल्कुल भूल ही गया था कि आपके पिता अभी जीवित थे। आपके पत्रसे ही यह बात मुझे याद आई।

मुझे आशा है कि हेमप्रभा, अरुण और जिसने भी मेरा पत्र पढ़ा होगा, मुझपर खूब दिल खोलकर हँसे होंगे। लेकिन जब मेरा पत्र वहाँ पहुँचा, उस समय यदि मैं वहाँ होता तो मैं भी इस ठहाकेमें शामिल हो गया होता, और हेमप्रभाके ऊपर भी एक ठहाका लगानेको कहा होता। मैं अरुणको अलगसे नहीं लिख रहा हूँ। इसलिए पत्रके इस अंशको आप उसे भी दिखा दीजिएगा। मैं देखता हूँ कि वह अभी भी बिल्कुल ठीक नहीं है। और अरुणसे कहिएगा कि जब वह अपना वादा किया हुआ पत्र मुझे लिखेगा तभी मैं उसे लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४७०) से।

१. **हरिजन** के।

२. अरुण सम्भवत: अपने पितामह को 'पिताजी' कहता था; देखिए "पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको", २५-२-१९३३।

६३८. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मैंने आपका २४ फरवरीका पत्र पूरी सावधानीके साथ आद्योपान्त पढ़ा है। आपने पत्र लिखनेमे बहुत परिश्रम किया है और संस्कृतके पाण्डित्यका जो प्रदर्शन किया है उसे मै स्वीकार करता हूँ। लेकिन आप मुझे यह कहनेकी इजाजत देंगे कि मुझे आपके ज्ञानका वास्तविकतामे कोई मेल नहीं मिला और मेरे लिए यह बड़े खेद की बात रही है कि इतने सारे सनातनियोंसे मैंने जो सम्पर्क किया है उनमें से मुझे एक भी ऐसा नही मिला है जिसने मेरे द्वारा उठाये गये बुनियादी सवालोंका जवाब दिया हो। आपकी सुविधाके लिए मैं उन्हें नीचे देता हूँ।

जन-गणना रिपोर्टके आँकड़ोंमें जो लोग अस्पृश्य बताये गये है, उनमें से जन्मत: अस्पृश्य कौन हैं? उनको अस्पृश्य माननेका वेदोंमें कहाँ प्रमाण है? और यदि वेदोंमें नही है तो क्या बादमें रचे जानेवाले शास्त्र ऐसी निर्योग्यताएँ थोप सकते हैं या ऐसे वर्गोकी रचना कर सकते हैं जिनकी कल्पना वेदोंमें नहीं की गई थी। शास्त्रोंमें कहाँ ऐसा प्रमाण है जिससे 'हरिजन' के पृष्ठोंमें मैंने जिन बहुत सारी निर्योग्यताओंका उल्लेख किया है और जिन्हें अस्पृश्योंकी कोटिमें रखे गये सभी लोगोंको भोगना पड़ता है, उन निर्योग्यताओंको उचित ठहराया जा सके?

आप पूछते है कि क्या मैं संन्यासी होनेका दावा करता हूँ। मैं नहीं करता। मेरा दावा है कि मैं एक अत्यन्त साधारण हिन्दू हूँ और मुझे जो सबसे ज्यादा ठीक लगता है, उस तरीकेसे अपने पूर्वजोंके धर्मकी सेवा कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

पंडित वी० एस० आर० शास्त्री
२५ एन० सुब्बाराया मुदाली स्ट्रीट
माधवपुरम्, मैलापुर
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७२) से।

६३९. पत्र : अलस्टेयर मैकरेको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री मैकरे,

मुझे आपका इसी ३ तारीखका पत्र कल मिला। ए० पी० की रिपोर्टसे मुझे भी उतना ही गहरा दुःख हुआ जितना आपको। वह भेंट केवल आपके ही लिए थी और मुझे कोई भान नहीं था कि गोपालनने उसे ले लिया है। लेकिन उसने न केवल उसे ले लिया बल्कि उसने मुझे उसे दिखायातक नहीं। यही कारण है कि वह इतने खराब रूपमें प्रकाशित हुई है। उसमें मेरी रायको भी सही ढंगसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। तथापि, मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ कि गोपालनने कोई लज्जाजनक काम नहीं किया है। वह एक ऐसी गलती थी जिसमें कोई बुरा इरादा नहीं था। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपको उसके ऊपर जो झुंझलाहट है उसे आप मनसे निकाल देंगे।

हृदयसे आपका,

श्री अलस्टेयर मैकरे
आर्सेनल रोड
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७३) से।

६४०. पत्र : पी० आर० लेलेको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री लेले,

आपके पोस्टकार्डके लिए धन्यवाद।

हाँ, मुझे श्रीयुत जयकरकी राय पहले ही मिल चुकी है। आपने अपने बारेमें जो कहा है उसे मैं समझता हूँ। मुझे आशा है कि आपके लिए बने रहना सम्भव हो सकेगा। क्या आप मुझे बता सकते है कि श्रीयुत जयसुखलाल कैसे हैं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१ मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७४) से।

६४१. पत्र: एम० आई० डेविडको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री डेविड,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यथासमय २५०० रुपयेके नोट प्राप्त हो गये थे। आपने 'हरिजन' में घोषणा[1] देखी होगी। मै आपकी इस इच्छाकी सतर्कता-पूर्वक रक्षा करूँगा कि आपका नाम प्रकाशित न किया जाये। पहले विद्यार्थीका चयन उचित ढंगसे हो, इसके लिए मैं जो सम्भव होगा, करूँगा।

छात्रवृत्तिका जो नाम[2] आपने रखा है वह एक असम्भव नाम है, लेकिन मुझे नहीं लगता कि कोई नाम देना बिलकुल भी जरूरी है, और यदि कोई नाम होना ही चाहिए तो उसका पैतृक नाम होना चाहिए, और यह नाम होगा 'द डेविड स्कीम स्कॉलरशिप'।

मैं एक उपयुक्त विद्यार्थीका नाम प्राप्त करनेकी कोशिश करूँगा, लेकिन यदि कभी आपको कोई अच्छा उम्मीदवार मिले तो आप उसका नाम मुझे बतानेमें संकोच नहीं करेंगें। यह वतानेकी आवश्यकता नहीं है कि मैं जो-कुछ भी करता हूँ उसमें सरदार वल्लभभाईका सहयोग हमेशा ही रहता है।

हृदयसे आपका,

श्री एम० आई० डेविड
४ क्वीन्स रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७६) से।

१. देखिए "डेविड-योजना", ४-३-१९३३

२. श्री डेविडने उस छात्रवृत्तिका नाम "महात्मा गांधी-वल्लभभाई स्कॉलरशिप" रखनेका सुझाव दिया था।

६४२. पत्र : केशव गांधीको

५ मार्च, १९३३

चि० केशू,

तेरा वजन कैसे घट गया, यह तू नारणदाससे पूछ ले। इतना घटना नहीं चाहिए। क्रोध और ईर्ष्या मनसे निकाल देना। आश्रमका नाम क्यों बदला गया, यह वहाँ किसीसे पूछ लेना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२८८) से।

६४३. पत्र : मथुरादास पी० आसरको

५ मार्च, १९३३

चि० मथुरादास,

मोतीबहन[1] फिर अधीर हो उठी हैं। तुम्हें फिर एक बार परीक्षामें से गुजरना होगा। यदि दृढ़ रहे तो सब-कुछ ठीक ही होगा। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना।

अपने शरीरको सँभालकर ही काम करना। मोती लिखती है कि तुम्हारा शरीर ठीक नही रहता। मुझे लिखते रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७६०) से।

१. मथुरादास आसरकी पत्नी।

६४४. पत्र : जमनाबहन गांधीको

५ मार्च, १९३३

चि० जमना,

तुम्हें फिर दमा उठ आया है, ऐसा सुना है। यह क्यों? उतावलेपनमें सांताक्रूज न छोड़नेकी बात पुरुषोत्तमको लिखी सो ठीक ही किया। उसने मुझे पत्र लिखनेको कहा तो अवश्य था, पर अभीतक एक भी पत्र नहीं आया।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७३) से, सौजन्य : नारणदास गांधी

६४५. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

५ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तू तो झूठा आरोप लगानेवाली लड़की जान पड़ती है। पत्र लिखे तो तूने नही और उलटे माँग मुझसे करती है।

तू घर हो आई यह ठीक किया। अब काममें बराबर मन लगाना।

मुझे लिखती रहना।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २७७३) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

६४६. पत्र : क० मा० मुन्शीको

५ मार्च, १९३३

भाईश्री मुन्शी,

आपका कार्ड मिला। लगता है आपके सिर तो दुःखकी मार पड़ती ही जा रही है। पर इसके बिना मनुष्यकी खरी कसौटी भी नहीं हो पाती। यदि जगदीशकी तबीयत बहुत ही बिगड़ गई हो तो उसे वहीं रहने दिया जाये, यह अपनी नीम-हकीमी सलाह मैं आपको दे ही चुका हूँ। लगता है, आपका हाथ अभीतक ठीक नहीं हो पाया है। इसके लिए उपाय करते रहना।

आपके दुःखमें हम सभीकी सहानुभूति है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२७) से; सौजन्य : क० मा० मुन्शी

६४७. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

५ मार्च, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम ठीक रिहा हो गई। मैंने तुम्हें जो दूसरा पत्र लिखा था, वह तुम्हें नहीं मिला। हो सकता है, जब तुम छूटी हो वह उस समय दिया गया हो। इस बारके अनुभव बताना। लक्ष्मीकी विदाके अवसरपर तुम ठीक पहुँच गई। जेल ही की तरह आश्रमका अनुभव भी लिखना। शरीरकी क्या हालत है, सो भी बताना।

क्या पढ़ा? क्या चिंतन किया और क्या कार्य किया? यहाँ तो बहनें मजे कर रही हैं। जेलके सुपरिंटेंडेंट कई बार हँसी-हँसीमें कहा करते हैं कि जबतक गंगाबहन यहाँ थी, सभीको उनकी दवाको जरूरत पड़ती थी। पर अब तो कोई दवाकी माँग नहीं करता। मैंने इसका जवाब दिया, पर यदि तुम भी देना चाहो तो भेजना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–६ : गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ६७। सी० डब्ल्यू० ८७९७ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

परिशिष्ट

परिशिष्ट : १

सदाशिवराव और शिन्देके साथ बातचीत[1]

१३ जनवरी, १९३३

बापू : यह विधेयक पास होनेके बाद भी बहुमतको अपने अधिकारका उपयोग अल्पमतको भड़का देनेके लिए नहीं करना चाहिए। हर रोज कुछ घंटे अल्पमतके लिए मन्दिर खुला रखना चाहिए। ये लोग भी मूर्तिके प्रति एक खास भाव रखते है और मूर्तिका महत्त्व और उसकी शक्तिको मानते है। ऐसे लोगोंके लिए मैं स्थान बना दूँगा और उन्हें पहले मौका दूँगा। मैं उनसे कहूँगा कि मन्दिर 'अशुद्ध' हो, उससे पहले आप जी भरकर दर्शन कर लीजिए और मैं बादमें जाऊँगा।

सदाशिवराव : किन्तु इस तरह क्या उनकी हीन-भावनाको आघात नहीं पहुँचेगा?

बापू : हीन-भावनाका सवाल तो हरिजनोंके बारेमें हो सकता है। सुधारक यदि बहुमतमें हों, तो हरिजनोंको भी बड़े भाईकी तरह बर्ताव करना चाहिए, और जिस चीजको करनेके लिए वे कानूनसे बँधे नहीं हैं, वह उन्हें स्वेच्छासे करनी चाहिए।

मैं यह नहीं चाहता कि अलग मन्दिर बनवाये जायें। मैं उनसे [सनातनियोंसे] कहूँगा कि आपके लिए मै सुविधा कर दूँगा। आप चले न जाइए। जैसे आप बन गये, वैसा मुझे नहीं बनना है। आपने तो हमें छोटा माना था। आप तो हमसे मन्दिरके आगेसे दर्शन करके सन्तोष माननेको कहते थे। किन्तु हम आपको छोटा नहीं समझेंगे। हम तो आपको आगे करेंगे और मूर्तिकी शुद्धिके बारेमे आपकी भावनासे सन्तुष्ट होंगे। मनुष्य समझौता करता है, तो या तो कमजोरीसे करता है या बलवान होकर करता है। सत्यार्थीकी हैसियतसे मैं बलवान बनकर समझौता करूँगा। कल ही सनातनियोंके साथ मैंने ऐसा किया। उन्होंने मुझे एक दस्तावेज़पर हस्ताक्षर करनेको कहा। आम तौरपर मैं ऐसी लिखावटपर हस्ताक्षर नहीं करता। किन्तु इन लोगोंके सन्तोषकी खातिर बहुत जरूरी सिर्फ दो फेर-बदल करके मैंने हस्ताक्षर कर दिये। उनके और मेरे बीच जो-कुछ हुआ, वह सब मैं जाहिर करूँ तो इसमें हिन्दू-धर्मकी शोभा नहीं है।

मैं इस मामलेमें पड़ा, इससे मुझे बहुत जाननेको मिला। शास्त्रोंमें क्या-क्या है, इसका मुझे पता चला। यह सब जाने बिना मैं ऐसे वक्तव्य नहीं लिख सकता था,

१. देखिए "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

या इतने अधिकारपूर्ण ढंगसे तो लिख ही नहीं सकता था। उनके साथ यदि मेरी इतनी मुलाकातें न हुई होती, तो इस समझौतेका मुझे विचार भी न आता।

शिन्दे: लोग समझते हैं कि यह तो पच्चरकी नोक है।

बापू: मै इसे पच्चरकी नोक नही मानता। मै यह नहीं समझता कि सभी एतराज करनेवाले झूठे है। मुझे उन्हें मन्दिरोंसे निकाल नहीं देना है। जो सच्चे भावसे मन्दिरोंमे जानेवाले हैं, उनके जीवन तो मन्दिरोंके साथ गुँथे हुए होते हैं। यह मैं अपनी माँ के उदाहरणपर से कह रहा हूँ। वह कितनी ही बीमार हो, तो भी मन्दिर मे जाकर दर्शन किये बिना मुँहमे एक दानातक नहीं डालती थी। उसकी इस आदतके कारण ही उसमें शक्ति आ जाती थी। मिले हुए अधिकारका उपयोग मुझे एक राक्षसकी तरह या गुडेकी तरह नहीं करना चाहिए। सच्ची माताको मुझे स्थान देना है। मन्दिरमें जानेवाली सब स्त्रियाँ मेरी माताएँ ही है। उन्हें शुद्धि रखनी हो तो भले ही रखें। हरिजनोंको उदार भावसे उन्हें ऐसा करने देना चाहिए और उन्हें स्वेच्छासे ऐसा करना चाहिए। आजकल जो चश्मे और इंजेक्शन निकले है, उनका उदाहरण लीजिए। हमारे पूर्वज शायद इन्हें वहम मानते। कल कोई ऐसा भी निकल सकता है, जो प्रार्थनाको वहम माने, फिर भी लोगोंकी भावनाका आदर करना ही चाहिए। इस प्रकार मेरा सुझाया हुआ समझौता बिलकुल ठीक है। सनातनी यह बात मंजूर नही करेंगे, किन्तु मैं देखता हूँ कि वे मेरे नजदीक आते जा रहे हैं। मैं स्वयं हरिजन हूँ और हरिजनोंपर मेरा काबू है।

शिन्दे: हरिजन तो आपकी बात सुनेंगे ही। ये लोग तो आपकी सुननेको बँधे हुए हैं। जब मै यह कहता हूँ कि कोई समझौता न कीजिए, तो मेरा मतलब यह नहीं होता कि किसी दिन भी समझौता नहीं होगा।

बापू: मातेको दर्शन करनेकी अलग जगह चाहिए थी। यह गलत समझौता था।

शिन्दे: आध्यात्मिक दृष्टिसे देखें तो आपका समझौता, समझौता ही नहीं। यह चीज धीरे-धीरे घिस जाती है।

बापू: हाँ, इसमें परस्पर आदर और प्रामाणिकता गृहीत है। तभी मन्दिर सच्चा मन्दिर बनता है। इसी तरह होटलोंमे भी यदि सनातनियोको अपने लिए अलग मेज रखनी हो तो भले ही रखें। यह सब सुझानेमें मै एक बात मानकर चलता हूँ कि बहुमत हमारे पक्षमे है। यदि बहुमत उनका हो तो हम मन्दिरोंमें पैर नही रखेंगे।

समझौतेके बारेमे मैंने नई ही दृष्टि खोजी है। समझौतेका सुझाव हमेशा बलवान की तरफसे आना चाहिए। सत्य जिसके पक्षमें हो, वही ऐसा समझौता कर सकता है।

शिन्दे: हाँ, यह तो क्षमा-जैसी बात हुई, जो बलवान ही कर सकता है।

बापू: इस समझौतेसे आपके, मेरे या किसीके भी सिद्धान्तको कोई आँच नहीं आती। जो दूसरोंके सिद्धान्तोंकी जड़ काटे वह पशुता ही कहलायेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४७-९

परिशिष्ट २

एक मित्रके साथ बातचीत[1]

१३ जनवरी, १९३३

प्र० : अन्तरात्माकी आवाजका क्या अर्थ है?

बापू : अन्तरात्माकी आवाज ईश्वरकी आवाज है। वह हमारी आवाज नहीं है। यह आवाज ईश्वरकी भी हो सकती है और शैतानकी भी। ईश्वर हमारे द्वारा बोले, इसके लिए हमें यम-नियमका अच्छी तरह पालन करना चाहिए। करोड़ों मनुष्य अन्तरात्माकी आवाजका दावा करें, तो भी सच्ची अन्तरात्माकी आवाज एक की ही होगी। इसका सबूत नहीं दिया जा सकता, पर उसका असर पड़ सकता है। अन्तरात्माकी आवाज हमसे बाहरका बल है, किन्तु वह बाह्य बल नहीं है। हमारे बाहरका यानी हमारे अहंकारसे बाहरका बल है। अहंकार जब सोया होता है, तब उसपर दो बल काम करते हैं — सत् और असत्। जब हम सत् बलके साथ तदाकार हो जाते हैं, तब गूढ़ भाषामें यह कहा जाता है कि ईश्वर हमारे जरिये बोल रहा है। हम सत्के साथ इतने तद्रूप हो जाते हैं कि हमारा अहं शून्य हो जाता है।

प्र० : अन्तरात्माकी आवाज सुननेका दावा मनुष्य कब कर सकता है?

बापू : यह तो उस आदमीपर निर्भर है। उसे जब अनुभव हो जाये कि वह स्वयं काम नहीं करता, तब वह ऐसा कर सकता है। मान लीजिए कि मैं अन्तरात्माकी आवाज सुननेका हमेशा प्रयत्न करूँ, सदा ईश्वरसे प्रार्थना करूँ कि तू मेरे जरिये काम कर और मुझे शून्य बना दे, तो ऐसा क्षण आ सकता है, जब मुझे यह लगे कि ईश्वर मुझे अपनी आवाज सुना रहा है। उस समय मैं यह कहूँगा भी कि मैं ईश्वरकी आवाज सुन रहा हूँ। किन्तु इसे मैं सिद्ध कैसे करूँ? यह तो मेरे आचरणसे ही सिद्ध होगा। किन्तु वह भी अन्तिम कसौटी नहीं है। मान लीजिए हिमालयकी किसी गुफामें एक आदमी गड़ गया है और ईश्वर उससे मिलनेके लिए मुझे वहाँ भेजता है। मान लीजिए मैं उस जगह पहुँच गया, मैंने जरा-सा खोदा और मुझे वह आदमी मिल गया। फिर भी सम्भव है कि वह अन्तरात्माकी आवाज न हो, केवल संयोग हो या मेरा भ्रम ही हो या मुझे किसीने ऐसा कहा हो। दुनिया तो परिणामसे ही मेरा न्याय करेगी। यदि परिणाम अच्छा आये, तो दुनिया कहेगी कि यह चमत्कार हुआ। किन्तु असलमें इसमें अन्तिम प्रमाण कुछ नहीं है। मनुष्य कब आत्मवंचना करता है और कब दम्भी बनता है, यह वह स्वयं नहीं जानता। आत्मवंचनामें दम्भसे भी ज्यादा बड़ा खतरा है।

१. देखिए "पत्र: जॉर्ज जोजेफको", १३-१-१९३३।

एक ही चीजको बतानेवाले बहुत-से उदाहरण हों, तब हमे ज्यादा सबूत मिलता है। इसमे बुद्ध, कृष्ण और मुहम्मद, सभी महान पुरुष आ जाते है। उन्होने जो सत्य कहा है, वह उन्होंने अपनी शक्तिसे नही कहा है, बल्कि किसी अलौकिक शक्तिने उनके जरिये कहलवाया है। कुछ मनुष्य इतने अधिकारी होते है कि उनके द्वारा शक्ति काम करती है। किन्तु वह कब काम करती है, इसका सबूत नहीं दिया जा सकता।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४९-५०

परिशिष्ट ३

धर्मदेवके साथ बातचीत[1]

१७ जनवरी, १९३३

बापू: शुद्ध ब्राह्मण और शुद्ध ब्राह्मणीकी सन्तान ब्राह्मण होगी, इतनी आनुवंशिकता मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसा ब्राह्मण अपने लड़केको यदि शूद्रकी तरह पाले तो वह वर्ण-पतित हुआ। वह पतित ब्राह्मण हुआ।

धर्मदेव: किन्तु उसे ब्राह्मण क्यों कहा जाये?

बापू: वर्णोंमे ऊँच-नीचपन है ही नहीं। उसे पतित तो इसलिए कहेंगे कि वह अपना पतितत्व छोड़कर फिरसे ब्राह्मण हो सकता है। ऊँच-नीचपनकी बात छोड़ो। मान लो कि बढ़ई बढ़ईगिरी छोड़ दे और पाखाने साफ करनेका ही काम करने लगे, तो 'गीताजी' इसे कहती है कि वह धर्मच्युत हो गया। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' बढ़ई सुनारका काम करनेकी कोशिश न करे। इसी तरह वह वेदकी शिक्षा लेने जाये, तो भी मैं उसे पतित बढ़ई कहूँगा। हमे धर्म और कर्म (व्यवहार)का समन्वय करना है। यदि हम लोगोंको साहसी बनानेकी बात करें और कहें कि सब व्यापार करें, तो क्या चल सकता है? इसलिए आनुवंशिक धन्धे ठहराये गये। हम तो यह कहें कि अपनी बुद्धिका समाजके नित्य कल्याणके लिए उपयोग करो। आज कचनजंघापर चढ़ाई करनेवालोंकी तारीफ होती है। मेरा दिल उनकी बड़ाई नही करता, बल्कि निन्दा करता है। हमारे यहाँ खोज नहीं होती थी सो बात नही। पतंजलिने अहिंसाकी शास्त्रीय खोज की थी।

धर्मदेव: तो क्या अपनेमे [अन्य] वर्णोचित गुण हों, तो उन्हें न बढ़ाया जाये? मै क्षत्रिय हूँ, किन्तु मुझमें क्षत्रियता नही है। आप वैश्य हैं, परन्तु आपकी वैश्य प्रवृत्ति कहाँ है?

बापू: मैंने शुद्ध सामाजिक व्यवस्थाकी बात की है। आज ऐसी व्यवस्था नही है। आज वर्णसंकर हो गया है, क्योंकि वर्णाश्रमका लोप हो गया है। आज तो एक

१. देखिए "पत्र: कॉलेजके एक विद्यार्थीको", १७-१-१९३३।

ही आश्रम रह गया है --- गृहस्थाश्रम। और वह भी धर्मका नहीं, परन्तु स्वेच्छाचारका। और वर्ण रह गया है शूद्रका। आज हम दूसरे राज्यके गुलाम हैं। कारण, क्षत्रिय रहे नहीं, ब्राह्मण रहे नही, और वैश्य रहे नहीं। वैश्य तो रुपया पैदा करनेमें लगे हुए है। [और हम] शूद्र भी कैसे कहला सकते है? परिचर्या भी हम मजबूर होकर करते हैं, धर्म मानकर नहीं। एक शास्त्रीने मेरे सामने स्वीकार किया कि हम सब कर्म-चाण्डाल हैं। वह चाण्डाल जाति क्या करे? क्या वर्णधर्म पैदा करनेका प्रयत्न करे? मैं यह नहीं कहता कि यह वर्णधर्म इसी नामवाला होना चाहिए। शास्त्रोंने तो अनादि धर्म बताया है और वर्ण-व्यवस्थाकी बात कही है। मेरी तो आजकल साधना चल रही है। इस मामलेमें मै आत्मविश्वाससे नहीं बोल सकता, क्योंकि मेरी साधना थोड़ी है।

धर्मदेव: तो आप यह क्यो नहीं कहते कि मैं कोई भी वर्ण नही मानता, जैसाकि आज कोई वर्ण ही नही रहा? आपने कहा है, ब्राह्मण जन्मसे होता है। परन्तु ब्राह्मणत्व जन्मसे नही होता। 'जन्मना जायते शूद्रः'।

बापू: इसमे मेरा आपके साथ झगड़ा है। आर्यसमाजियोंने अपनी बुद्धिको रोक दिया है। मेरी भाषा सूत्ररूप है, इसमे अनघड़पन है, इसलिए इसके कई अर्थ होते है।

धर्मदेव: आप कहते हैं, ब्राह्मणको अपने पहलेके ऊँचे स्थानपर पहुँचना चाहिए।

बापू: सच बात है। मै वैश्य जन्मा हूँ, किन्तु लोग मुझमें कुछ बातें ब्राह्मणोचित देखते है और कहते है कि मै ब्राह्मण हूँ। लेकिन मुझे तो अभी शूद्रत्वसे आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। आश्रममे सब आठ घंटे काम करके खाते है। मेरा यह माम्यवाद हिन्दू-धर्मसे आया है। रस्किनने भी यही सिखाया है। किन्तु आज तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सबको करोड़पति बनना है। इसलिए मैंने कहा कि सबको, बैरिस्टर और शूद्रको, बराबर दो। हरएक अपनी-अपनी बुद्धि समाजकी सेवामे अर्पण करे। यदि सारा समाज त्याग करे, तो समाज भूखों न मरे। जुआरी भी अपनी संपत्तिमें दूसरोंको साझीदार रखते हैं। हम तो जुआरियोंसे भी गये बीते है। स्टीमरों पर मैंने ऐसे उदार जुआरी देखे हैं, जो अपना खानगी बताकर अपनी जेबमे कुछ भी नही ले जाते, पर साथ बैठकर उड़ा देते हैं। आजकलकी हालत देखकर मेरा दिल रात-दिन रोता है। आँखोंसे आँसू नहीं निकलते, पर दिल रोता है। आश्रममें, जो पराये पैसेसे चलता है, कोई असत्याचरण करता है, विकारवश होता है, तो मै रोता हूँ। मैं जो प्रयोग आश्रममें करता हूँ, मैं चाहता हूँ कि वह दुनिया में भी हो। यदि मैं इसमे असफल रहूँ और इसे सफल करनेके लिए हजार जन्म लेने पड़ें तो भी कम है। अपने निजी लाभके लिए जो बुद्धिका उपयोग करता है, वह कामका ही नहीं। बुद्धिका उपयोग समाजके लिए ही करना चाहिए। मुझे तो अपने विचार नई भाषामें बताने पड़ेगे।

धर्मदेव: किन्तु आप तो यह भी कहते है कि आप वर्ण और कर्म, दोनोंको मानते हैं।

बापू : देखो, एक न्यायकी बात है। हम कितना ही प्रचार करें, परन्तु लोग उसपर ध्यान न दें तो क्या किया जाये? इसीलिए मनुष्यके लिए मौन-सेवन करनेको कहा गया है। सत्यके सिवाय दूसरा प्रचार क्या हो सकता है? वर्णधर्म क्या है, यह मैने कह दिया है। किन्तु आज मै उसका प्रचार नही करता, क्योंकि वह अप्रस्तुत है। वर्णधर्ममे ऊँच-नीचका भाव नहीं है, किन्तु अस्पृश्यतामें ऊँच-नीचका भाव है। इसलिए अस्पृश्यता वर्णधर्मकी ज्यादती है।

धर्मदेव : यह जातिमे से पैदा हुई है।

बापू : हाँ, जातिमे से; किन्तु यदि अस्पृश्यता समाप्त हो जाये तो फिर जाति मे ऊँच-नीचका भाव नहीं रहेगा। सबसे बड़ा जन्तु साँप है। यह साँप अस्पृश्यताका है। फिर बिच्छू और दूसरे जन्तु रहेंगे तो उनकी परवाह नही। अस्पृश्यता गई कि . . .।

धर्मदेव : किन्तु वह जात-पाँत तोड़े बिना नहीं जायेगी।

बापू : मैंने यह उपवास किसलिए किया? ऊँच-नीचका भाव नष्ट करनेके लिए ही।

धर्मदेव : यह साफ क्यों नहीं कहते? आप जन्म और कर्म, दोनोंको मिला देते हैं।

बापू : मैं तो कहता हूँ कि जातिका मै दुश्मन हूँ और वर्णका हिमायती।

धर्मदेव : किन्तु आप तो जन्म और कर्म, दोनोंको मिला देते है। हरिजनोंको शूद्र किसलिए माना जाये? पर आपने यही कहा है।

बापू : आज मै वह वाक्य नहीं कहूँगा। आज तो इतना ही कहूँगा कि इन्हें चाण्डाल न माना जाये।

धर्मदेव : आप सनातन-धर्मको स्पष्ट क्यों नही करते? सनातन-धर्म नित्य धर्म है।

बापू : सनातन-धर्म शब्दमें भले ही नित्य धर्म निहित हो, परन्तु जनता इसे न माने तो इसका नित्यत्व कैसे रहेगा? मै जैन मतका — अनेकान्तवादी हूँ। एक ही वस्तुको मैं एकातिक सत्यके रूपमे नहीं मानता। इसलिए मै इस धर्मको सत्य-धर्म कहूँगा, किन्तु सनातन नहीं कहूँगा — जबतक इसे दुनिया भी न माने।

धर्मदेव : आपने यह अर्थ कहाँसे निकाला?

बापू : यह ऐतिहासिक अर्थ है। गोघ्नका ऐतिहासिक अर्थ अलग है, सच्चा अर्थ अलग है।

धर्मदेव : नहीं। आप अपनी स्थिति सनातनधर्मियोंके सामने स्पष्ट नही करते। आपको इन लोगोंसे कहना चाहिए कि सनातन-धर्मका अर्थ नित्य धर्म, वैदिक धर्म है; और जो इसके विरुद्ध है, वह अधर्म है। 'नास्ति वेदात् परो धर्म.'। आपने एक जगह कहा है कि शास्त्र बुद्धि और हृदय, दोनोंको मान्य होना चाहिए। वेदमें बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं है।

बापू : दो शास्त्री हैं और 'दुहितृ' शब्दके बारेमें लड़ते हैं। एक कहता है कि इसका अर्थ है लड़की और दूसरा कहता है गायको दुहनेवाली। दोनों विवादमें पड़ गये और न्यायाधीश कहता है दोनोंको फाँसी दो, क्योंकि एक एक बात कहता है और दूसरा उसी बातको दूसरे अर्थमें कहता है। इसी तरह सनातन-धर्मके एक-दूसरेसे

भिन्न अर्थ करके हम बातचीत नहीं कर सकते। इसलिए कहता हूँ कि सनातन-धर्मका आप अनर्थ कर रहे हैं। दस सालकी लड़कीकी शादी करनेकी बात कहनेवाला सनातन धर्म कहलाता है। अब यदि इस बातका लोग साथ न दें, तो इसे सनातन-धर्म कौन कहेगा? ये लोग कहते हैं कि हमारे पीछे करोड़ों लोग है। मैं कहता हूँ कि मेरे पीछे करोड़ों लोग है। मैं कहता हूँ कि मै तो प्राचीन धर्मकी ही बात कहता हूँ, जिसका अर्थ मैंने ऊपर किया है। एक आदमीने कहा कि आप अपने को आर्यसमाजी जाहिर कर दीजिए। मैंने कहा, किसलिए? लोग मुझे मानना बन्द कर दें इसलिए? मैं स्मृति, इतिहास, पुराण सबको छोड़ दूँ? मैंने मूर्ति-पूजाका एक अलग अर्थ निकाला है। उस मूर्ति-पूजाको मै मानता हूँ। मै तो कहता हूँ कि ईसाई और मुसलमान भी मूर्ति-पूजक है। मेरा धर्म यह है कि संग्रह करने लायक वस्तुका संग्रह करूँ और बाकीको छोड दूँ। इसलिए कहता हूँ कि मुझे नया नाम नही लेना है। 'हिन्दू-धर्म' नाम मेरे लिए काफी है। हिन्दू-धर्म मेरे लिए अगाध समुद्र-जैसा है। इसमे कई चीजे आ जाती है। इसलिए मैं अपनेको आर्यसमाजी नही, ब्रह्मसमाजी नहीं, बल्कि हिन्दू ही कहता हूँ।

धर्मदेव: आप मूर्ति-पूजा किस अर्थमें मानते है? आचार्य रामदेव कहते है कि मन्दिर एक सार्वजनिक स्थान है, इसलिए वह सबके लिए खुला होना चाहिए। वैसे, हमारी कोशिश तो यह होनी चाहिए कि पुजारी मूर्ति-पूजा छोड़ें।

बापू: यहाँ मेरा मतभेद है। मैं मानता हूँ कि काशी विश्वनाथमें ईश्वर-दर्शन करनेवाले को ईश्वर-दर्शन होता है। मेरी माता मन्दिरमे दर्शन किये बिना खाना नहीं खाती थी। वह मुझसे कहती थी कि मै वहाँ पवित्र होनेके लिए, अपने धर्मका पालन हो, इसलिए जाती हूँ। मैंने उसे प्रणाम किया। मुझे लगा कि इस माताको मैं क्या धर्म सिखाऊँगा? ये सब बाते काल्पनिक है और भावनापर आधारित हैं।

धर्मदेव: किन्तु क्या पत्थरको रोटी मान लिया जायेगा?

बापू: हाँ, यदि कोई मनुष्य पत्थरको रोटी समझकर खायेगा, तो उसे उस क्षण तो शान्ति ही मिलेगी। विश्वामित्रने माँस चोरीसे पाया। संध्या-स्नान किया और बादमे उसे फेंक दिया। किन्तु पहले उन्होंने उसे लिया, तब शान्ति मिली थी न? मै तो सत्यार्थी हूँ, ईश्वर-शोधक हूँ। रोज-रोज मुझे जो नये रत्न मिलते हैं वे [दूसरोंको भी] देता रहता हूँ। यही चीज आज जारी किये गये सविनय अवज्ञा और अस्पृश्यतावाले वक्तव्यमे भी है। यह समझमे नहीं आयेगा, क्योंकि सत्याग्रहका शास्त्र नया है, लोग इसके आदी नही हुए हैं।

धर्मदेव: कुछ लोग कहते हैं कि अन्तरकी आवाजसे आप तो नया वेद निकाल रहे हैं।

बापू: भले ही कहें। मै मानता हूँ कि वेद नया हो ही नहीं सकता। वेद तो अनन्त है। किसीके भी हृदयमे ईश्वर प्रेरणा करे और वह बोले तो वह वेद है। मुहम्मदका कहा हुआ भी वेदवाक्य हो सकता है। इसीलिए तो सत्य वेद है।

धर्मदेव: वेद सत्य है।

बापू : भले ही, किन्तु वेदका अर्थ है शुद्ध ज्ञान, और शुद्ध ज्ञानका सत्यसे विरोध नहीं हो सकता। नीति-विरुद्ध या सत्य-विरुद्ध वचन आये, तो आप कहें कि यह वचन प्रक्षिप्त है। या यदि वह वेद-वचन हो तो मुझे मान्य नहीं।

धर्मदेव : क्या 'सत्यार्थ प्रकाश' अभी भी आपको निराशाजनक पुस्तक लगती है?

बापू : नहीं लगी, ऐसा मैंने अभी तक नहीं कहा। क्या करूँ?

धर्मदेव : जिस समय आपने यह कहा था, उस समय तो आपको किसी भी तरह हिन्दू-मुस्लिम एकता करनी थी, इसलिए यह कहा था।

बापू : यानी मैं झूठ बोला था?

धर्मदेव : नहीं। किन्तु उस वातावरणका असर आपपर हुआ था। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपा करके यह पुस्तक फिर पढ़ जाइए। मैंने कई बार पढ़ी है और हर बार पढ़नेपर मुझे इसमें से नई-नई बातें मिलती रहती हैं।

बापू : यह मैं मानता हूँ। पर मैं आज पढ़नेका समय कहाँसे लाऊँ? फिर भी देखूँगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६२-६

परिशिष्ट ४

भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको[1]

पूना

१४ जनवरी, १९३३

आपके इस प्रतिनिधिने आज दोपहरको महात्मा गांधीसे जेलके अहातेमें आमके पेड़के नीचे मुलाकात की और उनसे पूछा कि यदि सरकार अतिरिक्त समयका लाभ उठानेकी नीयतसे कुछ विलम्बित कार्यवाही करनेका निश्चय करे और डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके पारित होनेकी अनुमति तत्काल ही न दे तो उनका क्या रुख होगा। इसका गांधीजी ने यह रहस्यमय उत्तर दिया : "किसी एक दिन मात्र उसी दिनकी चिन्ता काफी है"।

मुझे बताया गया है कि महात्माजी का स्वास्थ्य सामान्यतया काफी अच्छा है। मुझे पता चला है कि उनकी दाहिनी कुहनीकी जाँचके लिए कोई विशेषज्ञ अभीतक बुलाया नहीं गया है। महादेव देसाईने पहले ही उनसे परामर्श करके जो अनेक उत्तर तैयार कर रखे थे उनपर वे दस्तखत कर रहे थे। गांधीजी का मद्रासी टाइपिस्ट एक कोनेमें बैठा हुआ था।

१. देखिए "तार : **हिन्दू** को", १८-१-१९३३ तथा "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १८-१-१९३३।

गांधीजी ने कहा कि मै भारत-सरकारके निश्चयका इन्तजार करूँगा। उन्होंने कहा कि मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें सबका मत जाननेके लिए एक समितिको भेजनेके बहुचर्चित प्रस्तावपर भी अपना मत व्यक्त करनेका मैंने निश्चय कर लिया है।

गांधीजी चाहते हैं कि विधेयकको अनुमोदन देनेके प्रश्नपर सरकारके निर्णयसे तटस्थ रहकर वकील इस समस्याके वैधानिक पक्षको परखें और अपने मतकी घोषणा कर दें। उन्हें विश्वास है कि सरकार द्वारा विधेयकके अनुमोदनके विपक्षमें निर्णय हो जानेपर मामला वहीका-वहीं धरा रहने नही दिया जायेगा। वे एक निश्चित निर्णयको फिरसे उसी प्रकार डिगा देगे जैसाकि प्रधानमन्त्रीके निर्णयके सम्बन्धमें उन्होंने किया था। वे सबसे बड़े सत्ताधिकारीसे इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार करेंगे और इस बातको समाजके एक अगके प्रति अन्याय मानकर इसके विरोधमे आवश्यकता पड़नेपर अपने प्राणोंकी बाजी लगा देगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-१-१९३३

परिशिष्ट ५

मदनमोहन मालवीयका वक्तव्य[1]

सनातन-धर्म महासभाके विशेष अधिवेशनका उद्देश्य है, कुछ विशेष प्रश्नोपर गहन ज्ञाता और अत्यन्त सम्माननीय सनातनियोंके मतको प्रकाशमें लाकर उसकी अभिव्यक्ति करना। उन प्रश्नोंमें अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी तथा मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रश्न भी आ जाते हैं, जोकि एक ओर सनातनी समाजको उद्वेलित कर रहे है और दूसरी ओर सुधारक कहलानेवाले लोगोंको भी। इन दोनों पक्षोंके मतभेदोंको तीव्र होते देखकर मुझे घोर कष्ट हुआ है और प्रकट ही है कि यदि इन मतभेदोका समाधान न किया गया तो हिन्दू जाति और भी अधिक विभाजित और दुर्बल हो जायेगी। ये मतभेद मुख्यतया भ्रान्त धारणाके कारण हैं और विचाराधीन महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर हमारे मार्ग-दर्शनके लिए बनाये गये शास्त्रोक्त विधानोंका अधकचरा ज्ञान ही उसका कारण बनता है। यह कहना तो अनावश्यक ही होगा कि महात्मा गाधी कभी भी सनातन-धर्मको हानि पहुँचाना नहीं चाहेंगे। उन्होने संसारके सम्मुख सिद्ध कर दिया है कि देशका एक विशाल समुदाय जिन कष्टोंको झेल रहा है उनका निवारण करके उस समुदायको हिन्दू-धर्मके समस्त लाभोंसे लाभान्वित कराके उन्हें हिन्दू जातिका एक सन्तुष्ट और सुखी अंग बनाये रखनेके लिए और इस प्रकार देशकी सेवा करनेके लिए वे प्राण भी त्यागनेको सहर्ष कृतसंकल्प हैं।

१. देखिए "पत्र: मदनमोहन मालवीयको", २०-१-१९३३ तथा "सद्भावपूर्ण मतभेद", १८-२-१९३३।

इसके साथ ही यह कहना भी उतना ही आवश्यक है कि जो लोग महात्मा गांधीके प्रस्तावों या उनकी प्रणालीसे सहमत नही उन्हें दलित वर्गके प्रति सहानुभूति न हो, ऐसी कोई बात नही। इसी कारण मुझे विश्वास है कि समस्याका कोई ऐसा समाधान निकालना पूर्ण सम्भव है जो सनातनी मतकी दोनों शाखाओं, समुन्नत तथा अल्प-उन्नत, दोनोंको स्वीकार्य हो, और एक ऐसे आधारपर हिन्दू जातिमे शान्ति और धार्मिक एकताकी स्थापना की जाये जो चिरस्थायी सिद्ध हो।

हाल ही मे महात्मा गांधी द्वारा दिये हुए वक्तव्योंसे स्पष्ट हो गया है कि वे पुरातनपंथियोका सब प्रकारसे सम्मान करनेको राजी ही नहीं, बल्कि उत्सुक है।

सनातन-धर्मके कई प्रतिष्ठित प्रतिपादकोंके वचनोसे प्रकट होता है कि वे भी इस दिशामे अग्रसर होनेको तैयार है कि किसी शास्त्र-सगत मान्यताको आकार मिले। इसी कारण मुझे विश्वास है कि शास्त्रोंकी व्याख्याका दावा करनेवाले जब शान्त और तटस्थ भावसे उनका अध्ययन करेंगे तो सामान्य रूपसे ही यह मान लेंगे कि किसी ऐसे आचार-व्यवस्थाका विधान निर्धारित करना शक्य है जिसके आधारपर निम्नतम हिन्दूको भी अत्यन्त उदार और व्यावहारिक प्रगति उपलब्ध हो जाये और जो शास्त्रोंका मात्र अक्षरशः ही नही उनकी भावनाका भी अनुकरण करनेवाले घोरतम पुरातनपन्थियोंके लिए भी सन्तोषकारक हो। मैंने महासभाका आयोजन इसी निश्चित धारणापर किया है कि सभी सनातनी हिन्दुओमे ऐसा ऐक्य स्थापित हो सकता है और मै उनसे विनती करता हूँ कि इस प्रयासकी सफलताके हेतु वे अपना यथाशक्य योगदान दें।

कोई भ्रान्तियाँ न हों, इस उद्देश्यसे मै स्थितिको स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैंने सन् १९२३ मे पुण्य नगरी काशीमे हिन्दू महासभाके सभापति-पदसे विद्वान तथा धर्मनिष्ठ लोगोंकी एक विशाल सभाके सम्मुख बोलते हुए निवेदन किया था कि हम अपने मन्दिरोंमें आकर जिस देवताकी पूजा, आराधना तथा स्तुति करते है, उसका निर्मल-कारी तथा उदात्तकर दर्शन करनेका अवसर निम्नतम हिन्दुओको भी मिलना चाहिए। मैंने आग्रह किया कि इस सम्बन्धमें कुछ नियम बन सकते हैं जिनका पालन करते हुए दर्शन प्राप्त हो सके तथा दलित-वर्ग जिन और प्रतिबन्धोका भुक्तभोगी है उनका भी निवारण हो। मेरा अब भी वही मत है और मै पिछले कई वर्षो और पिछले कई महीनोंमें सार्वजनिक रूपसे यही दोहराता आया हूँ, किन्तु दलित वर्गके लिए मन्दिरो के द्वार खुलवानेके निमित्त सत्याग्रहका सहारा लेनेका मैं कभी भी समर्थन नहीं कर सकता हूँ। धार्मिक आस्थाओं और धार्मिक आचारोंके क्षेत्रमें इस प्रकारसे दबाव डालना मेरी दृष्टिमें उचित नहीं है। रूढ़िवादियोंकी भी अपनी निष्ठाएँ है जिनकी जड़े बहुत गहरी हैं और युगोंसे चली आ रही है। मेरे विचारमें हममें से जिनका उनसे भिन्न मत है उनका यह पुण्य कर्त्तव्य है कि रूढ़िवादियोंका मत-परिवर्तन करनेका भरसक यत्न करें। किन्तु यह विषय ही ऐसा है कि हमारा यही कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम केवल शान्तिपूर्वक समझा-बुझाकर यह परिवर्तन लानेका प्रयत्न करें।

पूना-समझौतेके उपरान्त तत्काल ही मेरे सभापतित्वमें बम्बईमें जो सार्वजनिक सभा हुई थी और जिसमें अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचार हेतु अखिल भारतीय अस्पृश्यता-

निवारण संघकी स्थापना हुई थी उसमें इसी भावनाको व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया था। उस प्रस्तावमें कहा गया था कि "इस उद्देश्यके लिए तत्काल कदम उठाये जायें कि यथासम्भव शीघ्र ही (१) सब सार्वजनिक कुएँ, पाठशालाएँ, सड़कें, सरायें, धर्मशालाएँ, दाहस्थल तथा दाहसंस्कारके घाट इत्यादि दलित वर्गके लिए उपलब्ध घोषित हो जायें और (२) दलित वर्गके लोगोंके लिए सभी सार्वजनिक मन्दिरोंके द्वार खुल जायें। किन्तु इन दोनों बातोंके लिए कोई जोर-जबर्दस्ती न की जाये, केवल शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेका ही उपाय अपनाया जाये"। न्याय-संगत और व्यावहारिक बात यही है कि ऐसी समस्याका निदान ऐसा ही हो जिसपर समग्र रूपसे हिन्दू जातिको सन्तोष हो। मेरे मतमें जातिके प्रत्येक अंगके हिताकांक्षी शास्त्र-पारंगत विद्वानोंकी सहायता लेकर तर्क और अनुनय द्वारा ही यह समाधान साध्य है। ऐसी सहमति और समाधानतक पहुँचनेके लिए ही मैंने सनातन-धर्म महासभाका विशेष अधिवेशन बुलाया है और मैं आशा कर रहा हूँ और प्रार्थना भी कर रहा हूँ कि ईश्वर इस प्रयासको आशीर्वाद देकर सफलीभूत बनाये।

इस उद्देश्यके हेतु मैं महासभाके सम्मुख यह ठोस सुनिश्चित प्रस्ताव रखूँगा कि दलित वर्गके उद्धारके लिए निम्नलिखित योजना अपनाई जाये :

१. संस्कार तथा उपदेश, जिसे दीक्षा भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत होंगे :

(क) प्रायश्चित्त अर्थात् कष्ट-सहन और आत्म-शुद्धि;

(ख) त्याग——अर्थात् मुर्दार मांस, गोमांस और उच्छिष्ट भोजन और मदिराका त्याग;

(ग) दीक्षा——मन्त्र-प्राप्ति। अष्टाक्षर मन्त्र तुलसी माला धारण करके या उसके बिना ही, और रुद्राक्ष माला धारण करके या धारण किये बिना पंचाक्षर मन्त्र, इन दोनोंमें से कोई भी प्राप्त किया जाये;

(घ) आचार-ग्रहण——दैनिक स्नान तथा दैनिक प्रार्थना (प्रातः और सायं), धर्मग्रन्थका दैनिक पठन (प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चेको पढ़ना-लिखना सिखाना इस योजनाका एक अभिन्न अंग होगा);

(ङ) व्रत——सभी वर्णोंके लिए निर्धारित पंचव्रतका पालन, यथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच तथा इन्द्रिय-निग्रह;

२ (क) सार्वजनिक सभाओं और पाठशालाओंमें उपस्थित होनेकी स्वतन्त्रता;

(ख) सार्वजनिक कुओं, सड़कों, उद्यानों, सरायों, धर्मशालाओं, दाह-संस्कारके घाट इत्यादिके प्रयोगका अधिकार; और

(ग) सार्वजनिक मन्दिरोंमें देवदर्शन और स्तुतिके निमित्त प्रवेशका अधिकार।

टिप्पणी : इस योजनाका अनुमोदन हो जानेपर दीक्षा देनेका कार्य तो एक महीनेके अन्दर ही सम्पन्न हो सकता है। इस योजनाकी कार्यान्वितिसे दलित वर्गका महान् सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक उत्थान हो जायेगा। इसके फलस्वरूप वे पूरे सही अर्थोंमें वास्तवमें 'हरिजन' बन जायेंगे। आचार्यों और विद्वानोंकी सभाके सम्मुख जो प्रस्ताव रखे जाने हैं उनमें से यह केवल एक ही है। उनके सम्मुख विचार-हेतु

और भी अनेक प्रस्ताव रखे जायेंगे। पूरी आशा की जाती है कि ईश्वर-कृपासे इन विचार-विमर्शोका निष्कर्ष ऐसा होगा जिसका सनातन-धर्मके पालक और मानवताके शुभाकांक्षी सभी सहर्ष स्वागत करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १९-१-१९३३

परिशिष्ट ६

एम० जी० भण्डारीके साथ बातचीत[1]

२४ जनवरी, १९३३

सुपरिंटेंडेंटने वक्तव्य पढा। जब बापू जागे तो उन्होंने पूछा: "अब क्या इरादा है, मुझे कहें तो सरकारको खबर दूँ। वह मुझसे यह खबर आज जरूर माँगेगी। पर अब उपवास न करें तो अच्छा। आपके बिना कोई काम नही चल सकता। और आप उपवास करते रहेंगे, तो शत्रुके हाथ भी मजबूत होंगे"।

बापू: मुझे तुरन्त उपवास करना पड़ेगा, ऐसी कोई अन्दरसे आवाज नहीं आ रही है। यदि इस तरह मैं उपवास करूँ, तो यह मेरी मनमानी होगी। वाइसरायके निर्णयसे मैं घबराया जरूर हूँ, किन्तु सम्भव है यह घबराहट तात्कालिक ही हो। उपवास फिर आ सकता है, किन्तु अभी तो नही। अपने स्वाभाविक क्रममे उसे आना हो तो आ जाये। इसलिए कब आयेगा, यह मैं नही कह सकता। ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलके निर्णयके समय जैसे मै लाचार हो गया था और मैंने उपवासकी शरण ली थी, उसी तरह यदि लाचार हो जाऊँ तो ही उपवास करना पड़ेगा। आप सरकारसे कह सकते हैं कि निकट भविष्यमें उपवास करनेका मेरा इरादा नही है। मेरा वक्तव्य तो आपने देखा ही है। इस वक्तव्यके सिवाय मेरे दिलमें और कुछ नहीं है। आज सवेरे मै तीन बजे उठा, और मुझे क्या लिखना है, इस बारेमें मेरा दिमाग बिलकुल साफ था। सुन्दर चित्रा (नक्षत्र) ठीक सिरपर चमक रहा था।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८६

१. देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

परिशिष्ट ७

डंकन ग्रीनलेसके साथ बातचीत[1]

२५ जनवरी, १९३३

बापू : अहिन्दू जो-कुछ करें, वह शायद इस अन्यायके मर्मस्थानको स्पर्श नहीं कर सकेगा, क्योंकि हरिजन हिन्दू-धर्मको मानते हैं। मैं जानता हूँ कि वे हिन्दू धर्मके साथ कितने ज्यादा बँधे हुए है। इसीलिए तो गोलमेज परिषद्‌के अपने भाषणमें मैने अपना हृदय उँड़ेल दिया था। भारतके देहातमें ज्यादातर हिन्दू लोगोंकी आबादी है। तमाम अछूत कहते है कि हम हिन्दू हैं। कुछको तो खुदपर होनेवाला यह अन्याय चुभतातक नहीं। वे इतनी ज्यादा लाचार हालतमें है कि उन्हें धर्मका त्याग करनेका विचार भी नही आता। किन्तु किसी दिन वे सब सवर्ण हिन्दुओकी हत्या कर डालनेको तैयार हो जाये तो मुझे आश्चर्य न होगा।

ग्रीन० : क्या उनमें हीनभावना होगी?

बापू : नहीं, उनकी इससे भी बुरी हालत है। हीनभावनामे तो अपने साथ अन्याय होनेका भान होता है। पर इन लोगोंमें यह भान भी नहीं। इसीलिए मै कहता हूँ कि किसी अहिन्दूको यदि इस आन्दोलनमें दिलचस्पी हो जाये, तो उसे मानवताकी दृष्टिसे ही इसमे दिलचस्पी लेनी चाहिए। किसी अहिन्दूको मदद करनी हो तो हिन्दू-संस्थाके साथ मिलकर ही करनी चाहिए।

ग्रीन० : मै दक्षिण भारतके मन्दिरोंमे गया हूँ।

बापू : मुझे तो हिन्दू-धर्मकी होती आई हँसीको मिटाना है। मुझे शुद्ध सोना चाहिए। इस प्रवृत्तिके राजनैतिक परिणाम भी आयेंगे। पर मैं राजनैतिक परिणामोंका विचार ही नहीं करता। राजनैतिक परिणाम न आयें, तो भी मैं इस कामको करूँगा। राजनैतिक परिणामोकी मुझे परवाह नही। मै तो आध्यात्मिक परिमाण लाना चाहता हूँ। और उसके लिए मै हजारों आदमियोकी कुर्बानी देना चाहता हूँ। यह जन-समाजके एक बड़े भागके साथ हो रहा बड़ा भारी अन्याय है। इसे मिटानेके लिए प्राय-श्चित्तकी बुद्धिसे काम करना चाहिए। इस खयालसे काम करना चाहिए कि मैंने अन्याय किया है और मुझे ही इसे मिटाना चाहिए। कोई चॅगेजखाँ आकर झक्की सवर्ण हिन्दुओंके गले काटनेकी धमकी दे और यह सुधार हो जाये, ऐसा मुझे नही चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८९-९०

१. देखिए "पत्र : वीरयला वकटरावको", २-५१-१९३३।

परिशिष्ट ८

च० राजगोपालाचारी और अन्य लोगोंके साथ बातचीत[1]

(अ)

३० जनवरी, १९३३

आज राजाजी, देवदास और घनश्यामदास आये। रंगा अय्यरके विधेयकको वाइसरायकी दी हुई मंजूरीसे पैदा होनेवाली स्थितिकी चर्चा हुई। बापूने समझाया कि सारा सवाल धार्मिक है और उसमे राजनैतिक बातकी गंध भी नही है।

मेरी स्थिति पूरी तरह धार्मिक है। मै इस चीजका राजनैतिक दृष्टिसे विचार कर ही नही सकता। यदि लोग सचमुच ही इस विधेयकके विरुद्ध हों, तो मुझे इसे वापस लिवा लेना चाहिए। बादमे मुझे क्या करना चाहिए, यह तीरकी तेजीसे कोई-न-कोई मुझसे कहेगा। मन्दिरोंमें हमें चोरी-छुपे तो घुसना ही नही है। मन्दिर-प्रवेश निश्चित रूपसे एक आध्यात्मिक कार्य है और इससे समाजमे क्रान्ति होनी ही चाहिए। उपवासका मेरा सारा विचार इस विश्वासपर बना हुआ है कि जन-समाजमे से अधिकतर लोग मन्दिर-प्रवेश चाहते है, पर उनके जबान नही है। यदि लोग हमारे पक्षमे हो, और कानून हमारे पक्षमें न हो, तो हम ट्रस्टियोंसे यह कानून तोडने और इस कानूनका आश्रय लेकर कोई एकाध आदमी उनपर मुकदमा चलाये तो उसे बरदाश्त करनेके लिए कह सकते हैं।

इसके बाद बापूने कहा कि इस मामलेपर हमें स्पष्ट मतगणना करा लेनी चाहिए। . . . किन्तु बापूने यह मत प्रकट किया कि यदि तीन महीने लगें, तो भी चुने हुए क्षेत्रमे यह चीज हो जानी चाहिए।

बिड़ला : तब तो इस मुद्देपर विधान-मण्डलका नया चुनाव हो जाये, यह उत्तम मतगणना है।

बापू : इसमें तो हम आसानीसे जीत जायेगे। पर इससे मन्दिरोमे जानेवाले हिन्दू लोगोके मतका प्रमाण नहीं मिलेगा।

. . . आचार्य हमें वर्णाश्रम स्वराज्य संघमे जानेका न्योता दे रहा है। इसमे वह फँस गया है। और यदि हम चाहें तो संघपर अधिकार करके इसे छका सकते हैं, जैसे सन् १९२१ में हिन्दू महासभापर अधिकार किया था। कुछ भी हो, सदस्योंमें घुमानेके कारण विधेयक दो सालतक पड़ा रहे, यह असह्य बात है।

राजाजी : सदस्योंमें घुमानेके कारण ढील होती हो, तो हम क्यों एतराज करे?

१. देखिए "पत्र : के० केलप्पनको", २८-१-१९३३; पृष्ठ १५ की पाद-टिप्पणी ३ भी।

बापू : क्योंकि हम जानते हैं कि यह तो बहाना है। यह अप्रामाणिकता है। मतगणनाके परिणामस्वरूप विधेयकके पक्षमें यदि लोकमत एकदम उड़ पड़े, तो मैं इस विधेयकको जल्दी पास करानेके लिए दबाव डालूँगा। . . .

फिर 'हरिजन सेवक' के बारेमें बातें हुई। राजाजी की आपत्तियाँ थी कि:

(१) हमारा अखबार सिर्फ हमारे लोगोंमें ही पढ़ा जायेगा, जबकि आज तो आपके वक्तव्य तमाम अखबार छापते हैं। (२) अखबार बेकार हो जायेगा।

बापू : कार्यकर्ताओंको शिक्षा देनेके लिए यह बहुत जरूरी है और सब तार जोड़नेके लिए भी आवश्यक है। कितनी ही बातें ऐसी हैं, जो ए० पी० आई० के द्वारा नहीं कही जा सकती। मुझे तो आश्चर्य होता है कि अभीतक आपको अखबारकी जरूरत क्यों नहीं पड़ी।

बिड़लाने यह विचार रखा कि मतगणनाके लिए साधारण मनुष्योंके बजाय पंडितोंको रखा जाये, पर साथ ही साथ कहा कि वे शायद ही चरित्रवान होंगे।

बापू : तो उनकी हमें जरूरत नहीं। चरित्रका अर्थ है अपनी मान्यतापर पूरी तरह डटे रहना। जो आदमी अधिक रुपया देनेवाले के लिए अपना विचार बदल देता है, उसकी मान्यताकी भी कीमत नहीं। इसलिए यद्यपि, मैं सच्चे प्राणवान पंडितको जरूर पसन्द करूँगा, किन्तु चरित्रहीन पडितसे मैं सादे मनुष्यको ज्यादा पसन्द करूँगा।

(आ)

३१ जनवरी, १९३३

रातको और सुबह मतगणनाके बारेमें और इसके लिए राजाजी का उत्तर भारतमें उपयोग करनेके बारेमें वल्लभभाईने गरमागरम चर्चा की। . . . [बहस करते हुए उन्होंने कहा कि] मतगणना भले ही हो, किन्तु उससे आगेका ध्येय भी स्पष्ट होना चाहिए, नहीं तो मतगणनासे भी कुछ नहीं होगा।

बापू : लोग दृढ़तासे हमारे साथ हैं, इस बारेमें मेरी शंका बढ़ती जा रही है।

वल्लभभाई : हमें यह दिखानेका मौका ही नहीं मिला। . . .

. . . कल बापूने उनसे [राजाजी से] कहा था कि मैं इस मामलेमें एक खास हदतक ही सलाह दे सकूँगा।

राजाजी : आपने यह आन्दोलन उठाया है, इसलिए हमें इसमें काम करना ही चाहिए . . .। परन्तु मेरे बिना ही यदि यह आन्दोलन चल सकता हो, तो मैं मुक्त होना पसन्द करूँगा।

बापू : यदि आपको स्वतन्त्र रूपसे और तटस्थ भावसे ऐसा लगता हो कि इस आन्दोलनमें आप ही अकेले मेरे प्रतिनिधि हो सकते हैं, तब तो यह मानकर कि आपने इस आन्दोलनके लिए स्पष्ट आदेश सुना, आपको यह काम जारी रखना चाहिए और दुनिया क्या कहती है उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। किन्तु जिनके मनमें जरा भी शंका हो, उन्हें तो मैं 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य' वाला श्लोक सुनाता हूँ और कहता हूँ कि शंकाका लाभ आपको सविनय अवज्ञाकी मूल प्रतिज्ञाको देना चाहिए।

किन्तु यदि आपको स्पष्ट आदेश लगता हो, और मालूम होता है कि आपको ऐसा लगता है, तो फिर आपको हरिजन-कार्य ही करना चाहिए।

राजाजी : उपवास तो कभी भी कर सकते है ?

बापू : हाँ, यह तो अनिवार्य है। जो घटनाएँ हो रही है उन्हें देखते हुए मुझे लगता है कि उपवास जल्दी आ जाये तो अच्छा। कानपुरके एक मामलेका हाल मैंने सुना है। नगरनिगमके लिए तीन हरिजन उम्मीदवार थे। दूसरे पक्षने उनका विरोध करनेके लिए अन्य तीन हरिजनोंको ही खड़ा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कोई हरिजन नही चुना गया। इससे मुझे गहरी चोट लगी है। सुरक्षित स्थान रखनेके विरुद्ध मै कमर कसकर लड़ा था। किन्तु अब मुझे लगता है कि यदि मै अम्बेडकरकी जगह होता, तो मैंने बहुत ज्यादा हिंसक विरोध किया होता। इस कानपुरवाले मामलेमे तो अपना स्वार्थ साधनेके लिए ही उन्होने हरिजनोंको नहीं आने दिया। अपने पक्षके हों या विरोधी पक्षके, लोगोंको इतना तो देखना चाहिए था कि तीन हरिजन उम्मीदवार चुन लिये जाये। इस मामलेमे पूना-समझौतेका साफ तौरपर उल्लंघन हुआ है। मैंने हरिजी (पडित हृदयनाथ कुंजरू)को लिखा। उन्होने ठंडे दिलसे इसकी सफाई देनेकी कोशिश की और बताया कि इसकी ज्यादा जाँच करूँगा। किन्तु मुझे ऐसी जाँच नहीं चाहिए। मैंने तो कह दिया है कि आप इस अन्यायको सुधार लीजिए।

बिड़ला और दूसरे लोगोंने कहा : नहीं बापू, कानपुरकी बात तो अपवाद रूप है। हिन्दू समाजमें तेजीसे अच्छा परिवर्तन हो रहा है।

बापू : यह तो मै जानता हूँ। ऐसी घटनामे उपवासकी जल्दी नहीं होगी। किन्तु ऐसी घटनाएँ मुझे झकझोर डालती हैं। फिर भी उपवासकी वेदनाको आगे बढानेका मै जाग्रत प्रयत्न कर रहा हूँ।

बिड़ला : किन्तु एकबार ये विधेयक पास हो जायें, तब तो फिर उपवासका सवाल ही पैदा नही होगा न ?

बापू : नहीं भाई, नही। उपवासका आधार अकेले विधेयकोंपर नही है। मेरे सामने सिर्फ मन्दिर-प्रवेशका ही प्रश्न नही, बल्कि [अस्पृश्यताका] सम्पूर्ण प्रश्न है। दिन-दिन मेरा खयाल यह होता जा रहा है कि उपवासकी सम्भावना घटती नहीं, बल्कि बढ़ रही है। ऐसा क्यों होता है, यह मै नहीं कह सकता। यह भी नहीं जानता कि कौन-सी चीज उपवासको लायेगी। किन्तु यह भावना तो धीरे-धीरे निश्चित रूपमे बढ़ती ही जा रही है। मै इतना जानता हूँ कि मै जरा भी स्वस्थ नही हूँ। सारी घटनाओका कुल मिलाकर मुझपर अच्छा असर नहीं पड़ रहा है। अच्छी बातें भी जरूर हो रही हैं। उनसे मै आँखें बन्द नहीं कर सकता। उलटे मै तो प्रतिकूल वस्तुओंसे आँखें बन्द करनेकी कोशिश करता हूँ। उदाहरणके लिए, इन धर्म-शास्त्रियों और कानूनके पण्डितोके साथ मै जो भद्दा पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ, उसे देख लो।

बिड़ला : किन्तु जिस गतिसे सुधार हो रहा है, उससे आपको सन्तोष मानना चाहिए।

बापू : हाँ, धैर्य रखनेवालेको तो सन्तोष हो सकता है। परन्तु मेरे दिलको तो जरा भी चैन नहीं। मै जानता हूँ कि कार्यकर्त्ता काममे जुट गये है। उनमे शिथिलता नही है। परन्तु सारी चीजको देखते हुए हृदयको सन्तोष नहीं हो सकता।

राजाजी : . . . लम्बी-चोड़ी बाते छोड़कर कहें तो कहा जा सकता है कि आप अधीर हो गये है।

बापू : मै जानता हूँ कि व्यावहारिक मनुष्यके नाते मुझे धीरज रखना चाहिए। अधीर होनेका कोई कारण नही। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै ऐसी भावना नही रखता। २ जनवरीसे पहले मुझे इस नतीजेपर पहुँचनेमे देर नही लगी थी कि मुझे उपवास नहीं करना चाहिए। और मै आपको बता दूँ कि २ जनवरीको मैंने उपवास शुरू नही किया, इससे कुछ साथियोको असन्तोष भी हुआ है। थोड़े ही दिन पहले एक भाई मुझसे बहस कर रहे थे कि उपवासका निर्णय करनेके बाद उसे मुल्तवी करनेके कारण पैदा नही हुए थे।

राजाजी : इन सब साथियोंको आपने बिगाड़ डाला है। (सब खिलखिलाकर हँस पड़े)

बापू : यह तो ठीक है, किन्तु इनमें ऐसे भी लोग है, जिन्हें मै जरा भी नहीं जानता। उन्होंने भी उपवासको मुल्तवी रखनेकी निन्दा की है। एक आदमीने तो मेरे विरोधमें ग्यारह उपवास किये। मैंने उसे जब कड़ा तार दिया कि तुम्हारा उपवास पापरूप है, तब कही उसने उसे तोड़ा। इसलिए इस मामलेमें आप मान लीजिए कि मै इस समय सचमुच अपनी आत्माके विरुद्ध चल रहा हूँ? फिर भी मैं आपसे नहीं कह सकता कि उपवास नहीं आयेगा। मेरे यह कहनेसे इग्लैडके मित्र तो नही चिढ़ते। उनके दिलमे जब शका होती है, तब वे यह माननेका प्रयत्न करते हैं कि इसमें ईश्वरका हाथ होगा। एन्ड्रूयूजने अपनी शंकाएँ पेश करनेवाले बहुत-से पत्र मुझे लिखे थे। बादमे उन्होंने तार देकर ये सब पत्र वापस ले लिये और मुझे विश्वास दिलाया कि वे अब सारी बात अच्छी तरह समझ गये हैं।

राजाजी ने लोगोंके वहमोंकी बात कही : कुछ लोग सचमुच मानते है कि आज तक गांधी बरसात लाया, किन्तु अब वह ऐसा काम कर रहा है जिससे बरसात नहीं आयेगी।

बापू : आप तो अज्ञानी लोगोंकी बात कह रहे हैं, पर अपने नामके आगे बी० ए० और बी० एल० की उपाधि लगानेवाले लोगोंकी तरफसे मेरे पास ढेरों पत्र आते हैं, जिनमे वहमके सिवाय क्रोध, कड़वापन, जहर और गालियाँ भी होती हैं।

राजाजी : यह तो कानूनके ज्ञानका एक प्रकारका प्रतिलोम हुआ। (सब खिल-खिलाकर हँस पड़े)

बापू : अभी तो मेरी भावना यह है कि उपवासकी सम्भावना बहुत दूर नहीं।

उपवास कब होगा, यह कैसे कहा जा सकता है। जब मैंने बम्बईमें सन् १९२० में उपवास किया था, तब मथुरादास पास सो रहा था। उसे एकाएक जगाकर कह दिया : 'मुझसे बहस न करना, यह मेरा निश्चय है।' ऐसे ही इक्कीस दिनके उपवासके समय हकीमजी, मुहम्मद अली सब हक्के-वक्के रह गये थे। किन्तु

क्या इससे कोई यह कहेगा कि वे उपवास गलत थे? मुझे तो लगता है कि उन उपवासोंने उस समय तो काम किया ही था, किन्तु ५००० वर्ष बाद भी वे अपना काम करते रहेंगे।

तब मथुरदासने पूछा कि एक कार्यकर्त्ता जो सविनय अवज्ञा करनेके लिए बँधा हो लेकिन थक गया हो, उसे क्या करना चाहिए।

बापू: कहना कठिन है। किन्तु ऐसा आदमी हरिजनोंका काम क्यों न करे? एक शर्त जरूर है कि उसे यह घोषणा करनी चाहिए कि थक गया हूँ, इसलिए अब जेल जानेका काम करनेके बजाय हरिजनोंका काम करना चाहता हूँ। यह बात छिपाकर हरिजनोंका काम नहीं हो सकता। इस तरह छिपाकर हरिजनोंका काम करनेके बजाय तो भले ही वह घरमें बैठ जाये। दीनतासे स्वीकार करनेमें ही बहादुरी है। आराम लेनेकी इच्छावाले भी जाहिर कर दें कि हमें शरीर सुधारना है और तबतक हम हरिजनोंका काम करेंगे। मुख्य बात यह है कि ठगना नही चाहिए। ठगनेसे न तो कांग्रेसके कामको या सविनय अवज्ञाके कामको फायदा होगा और न अस्पृश्यताके कामको ही फायदा होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १००-६

परिशिष्ट ९

भारत सरकारका पत्र[1]

[१७ फरवरी, १९३३ से पूर्व]

श्री गाधीने वाइसरायके निजी सचिवके नाम अपने १ फरवरी, १९३३ के पत्रमे अनुरोध किया है कि उक्त पत्रमें बताये गये कारणोको ध्यानमे रखते हुए भारत सरकारको चाहिए कि विधान-सभामें श्री रगा अय्यर तथा अन्य लोगों द्वारा मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी जो विधेयक पेश किये जानेवाले हैं, उनपर विचार करने और उन्हें पास करानेके लिए वह (सरकार) हर सम्भव सुविधा प्रदान करे। सपरिषद गवर्नर-जनरलने श्री गाधीके इस पत्रमें उठाये गये मुद्दोंपर ध्यानपूर्वक विचार किया है। गवर्नर-जनरल पूना-समझौतेके बारेमें दिये गये श्री गांधीके तर्कोंको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं और यह कहना चाहते है कि जिस प्रस्तावको उन्होंने उद्धृत किया है वह भारत सरकारको सूचित किये गये समझौतेका अंग नही था। समझौतेका जहाँतक सम्बन्ध है, सरकारने केवल इतना ही किया था कि सम्राट्की सरकार द्वारा दिये गये साम्प्रदायिक निर्णयके तहत की गई विधान-मण्डलोंमें प्रतिनिधित्वकी व्यवस्थामें उसने कुछ परिवर्तन स्वीकार किये थे। लेकिन पूना-समझौतेके अलावा भी, सरकार अनेक वर्षोंसे

१. यह पत्र गांधीजीको १७ फरवरीको मिला था। देखिए "पत्र: वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३, "पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको", १७-२-१९३३ तथा "पत्र: भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

उन दशाओंमें सुधार करनेके लिए सक्रिय रूपसे दिलचस्पी लेती रही है जिनके अधीन दलित वर्गोंको रहना पड़ता है। श्री गांधीने जो प्रस्ताव उद्धृत किया है उसमें उल्लिखित मामलोंकी ओर सरकारने दिलचस्पी ली है, जैसेकि शिक्षा और जीवनकी सामान्य सुविधाओंकी व्यवस्था। इन मामलोंको प्रस्तावमें प्रमुख स्थान दिया गया है, लेकिन लगता है कि श्री गांधी उन्हें प्रस्तावका महत्त्वपूर्ण अंग नहीं मानते। स्वभावतः सरकारने ऐसे मामलोंमें कोई पहल नहीं की है, जो विशेष रूपसे धार्मिक प्रथाओंको प्रभावित करते हैं। इस विषयमें सरकारने २३ जनवरीको समाचारपत्रोंमें जो वक्तव्य जारी किया था, उसके आगे वह कुछ नहीं कहना चाहती। सरकार अपनी इस रायको दोहराती है कि हिन्दू समाजकी धार्मिक रीतियों और प्रथाओंको बहुत ज्यादा प्रभावित करनेवाले इन विधेयकोंपर विचार करनेका काम तबतक शुरू नहीं किया जाना चाहिए जबतक कि उनके प्रत्येक पहलूपर न केवल विधान-मण्डलमें, बल्कि उसके बाहर भी, उन सब लोगों द्वारा विचार न कर लिया जाये जो उन विधेयकोंसे प्रभावित होंगे। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब विधेयकको जनताकी राय जाननेके लिए व्यापकसे व्यापक स्तरपर प्रचारित किया जाये और हिन्दुओंके सभी वर्गोंको उसके विषयमें अपनी राय बनाने और अपनी सुविचारित राय प्रकट करनेके लिए पर्याप्त समय प्रदान किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

गांधी-गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया करेस्पांडेंस; सौजन्य: राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता

परिशिष्ट १०

अम्बेडकरके साथ बातचीत[1]

४ फरवरी, १९३३

रंगा अय्यरके दो विधेयकोंके गुण-दोषकी चर्चा करते हुए [अम्बेडकरने] कहा: एक अनुच्छेदवाला विधेयक तो बहुत सादा है। उसका गुण यह है कि उसमें यह बात स्वीकार की गई है कि अस्पृश्यताका रिवाज अनैतिक है। दूसरे विधेयकमें यह स्वीकार नहीं किया गया है।

बापू: नहीं, उसके प्रास्ताविक भागमें किया गया है।

अम्बेडकर: मगर स्पष्ट नहीं। . . . मेरा यह भी खयाल है कि ये विधेयक एक-दूसरेसे असंगत हैं। . . .

बापू: एक अनुच्छेदवाला विधेयक निश्चित रूपमें दूसरेसे बढ़कर है। पर दूसरा लम्बा विधेयक इसलिए लाया गया कि प्रान्तीय विधान-मण्डलमें पहलेको मंजूरी नहीं मिली। दोनोंमें कोई भी असंगतता नहीं है। एक विधेयकमें अस्पृश्यताका बेहूदा रिवाज खत्म होता है और कानून अस्पृश्यताकी दलीलको मंजूर नहीं करता। दूसरे विधेयकसे

१. देखिए "डॉ० अम्बेडकर और जाति", ११-२-१९३३।

खास हालतोंमें मन्दिरके अधिकारियोंको कार्रवाई करना लाजिमी हो जाता है। यदि हम ये दोनों विधेयक पास करा सके, तो ट्रस्टी मन्दिर-प्रवेशके बारेमे किसी किस्मकी रुकावट पैदा नही कर सकते। अगर दोनों विधेयक पास हो जाये, तो एक महीनेके भीतर तमाम मन्दिर खुलवा देनेकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। सनातनी दूसरे विधेयकको ज्यादा पसन्द करेंगे। लेकिन यदि मै प्रामाणिक सनातनीकी हैसियतसे बात कहूँ, तो मैं तो पहला विधेयक पसन्द करूँगा।

अम्बेडकर: . . . इसलिए अब सरकारको सनातनियोंके विरुद्ध १४४ वी धारा लगानी पड़ेगी, क्योंकि यह अस्पृश्योंके हकोंमे उनका दखल माना जायेगा।

बापू: पर अब मैं चाहता हूँ कि आप अपने विचारोंकी बिलकुल साफ शब्दोमे जोरदार घोषणा कर दें।

अम्बेडकर: . . . जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, राजनैतिक सत्ताके सिवाय और किसी बातसे हमारा तात्कालिक सम्बन्ध नही है। . . . और हमारे प्रश्नका एकमात्र निराकरण यही है। . . . हमें तो यह चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओंकी नजरमें हमारा बुनियादी दर्जा सुधरे।

एक और दृष्टिकोण भी है। इन सब प्रयत्नोंका उद्देश्य इतना ही हो कि दलित जातियोंको हिन्दू-धर्मंमे ही रोक रखा जाये, तो मेरा रुख यह माननेकी तरफ है कि दलित वर्गोकी आजकी जाग्रत दशामे यह काफी नही। . . . हिन्दू कहलानेके साथ ही मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि जन्मसे मैं एक नीच जातिका हूँ। इसलिए मेरे खयालसे मुझे हिन्दुओंसे कह देना चाहिए कि आप मुझे ऐसा धर्म-सिद्धान्त बताइये, जिसमे ऐसा नीचपनका भाव न आये। यदि ऐसा न हो तो मुझे हिन्दू-धर्मको तिलांजलि दे देनी चाहिए। . . . सिर्फ राहत पहुँचानेवाले उपायोंसे मुझे सन्तोष नही हो सकता। . . . मुझे तुम्हारे दयादानसे मरना नही है।

बापू: अगर आप पक्का निर्णय करके आये हैं कि इस कानूनको पास करवानेके लिए आप अँगुली भी नहीं हिलायेंगे, तो मुझे कुछ नहीं कहना।

अम्बेडकर: हमने कोई निर्णय नहीं किया है। पर मैंने आपको यह बताया है कि मेरा मन किस तरह काम कर रहा है।

बापू: मैंने यह कहा था कि यदि आप निर्णय कर चुके हों, तो मेरे लिए कुछ कहनेको रहता ही नहीं।

अम्बेडकर: . . . हम सवर्ण हिन्दुओंसे यह नहीं कह सकते कि आप यह तय कीजिए कि हम आपके अंग है या नहीं। ये विधेयक पास कराकर आपको अपना निर्णय बताना चाहिए। . . .

बापू: ऐसा करनेको मै आपसे नहीं कहता। यह मैने कभी नहीं चाहा कि दलित लोग सवर्ण हिन्दुओंके पास पैरों पड़ते हुए जायें और ये विधेयक पास करानेको उनसे कहें। दुर्भाग्यसे इस सवालका फैसला तो तीसरी ही सत्ताके हाथमे है, और वह स्थितिको सुधार या बिगाड़ सकती है।

अम्बेडकर: यह चीज मै समान रूपसे कर सकता हूँ।

बापू: ठीक है। अलबत्ता, इससे मैं सहमत हूँ कि आपका हिन्दुओके पास जाना आपके गौरवको शोभा नहीं दे सकता। मेरी स्थिति तो यह है — आपको याद होगा कि गोलमेज परिषद्‌मे मैंने भाषण दिया तभीसे — कि हमें प्रायश्चित्त करना है। आप हमे छोड़ दें, तो मै तो यही समझूँगा कि हम इसी लायक थे।

अम्बेडकर: इस विधेयकमे मन्दिर-प्रवेशकी बात है। लेकिन पूजाकी जगह प्रवेश करनेकी बात इसमें नहीं आती। क्या वे दलित जातिके आदमियोको मूर्तिपर फूल चढ़ाने देगे या भोगका थाल रखने देंगे? मालवीयजी ने तो कहा है कि पूजा करनेका सवाल ही पैदा नहीं होता।

बापू: मन्दिर-प्रवेश पूजाके लिए ही है। परन्तु कानूनमे भाषा ठीक न हो, तो सुधारी जा सकती है और हम कहें कि 'पूजाके लिए प्रवेश'। मालवीयजी के बारेमें कहीं-न-कहीं कोई गलतफहमी हुई दीखती है। आप जो कहते है सो वे नही कहेंगे। हरिजनोंके रखे हुए फूल, मिठाई और दूसरे नैवेद्य जरूर स्वीकार किये जायेंगे। इस हदतक हम दोनों सहमत हो गये कि आपका सवर्ण हिन्दुओंके सामने प्रार्थना करते जानेका सवाल ही नहीं है। कुछ सवर्ण हिन्दू जब मुझसे कहते हैं कि हरिजनोंको तो मन्दिरोंमें आना ही नहीं है, तब मैं कहता हूँ कि हरिजनोंको आना हो या न आना हो, तुम मन्दिरोंके द्वार उनके लिए खोल दो। तुम्हे जो-कुछ करना है वह तुम कर चुके, इतना आत्म-सन्तोष तुम्हें प्राप्त कर लेना चाहिए। तुमपर जो कर्ज है वह तुम्हें चुका देना चाहिए, फिर लेनदार उसे स्वीकार करे या नालीमें फेंक दे। लेकिन मैं कहता हूँ कि आपको यह नहीं कहना चाहिए कि मैं हिन्दू नहीं हूँ। पूना-समझौता स्वीकार करनेमें ही आपने यह स्थिति मंजूर कर ली है कि आप हिन्दू हैं।

अम्बेडकर: मैंने तो उसका राजनैतिक भाग स्वीकार किया है।

बापू: आप कहें तो भी आप इस स्थितिमें से बचकर नहीं निकल सकते कि आप हिन्दू है।

अम्बेडकर: हम इतना चाहते हैं कि हमारे मौनका अनर्थ नहीं होना चाहिए। फिर मै आपकी बात स्वीकार करता हूँ।

बापू: मैं एक कदम आगे जाता हूँ। आप अपनी स्थिति बिलकुल ठीक न रखें, तो आप एक कदम भी आगे नही बढ़ सकेंगे। मन्दिर-प्रवेशको मैं आध्यात्मिक वस्तु मानता हूँ, जिसमें से और सब बाते फलित होगी।

अम्बेडकर: हिन्दू मन ही सीधी तरह बात नही करता। रेलमे और दूसरे सार्व-जनिक स्थानोंमें अछूत उन्हें छू लें, तो उन्हें कोई एतराज नहीं। तब मन्दिरोंमें ही उन्हें कैसे एतराज होता है?

बापू: यहाँ तो आप अच्छी तरह पकड़े गये। ये लोग मन्दिरोमें अस्पृश्यतासे चिपटे रहना चाहते हैं, इसीलिए तो मन्दिर-प्रवेशका सवाल मै पहले लेता हूँ। बहुत-से सनातनी हिन्दू कहते है कि हरिजनोंको स्कूलोंमे आने देगे, सार्वजनिक स्थानोंमें आने देंगे, मगर मन्दिरोंमें नही आने देगे। मै कहता हूँ, भगवानके सामने इनका दर्जा बराबर रखो। इसकी बदौलत इनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

अम्बेडकर: मान लीजिए हम मन्दिर-प्रवेशमे सफल हो गये, तो क्या वे हमें कुओंपर पानी भरने देंगे?

बापू: जरूर। इसके बाद यह तो होगा ही। और यह तो बहुत आसान है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ११७–२२

परिशिष्ट ११

बातचीत[1]

१३ फरवरी, १९३३

जैसे अंगद और कृष्ण सुलहका पैगाम लेकर गये थे, वैसे ही हम इन विधायकों और सरकारके पास जाते हैं। न्यायकी माँग सब जगह हो सकती है और वह भी शक्तिके साथ हो सकती है। न्यायकी माँग न करें, तो हम धर्मच्युत होते हैं। बम्बईकी प्रतिज्ञामें क्या है? [यही कि] जहाँतक हो सके वहाँतक स्वराज्यसे पहले अस्पृश्यताको कानूनसे मिटायेंगे। जबरदस्तीसे कुछ भी नहीं करना है। उपवाससे यह चीज नही करनी है। उपवास तो मुझसे भगवान करायेगा। सम्भव है, मैं मोहमें आकर उसे ईश्वरप्रेरित कहूँ। केलप्पनने मुझसे कहा था कि दो दिनमे मन्दिर खुल जायेगा। तो भी मैंने उससे कहा कि अन्यायसे शुरू हुआ उपवास कैसे जारी रखा जाये? भले ही उससे मन्दिर तुरन्त ही खुल जाता है।

अब रही कानूनकी बात। मुझे तो एक भी कानून नहीं चाहिए। मैं तो अराजकतावादी हूँ। मगर कानूनमें रहकर वैसा बनना चाहता हूँ। यहाँ तो हम कानूनको मिटानेके लिए कानून बनाना चाहते है। आज अदालतका फैसला ही श्रुति (वेद) बन गया है। इस श्रुतिका भगवान सरकार है। इसलिए सरकारसे कहते है कि इस श्रुतिको रद करो। अब पहले विधेयकको लो। धर्मकी आज्ञाके भंगकी सजा अदृष्ट शक्ति देगी, राजाके पास वह सत्ता नहीं है। भले ही, सम्पूर्ण हिन्दू राज्य ऐसी सत्ता पा ले। पर यहाँ तो धर्मकी आज्ञाके भंगकी सजा सरकार देती है। यह बड़ा अन्याय है। इसे दूर कराकर धर्मका पालन करना है। उसे कहाँतक मुल्तवी रखें? खिचड़ीकी तरह विधान-मण्डल हो, या मुसलमानी हुकूमत हो, तो उससे भी यह चीज करा सकते है। आज तो हम धर्मका पालन नही कर सकते। ट्रस्टी जहाँ तैयार हैं, वहाँ भी कानून उन्हें मन्दिर नही खोलने देता। अब मैं कहाँ जाऊँ? इसलिए यह विधेयक है। इस विधेयकके पास होनेसे अस्पृश्यता माननेवाले किसीको अस्पृश्यता छोड़नी नही पड़ती। मैं तो आज ही लिखकर देनेको तैयार हूँ कि जबतक सनातनी मन्दिर खोलना नहीं चाहें, तबतक उनसे जबरदस्ती नहीं खुलवाने हैं।

१. मदनमोहन मालवीय द्वारा विधेयकोंका विरोध करनेके सम्बन्धमें; देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

देश-विरोधी सरकारसे भी लड़कर न्याय प्राप्त किया जा सकता है—प्राप्त करना धर्म हो जाता है। मालवीयजी तो युधिष्ठिर हैं। वे सदा सदिग्ध रहते है। उन्हें हमेशा धर्म-पालनकी इतनी लगन होती है कि अक्सर उनसे धर्म-पालन होता ही नही। व्यासके पास ऐसी अद्‌भुत शक्ति है। उन्होने युधिष्ठिरको दुर्बल-जैसा बना दिया, फिर भी वे धर्मराज है। इसी तरह मालवीयजी भी धर्मराज है। उनका त्याग हो ही नही सकता। उनका मुझपर अपार प्रेम है, और जब वे हारते है तब कहते है कि मै जो कहता हूँ उसमे कुछ-न-कुछ तथ्य होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४०-४१

परिशिष्ट १२

मदनमोहन मालवीयका तार[1]

१५ फरवरी, १९३३

तारके लिए धन्यवाद। इच्छा तो बहुत है, लेकिन दुःख है कि स्वास्थ्य इस समय पूनाकी यात्रा करनेकी अनुमति नहीं देता। मुझे दुःख है कि इस बातसे मैं सहमत नही हूँ कि बम्बई-प्रस्तावकी शर्तोके अनुसार भी रंगाअय्यरके विधेयक आवश्यक है। जिन लोगोंको अभीतक अछूत माना जाता रहा है उन्हें सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक स्कूलों, सार्वजनिक सड़कों तथा अन्य सभी सार्वजनिक संस्थाओंका उपयोग करनेका वही अधिकार होना चाहिए जो अन्य हिन्दुओंको प्राप्त है, और प्रस्तावका भाग एक उनका यह अधिकार सुनिश्चित करनेवाले किसी कानूनका समर्थन करनेके लिए हमे वचनवद्ध करता है। सार्वजनिक संस्थाओंका अर्थ था धर्मशालाएँ, श्मशान-घाट आदि। मन्दिरोमे दलित वर्गोके प्रवेश करने-सम्बन्धी निर्योग्यताको दूर करनेकी बातकी चर्चा पृथक् रूपसे भाग दो में की गई है। उसके अन्तर्गत इस प्रस्तावको पास करनेवाले या उसे स्वीकार करनेवाले हिन्दू नेताओंका कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण ढंगसे दलित वर्गोपर इस समय थोपी हुई प्रत्येक सामाजिक निर्योग्यताको, जिसमे मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी निषेध भी शामिल है, दूर करनेका प्रयत्न करेंगे। भाग एकके विपरीत, भाग दो में स्पष्टतः इस विषयमें कानून बनानेकी बात नही कही गई है। कृपया ३० सितम्बरको बम्बईकी सार्वजनिक सभामें स्वीकृत प्रस्तावमें लगी हुई शर्तपर भी ध्यान दें।

१. देखिए "तार: मदनमोहन मालवीयको", १४-२-१९३३, "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १९-२-१९३३ और २२-२-१९३३, "पत्र : मदनमोहन मालवीयको", २४-२-१९३३ तथा "पत्र: मथुरादास त्रिकमजीको", २६-२-१९३३

प्यारेलाल लिखित 'एपिक फास्ट', पृष्ठ १९५ देखें, जिसमें कहा गया है कि "बशर्ते कि कुएँ आदि या मन्दिरोंको खोलनेके लिए बाध्यकारिता या शक्तिका प्रयोग नही किया जायेगा, बल्कि केवल शान्तिपूर्वक ढंगसे समझाने-बुझानेका तरीका ही अपनाया जायेगा।" रंगाअय्यरके प्रथम विधेयकको सावधानीसे जाँचनेकी आवश्यकता है। यह उचित ही है कि उसे प्रचारित किया जाये। उनका मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी विधेयक वापस ले लिया जाना चाहिए। मै सिद्धान्ततः हमारे मन्दिरोंके प्रबन्धमें विधान-मण्डलोंके अप्रत्यक्ष हस्तक्षेपके भी विरुद्ध हूँ। मैं इस विधेयकके विरुद्ध इसलिए भी हूँ क्योंकि वह एक अत्यन्त गलत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार मन्दिरोंको किसी ऐसी जातिके लोगोके लिए जो अभी तक मन्दिरोमे नही आ सकते है, खोलनेका सवाल अमुक मन्दिर जिस क्षेत्रमें स्थित है उस क्षेत्रके हिन्दू मतदाताओंके बहुमतसे तय किया जायेगा, और उनका मत उन मन्दिरोंके न्यासियों और वहाँ पूजा करनेवाले लोगोंके लिए बाध्यकारी होगा। धर्म और अन्तःकरणसे सम्बन्धित किसी प्रश्नको बहुमतसे तय करनेकी बातको मै सर्वथा गलत और अनुचित मानता हूँ। यह तो शुद्ध बाध्यकारिता होगी। हमें इस सवालको धार्मिक तरीकेसे अर्थात् शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेके तरीकेसे ही हल करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि हम इस तरीकेसे सफल होंगे। यह भी निश्चित मत है कि कानून बनानेके इस तरीकेका आखिरतक जोरदार विरोध किया जायेगा, और हमारा जो लक्ष्य है इससे उस लक्ष्यको प्राप्त करनेमे और देर लगेगी। स्थितिको समग्र रूपसे देखते हुए मेरी रायमे यह उचित होगा कि आप मेरा पत्र और यह तार प्रकाशित कर दे। जनतामे जो उग्र भावना पैदा हो गई है उसे देखते हुए और समाजके सभी वर्गोकी सद्भावनाको लेकर आगे बढ़नेके औचित्यको देखते हुए आपको विधेयकको प्रचारित करनेके प्रस्तावका समर्थन करना चाहिए।

मालवीय

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

परिशिष्ट १३

बी० आर० अम्बेडकरका वक्तव्य[1]

यद्यपि मन्दिर-प्रवेशका विवाद सनातनियों और महात्मा गांधीके बीचका विवाद है, लेकिन दलित वर्गोको इसमे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है, क्योंकि जब मामलेके अन्तिम निपटारेका समय आयेगा तब उनकी क्या स्थिति है, उसका इस या उस पक्षपर जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि उनके दृष्टिकोणको स्पष्ट कर दिया जाये, ताकि उसके सम्बन्धमे कोई दुविधा न रह जाये।

श्री रंगा अय्यरके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको, इस समय उसका जो रूप है, दलित-वर्ग अपना समर्थन नहीं दे सकते। विधेयकका सिद्धान्त यह है कि यदि मन्दिर-विशेषके निकट नगरपालिका अथवा स्थानीय बोर्डके मतदाताओका बहुमत जनमत-संग्रह द्वारा बहुमतसे दलित वर्गोको मन्दिरमे प्रवेश करने देनेका निर्णय करता है तो उक्त मन्दिरके न्यासियों अथवा व्यवस्थापकको उस निर्णयको कार्यरूप देना होगा। यह सिद्धान्त तो बहुमत शासनका सामान्य सिद्धान्त है। विधेयक किसी भी अर्थमे, क्रांतिकारी अथवा मौलिक नही है। और यदि ज्यादातर सनातनी समझदार हुए तो वे इसे बिना किसी आपत्तिके स्वीकार कर लेंगे।

दलित वर्ग इस सिद्धान्तपर आधारित विधेयकका समर्थन क्यों नहीं कर सकते, इसके दो कारण है। दलितवर्गके लोग इस विधेयकसे जल्दी मन्दिरमे प्रवेश पा सकेगे, ऐसा कुछ नही होनेवाला है। यह सच है कि विधेयकके अन्तर्गत, जो न्यासी अथवा व्यवस्थापक बहुमतके निर्णयके अनुसार दलित वर्गोके लिए मन्दिरके द्वार खोल देते है उनके विरुद्ध अल्पमत [अदालतसे] निषेधाज्ञा नहीं ले सकता। लेकिन इससे पहले कि हम विधेयककी इस धारासे सन्तुष्ट होकर उसके रचयिताको बधाई दें, सबसे पहले हमे इस बातका भरोसा होना चाहिए कि जब इस प्रश्नपर मतदान होगा तब बहुमत इसके पक्षमें मत देगा। और यदि इसके बारेमें किसीको कोई भ्रम नहीं है तो हमे स्वीकार करना होगा कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर बहुमत प्राप्त होनेकी आशा बहुत कम है। इसमें कोई शक नही है कि आज बहुमत दलित वर्गोके मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध है — यह एक ऐसा तथ्य है जिसे विधेयकके रचयिताने शंकराचार्यके साथ हुए अपने पत्र-व्यवहारमें स्वीकार किया है।

विधेयकके पास होनेपर जो स्थिति उत्पन्न होगी उसमे ऐसा क्या होगा जिससे यह आशा की जा सके कि बहुसंख्यक लोग आज जैसा व्यवहार कर रहे है उससे

१. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३ तथा "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", २२-२-१९३३।

भिन्न व्यवहार करेंगे? मुझे तो इसमे कुछ दिखाई नही देता। बेशक, इससे तो मुझे गुरुवायूर मन्दिरके सम्बन्धमे ए जनमत-संग्रहकी याद दिलाई जायेगी। लेकिन मै जनमत-संग्रहके परिणामको स्वीकार करनेको तैयार नही हूँ, क्योकि उसमें एक पलडे पर महात्मा गांधीका जीवन चढ़ा हुआ था जिसने उसे बहुत वजनी बना दिया था। इस तरहके हिमावमें महात्माके जीवनको अलग रखा जाना चाहिए।

यदि हिन्दू-धर्मको सामाजिक समानताका धर्म होना है तो दलित वर्गोको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देकर उसके विधानमे सशोधन करना-भर ही पर्याप्त नही है। जरूरत तो चतुर्वर्णके सिद्धान्तका परिष्कार करनेकी है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-२-१९३३

परिशिष्ट १४

जवाहरलाल नेहरूका पत्र[1]

देहरादून जेल,
५ जनवरी, १९३३

प्रिय बापू,

आपका पत्र मेरे लिए हमेशा टॉनिकका काम करता है, उमको देखकर मन पुलकित हो उठता है और उसका प्रभाव और भी ज्यादा आह्लादकारी होता है। लिफाफेपर महादेवकी लिखावटको मैने पहचान लिया। आपकी लिखावट परसे ऐसा नही लगता कि किसी वृद्धने लिखा है। कदाचित् आपका बाँया हाथ काम करने लगा है और मै उमसे अधिक परिचित नही हूँ।

आपने अस्पृश्यताके विरुद्ध जो लड़ाई छेड़ी है उमका विवरण मै 'स्टेट्समैन' और 'पायनियर' मे से यथासम्भव और गहरी दिलचस्पीके साथ पढ रहा हूँ। आप जो-कुछ भी करें वह दिलचस्प और मोहक होता है। इस विषयमे बहुत सारी सम्भावनाएँ हैं। लेकिन चूँकि मै धार्मिक व्यक्ति नही हूँ, मेरी दिलचस्पी तो इसके सामाजिक पहलू और उससे जुडे दूसरे महत्त्वपूर्ण सवालोमें है।

बेशक, यदि सरूप चाहे तो उसे अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। मैने कुछ दिन लंका बितानेका जो सुझाव दिया था वह मुख्यत· कृष्णाके हितको ध्यानमे रखकर दिया था। मै उसको लेकर जरा परेशान हूँ। एक वर्ष जेलमे रहने और हमारे घरके करीब-करीब टूट जानेपर वह दरअसल अपने-आपको बेकारीकी हालतमें पाती है और उसे समझ नहीं आता कि वह क्या करे। हमारे अन्य कार्योमे उलझे रहने और बार-बार जेल जानेसे उस बेचारीको बचपनसे घरके जीवनका सच्चा सुख और सही शिक्षा नही मिली है। वह एक अकेली लड़कीके रूपमें बड़ी हुई और उसे जितनी मिलनी चाहिए थी उतनी लोगोंकी मित्रता और सहानुभूति नहीं मिली।

१. देखिए "पत्र : जवाहरलाल नेहरूको", १५-२-१९३३।

पिताजीकी मृत्युने उसे बहुत ज्यादा हिला दिया। मैंने उसे ढाड़स बँधाने और उसका विश्वास प्राप्त करनेकी कोशिश की और मुझे खुशी है कि मै कुछ हदतक सफल भी हुआ। लेकिन १९३१ का साल हम सबके लिए काम, चिन्ता और परेशानीसे भरा साल था। और उसके बाद उसे एक लम्बे अर्सेके लिए जेल जाना पडा जो एक छोटी लडकीके लिए हममे से अधिकाश लोगोसे कहीं अधिक कष्टकर था। जैसे-जैसे उसके रिहा होनेके दिन निकट आते गये मैंने महसूस किया कि आज आनन्दभवनका जैसा जीवन है उससे उसे कोई खुशी नही होगी। वह अपने-आपको इस जीवनसे अलग महसूस करेगी। वह कुछ करना तो चाहेगी लेकिन क्या करे, यह समझ नही पायेगी। मुझे भी समझ नही आ रहा था कि मुझे उसे क्या करनेके लिए कहना चाहिए। इधर हालमें वह मेरी ओर इस शून्य संसारमे एक आश्रयदाताके रूपमे देखने लगी है। यदि मै बाहर होता तो मै उसकी मदद करता, लेकिन देहरादून जेलसे मै बहुत कम कर सकता हूँ।

मुझे लगा कि यदि वह थोड़े दिन ऐसी जगह बिताये जहाँ चिन्ता करनेका कोई कारण न हो तो इससे उसके चित्तको शान्ति मिलेगी और तनाव भी दूर हो जायेगा। इसलिए मैंने लंका जानेका सुझाव दिया था। तीन सप्ताह लकामे रहनेसे कोई समस्या सुलझ नही जाती, लेकिन वह तरोताजा हो जाती और जीवनके प्रति अपेक्षाकृत आशावान दृष्टिकोण लेकर लौटती। मेरे मनमे ये कारण थे। मै शारीरिकसे अधिक मानसिक स्वास्थ्यकी बात सोच रहा था। लेकिन मुझे लगता है कि मेरा यह सुझाव निष्फल हो गया है, क्योकि इसके बारेमे किसीको कोई उत्सुकता नहीं है। इसलिए इस समय लका जानेकी बात खत्म हुई।

कदाचित् कृष्णा आपसे मिलनेके लिए पूना जायेगी और आप उसे उसके कार्यके बारेमें कुछ सलाह दे सकें। मै भी शायद उससे मिलूँ। फुटकर कार्य करनेका सुझाव देना तो आसान है, लेकिन वह सम्बद्ध व्यक्तिको भी पसन्द आने चाहिए।

जहाँतक लोगोंके मुझसे मुलाकात करनेके लिए आनेका सवाल है, सात महीने पहले मेरी घरके लोगोंसे एक मुलाकात हुई थी। मै उनका अभाव तो बहुत ज्यादा महसूस करता हूँ, लेकिन सयुक्त प्रान्त सरकारने माँ और कमलाके साथ बहुत अभद्रतापूर्ण व्यवहार किया, इसलिए मुझे लगा कि मेरे पास और कोई विकल्प नहीं है। इसके अलावा मैं अभीतक अपने हठको नहीं छोड़ पाया हूँ — एक वंशानुगत अवगुण जिसके बारेमे आपको निश्चित रूपसे मालूम होगा। सरकारने अपने व्यवहारमें कुछ सुधार किया और गृह-सदस्य, छतारीके नवाब मेरे पास आये और उन्होंने चिन्ता व्यक्त की। परन्तु यह सब तो प्रसंगसे बाहरकी बात हुई, लेकिन शोभनीय और सही बात नही की गई। लेकिन तब सही चीज तो बहुत कम की जाती है। मैंने फिर सरकारको लिखा। फिर भी मैंने मन-ही-मन निश्चय किया कि अगर विशेष जरूरत हुई तो मैंने लोगोंसे मिलनेके लिए जो मनाही कर दी है उसे वापस ले लूँगा और मुलाकातके लिए राजी हो जाऊँगा। इसलिए कुछ हफ्तोंसे यही स्थिति है। लेकिन चूँकि मेरे नैनी जेलमें वापस जानेकी बात चल रही थी, इसलिए मैंने जल्दी मुलाकात करनेके लिए नही कहा।

अब आपने भी इसके बारेमें लिखा है, सो मैं तुरन्त आपके आगे आत्मसमर्पण करनेके अलावा और कर भी क्या सकता हूँ? इसलिए अबसे, जबतक कोई बुरी घटना नही घटती तबतक मै लोगोंसे मुलाकात करता रहूँगा। कमला शायद अभी कुछ और हफ्ते मुझसे न मिल सके। वह कलकत्तामें डॉ० विधानका इलाज करवा रही है। लेकिन मैं माँ और इन्दुसे, सरूप और कृष्णासे अथवा उन लोगोंसे मुलाकात करूँगा जो मुझसे मिलनेके लिए आ सकते हैं।

मुलाकातोंके बन्द हो जानेसे मैं और भी अन्तर्मुखी हो गया हूँ। लेकिन मेरे पास अत्यन्त मनोहर और स्नेहशील पड़ोसी है — हिमालय। दूर क्षितिजमे लहराती शिखर-रेखा और अब बर्फसे ढँकी चोटियोंका मेरे लिए बड़ा महत्त्व रहा है। इन चोटियोंको देखकर मेरे मनमें बहुत पहलेकी पुरानी स्मृतियाँ उभर आती है जब कदाचित् मेरे पूर्वज कश्मीरके पहाड़ोंमे घूमते और बर्फके साथ खेलते रहे होंगे। मेरे यहाँ और भी साथी हैं लेकिन अधिकांशतः मै अकेला ही रहता हूँ और पैतृक तथा पारिवारिक परम्परा और आदतके विरुद्ध मेरी वृत्ति चिन्तन करनेकी हो गई है। लेकिन मुझे भय है कि तनिक भी छेड़नेसे यह पतली-सी पर्त हट जायेगी। भला हब्शी अपनी चमडी कैसे बदल सकता है।

मैंने बहुत कुछ पढ़ा है और यदि किताबोंसे बुद्धि ग्रहण की जा सकती है तो मै बुद्धिमान हो गया हूँगा। लेकिन बुद्धि मुझे धोखा देती है और मै जिधर भी देखता हूँ मुझे बड़ा-सा प्रश्न-चिह्न दिखाई देता है। कभी-कभी मैं राजकुमार सिद्धार्थके पुरातन प्रश्नकी बात सोचता हूँ और मुझे कोई उत्तर नहीं सूझता :

भला यह कैसे हो सकता है कि ब्रह्माने
सृष्टि बनाई और उसे कष्टमें डाल दिया,
क्योंकि, यदि सर्वशक्तिमान होते हुए वह
ससारको ऐसे ही रहने देता है,
तो वह भला नहीं है, और यदि वह
सर्वशक्तिमान नहीं है,
तो वह भगवान नही है?

समाचारपत्रोमे छपे विवरणोसे पता चलता है कि आप हमेशाकी तरह श्रमके दास है और जेलमे भी जरूरतसे ज्यादा काम कर रहे है। पश्चिमकी नवीन औद्योगिक प्रणालीकी अक्सर आलोचना और निन्दा की जाती है, क्योंकि वह अनवरत कार्य करनेके लिए मनुष्यको यन्त्रवत् बनाती है और उससे उसका आराम छीन लेती है। आप तो इस प्रणालीके प्रेमी नही माने जाते। और फिर भी, आप मुझे अक्सर इसी औद्योगिक प्रणालीका जीता-जागता रूप दिखाई देते है।

आपकी इस बातसे मुझे कौतूहल होता है कि चश्मदीद गवाहोंने आपको बताया है कि मैं स्वस्थ हूँ। खबर तो सच्ची है, लेकिन ये चश्मदीद गवाह कौन हो सकते हैं जो आपतक पहुँच सकनेमे सफल हुए है? मैंने लम्बे अर्सेसे किसीसे मुलाकात नहीं की है और एक साथीके अलावा जिसे एक महीने पहले रिहा कर दिया गया

था, मै हाल ही में किसी और चश्मदीद गवाहकी बात नही सोच सकता। यह सच है कि मेरे चार दाँत चले गये है। मैंने उन्हें शारीरिक स्वास्थ्यकी देवीको शान्त करनेके लिए आधुनिक विज्ञानके मन्दिरमें बलि चढ़ा दिया है।

जेलके लिहाजसे यह एक लम्बा पत्र है। लेकिन मै आपको यह पत्र एक सालके बाद लिख रहा हूँ और मैने आपको १६ महीनोंसे भी ज्यादा समयमे नही देखा है। मैने आपकी अन्तिम झलक उस समय देखी थी जब आप सुदूर पश्चिमके लिए रवाना हो रहे थे और जैसे-जैसे जहाज दूर जा रहा था आपका आकार छोटा होता जा रहा था और हम घाटपर खड़े हुए लाचार और असहाय होकर देखते रहे।

यरवडाके आपके सुखी परिवारको सप्रेम।

हृदयसे आपका,

ज०

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३३; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

परिशिष्ट १५

मथुरादाससे बातचीत[1]

१८ फरवरी, १९३३

[बापू]: वेदमें शूद्रोंको अधिकार नहीं है, उसमें केवल तीन वर्णोकी ही मुख्य बात कही गई है, यह बात सच है। लेकिन हमारे देखनेमें जो आते है उतने ही वेद नही हैं। हजारों पुस्तकोंमे से हमारे पास थोडी ही रही है। वेदोके भीतर धर्म भी है और इतिहास भी है। और इतिहास धर्म नही है। धर्मका भाग सनातन और शाश्वत है; इतिहासका भाग उस समयकी परिस्थितिको बताता है। मुझे कबतक जीना है, यह कौन जानता है? पर काम पूरा करके बैठे हो, तो यह जरूर जीमे आये कि वर्णाश्रम-धर्मकी बात लेकर बैठ जाये। किन्तु वर्ण-धर्मकी रचनाके लिए आश्रम-धर्मका आधार चाहिए। उसके बिना सारी इमारत कच्ची ही रहेगी। वर्णाश्रम-धर्ममें सन्तोष है। अपने-अपने धर्म-कर्मके बारेमे समाधान है। इसलिए वर्णाश्रम-धर्म दैवी प्रवृत्ति है जबकि और सब आसुरी प्रवृत्ति है; वर्णाश्रम-धर्म सात्विक है, जबकि और सब प्रवृत्ति राजसी है।

इस कानूनको जान ले, तो इसमे से कई बातें फलित होती हैं। पानी पीना जानते हों, पर पानीका शास्त्र न जानते हों, तो कोई लाभ नही। पानीके अनेक रूप — बर्फ, भाप, पानीसे पैदा होनेवाली बिजली — यह सब जानते हों, तो कहा

१. देखिए "मन्दिर-प्रवेश और वर्णाश्रम", १८-२-१९३३।

जायेगा कि हम पानीका शास्त्र जानते हैं। यही बात वर्णाश्रमके बारेमें है। यह तो सार्वजनिक तत्त्व है।

[मथुरादास]: अर्थात्, मुसलमान जिस तरह यह दावा करते है कि इस्लामका अर्थ है शान्ति, यह ससारका नियम है, सारे समारके लिए है; उसी तरह आप भी कहते है न कि वर्णाश्रम-धर्म ससारका नियम है?

बापू: हाँ, इसी अर्थमें। हरएक धर्ममें कुछ खास सनातन तत्त्व है। उनका पालन करनेवाले सब उतने अशमें उस धर्मका पालन करते है। बाकीके हिस्से उस समयकी और उस जगहकी परिस्थितिके अनुसार है।

वर्णाश्रम-धर्मका जन्मके साथ सम्बन्ध न हो, तो मै वर्णाश्रम-धर्म आज ही छोड़ दूँ। तब तो फिर इसमें रह ही क्या जाता है? मैं यह मानता हूँ कि सुतारका लड़का सुतार हो और लुहार न हो, यही ठीक है। भले ही ऐसे सैकड़ों जातियाँ होती हों तो हों। जबतक उन लोगोंके बीच खाने-पीने और रोटी-बेटीका व्यवहार रहे, तबतक चाहे जितनी जातियाँ बनें। इन रोटी-बेटीके बन्धनोंने सारी बात महा-कष्टमय कर डाली है।

द्रोणाचार्य धर्मभ्रष्ट हुए थे, यह मैं जरूर कहूँगा। मेरा कहना यह है कि एक वर्णके मनुष्यको दूसरे वर्णके कर्म करनेका अधिकार नहीं है ऐसी बात नहीं, बल्कि यह अनुचित है। मैं कहता हूँ कि यह धर्म सबके लिए है। इसका अनायास नही बल्कि सोच-समझकर पालन होना चाहिए। जैसे हिन्दू इस धर्मका पालन करें, वैसे ही मुसलमान भी करें। इसी अर्थमे मैने कहा था कि यह 'हिन्दू-धर्मकी मानव-जातिके लिए सबसे बड़ी भेट है।' इस धर्मके पालनसे सारे समाजकी रक्षा होगी, सारा समाज अजेय होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १५२-३

परिशिष्ट १६

शुद्धिकर्त्ता[1]

(सत्येन्द्रनाथ दत्तकी बंगला कविता 'मेहतर' के रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत अंग्रेजी रूपान्तरका भावानुवाद)

स्पर्शसे तुम्हारे, बंधु, ये क्यों कतराते है?
गंदा तुम्हें ये क्यों बतलाते हैं?
सफाई तो तुम्हारे पीछे-पीछे चलती है,
धरतीको, हवाको
हमारे लिए नित विमल-मधुर करती है

१. देखिए "पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको", २०-२-१९३३ तथा "हम घृणा नहीं करते", २५-२-१९३३।

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और तत्सम्बन्धी कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जिसमें गांधीजी से सम्बन्धित कागजात रखे हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईमें प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' : रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक, जो गांधीजी की देखरेखमें ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हरिजनबन्धु' : चन्द्रशेखर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा १२ मार्च, १९३३ को पूनासे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'हरिजन सेवक' : वियोगी हरि द्वारा सम्पादित और २३ फरवरी, १९३३ को दिल्लीमें प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' : नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

गांधी-सप्रू करेस्पांडेंस : कलकत्ताके राष्ट्रीय पुस्तकालयमें उपलब्ध निजी कागजातकी फाइल।

होम डिपार्टमेंट, बम्बई सरकार, इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन्स फाइल।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, १९३३ : बम्बई सरकारके सरकारी कागजात।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी : जो स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित है।

'इन द शैडो ऑफ द महात्मा' (अंग्रेजी) : जी० डी० बिड़ला, ओरिएण्ट लॉन्गमेन्स लिमिटेड, इंडिया, १९५३।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी) : जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : सम्पादक : काका कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बड़ोंके प्रेरणादायक कुछ पत्र': वियोगी हरि, कुटीर प्रकाशन, दिल्ली, १९६०।

'बापूना पत्रो-६ : ग० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती) : सम्पादक: काकासाहब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने' (गुजराती) : सम्पादक : छगनलाल नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६२।

'बापुना पत्रो – ९. श्री नारणदास गांधीने', भाग – २ (गुजराती) : सम्पादक : नारणदास गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६४।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष': हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम मुद्रणालय, प्रयाग, १९५७।

'बापूज लेटर्स टु मीरा' (अंग्रेजी) : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९४९।

'महादेवभाईनी डायरी', भाग – ३ (गुजराती) : सम्पादक : नरहरि द्वा० परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : सम्पादक : एलिस एम० बार्न्स, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५६।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(११ जनवरी, १९३३ से ५ मार्च, १९३३ तक)

११ जनवरी: गांधीजी यरवडा सेन्ट्रल जेलमें ही रहे। एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१२ जनवरी: अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघके सचिव देवनायक आचार्य और अन्य लोग गांधीजी से बातचीत करनेके लिए आये, किन्तु उनसे मिले बिना ही चले गये।

१३ जनवरी: गांधीजी ने सदाशिवराव और शिन्देसे भेंट की।

१४ जनवरी: 'हिन्दू' के प्रतिनिधि एम० सालिवतीसे भेंट की; के० केलप्पनसे समझौता-प्रस्तावपर बातचीत की।

१६ जनवरी: भारत सरकारके गृह-सचिव एम० जी० हैलेटको तार भेजकर उनसे जेलोंमें सफाई-व्यवस्थाके सम्बन्धमें सरकार द्वारा लिये गये निर्णयके बारेमें पूछताछ की।

सर लल्लूभाई सामलदाससे भेंट की।

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१७ जनवरी: लेडी ठाकरसीसे भेंट की; धर्मदेवसे बातचीत की।

१८ जनवरी: भेंटकी मिथ्या रिपोर्टका विरोध करते हुए 'हिन्दू' और उसके प्रतिनिधिको तार दिये।

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

मदनमोहन मालवीयने इलाहाबादके सनातनियोंके सम्मेलनकी आयोजनाके बारेमें एक वक्तव्य जारी किया।

२० जनवरी: गांधीजी ने हरिभाऊ फाटक, श्रीमती भट्ट, नर्गिसबहन, शंकरराव ठक्कर तथा अन्य लोगोंसे भेंट की।

तलेगाँवकर, जेढे तथा अन्य लोगोंसे बातचीत की।

२१ जनवरी: पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास, वझे, देवधर और पटवर्धनसे भेंट की।

२२ जनवरी: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

२३ जनवरी: वाइसरायने रंगा अय्यर द्वारा केन्द्रीय विधान-सभामें अस्पृश्यता-निवारण विधेयकको पेश करनेकी सहमति दे दी, किन्तु मद्रास कौंसिलमें सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको पेश किये जानेकी अनुमति देनेसे इन्कार कर दिया।

गांधीजी ने लक्ष्मणशास्त्री जोशीसे मदनमोहन मालवीयके प्रस्तावपर बातचीत की।

मैकरे, गोपालन और सेवासदनकी बालिकाओंसे भेंट की।

२४ जनवरी : वाइसरायके निर्णयपर वक्तव्य जारी किया।
श्रीमती गाडगिल, लीलावती मुंशीकी पुत्री, पुरुषोत्तम और मैकरेसे भेंट की।

२५ जनवरी : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

२६ जनवरी : तेजबहादुर सप्रूको अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंके बारेमें उनकी राय जाननेके लिए पत्र लिखा।

२७ जनवरी : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंटके दौरान सनातनियोंको सलाह दी कि वे "हरिजन सेवक संघमें शामिल हो जायें और हरिजनोंकी भौतिक सुखोन्नतिके उसके कार्यक्रमको पूरा करनेमें सहयोग दें।"

२८ जनवरी : एस० सात्त्विनी, काका, परमानन्द और कुछ गुजराती विद्यार्थियोंसे भेंट की।

३० जनवरी : च० राजगोपालाचारी, घनश्यामदास बिड़ला और देवदाससे बातचीत की कि वाइसरायकी स्वीकृति मिलनेके बाद अब कौनसे कदम उठाये जायें।

३१ जनवरी : च० राजगोपालाचारी तथा घनश्यामदास बिड़लासे बातचीत जारी रही।
मु० रा० जयकरने गांधीजी से भेंट की।

१ फरवरी : गांधीजी ने वाइसरायको पत्र लिखकर सरकारसे विधेयकोंपर तेजीसे विचार करनेका अनुरोध किया। च० राजगोपालाचारी और घनश्यामदास बिड़लासे बातचीत की।

२ फरवरी : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।
वेलकर, गोहिल, कुछ विद्यार्थियों और रामचन्द्र शास्त्रीसे भेंट की।

३ फरवरी : हीरालाल शाह और लीलावती मुंशीसे भेंट की।

४ फरवरी : अम्बेडकरके साथ दोनों विधेयकों और मन्दिर-प्रवेश समस्यापर बातचीत की। स्टेनली जोन्सने गांधीजीसे भेंट की।

५ फरवरी : हरिजन सम्मेलन, कोलाबाको सन्देश भेजा।

६ फरवरीसे पूर्व : 'हरिजन'के सम्बन्धमें वक्तव्य जारी किया।

६ फरवरी : मैकरेसे भेंट की।

७ फरवरी : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंटके दौरान जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा रंगा अय्यरको लिखे पत्र और श्री अय्यर द्वारा लिखे गये उसके उत्तरके बारेमें अपने विचार व्यक्त किये।

९ फरवरी : ई० ई० डॉयलको अप्पासाहब पटवर्धनके आंशिक अनशनके बारेमें पत्र लिखा। एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

११ फरवरी : 'हरिजन' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। गांधीजी ने अप्पासाहब पटवर्धनके अनशनके बारेमें सरकारको पत्र लिखा। विधान-सभाके सदस्योंको एक सन्देश भेजते हुए यह आशा व्यक्त की कि "वे सभी मिलकर इस बातका प्रयास करेंगे कि इन विधेयकोंपर सभाके इसी सत्रमें विचार किया जा सके।"
कोदंडराव, जानकीबाई, शान्ताबाई और गोमतीबहनसे भेंट की।

लक्ष्मणशास्त्री जोशीने मदनमोहन मालवीयका पत्र दिया।

१३ फरवरी : अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा अनशन समाप्त करनेकी खबर मिलनेके बाद गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेट की।

१४ फरवरी : मदनमोहन मालवीयको "बम्बईमें किये गये संकल्पोंको देखते हुए" विधेयकोंकी आवश्यकताके विषयपर तार दिया और उनसे बातचीतके लिए आनेका आग्रह किया।

केलकरके साथ बातचीत की।

अम्बेडकरके वक्तव्यके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेट की।

१६ फरवरी : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेटके दौरान गांधीजी ने 'न्यूज क्रॉनिकल' में छपे वक्तव्यपर टीका करते हुए सुधारकोंकी स्थिति स्पष्ट की।

मदनमोहन मालवीयका तार मिला जिसमें विधेयकोंको प्रचारित करने और पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करनेका आग्रह किया गया था।

१८ फरवरी : 'ऐसा कब सम्भव है ?' शीर्षक लेखमें गाधीजी ने सुधारकोंको चेतावनी दी कि वे अस्पृश्यता-निवारण हेतु मेरे द्वारा एक और उपवास किये जानेकी सम्भावनाका नाजायज फायदा न उठायें।

१९ फरवरी : एम० जी० हैलेटको पत्र लिखा।

२० फरवरी : अपने साथी-कैदी जमनालालसे मिले।

२३ फरवरी : 'हरिजन सेवक' का पहला अक प्रकाशित हुआ।

२४ फरवरी : रामदास, जमायतसिह, नर्गिसबहन, पेरीन बहन, कमलाबहन और मथुरादासने गाधीजी से भेंट की।

मदनमोहन मालवीयके नाम एक पत्रमे गाधीजी ने लिखा कि बम्बई प्रस्तावमे दिये गये वचनका पालन कानूनके बिना नहीं किया जा सकता।

२७ फरवरी : कमलादेवी चट्टोपाध्यायसे भेंट की।

२ मार्च : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

४ मार्च : 'प्रश्नोंको उलझाना' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने वर्ण-धर्मका सार बताया और इस बातपर जोर दिया कि वर्णाश्रम-धर्मकी मूल धारणामे ऊँच-नीचका भाव नही है।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

ए

क

घ

च

न

प

फ

ब

भ

स

भूल-सुधार

शीर्षक संख्या ४२, पृष्ठ ४१, तथा शीर्षक १५०, पृष्ठ १२१, का समावेश इस खण्डमे भूलसे हो गया है। ये दोनों शीर्षक खण्ड ५२ मे यथास्थान आ चुके हैं; देखिए शीर्षक संख्या ५६०, पृष्ठ ४२८, और शीर्षक संख्या ३२२, पृष्ठ २५२।